साम्यवाद।

येक प्राणी के लिये संसार एक समर भूमि है, जहां
प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल बनाने के उद्योग में
उसको अनेक संकट और आपत्तियों से युद्ध करके
संग्राम करना पड़ता है। कामना-प्रेरित मनुष्य को
अभाव की पूर्ति अथवा विपत्ति निवारण के लिए
परिश्रम करना पड़ता है। प्राप्त पदार्थों से अधिक पाने की
उसको सदा बनी रहती है। सांसारिक सुख मृग-तृष्णा की
को बराबर अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। धन, बल,
वैभव आदि में समान पुरुष से बढ़ने की और उन्नत से
करने की इच्छा बनी रहती है। मानसिक तथा शारीरिक
ां ही उसके जीवन का कारण हैं। अतएव ईर्ष्या, राग, द्वेष
प आदि विकार मन को चंचल बनाए रखते हैं। ऐसी अवस्था
मनुष्य को शान्ति प्राप्त न हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।
त्यागी, जितेन्द्रिय और आत्मनिष्ठ महात्माओं के अतिरिक्त
र में किसी को परम सुखी और सन्तुष्ट पाना असम्भव है। शरीर
ध-मन्दिर है, कोई देह-धारी क्लेश से तो बच नहीं सकता।
सहस्रानीत मनुष्य तो मानों दुःख भोगने के लिए ही जन्म लेते
सुख-सामग्री मिलना तो एक ओर रहा जीवन निर्वाह के
श्यक पदार्थ भी उनके लिए अलभ्य होते हैं। अनेक यातनाएं
ते हुए वे किसी प्रकार अपना दुःखद जीवन व्यतीत करते
और अन्त में मृत्यु ही उनको संकट-मुक्त करती है।
जब व्यक्तियों की ऐसी दशा है तो व्यक्ति-समूह अर्थात् समाज की
वस्था भी इससे निराली नहीं हो सकती। समाज अनेक व्याधियों
पीड़ित एक रोगी के समान है। एक व्याधि का उपाय हो नहीं
पाता कि नए नए रोग उत्पन्न हो जाते हैं। समाज का समस्त क्लेशों
से मुक्त होना असम्भव है। नई नई समस्याएं प्रतिदिन उपस्थित
होती हैं। परम सुखी और सन्तुष्ट समाज की कल्पना ही नहीं हो
सकती क्योंकि स्थिति-प्रतिकूलता के कारण जब तक समाज में
हलचल तथा प्रवृत्ति है तभी तक उसमें जीवन है। अतएव पूर्ण
साम्यावस्था असंभव है और यदि प्राप्त हो जाय तो समाज का
अस्तित्व ही न रहे।

अस्तु, अनेक संस्थाओं को बना कर मनुष्य ने सभ्य बनने और सुख
प्राप्त करने का उद्योग किया है। परन्तु कोई संस्था सर्वथा दोष मुक्त
नहीं है। जब वे मनुष्य की रचना हैं तब निर्दोष और स्थायी हो भी
कैसे सकती हैं? समय समय पर महात्माओं ने भी अपने आदर्श
चरित्र तथा अमूल्य उपदेशों से मानव जाति के उद्धार का यत्न किया
है। परन्तु यह प्रत्यक्ष है कि उनको सफलता बहुत ही थोड़ी प्राप्त हो
सकी है। कारण इसका चाहे कुछ भी हो। सभ्यता की अवश्य
उन्नति हुई, कुछ संतप्त आत्माओं को उनके उपदेशामृत से शान्ति भी
मिली परन्तु असंख्य प्राणियों को संकट-मुक्त करने में वे सर्वथा
असमर्थ रहे। विज्ञान की ज्योति भी व्याधियों के उमड़ते मेघों में
अपनी चमक मात्र दिखला कर निस्तेज पड़ जाती है। वेगवती
आपदाओं के दमन करने में मन्दगति विज्ञान भी असमर्थ हो रहा है।
प्रतिक्षण जो आर्तनाद मानव-जाति के कंठ से निकल रहा है उसकी
हृदय विदारक भीषणता किसी प्रकार कम नहीं हो रही है। सदैव
नाना प्रकार के घोर प्रयत्न करने पर भी असंख्य जनों के लिए सुख
की मात्रा बढ़ती नहीं दिखाई देती। करुणसागर परमात्मा की प्रजा
भवसागर में पड़ी, नितान्त असहाय हो कर दारुण वेदना से व्यथित
रहती है! यह क्या माया है, कैसी विचित्र लीला है!
कुछ ऐसी भी हैं जिनका उपाय
समस्त आपदाएं अनिवार्य नहीं हैं।
समाज की व्यवस्था पर निर्भर है।
सामाजिक दुरवस्था के कारण समाज में सब ओर असन्तोष का
साम्राज्य है। असन्तोष के बिना उन्नति नहीं हो सकती, परन्तु इसी
के कारण समाज में परस्पर द्वेष भाव उत्पन्न होता है। मनुष्य स्वतंत्रता

का स्वभाव से अभिलाषी है परन्तु वह देखता है कि अधिकार प्राप्त
लोग अपने स्वार्थ साधने के लिए उसकी स्वतंत्रता का अपहरण कर
लेते हैं। दूसरी ओर वह यह भी देखता है कि समाज में अटल
असमानता या विषमता व्यापक है। सब मनुष्य, प्रकृति के अटल
नियमानुसार सब बातों में एक से नहीं हो सकते। परन्तु बहुत सी
बातों में असमानता, प्राकृतिक नियमों पर अवलंबित नहीं है।
सुव्यवस्था से वह बहुत कुछ अंशों में दूर की जा सकती है। इतिहास
के देखने से ज्ञात पड़ता है कि किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त कर
लेने पर मनुष्य उनकी रक्षा करने का पूरा प्रयत्न करता है। यदि वे
तो वह यही सिद्ध करने की चेष्टा करता है कि वे जन्म-सिद्ध हैं।
इसलिए उनके विरुद्ध किसी का कुछ आपत्ति करना धर्म या न्याय-
संगत नहीं है। यदि इतनों से अधिकारों की रक्षा नहीं होती तो
वह समाज की भलाई का बहाना बना कर उनको अपने हाथ से
नहीं जाने देता। परन्तु अन्त में यह सब चेष्टाएं विफल होती हैं
क्योंकि एक ओर तो उसके स्वार्थ की मात्रा बढ़ती जाती है जिससे
लोगों में असन्तोष बढ़ता जाता है और दूसरी ओर उसके विपक्षियों
का विरोध भी प्रबल होता जाता है। यदि अधिकार प्राप्त लोग
स्वभाव से स्वार्थी न हों तो जन साधारण को आपत्ति करने का
विचार सहज उत्पन्न न हो। फिर मनुष्य इस बात को भी भली
प्रकार समझता है कि जिनके पास किसी प्रकार का अधिकार या
शक्ति है वे सुगमता से अपनी दशा विशेष उन्नत कर सकते हैं और
जो इससे वंचित हैं उनके लिए साधारण उन्नति भी दिन प्रति दिन
कठिन हो जाती है। धनवान को धनोपार्जन की जितनी अनुकूलता
प्राप्त है उतनी निर्धन को नहीं हो सकती। एक की शक्ति सुयोग से
बराबर बढ़ती जाती है और दूसरे के लिये उसकी बराबरी करना अधिक
दुःसाध्य होता जाता है। स्वातंत्र्य प्रियता और अनीति ही असंतोष
के कारण नहीं हैं। सब से प्रबल कारण तो यह है कि एक ओर तो
समाज में गिने गिनाए स्वार्थ-परायण, धन-सम्पन्न मनुष्य हैं जो भोग
विलास में अपना जीवन बिताते हैं और इतनी सम्पत्ति के स्वामी
बने बैठे हैं कि उनकी समझ में यही नहीं आता कि उसका उपयोग
कैसे करें और दूसरी ओर असंख्य भाग्यहीन प्राणी हैं जिनको अंग
ढकने को वस्त्र और उदर पूर्ति के लिए अन्न तक नहीं प्राप्त होता। इन
फिर सम्पत्ति का विभाजन भी परिश्रम के अनुसार नहीं होता। इन
कारणों से असन्तोष और अशान्ति ने भीषण रूप धारण कर
रक्खा है।

साम्यवाद ऐसी सामाजिक अनीतियों का उपाय बताता है और
आशा दिलाता है कि समाज की सुव्यवस्था यदि उसके अनुसार कर
दी जाय तो मनुष्य के बड़े बड़े संकटों का अन्त हो जाय।

साम्यवाद के मूल सिद्धान्तों पर विचार करने से यह विदित हो
जायगा कि ऐतिहासिक दृष्टि से वे अति प्राचीन हैं। पाश्चात्य समाज
सुधारकों ने उन का प्रचार करने में बड़ा उद्योग किया है सही, परन्तु
कोई प्रमाणिक धर्मग्रन्थ ऐसा न मिलेगा जिस में उस के मूल सिद्धान्तों
या किसी अंग विशेष की चर्चा न की गई हो। कोई विरला ही उप
शक, सुधारक या व्यवस्थापक ऐसा मिलेगा जिस ने उनकी सत्
किसी न किसी अंश में न मानी हो, या स्थापित न की हो। समय
सार इसकी चर्चा किसी न किसी रूप से सब सभ्य देशों में
हुई है। अवस्था और सामाजिक आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न सि
न्तों को विशेष महत्व दिया गया है। दया और दान की महिमा
धर्म गाते हैं। स्वार्थत्याग और परोपकार का उपदेश सभी दे
होता है। धन के बोझ से लदे हुए मनुष्य के लिये पर लोक या
स्वर्ग के द्वार तक पहुँचना सर्व काल दुःसाध्य बताया गया है।
फिर दीन दुखियों की आत्मा शांत करने के लिए महात्माओं
को विशेष रूप से संबोधन कर सदा उपदेश किया है। सं
गुलामी की क्रूर प्रथा प्राचीन काल से चली आती थी, इस काल

समाज को मुक्त करने का गौरव साम्यवाद के मूल सिद्धान्तों को ही प्राप्त है।

पाश्चात्य देशों में, विशेष कर वर्तमान युग में, साम्यवाद का समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। इस के कई कारण हैं उन में दो मुख्य हैं। एक तो यह है कि पाश्चात्य देश वासियों को सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों में विशेष रुचि रही है। जैसे इस देश में धार्मिक बातों की ओर लोगों का विशेष ध्यान रहा है और प्रत्येक प्रश्न को धर्म की दृष्टि से देखने का भाव रहा है वैसे यूरोप वासियों को राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं के हल करने और अधिकार प्राप्त करने में उत्सुकता रही है। दूसरा कारण यूरोप की औद्योगिक जागृति है। कारखानों के बनने से समाज की व्यवस्था एक दम बदल गई। धनी और दरिद्र पूँजी वाले मजदूरों का सम्बन्ध घनिष्ठ हो गया और इस से परस्पर विषमता और भी प्रत्यक्ष होने लगी। गाँव में जो शान्तिमय जीवन था वह शहरों और कारखानों में मजदूरों को दुष्प्राप्य हो गया। कारखानों में काम करनेवालों से पशुवत् व्यवहार किया गया इस से भी असन्तोष की मात्रा बढ़ती गई। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि उद्योग धंधों में श्रमजीवियों और मजदूरों का कितना हाथ है। उन को संघ शक्ति का प्रभाव भी मालूम पड़ गया है। अब पूँजी वाले उन के साथ स्वार्थान्ध हो कर मनमानी नहीं कर सकते। संघ शक्ति और कानून की रक्षा से उनकी दिशा बिलकुल बदल गई है और अब उनकी उन्नति में कोई बड़ी रोक नहीं रही। परन्तु यह दशा सहज प्राप्त नहीं हो गई। बड़े बड़े आन्दोलनों के बाद यह सब हो सका है। राज्यक्रांति और विप्लवों ने भी साम्यवाद के प्रचार में सहायता की है बल्कि यह कहना चाहिये कि इस से प्रेरित हो कर जन साधारण ने कभी कभी राज्य सिंहासन तक उलट दिये और अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए फ्रान्स में तो रक्त की नदियाँ बहा दीं। साम्यवाद के सिद्धान्तों को कार्य्य में परिणित करने और अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की उग्र और भयानक चेष्टा प्रजा को करनी पड़ी इस का कारण अधिकारी वर्ग का घोर विरोध और निष्ठुर व्यवहार था। परन्तु साम्यवादी कितने ही प्रकार के हो गये हैं, और उन के साधन सर्वथा ऐसे नहीं होते जो न्याय और नीतिसंगत हों। घोर अराजकता और निर्दोष लोगों का ईर्ष्या के कारण रक्तपात करना किसी सभ्य मनुष्य को सहन नहीं हो सकता और विशेष कर एक हिन्दू के लिए तो किसी प्रकार समर्थन योग्य नहीं मालूम हो सकता।

भारतवर्ष में राजनीतिक और सामाजिक विप्लव इतिहास के पृष्ठों को रक्त वर्ण से नहीं अंकित करते। साम्यवाद की शिक्षा धर्मग्रन्थों में विद्यमान है परन्तु क्रूरता और निष्ठुर साधनों का अवलम्बन प्रजा ने कभी नहीं किया। इस के कई कारण हैं जो विचार के योग्य हैं। धर्म का भाव यहाँ सदा से प्रबल रहा है। हिन्दू धर्मभीरु और शान्ति प्रिय हैं। पाप भाव से प्रेरित हो कर हत्या के लिए एक मत होना उन के लिए इतना सुगम नहीं है। उत्तम उद्देश्य की पूर्ति के लिए चाहे जैसे साधनों का अवलम्बन करना उन के स्वभाव के विरुद्ध रहा है। दूसरे-हिन्दू लोग कर्म के सिद्धान्त में दृढ़ विश्वास करते हैं। यदि समाज में विषमता है तो उस को अच्छे या बुरे कर्मों का फल मानते हैं। इस से असन्तोष और ईर्ष्या की मात्रा कम हो जाती है। दरिद्री अपने पापों का फल भोगता है और धनी अपने सत्कर्मों का, ऐसा उन का विश्वास है। तीसरे—सांसारिक बातों की ओर से उन को उदासीनता होती है और ऐसा भाव पाश्चात्य देशवासियों के मन में इतना प्रबल नहीं होता। यूरोपवासी प्रायः संसार को सुख और आनन्द का स्थान बनाने की उत्सुकता से प्रयत्न करते हैं, पर हिन्दू संसारयात्रा को दुःखमय जान कर इतोत्साह होने पर सहज ही कर्त्तव्य की ओर से उदासीन हो जाता है। चौथे-वर्ण-व्यवस्था परस्पर स्पर्धा की उग्रता को निर्बल कर देती है और जीवन संग्राम की भीषणता को कम कर देती है। कई बातें यहाँ मनुष्य के लिए जन्म से ही निश्चित हो गई मानी जाती हैं। पाँचवें, सम्मिलित कुटुम्बकी प्रथा साम्यवाद के सिद्धान्तों का बहुत अंशों में अनुकरण करती है। धन विभाग में समता हो जाती है और विभाग होने पर सब भाई एक सी आर्थिक अवस्था से अपना कार्य आरम्भ करते हैं और मिले रहने पर समस्त संपत्ति प्रत्येक भाई की है। दूर के संबन्धियों का भरण पोषण आवश्यकता पड़ने पर करना पड़ता है। हिन्दू समाज का यह एक नियम है, और इसी की बदौलत यहाँ अनाथालय खोलने की इतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी अन्य देशों में। छठें, रीति रिवाज का यहाँ बड़ा प्रभाव है। इन से जीवन संग्राम की भीषणता कम हो जाती है। परस्पर स्पर्द्धा बहुत बलवती नहीं हो पाती। इन कारणों से और इन के अन्तर्गत अन्य बातों से भारतवर्ष में जन साधारण इतने असन्तुष्ट नहीं हैं जितने अन्य देशों में उसी श्रेणी के लोग हैं। इसी से यहाँ रक्तपात और हत्याकाण्डकी नीति लोगों को अत्यन्त घृणित जान पड़ती है और उस से स्वाभाविक द्वेष उत्पन्न होता है। इतना ही नहीं, साम्यवाद का प्रचार पाश्चात्य देश में कानून के द्वारा शासन की सहायता से किया जा रहा है। परन्तु यहाँ समाज की व्यवस्था इस प्रकार की हो रही है कि, बहुत अंश में तो साम्यवाद का उद्देश्य पहिले ही से सिद्ध हो रहा है और बहुत सी बातों की आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती। फिर यह तो निश्चय समझना चाहिए कि रक्तरंजित हाथों से तो समाजसुधार का कोई कार्य यहाँ जनसाधारण से किया ही नहीं जासकता। यह हमारे लिए गौरव की बात है।

साम्यवादियों ने अपने सिद्धान्त के प्रचार में बहुत भूलें की हैं। कभी तो असंभव बातों को उत्साह पूर्वक संभव कर दिखाने का उन्हों ने साहस किया और फिर विफल मनोरथ हुए और कभी ऐसी ऐसी बातों की परीक्षा की कि जिन का वर्णन पढ़ कर हँसी आती है। जो लोग केवल साम्यवाद से रामराज्य स्थापित करने की आशा करते हैं उन को पछताना पड़ेगा। मनुष्य स्वभाव और प्राकृतिक असमानता को ध्यान में रखना आवश्यक है। हिंसक साधनों से क्षणिक सफलता भले प्राप्त हो जाय समाज का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता। जैसे धनी स्वार्थी लोग अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर सकते हैं वैसे ही संघ शक्ति का दुरुपयोग साम्यवादी भी कर सकते हैं। इस बात के कहने की आवश्यकता इस कारण से है कि यूरोपीय महायुद्ध का अन्त होते ही व्यवसायिक संसार में उग्र नीति का प्राधान्य देखने में आरहा है और बोल्शेविज़िम तो रक्तपात करने में नियमानुसार युद्ध कर रहा है। इस को आन्दोलन नहीं कहा जा सकता। हड़ताल के बाद महँगी और फिर महँगी के बाद हड़ताल इस प्रकार का चक्र चल रहा है। पञ्चायत से यह दशा सुधर सकेगी ऐसी आशा होती है।

दोषपूर्ण और आपत्तिजनक साधनों के अतिरिक्त यह भी विचारणीय बात है कि कट्टर साम्यवादी भी धनी और प्रभावशाली व्यक्ति बनने का प्रयत्न करता है। अर्थात् जिस श्रेणी के लोगों से आज विपक्षी बन कर वह लड़ रहा है उन्हीं की श्रेणी में पहुंचने का उद्योग भी कर रहा है। जिनके हाथ में सत्ता नहीं होती वे अधिकारी वर्ग के विरुद्ध आन्दोलन करते हैं और जिनको सत्ता प्राप्त हो जाती है वे फिर वर्तमान संस्थाओं के रक्षक एवं हिमायती बन जाते हैं। यह एक विचित्र बात मनुष्य स्वभाव की द्योतक है।

साम्यवाद में मानव-जाति के समस्त संताप दूर कर, पृथिवी को स्वर्ग तुल्य बनाने की शक्ति हो या न हो, परन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि सुधार की सामर्थ्य जितनी इसमें है उतनी और किसी आन्दोलन में नहीं जान पड़ती। प्रजा सत्तावाद, समाज-सुधार, स्त्रियों की स्थिति सम्बन्धी चर्चा, बालरक्षा, शिक्षा-प्रचार आदि महत्व के प्रश्न इसी के अंतर्गत हैं अथवा इसकी संगति से उनमें बल का संचार होता है। न्याय, स्वतंत्रता, भ्रातृ-भाव और सहकारिता इसके चार सुदृढ़ स्तम्भ हैं और यही साम्यवाद को जगत्प्रिय बनाने में सफल होंगे। *

* 'साम्यवाद'—लेखक पंडित बाबू रामचन्द्र वर्मा, प्रकाशक हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई। लेखक 'स्वार्थ' की लिखी हुई प्रस्तावना यहाँ लेख रूप में उद्धृत की गई है।

'स्त्री-शिक्षा-प्रसार'।

(लेखक—[illegible] ।)

आज इस लेख में इस बात का विचार करना है कि स्त्री-शिक्षा का कहाँ तक प्रचार हुआ है और जनता ने उस ओर कहाँ तक ध्यान दिया है। इस बात के जानने के लिये यह आवश्यक है कि पुरुषों की शिक्षा पर कुछ विचार करें, क्योंकि:—एक तो पुरुषों की शिक्षा के अनेक द्वार उपलब्ध हैं और दूसरे वर्तमान परिपाटी के अनुसार पुरुषों की शिक्षा पर स्त्री-जाति की शिक्षा सर्वथा अवलंबित है ऐसा कहें तो कोई अनुचित नहीं।

प्रथम गांव-खेड़ों और नगरों में पुरुष शिक्षा का अनुमान कर फिर उनकी परस्पर तुलना करें और देखें कि क्या परिणाम निकलता है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि गांव खेड़ों में अब पुरुष शिक्षा की आधिक्यता होने लगी है, पर यह कहना भी सर्वथा निर्मूल है कि गांव खेड़ों और नगरों के पुरुषों में समानता आगई। अभी उनमें "जमीन आसमान का सा अन्तर" दिखाई पड़ता है। सन् १९११ की मर्दुम शुमारी के अनुसार भारत की जन संख्या ३१॥ करोड़ है। पुरुषों की संख्या १६,०४,१८,५७० है जिस में साक्षर १,६८,३८,९१५ और निरक्षर १४,३५,७९,६५५ हैं अर्थात् सैकड़ा पीछे १० मनुष्य लिखे पढ़े नहीं हैं। यह भी नगरों में अधिक हैं। यदि प्रतीत न हो तो एक नगर और उतनी जन-संख्या में गांव-खेड़ों के लिखे-पढ़े मनुष्य की तुलना कीजिये तब आपको भली-भांति प्रकट हो जायगा। गांव खेड़ों में बहुतेरे पढ़े-लिखे अनपढ़े से हो गये हैं, क्योंकि उनकी शिक्षा अधूरी और निरुपयोगी हुई है। उन्हों ने शिक्षा के महत्व को नहीं समझा है। कई खेड़े ऐसे मिलेंगे जहां केवल एक, दो बड़े भाग्य से लिखे-पढ़े मिलेंगे! विचार ने की बात है कि वे उससे कितना लाभ उठा सकते हैं। दस-पांच लिखे-पढ़े हैं उनकी शिक्षा "चिट्ठी-पत्री, स्टाम्प" आदि लिखने में पूरी होती है। बुद्धिमान पुरुषों की संख्या कैसे मिल सकती है। विद्या की उत्तमता कैसे मालूम हो सकती है और जो जानते हैं तो क्या "उससे नौकरी करना और पेट भरना"। जब तक किसी कार्य्य का कारण विदित नहीं होता तब तक उस कार्य्य में उन्नति नहीं होती। नगरों में विद्वानों की संख्या दिन दिन बढ़ने लगी है, वे उसके महत्व जानने लगे हैं, दिन दिन पाठशालायें खुलने लगी हैं और गृह में बालकों की शिक्षा अलग है। नगर का अनपढ़ आदमी खेड़े के एक लिखे-पढ़े आदमी से कहीं अधिक चतुर और कार्य्य-कुशल प्रतीत होता है।

यह स्वाभाविक है कि पदार्थ का संघर्षण परस्पर एक दूसरे से होने के कारण एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। प्राणधारियों में भी संगति का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। प्राणियों में अनुकरण करने की एक और विशेष बात है। यह रीति जितनी ही अच्छी है उतनी ही बुरी भी है। हां इतना अवश्य है कि उसके अनेक गुणों के कारण किसी का कम किसी का अधिक प्रभाव पड़ता है। पुरुष का प्रभाव स्त्री पर और स्त्री का प्रभाव पुरुष पर न्यूनाधिक प्रमाण से अवश्य पड़ता है। किसी बुद्धिमान् पुरुष की स्त्री यदि बुद्धिमान् न होगी तो अत्यंत मूर्खा भी न होगी। उसके व्यवहार, चाल ढाल, रहन-सहन, बात-चीत आदि बातों में अवश्य फेरफार हो जायगा। यदि बुद्धिमान् स्त्री का कोई मूर्ख पति हो तो स्त्री का प्रभाव भी उसी तरह पुरुष पर पड़ेगा और उसकी भी बहुतसी बातें पलट जायेंगी। यहां पर कालिदास से मूर्ख पति और विद्योत्तमा सी बुद्धिमान् स्त्री का स्मरण पाठकों को अवश्य करना चाहिये। तुलसीदासजी ने भी स्त्री के उपदेश से ही बुरा पथ त्यागा था। अच्छा, तो अब स्त्री शिक्षा देखिये—भारत की स्त्रियों की संख्या १५,२१,९६,६१६ है जिस में साक्षर १६,००,७६३ और निरक्षर १५,१३,९६,८५६ हैं अर्थात् सैकड़ा पीछे १ स्त्री लिखी पढ़ी है! कितने दुःख की बात है कि जिसके [illegible]र संतान पर देश का भविष्य अटका हो उनकी शिक्षा की यह दशा! इससे अधिक दुःख और क्या! ऊपर हमने शिक्षित पुरुषों की संख्या बताई है उसी पर से तो शिक्षित स्त्रियों का अनुमान हो सकता है। ऐसी दशा में कोई देश कहाँ तक उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो सकता है, यह सब कोई अच्छी प्रकार जान सकते हैं। "स्त्री शिक्षा" का नाम सुनते कितने हमारे बेचारे भाई चौंक उठते हैं। यदि वे प्रयत्न न करते तो हमें "स्त्री-शिक्षा" शब्द तक कहने का सौभाग्य न होता। यह शिक्षा नहीं के बराबर है फिर यह कह देना कि गांव-खेड़ों में स्त्री-शिक्षा का प्रचार है हमारी बड़ी भूल है। गांव-खेड़ों में शिक्षित (लिखी-पढ़ी) स्त्रियें नहीं हैं ऐसा कहने में हमारी कोई भूल नहीं हो सकती। नगरों में पुरुषों की जो शिक्षा की दशा है उस का प्रभाव अवश्य ही स्त्री-जाति पर कुछ तो भी पड़ता है। बिना लिखी-पढ़ी स्त्रियां भी सत्संगति के प्रभाव से अपने आचरण, धर्मव्यवहार तथा गृह-सम्बन्धी कार्यों में उचित फेरफार करती चली जाती हैं। (यहां पर कोई ऐसी आशंका न कर बैठे कि नगरों में स्त्री-पुरुष सुशिक्षित, सदाचारी और धर्म-परायण ही होते हैं। हमारा कथन केवल संख्या-मात्र पर है।) नगरों में पुरुषों की शिक्षा-वृद्धि के कारण शिक्षा का उद्देश उन्हें भलीभांति विदित होने लगा है, इसी से नगरों में स्त्री-शिक्षा का प्रचार भी होने लगा है। यहां के विद्या-प्रेमी लोग अपने धन से स्त्री-पाठशाला की स्थापना करने लगे हैं। गृह में अपने माता-पिता तथा अपने पुरुषों से पढ़ कर कई स्त्रियां लाभ उठाती हैं। बालिकाओं की शिक्षा पाठशाला में अलग है। इस तरह उन की शिक्षा दिन दिन बढ़ती चली जाती है। गांव-खेड़ों में शिक्षित पुरुषों की संख्या तो 'दर्या में खसखस' के सदृश है तो स्त्रियां तो निरी ही हैं। सारांश यह कि स्त्री-शिक्षा के अभाव में वे निरे असभ्य, जंगली और मूर्ख हैं। इस से तो यही निष्कर्ष होता है कि पुरुष-शिक्षा के अभाव में स्त्री-शिक्षा की आधिक्यता नहीं हो सकती। यदि स्त्री-शिक्षा में उन्नति चाहते हैं तो पुरुष-शिक्षा में आशातीत उन्नति की जाय और साथ ही स्त्री-शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय।

क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि, हमारी शिक्षित् समाज इस विषय में कितनी असावधान है—क्या इस से यह पता नहीं लगता कि हमारी जनता का इस ओर कितना दुर्लक्ष्य है—क्या इस से यह नहीं मालूम होता कि हम-लोग स्त्री-जाति को शिक्षा-कार्य्य से वञ्चित रखना चाहते हैं। प्यारे बन्धुवर्ग अब हमें इस विषय में अधिक सावधान होना चाहिये। हमें यह याद रखना चाहिये कि इस तरह की इक-अंगी शिक्षा से देश की उन्नति की आशा रखना दुराशा मात्र है। इस बात के जानने से विशेष आनन्द होता है कि हमारे महाराष्ट्र बन्धुओं ने इस विषय में अधिक उन्नति दिखाई है और इस के लिये वे सच्चे हृदय से अनवरत परिश्रम करते चले आरहे हैं परमात्मन् उन्हें इस कार्य्य में सहायता दे यही हमारी मनोकामना है। भिन्न भिन्न भाषावलंबी बन्धु यदि इस तरह प्रयत्न करें तो निस्सन्देह यह वृद्ध भारत कुछ ही दिन में अपनी काया पलट कर दे। पर हम देखते हैं कि वे निद्रादेवी की गोद में खर्राटे भरते हुए भी स्त्री-शिक्षा [illegible] ध्यान [illegible] देश [illegible]।

इस के सुधार का एक मार्ग यह है कि प्रत्येक शिक्षित् पुरुष अपनी सहधर्मिणी को अपने घर में इस महान् कार्य्य के लिये अपना कुछ समय बचा कर पढ़ाने का भार उठा लेवें। यह बात हृदय से त्यागदें कि इस अवस्था में वे क्या पढ़ेंगी। जो कुछ पढ़ेंगी वही बहुत है। इस से लाभ यह होगा कि उन के संतान उत्साहित होगा। इस के सिवाय इस की पक्की नींव सी पड़ जायगी। अभी नहीं तो कुछ समय पश्चात् इस का लाभ अवश्य दिखेगा। प्रत्येक जाति-प्रमुख नेतागण अपनी अपनी जाति की इस भारी त्रुटि को दूर करने का यत्न करें तो राष्ट्र को इस से विशेष सहायता मिले।

सोलापूर प्रान्तिक परिषद !

इस परिषद् के अध्यक्ष श्रीमान नरसिंह चिन्तामणि केलकर थे। परिषद् में कॉंग्रेस के प्रस्तावों का समर्थन हुआ।

सोलापूर में लोकमान्य तिलक महाराज का जुलूस।

माली ।
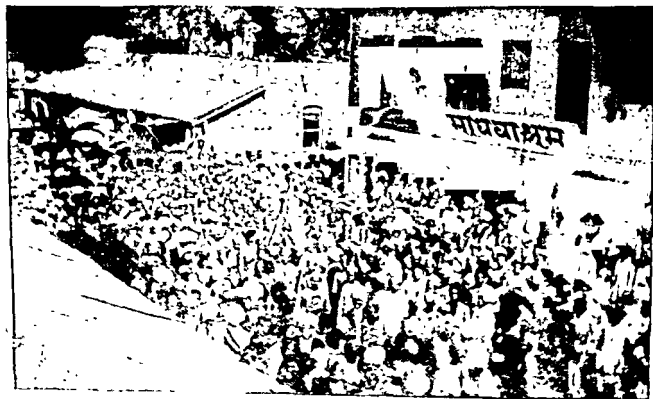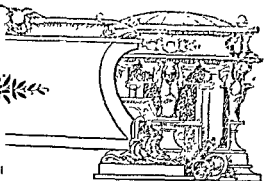
लेखक—राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह ।

संध्या का समय था । वर्षा बरस कर छूट गई थी । मन्द मन्द हवा बह रही थी । लोगों के पाले हुये कोयल अपनी मधुर बोली सुना रहे थे । मैं अपने कमरे में बैठा हुआ मेकाले लिखित इतिहास पढ़ रहा था । पास ही पलंग पर मेरी भार्या ललिता बैठी हुई 'प्रेमपूर्णिमा' पढ़ रही थी । पढ़ने में और तबिअत न लगी । मैं उठा और ललिता से बोला:—मैं बाहर टहलने जारहा हूँ । एक घण्टे में वापस आऊँगा । मेरा कुर्ता और चादर दो । ललिता 'जैसी इच्छा' कह कर उठी और कुर्ता चादर लाकर हमें दिया । मैं कुर्ता पहन, हाथ में छड़ी ले, सिटी गार्डेन के तरफ चल पड़ा । फुलवारी में कहीं बेला, जूही तथा गुलाब फूले हुये थे । कहीं चमेली फूली हुई थी । कहीं कोयल पपीहा इत्यादि चिड़ियायें अपनी मधुर बोली सुना कर मस्त किए देती थी । मैं वहीं टहलने लगा । मैं टहला रहा था, और फूलों की सोभा देख रहा था । इसी समय एक माली हाथ में दो मोटा गजरा लिये हुए आकर हमारे सामने खड़ा हो गया । उस ने नम्रता पूर्वक कहा, बाबू ! माला लीजियेगा ?

मैंने पूछा:—कितना मूल्य है ?

वह बोला एक रुपया ।

मैंने एक रुपया देकर माला ले लिया । अब अँधकार होने लगा इस से मैं घर वापस चला ।

घर आकर हमने देखा कि ललिता अभी 'पूर्णिमा' ही पढ़ रही है । मैंने चुपचाप जाकर गजरे को प्यारी ललिता के गले में डाल दिया । ललिता चिहुँकी । पर जब सर उठाने पर मुझे देखा तो दोनों हाथों को गले में डाल दिया ।

२

उपरोक्त घटना को हुए आज एक वर्ष हो गये । आज फिर वही आषाढ़ महीना था । वही संध्या थी । एकायक गये सालवाली बात याद आई । मैं आज फिर माला लाने चला । पर आज सिटी गार्डेन न जाकर शीतल बाबू के बाग की तरफ गया । शीतल बाबू यहां के नामी वकीलों में एक हैं ।

मैं बाग में जाकर पुष्पों की सोभा देखने लगा । मुझे टहलने अभी १५ मिन्ट भी नहीं हुए होंगे कि एक गाड़ी आकर बाग में खड़ी हो गई । गाड़ी से शीतल बाबू अपनी कन्या रेवती के साथ निकले । मैंने आज से पहले रेवती को नहीं देखा था । केवल सुन्दरी होने की चर्चा सुनता था । आज मैं उसकी सुन्दरता देख कर दंग रह गया । ओह! अप्सराओं को भी मात करने वाली सूरत! शीतल बाबू से हमारे पिता का परिचय था इस लिये परिचय होने पर उन्हों ने मेरा बड़ा सत्कार किया । इसी समय माली ने एक बेले का गजरा उनकी कन्या रेवती के हाथों में दिया । शीतल बाबू ने उसे इसारे से वह माला हमें दे देने के लिये कहा । रेवती आज्ञा नहीं टाल सकती थी । किंतु मेरे पास तक पहुंचते २ न जाने क्यों उस का सारा बदन पसीने२ हो गया । काँपते हाथों से उसने माला हमारे हाथ में रख दिया । कुछ देर के बाद मैं उन लोगों से विदा लेकर घर चला आया । किंतु गये साल की तरह आज की माला मैं ललिता के गले में नहीं पहना सका । आज हृदय में उस के स्थान पर रेवती का अधिकार बढ़ रहा था ।

दूसरे दिन जब मैं पत्र लिख रहा था । इसी समय एक महाशय हाथ में छड़ी लिये हुए आये ।

हमने पूछा —शुभ नाम ?

"जगदीशचन्द्र"

"क्या आज्ञा है ?"

मैं शीतल बाबू का भेजा हुआ आया हूँ । शीतल बाबू में और आप के पिताजी में पूर्ण मित्रता थी । वे आप को अच्छी तरह जानते हैं । उनकी आन्तरिक इच्छा है कि वे अपनी पुत्री की शादी आप से करें । वे कहते थे कि आप ने उनकी पुत्री को देखा भी है । शीतल बाबू को इस पुत्री के सिवाय और कोई नहीं है । उन के बाद उनकी पुत्री ही सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी । " मैं तो रेवती के सौन्दर्य्य पर मोहित था ही मैंने तुरत स्वीकार कर ली ।

जगदीशचन्द्र चले गये ।

मैं सोचने लगा कि विवाह की स्वीकृति तो दे दी । पर ललिता से इस की चर्चा कैसे की जा सकती है । भला वह मन में क्या कहेगी । मैं यही सोच ही रहा था कि डाकिये ने आकर एक पत्र दिया । मैं पत्र खोल कर पढ़ने लगा । पत्र हमारे स्वसुर महाशय का लिखा हुआ था । आप लिखते हैं:—

श्रीनाथपुर २२-६-१२

प्रिय कमल बाबू !

आप को मालूम होगा कि जयेन्द्र का विवाह अगले मास में होगा । मेरी इच्छा ललिता को विवाह में यहीं रखने का है । आज के दसवें दिन यात्रा बनता है । उक्त तिथि पर सुरेन्द्र जाएगा । आप कृपया ललिता को यहां भेज दीजियेगा । आप भी विवाह में अवश्य आईयेगा । निमन्त्रण पत्र पिच्छे जाएगा । इति—

सुभकांक्षी
राधारमण सिंह ।

मैंने पत्र पढ़ कर उस का जवाब लिख दिया 'मुझे स्वीकार है ।' मैं तो किसी तरह ललिता को यहां से हटाने वाला ही था । ऐसे सुगम से काम निकलते देख हमें बड़ी प्रसन्नता हुई ।

३

ललिता को मै के गये हुए १३ मास हो गये । मेरी दुसरी शादी भी १ साल हो गया । मेरे दुसरे विवाह के समाचार से स्वसुरालवाले अवगत हो चुके थे । इस १३ मास में न तो मैं ने ही एक चिट्ठी लिखी और न ललिता ही ने । मैंने कभी बुलाया भी नहीं भेजा । शादी का स्वसुराल वालों को बड़ा मलाल था ।

दो पहर का समय था । मैं गर्मी से व्याकुल टण्डे में बैठा हुआ शर्बत पी रहा था । इसी समय तार के चपरासी ने आकर एक तार दिया । मैं तार खोल कर पढ़ने लगा । तार में लिखा हुआ था ।

Lalita seriously ill. No hope come at once.

Radharaman.

अर्थात् ललिता बहुत बिमार है । कोई आशा नहीं है । जल्द च आईये ।

मैंने घड़ी देखा । गाड़ी जाने में आधे घण्टे की देर थी । मैं शर्बत छोड़, रेवती देवी को कह स्टेसन चला । जाते समय रेवती ने कहा "जैसी खबर हो तार द्वारा जल्द भेजियेगा" । मैंने "अच्छा" कह दिया । स्वसुराल पहुँचने पर मैंने सुना कि प्यारी ललिता इस दुःखमय संसार को छोड़ पर लोक चल बसी । स्वसुरालवाले हमें देख कर रोने लगे ।

उन लोगों से मालूम हुआ कि मरने के समय वह केवल मुझे ही खोज रही थी । उसी ने तार देने को कहा था ।

दुसरे दिन मैं घर वापस चला आया यहां आकर हम ने ललिता का बकस जो कि उन लोगों ने मेरे साथ कर दिया था खोला बकस के ऊपर ही एक पत्र और एक सूखी हुई माला रखी हुई थी ।

पत्र ललिता ही का लिखा हुआ था तथा मुझे ही लिखा गया था।

मैं खोल कर पढ़ने लगाः—

प्राणनाथ !

मुझे यहाँ आये हुए १३ महीने हो गये। पर आप का कोई पत्र नहीं मिला। मुझसे कौन सा ऐसा अपराध हुआ ? अगर कुछ हुआ हो तो कृपया क्षमा प्रदान करेंगे।

मैं इस सालभर से आप की राह देख रही थी किंतु क्षमा कीजिये मैंने जाना कि अब मेरे लिये किञ्चित् भी स्थान आप के हृदय में नहीं है। ऐसी अवस्था में मैं अब किस के लिये इस दुःखप्रद संसार में रहूँ। संभव है आप के सुख में बाधा भी जान पड़ूँ। अत मेरा या आप के कण्टक का इस संसार से निकल जाना ही अच्छा है। आप की प्रेम की धानी यह माला मैंने बहुत दिनों से रख छोड़ी थी। जब कभी आप की अधिक याद आती इसे छाती से लगाती रही। पर यह भी वस्तु आप की अतः आप की ही सेवा में समर्पित है। यदि कुछ अनुचित लिखा हो तो क्षमा कीजिएगा। प्यारी रेवती से प्रेमाशीष कह दीजिएगा।

आप की दासी—ललिता।

मैं फुट फुट कर रोने लगा।

सामाजिक-गठन।

(लेखक—कन्हैयालाल गुप्त, वश्यैनी।)

समाज संसार का एक ऐसा अंग है कि, जिस पर सब प्रकार की उन्नतियों का होना निर्भर है। यदि सामाजिक दशा अच्छी है, तो आर्थिक, नैतिक और आत्मिक उन्नति स्वयं होती चली जायगी। जैसे हम किसी गृहस्थ के घर की स्थिति देख कर यह कहने लगते हैं कि, अमुक व्यक्ति का परिवार बहुत अच्छा है, इन के रहन सहन का ढंग आदर्श स्वरूप है। हम क्यों ऐसा करते हैं ? केवल इसलिये, कि उस अमुक व्यक्ति की गृहस्थी का गठन बहुत अच्छा है, वह सदैव अपनी उन्नति करता जाता है, वहाँ उन्नति का होना अनिवार्य है। क्यों ? वहाँ सुमति है वहाँ सब के मन एक सूत्र में गुथे हुये हैं। परन्तु जहाँ इस के विपरीत है, जहाँ एक गृहस्थी के दस आदमि अपनी अपनी राह हैं, वहाँ सदैव ईर्षा, द्वेष की आग भड़का करती है और ऐसी गृहस्थी शीघ्र ही नष्ट प्राय हो जाती है, क्योंकि यहाँ तो कुमति का निवास है। गोसाईं तुलशीदास जी कहते हैंः—

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना× जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना।

आज दिन जिस गृहस्थ का घर, घरेलू लड़ाई झगड़े से विख्यात हो गया है उन को अपने लड़के लड़कियों का विवाह आदि सम्बन्ध करना कठिन हो गया है परन्तु जिस गृहस्थ का घर अच्छे आदर्श में विख्यात हो गया है, वहाँ लोक अपनी कन्या का पाणिग्रहण करने के लिये स्वयं तय्यार रहते हैं।

अब हम को इस बात से अनुमान कर लेना चाहिये कि जैसे एक गृहस्थ को अपनी गृहस्थी का गठन अच्छा बनाने की आवश्यकता रहा करती है वैसे ही किसी देश को अपने समाज का सामाजिक गठन भी अच्छा बनाने की आवश्यकता रहा करती है। क्योंकि जब तक सामाजिक गठन अच्छा न होगा तब तक किसी दूसरे देश का विश्वास न हम पर टिक सकता है और न हम किसी देश के कृपा पात्र बन सकते हैं।

क्या आज दिन हम हृदय पर हाथ रख कर यह कह सकते हैं कि इस समय भारत का सामाजिक गठन अच्छा है ? यह बात दूसरी है कि कभी बड़े बड़े विदेशी विद्वान भारत की प्रशंसा में पन्ने पन्ने के पन्ने भर गये हैं; पर अब हम जाने देंवे, उसी पर फूले न बैठे रहें; "बीती ताही बिसारिये आगे की सुधि लेय" और यदि हम यह भी मान लें कि वह भारत की प्रशंसा में पन्ने २ के पन्ने भर गये, परन्तु उस समय का सामाजिक-गठन कैसा था, क्या आज की तरह जर्जर पंजर था ! नहीं; उस समय कुमति का बीज नहीं था उस समय ईर्षा द्वेष की आग नहीं भड़कती थी, तब हेनत्सांग और मैगस्थनीज आदि यह लिख गये हैं, किः—

" यदि स्वर्गपुरी है तो भारत, और स्वर्गपुरी के देवता हैं तो भारत के लोग। सामाजिक रहन, सहन का पाठ यदि कहीं से सीखा जा सकता है तो भारत से। जहाँ ईर्षा द्वेष का नाम नहीं, सुमति का राज्य है, प्रत्येक गृहस्थ के द्वार खुले रहते हैं, लोग अपनी सारी सम्पति छोड़ कर योंही द्वार खुले हुए छोड़ कर चले जाते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के द्वार पर गी, बछरू किलोलें करते हैं। लोग नित्यश नवनीत खाते हैं। दूध के दाम नहीं पड़ते और प्रत्येक गृहस्थ के घर में धार्मिक चर्चा हुआ करती है।"

यह हमारा सामाजिक-गठन था जो कि एक विदेशीय इतिहासज्ञ के द्वारा मालूम हो रहा है।

श्रीराम भगवान् के चले जाने पर भी चौदह वर्ष तक श्रीअयोध्या में शांति का राज्य विराजता रहा, समाज में कोई उथल पुथल के चिन्ह दिखाई न दिये। कृष्ण भगवान् की वंशी बजते ही मनुष्य की कौन कहे पशु भी उसी टेट की ओर कान लगा देते थे। यह सामाजिक गठन था और सब के मन परस्पर यों गुथे हुए थे। ऐसे ही गठन द्वारा एक बार पुनः यदुवंशियों का राज्य प्राप्त हुआ था, और शूरसेन आदिक ऐसों के फिर दिन बहुरे थे।

आज दिन यदि हम भारत के विषय में किसी देश से कुछ प्रशंसा या विश्वास दिलवाना चाहें तो क्या हो सकता है ? सिवाय इस दो बोल के कि, " हाँ ! अब भारत भी, नेटिव, नेगरू (negro) काला बाबू आदि की श्रेणि से निकल कर कुछ करने लगा है।

आज दिन सामाजिक-गठन की ओर किसी का कुछ ध्यान ही नहीं है। कर्तव्या-कर्तव्य का कुछ विचार ही नहीं है। सब एक ही दौड़ में दौड़े चले जारहे हैं। इतनी सभा, सोसायटी आदि होते पर भी सुमति का नाम नहीं, दलबन्दी बढ़ती चली जारही है। भाषा का पता नहीं दस शब्द यदि हिन्दी के तो दो अँगरेजी के भी साथ ही में बोले जाते हैं। भेष का पता नहीं। शिक्षित स्त्रियाँ आजादी के लिये तरस रही हैं और पातिव्रत धर्म को पुरुषों का जुल्म माने हुए बैठी हैं। ब्राह्मण वैश्य हो रहे हैं और वैश्य क्षत्रिय। अर्थात इस समय जो भारत का सामाजिक गठन जर्जर पंजर हो रहा है, समझ में नहीं, आता कि भविष्य में क्या रँग लाये। जब तक इस समय हमारी समाज को कर्तव्य का ध्यान नहीं दिलाया जायगा तब तक सुमति का अंकुर निकल नहीं सकता। जब तक सुमति का अङ्कुर नहीं तब तक कार्य्यों का ठीक ठीक परिचालन नहीं जहाँ कार्य्यों का ठीक परिचालन नहीं वहाँ सामाजिक गठन अच्छा नहीं। हमें इस समय सामाजिक गठन पर ध्यान देना चाहिये। नहीं तो हमारी उन्नति धर्म, काम, मोक्ष से रहित होगी। और वैसी होगी जैसी आज दिन योरुप की है जो कि हड़ताल करवावेगी, स्त्रियों को मनुष्यों पर शासन करने का अभिलाष दिलावेगी। बालशेविज्म ऐसे दल पैदा होंगे। समाज पाँच की भट्टी के तरह तप तपायेगा, शांति के लिये छटपटायेगा। और तब धर्म और मोक्ष के लिये सिर पीटेगा इस लिये हम को उन्नतिशील बनने के लिये अपना सामाजिक गठन पहले ही से बहुत विचार पूर्वक बनाते रहना चाहिये। आज दिन हम को किसी काम को करने के लिये आन्दोलन करना पड़ता है, वह आन्दोलन समाज कर्तव्यानुसार स्वयं कर लेगा। और वैसे ही आत्मसमर्पण करने के लिये तय्यार रहेगा जैसे कभी धर्म के नाम पर श्रीगोविन्द सिंह के बच्चे अपने भाई दीवार में चुनवा लिया था।

॥ चित्रमय जगत ॥

एक आदमी को कितनी भूमि चाहिए ?

(टालस्टाय की एक कहानी)

एक दिन बड़ी बहिन अपनी छोटी बहिन से मिलने आई। बड़ी बहिन शहर के एक सौदागर को ब्याही थी और छोटी, गांव के एक किसान को। बड़ी बहिन शहर की बड़ी तारीफ और गांव की बुराई करने लगी। अच्छे अच्छे कपड़े पहिन ने, अच्छे स्वादिष्ट भोजन करने और एक से एक बढ़िया तमाशे देखने को मिलते हैं। नाटक देखना, बाग की सैर करना और नाच तमाशे देखना तो रोज के दिल-बहलाव की बातें हैं।

बड़ी बहिन की घमण्ड भरी बातें छोटी बहिन को बहुत बुरी लगीं। उत्तर में वह गांव की तारीफ और शहर की बुराई करने लगी। वह बोली, मैं मानती हूं कि हमारा जीवन शहर वालों जैसा नहीं है पर हम बे-फिक्री से रहते हैं। यह बात ठीक सही कि शहर वाले ज़रूरत से ज्यादा कमाते हैं, परन्तु साथ ही यह धन जल्द नष्ट भी हो जाता है। तुम्हें एक कहावत याद होगी कि "लाभ हानि का जोड़ा है।" जो कल धनवान था वह आज भीख मांगता भी देखा गया है। पर हम लोगों की दशा सदा एक सी है। न कभी ज्यादा पैदा करते और न धनी होते हैं। साथ ही हमें कभी फाके भी नहीं करना पड़ते।

इस पर बड़ी बहिन बहुत झल्लाई। नाक-भौं चढ़ा कर बोली, बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद। तू तो पशुओं के बीच की रहने वाली तू हमारे सभ्य व्यवहारों को क्या समझ सके? तेरे आदमी कितनी ही मेहनत करें, पर तेरी दशा सदा यही रहेगी।

छोटी बहिन बोली, इस से क्या? इस में शक नहीं, हमारा काम भद्दा है। पर है यह काम निज का। हमें किसी के सामने सिर नहीं झुकाना पड़ता। शहरों में लालच में फंस जाना सहज बात है। यदि शराब, नाच इत्यादि देखने की आदत पड़ गई, तो फिर सिवाय बरबादी के और कुछ नतीजा नहीं। क्या अक्सर ऐसा हुआ नहीं करता?

किसान पाहोम इन दोनों बहिनों की बातें सुन रहा था। वह मन में बोला कि जो कुछ मेरी औरत ने कहा वह बिलकुल सत्य है। दुनियां की चटकीली और भड़कीली चीजें हमारे काम में कभी बाधक नहीं हो सकतीं। और न हम उन के लालच ही में आते हैं। हमें कोई तकलीफ है तो यह यह है, कि हमारे पास काफ़ी भूमि नहीं है। यदि हमें काफ़ी भूमि मिल जाय तो फिर हम किसी को कोई चीज़ न समझें।

दोनों बहिनें भोजन कर के और थोड़ी देर तक कपड़ों के विषय में बात चीत कर के सो गईं।

शैतान वहीं छिपा हुआ बैठा था। उस ने किसान की घमण्ड भरी बात सुनी। उस ने कहा, देखूं कौन बाज़ी जीतता है? मैं उसे काफ़ी भूमि दूंगा और इसी भूमि के ज़रिये मैं इस के प्राण लूंगा।

यह गांव एक औरत के अधिकार में था। उस का किसानों के साथ अच्छा व्यवहार था, परन्तु जिस दिन से उस ने एक कारिन्दा रख लिया उसी दिन से उस के मारे लोगों की नाक में दम आ गई। वह किसानों के साथ बहुत ज्यादती करता। किसी पर जुरमाना करता और किसी को दूसरा प्रकार के कष्ट दिया करता। पाहोम होशियारी से रहता, पर फिर भी उसे कई बार जुरमाना देना पड़ा। थोड़े दिनों बाद खबर लगी कि वह औरत अपनी जायदाद बेचना चाहती है, और सराय का मालिक उसे खरीद रहा है। यह सुन कर लोग बहुत घबड़ाये। सराय का मालिक उस कारिन्देसे भी अधिक शरीर था। गांव वालों ने सलाह की और उस औरत के पास गये, और कहा कि आप अपनी जमीन सराय के मालिक को हरगिज न बेचें, हम लोग उस जमीन का उस से भी अधिक मूल्य देने को तैयार हैं। वह इस बात पर राजी हो गई। इन किसानों ने दो बार कमेटी की, कि भूमि गांव की ओर से खरीद ली जाय, पर दोनों बार वे इस मामले को तय न कर सके। अन्त में, यही निश्चित हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी हैसियत के मुताबिक जितनी जमीन चाहे, खरीद ले। वह औरत इन लोगों की इस बात पर भी राज़ी हो गई। पाहोम के पड़ोसी ने ४० एकड़ भूमि खरीदी। उस ने आधे दाम तो नकद दिये और आधे एक वर्ष का उधार। पाहोम को यह सुन कर बड़ी ईर्षा हुई। उस ने अपनी औरत से कहा, देखो, लोग जमीन खरीद रहे हैं, हमें भी कम से कम २० एकड़ भूमि खरीद लेनी चाहिये, कारिन्दे के मारे तो नाक में दम है, रहना भी असम्भव सा हो रहा है। दोनों ने सलाह की कि किस तरह से, भूमि खरीदनी चाहिए? १०० रु० तो अपने पास हैं ही। एक बछड़ा बेचा। अपने लड़के को एक काम पर लगा दिया और उस की मज़दूरी पेशगी ले ली। बाकी रुपया अपने बहनोई से उधार ले लिया। इस तरह जितनी भूमि खरीदनी थी उस का आधा दाम इकट्ठा कर लिया।

जमीन खरीद ली गई। शहर में जा कर एक दस्तावेज़ लिख दी, आधा रुपया नकद दे दिया और आधे के लिए एक साल के अन्दर अदा करने का वादा किया। अब पाहोम भी भूमि का मालिक हो गया उस ने अपनी जमीन को बहुत अच्छी तरह से जोत कर अनाज बो दिया। एक ही वर्ष में उसने सब उधार का रुपया चुका दिया। और चैन से दिन काटने लगा।

काउन्ट टालस्टाय।

पर, एक और नई आफ़त सामने आई। पड़ोसी उसे बहुत तंग करने लगे। गांव का चरवाहा गायों और घोड़ों को उस की चरागाह में छोड़

देता था। वह बेचारा बार बार इन जानवरों को भगा दिया करता। कई बार उस ने इन मवेशियों के मालिकों को उन से कुछ न कह कर क्षमा कर दिया और किसी पर मुकद्दमा न चलाया। पर अन्त में जब वह बिलकुल तंग आ गया तब उस ने ज़िला की अदालत में नालिश कर दी। उस ने सोचा कि यदि मैं गम खाता रहा तो लोग मेरी सब सम्पत्ति बरबाद कर देंगे। इसी तरह उस ने दो तीन बार नालिश की। दो तीन किसानों पर जुरमाना हो गया। अब तो पड़ोसी इस के पक्के दुश्मन हो गये। वे सदा उसे नुकसान पहुंचाने पर उतारू हो गये। जब मौका पाते अपने मवेशी उस के खेत में छोड़ देते। एक दिन एक किसान ने रात को तीन चार पेड़ छाल निकालने के लिए काट डाले। पाहोम को यह बहुत बुरा लगा। उस ने दिमाग़ लड़ाया कि यह है तो कौन? अन्त में नतीजे पर पहुंचा कि हो न हो, यह सीमोन का काम है उस के सिवा और कोई इस घृणित कार्य्य को, न करेगा। वह सीमोन के घर गया। चारों ओर निगाह डाली पर चोरी का माल नज़र न आया। पर, कुछ बातों से पता चल गया कि सारी करतूत उसी की है। पाहोम ने सीमोन के खिलाफ़ अदालत में नालिश कर दी। सीमोन बुलाया गया। मुकद्दमे की जांच हुई। परन्तु सीमोन के खिलाफ़ कोई भी गवाही न होने के कारण वह बरी कर दिया गया। इस पर पाहोम को बड़ा क्रोध आया। वह जूरी और जज को बुरा भला कहने लगा।

इसी प्रकार वह कुछ दिनों तक पड़ोसियों से लड़ता रहा। उस के पास पहले की अपेक्षा ज्यादा भूमि थी परन्तु उसकी हालत पहले से बुरी थी। इसी बीच में उसे पता लगा कि लोग एक और नई जगह जा रहे हैं। यह खबर सुन कर उसे बड़ी खुशी हुई। उस ने सोचा कि मुझे यहीं बने रहना चाहिए यदि गांव के लोग चले जायंगे तो मेरे लिए बड़ा सुभीता रहेगा, मुझे काफ़ी भूमि मिलेगी, मैं उसे अपनी भूमि में शामिल कर लूंगा, मेरी जायदाद बड़ी हो जायगी; और फिर आराम से कटेगी।

एक दिन एक अजनबी इस गांव में आया वह रात को यहीं रहा। पाहोम को उस से बात-चीत करने का मौका मिला। उस ने कहा कि मैं उसी नए प्रदेश से आ रहा हूं जहां लोग जाकर बस रहे हैं। यह देश वोलगा नदी के उस पार है। आदमी पीछे २५ एकड़ भूमि दी जाती है ज़मीन बड़ी उपजाऊ है। अनाज खूब पैदा होता है। एक आदमी अपने साथ कुछ भी नहीं लाया था। परन्तु अब उस के पास ६ घोड़े और दो गायें हैं।

यह सुन कर पाहोम को बड़ी खुशी हुई। वह सोचने लगा कि मैं इस थोड़ी सी जगह में रह कर क्यों तकलीफ़ उठाऊं जब कि दूसरी जगह जाकर आराम से रह सकता हूं। मैं अपनी जायदाद बेच कर वहां क्यों न जाऊं जहां पर मुझे बहुत सी भूमि आसानी से मिल सकती है। इस थोड़ी सी जगह में तो तकलीफ़ ही तकलीफ़ है। परन्तु मुझे खुद जाकर देखना चाहिए कि जो कुछ मुझ से कहा गया है, यह सच है या नहीं?

गर्मी के शुरू होते ही वह उस जगह के देखने के लिए चल खड़ा हुआ। वह एक स्टीमर में सवार हुआ और वोलगा (volga) नदी को पार कर के समरा (samara) तक गया, फिर वहां से ३०० मील पैदल चल कर उस नये स्थान पर पहुंचा। वहां ठीक उसी तरह की ज़मीन थी जैसी उस अजनबी ने बतलाई थी। किसान अच्छी हालत में थे। गांव की ओर से २५ एकड़ ज़मीन तो हर एक को दी ही गई थी, इस के सिवा दो शिलिंग फ़ी एकड़ के हिसाब से जो कोई जितनी भूमि चाहे खरीद सकता था। सब बातों का पूरा २ पता लगा कर वह बसंत ऋतु के शुरू होते ही वापिस लौट आया। उस ने आकर अपनी भूमि, गाय, घोड़े तथा घर सब बेच डाले। और रुपया लेकर अपने कुटुम्ब सहित नये गांव की ओर रवाना हुआ। पाहोम ने वहां पहुंचते ही गांव की बिरादरी में सम्मलित होने की आज्ञा मांगी। उसे आज्ञा मिल गई। और पंचायती ज़मीन के पांच हिस्से उसे गांव की ओर से दिये गये। यह भूमि लगभग १२५ एकड़ थी। इस के सिवा पंचायती चरागाह में उसे मवेशी चराने की भी आज्ञा दे दी गई। उसने एक घर बना लिया और कुछ मवेशी खरीद लिये। अब की दफ़ा ज़मीन उसके घर की ज़मीन से तिगुनी ही और उपजाऊ भी खूब थी।

नई जगह में पहले कुछ दिन तक तो वह बड़े आनन्द से रहा। परन्तु कुछ दिन बीतने पर वहीं जगह उसे बुरी लगने लगी। पहले साल तो अच्छी पैदावार हुई। परन्तु दूसरे साल न तो अच्छी पैदावार हुई

ही हुई और न भूमि ही काफ़ी थी। क्योंकि उन प्रान्तों में गेहूं केवल पड़ती ज़मीन ही में बोया जाता था। और एक या दो वर्ष की खेती के बाद ज़मीन फिर पड़ती छोड़ दी जाती थी। भूमि कम होने के कारण लोग आपस में झगड़ने लगे। जो मालदार थे वे गेहूं बोते थे परन्तु ग़रीब किसान अपनी ज़मीन मालगुज़ारी चुकाने के लिए किराये पर उठा दिया करते थे। पाहोम बहुत गेहूं बोना चाहता था। इस लिए उसने एक किसान से ज़मीन किराये पर ले ली। इस साल गेहूं की खूब अच्छी फ़सल हुई, परन्तु ज़मीन गांव से दूर होने के कारण अनाज़ गाड़ियों से ढोना पड़ा। कुछ दिनों बाद पाहोम ने देखा कि कुछ किसान अलग अलग ज़मीन लिये हुए हैं और दिन पर दिन धनवान होते जाते हैं। यदि मैं भी ऐसी ही ज़मीन खरीद पाऊं तो क्या ही अच्छा हो। ऐसी भूमि के खरीदने का विचार उसके दिल में बार बार आता, पर तीन साल तक उसे कोई ज़मीन न मिल सकी। बीच से अच्छी फ़सलें आने के कारण उसने कुछ रुपया भी इकट्ठा कर लिया। वह इसी ज़मीन में संतुष्ट रह सकता था परन्तु वह इस विचार से बहुत परेशान रहता, कि अच्छी २ ज़मीन तो दूसरे चालाक किसान जल्दी से खरीद लेते हैं, और मैं ठहरा सीधा साधा, इस लिए मुझे किराये की ज़मीन से काम चलाना पड़ता है।

तीसरे साल उसने एक दूसरे किसान के साथ साझा किया। खेत जोत डाले गये, परन्तु आपस में झगड़ा हो जाने के कारण ज़मीन जुती हुई पड़ी रही एक दाना भी न बोया गया। पाहोम ने सोचा कि यदि यह निजी भूमि होती तो किसी को भरोसे न रहना पड़ता और न ऐसी तकलीफ़ ही उठानी पड़ती। अब तो पाहोम तेज़ी के साथ बिकाऊ ज़मीन की खोज करने लगा। उसे एक किसान मिल भी गया जिस ने १३०० एकड़ ज़मीन खरीदी थी। पर कुछ असुविधाओं के कारण वह उसे बेचना भी चाहता था। पाहोम ने उससे ज़मीन के बाबत बातचीत की। १५०० रुपये में यह ज़मीन ठहर गई कुछ नक़द और बाक़ी उधार पर सौदा ठहरा। मामला तय नहीं हो पाया था कि इसी बीच में एक सौदागर पाहोम के घर घोड़ों का दाना लेने के लिये आया। वह उसी के घर ठहरा और वहीं पर उसने भोजन किया। उसने पाहोम से कहा कि मैं बश्की लोगों हाल ही में बशकीरों के मुल्क से लौट रहा हूं जहां पर मैं ने १३००० एकड़ ज़मीन १००० रु० में खरीदी है। यह सुन कर पाहोम ने वहां की और बातें जानना चाहीं। सौदागर ने सब हाल अच्छी तरह से सुना दिया। उसने कहा कि सब से बड़ी ज़रूरत वहां के हाकिमों से मिलने की है। मैंने कितने रुपयों की दरियां कपड़े, चाय और शराब दी है, तब कहीं यह ज़मीन दो पेन्स फ़ी एकड़ के हिसाब से हाथ लगी। ज़मीन नदी के किनारे है। वहां पर लाखों एकड़ ज़मीन बेजुती पड़ी हुई है यह सब बशकीरों के अधिकार में है। ये लोग बड़े सीधे आदमी हैं। तुमको यह ज़मीन बहुत थोड़े मूल्य में मिल सकती है। पाहोम ने सोचा कि वहीं जाकर क्यों न भूमि खरीदूं, जहां भूमि इतनी सस्ती है।

सौदागर के विदा होते ही उसने वहां चलने की तय्यारी कर दी, औरत के ज़िम्मे घर का काम छोड़ा और एक आदमी को साथ लेकर चल दिया। राह में एक गांव में ठहरा जहां से सौदागर के कहे अनुसार कुछ चाय, शराब और दूसरे तोहफ़े की चीज़ें खरीदीं। सात दिन के सफ़र के बाद वह बशकीरों के पड़ाव के निकट पहुंचा। वे लोग नदी के किनारे, बांस के झोंपड़े बना कर मैदानों में रहते थे। न ज़मीन जोतते थे और न अनाज खाते थे। उनके मवेशी मैदानों में चरा करते थे। घोड़ी के दूध से "क्यूमिस" बनाते और मक्खन निकालते थे। उनका भोजन खाने, चाय पीने और गाने बजाने के सिवा और कोई काम न था। ये बड़े हट्टे कट्टे और मज़बूत थे। सदा प्रसन्न रहते। ये बिलकुल मूर्ख और निरे जंगली थे। पर ये स्वभाव के अच्छे। काम करने का विचार तो स्वप्न में भी मन में नहीं लाते थे।

ज्योंही पाहोम पहुंचा, उसे देख कर वे अपने अपने झोंपड़ों से निकल कर अपने नये मेहमान के आस पास इकट्ठे हो गये इन में एक दुभाषिया भी मिल गया उस ने पाहोम के आने का कारण बशकीरों को समझाया उन्होंने पाहोम का बड़ा आदर सत्कार किया। पाहोम ने भी अपने तोहफ़े उन को नज़र किये। इन तोहफ़ों को लेकर बशकीर बड़े प्रसन्न हुए, और आपस में बातचीत करने लगे। दुभाषिये ने पाहोम को समझाया कि ये लोग तुम से बहुत प्रसन्न हैं, तुम को जो चीज़ हमारे अच्छी लगे, मांग लो। पाहोम ने कहा कि मुझे तो आपका

मुझे तुम्हारा देश ही लगता है। हमारा देश तो बिलकुल भर गया है। ज़मीन खराब हो गई है। तुम्हारे यहाँ पर काफी अच्छी ज़मीन है।

इस पर बशक़ीरों ने कहा कि जितनी ज़मीन की आवश्यकता हो उतनी ले सकते हो सिर्फ़ हाथ उठा कर बता दो, और वह तुम्हारी हो जायगी। इतने ही में वे आपस में लड़ पड़े। कुछ लोगों का कहना था कि हम लोग बिना सरदार की आज्ञा के कुछ नहीं कर सकते, और कुछ कहते थे कि सरदार की आज्ञा की कोई ज़रूरत नहीं। जब ये लोग आपस में झगड़ रहे थे तब एक आदमी बड़ी टोपी लगाये वहाँ पहुँचा। देखते ही सन्नाटा छा गया। सब लोग चुपचाप खड़े हो गये पीछे से मालूम हुआ कि यह उन का सरदार है। पाहोम ने चट से दौड़ कर चाय और बढ़िया से बढ़िया कपड़े उसकी नज़र किये। सरदार ने उन सब को मंज़ूर कर लिया, और अपने शाही तख्त पर बैठ गया। बशक़ीरों ने उस से कुछ कहना आरम्भ किया। उस ने थोड़ी देर तक सुना भी और, उन से चुप रहने का इशारा कर के पाहोम से रूसी भाषा में बोला 'खैर, ऐसा ही सही जितनी ज़मीन चाहते हो ले लो। हमारे पास बहुत है।" पाहोम ने सोचा कि लिखा पढ़ी कर लेनी चाहिए, नहीं तो यदि बाद को ये छीन लें, तो मैं क्या कर सकता हूँ। पाहोम ने ज़ोर से कहा कि आप की इस कृपा के लिए धन्यवाद। आप के पास बहुत ज़मीन है परन्तु मुझे थोड़ी ही सी चाहिए। यदि ज़मीन नाप कर मुझे दी जाय तो अच्छा है। ज़िन्दगी का क्या ठिकाना, यह तो है ईश्वर के हाथ। तुम लोग तो हो भलेमानस सो मुझ को दिये देते हो, और यदि तुम्हारी सन्तान ने छीन ली, तो?

सरदार ने कहा कि हाँ, तुम्हारा कहना ठीक है, हम ऐसा ही करेंगे। पाहोम ने कहा, मैंने सुना है कि यहाँ पर एक सौदागर आया था उस ने यहाँ पर थोड़ी सी ज़मीन ख़रीदी थी और लिखा पढ़ी करा ली थी, ऐसा ही मैं भी चाहता हूँ। सरदार समझ गया और कहा, बहुत अच्छा, यह तो बड़ी आसान बात है, हमारा एक मुन्शी है, चलो, चल कर लिखा पढ़ी करा लें। पाहोम ने पूछा, भला, दाम तो बताओ।

कहा, हमारे दाम तो बँधे हुए हैं, यही १००० रु० रोज़ाना।

पाहोम की समझ में यह बात न आई। एक दिन के इतने रुपये, यह कौन सा नाप है? भला कितने एकड़ होंगे?

सरदार ने कहा, कि मैं गिनती में कुछ नहीं समझता, हम तो दिन के हिसाब से बेचते हैं जितना चक्कर तुम एक दिन में काट सको उतना तुम्हारा, और उसी के हम १०००) लेंगे।

पाहोम बड़ा चकराया और कहा कि दिन भर में तो खूब लम्बा चक्कर काट सकता हूँ। सरदार ने मुसकरा कर कहा उतनी ज़मीन तुम्हारी हो जायगी, परन्तु एक शर्त है कि उसी दिन उसी जगह पर चक्कर काट कर लौटना पड़ेगा, नहीं तो रुपया मारा जायगा हम लोग जहाँ तुम कहोगे, ठहर जायेंगे। तुम एक फावड़ा लेकर चल देना और जहाँ मन में आवे वहीं एक निशान लगा देना। जहाँ एक गड्ढा खोदा वहीं पर मट्टी का एक ढेर लगा देना। और फिर हम लोग हल लेकर एक एक गड्ढे के पास चलेंगे। तुम दिन भर में जितना चक्कर काट सकते हो। मगर शाम को अवश्य ही उसी स्थान पर आना पड़ेगा जहाँ से चले हो। और और जितनी ज़मीन तुम अपने चक्कर में घेर लोगे वह सब तुम्हारी हो जायगी।

पाहोम बहुत खुश हुआ। दूसरे दिन सवेरे चलने की ठहरी। पाहोम को रात भर नींद न आई। रात भर ज़मीन की ही बात सोचता रहा। मैं आसानी से दिन भर में ३५ मील चल सकता हूँ। आजकल दिन भी बड़े होते हैं। ३५ मील में न जाने कितनी ज़मीन घिर जायगी। वह गुलामी से अच्छी ही। जितनी भर ज़मीन बढ़ेगा वह ठीक लगा और बाकी किसानों को दे दूंगा। दो जोड़ी बैल और मज़दूर रक्खूंगा दो आदमी लगा कर १५० एकड़ की खूब काश्त करूंगा। बाकी में ढोर चरेंगे।

पाहोम रात भर जागता हुआ लेटा रहा, सवेरे के कुछ झपकी लग गई। आँख लगते ही उस ने यह स्वप्न देखा कि वह भी बिस्तर पर लेटा हुआ है और बाहर कोई हँस रहा है। वह चकित हो कर देखने को बाहर गया तो क्या देखता है कि सरदार खेमे के सामने बैठा हुआ खूब खिलखिला रहा है। पाहोम ने उस के निकट जाकर पूछा कि तुम क्यों हँस रहे हो? मालूम हुआ कि वह सरदार नहीं बल्कि वही सौदागर है जो उस के घर पर आया था और जिस ने ज़मीन के सम्बन्ध में पाहोम को कहा था। पाहोम पूछने ही वाला था कि तुम यहाँ कब आये, कि इतने में क्या देखता है कि यह सौदागर नहीं, बल्कि वह किसान है जो वोलगा नदी के निकट से उस के घर पर आया था। पलक मारते ही क्या देखता है कि, वह किसान भी नहीं, बल्कि सींग और खुर वाला शैतान बैठा हुआ हँस रहा है और उस के सामने एक आदमी नंगे पैर केवल एक कमीज़ और पायजामा पहने हुए पेट के बल ज़मीन पर लेटा हुआ साष्टांग प्रणाम कर रहा है वह बड़े गौर से देखने लगा कि यह कौन आदमी है जो ज़मीन पर औंधा पड़ा हुआ है, देखता क्या है कि यह मर गया है और वह स्वयं पाहोम है। वह जागते ही भौंचक्का सा रह गया।

सोचने लगा कि आदमी क्या क्या स्वप्न देखता है।

चारों ओर फिर कर उस ने दरवाज़े से देखा कि पौ फट रही है। उस का नौकर भी जो गाड़ी में सो रहा था जाग पड़ा। दोनों बशक़ीरों को बुलाने चल दिये। बशक़ीर लोग अपने सरदार के पास इकट्ठा हुए। चाय उड़ी। थोड़ी सी चाय पाहोम को भी दी गई। मगर उसे चैन न था, कहने लगा, अब समय हो गया है चलना है तो चलो।

सूर्य निकलते ही ये लोग मैदान में जा पहुंचे सब लोग एक छोटी सी पहाड़ी पर चढ़े। सरदार ने पाहोम के पास आ कर मैदान की ओर उंगली से इशारा किया और कहा, देखो, यह सब ज़मीन, जो तुम्हारे सामने है, अपनी ही है इन में से जितनी तुम को लेना हो ले लो।

पाहोम खुशी के मारे फूला न समाया, क्योंकि ज़मीन पड़ती थी और मैदान ऐसा हमवार था जैसे हाथ की हथेली, और ऐसी काली जैसी अफ़ीम का बीज, कहीं कहीं तराई में छाती तक ऊंची घास थी।

सरदार ने अपनी रुई की टोपी उतार कर ज़मीन पर रख दी और कहा, लो, यह निशान है, यहीं से चलना होगा। जितना तुम चलोगे उतनी ज़मीन तुम्हारी हो जायगी। परन्तु शाम तक इसी स्थान पर लौट पड़ना। पाहोम ने टोपी में रुपया रख दिया और कोट पहन लिया। कमर पेटा को खूब कस कर बांधा और अपने कोट की जेब में खाना रख लिया। एक पानी भरी बोतल कमर में बांध ली। जूते कस कर, अपने आदमी को साथ ले और फावड़ा लेकर चलने को तैयार हुआ। थोड़ी देर तक यही सोचा कि किस ओर जाऊं ज़मीन तो सब अच्छी है, मगर ख़ैर कोई बात नहीं। सूर्य ही की तरफ चलेंगे। वह पूर्व की ओर धुप होने के कारण तनिक ठहरा। परन्तु सोचा, कि समय नष्ट न करना चाहिए। अभी ठण्डक है, मज़े २ में चल सकते हैं। १००० गज़ चल कर रुक गया। उस ने एक गड्ढा खोदा और उस के निकट एक मिट्टी का ढेर बना दिया। आगे बढ़ा। धूप निकलने के कारण उस ने अपनी चाल बढ़ाई और थोड़ी देर बाद एक गड्ढा और खोदा। पाहोम ने मुड़ कर देखा तो उसी पहाड़ी पर सब लोगों को पाया। वह करीब तीन मील चल चुका होगा। धूप ज़रा तेज़ हो चली थी। कोट को उतार और उसे कंधे पर डाल कर चल दिया। अब धूप अच्छी तरह से निकल आई भोजन का वक्त भी हो गया। उस ने सोचा कि यद्यपि चौथाई समय गुज़र गया है, परन्तु अभी बहुत बाकी है। उसे यह भी ख्याल आया कि लौटना भी है। जूते उतार कर कमर में बांध लिये। अब चलने में आसानी भी हो गई। उस ने सोचा कि तीन मील और चल लें, तब लौटूं ज़मीन इतनी अच्छी है कि इस का हाथ से निकल जाने देना बड़ी भूल है, जितने आगे बढ़ो उतनी ही अच्छी ज़मीन मिलती है। कुछ देर तक सीधे चला गया। लौट कर देखा तो पहाड़ी कठिनता से दिखलाई पड़ी और उस पर खड़े हुए आदमी चींटियों की तरह छोटे २ दिखाई दिये।

पाहोम ने सोचा अरे! बहुत दूर निकल आया हूँ। अब तो लौटना चाहिए इस के सिवा मैं बिलकुल थक गया हूँ, प्यास के मारे दम निकली जा रही है। वह वहीं रुक गया, गड्ढा खोद कर मिट्टी का ढेर लगा दिया। फिर अपनी पानी की बोतल खोल कर प्यास बुझाई और तेज़ी से सीधा। घास बड़ी घनी थी। खूब गर्मी पड़ रही थी। मगर वह चलता ही गया वह थक गया। दो पहर हो गया था। सोचा, चलो, कुछ आराम कर लें। बैठ गया कुछ भोजन किया पर इस डर से न लेटा कि कहीं नींद न आ जाय। खाना खाने से आराम आ गया था। मगर गर्मी बड़ी तेज़ थी। इस लिए ऊँघने लगा। पर रुका नहीं। थोड़ी देर आराम कर के चल दिया। सोचा, दिन भर की तकलीफ़ में ज़िन्दगी भर आराम है। काफी चौंधे घर बहुत दूर निकल गया और लौटना ही चाहता था कि एक अच्छी भूमि दिखाई दी। इसे न छोड़ना चाहिए। इस में सन खूब पैदा होगा। इस लिए उस को भी

र काट कर दूसरी ओर एक गड्ढा खोद दिया। पाहोम ने पहाड़ी ओर देखा। गर्मी के मारे आसमान धुधला हो रहा था और कठि- से पहाडी पर के लोक दिखाई देते थे। पाहोम ने कहा, मैं बहुत निकल आया हूं, अब जल्दी से लौटना चाहिये। सूर्य्य की ओर ा तो सूर्य्य डूब रहा है, और उस ने वर्गाकार खेत की तीसरी ा दो ही मील चल पाई है। निशान १० मील दूर है। अब मुझे धा चलना चाहिए चाहे मेरी जमीन तिकोनी ही क्यों न रह जाय। और भी अधिक चल लेता मगर मेरे लिए यही क्या थोड़ी है। अब पहाड़ी की ओर सीधा हो लिया।

पाहोम चला तो सीधा पहाड़ी की ओर मगर, एक बहुत गया था। ी के मारे दम घुट रहा था। पैरों में छाले पड़ गये थे। आराम लेना हता था। परन्तु लेता कैसे, लौटना तो था वक्त पर। सूर्य किसी की ट नहीं जोहता। डूबता जा रहा था। सोचा, तृष्णा में आ कर भूल की दी है; देरी हो जाय तो क्या ताज्जुब। उस ने पहाड़ी व सूर्य ओर देखा। वह निशान से अब भी दूर था। सूर्य डूब चुका था। होम बड़ी तेजी से पैर मारता ही गया तो भी निशान तक न पहुंच या। अब उस ने अपना कोट, टोपी जूते और पानी की बालल फेंक , और और भी जोर से दौड़ने लगा। शोक के साथ यह भी कहता ः हाय! मैंने लालच में आकर सब काम बिगाड़ दिया, अब तो सी तरह भी वक्त पर नहीं पहुंच सकता।

इन बातों से उस की दम टूट गई पर दौड़ता ही गया। ज़बान तालू चिपक गई। पीठ लुहार की धौंकनी की तरह चल रही थी और ल हथौड़े की तरह काम कर रहा था टांगें ऐसी सुन्न हो गई थीं, नो हैं ही नहीं। पाहोम को डर था कि कहीं जान न निकल जाय र भी न रुका। सोचा इतनी मेहनत के बाद रुक गया तो लोग मुझे गल कहेंगे। दौड़ता ही गया। बशकीरों की चिल्लाहट सुन कर हिम्मत बन्धी और अन्तिम सांस भर कर दौड़ लगाई।

सूर्य डूबते समय बड़ा दिखाई पड़ता था; और बिलकुल लाल था। वह डूबने ही वाला था। पाहोम भी अपने निशान के निकट आ गया था। पहाड़ी पर से लोग उसे हिम्मत बन्धा रहे थे।

पाहोम ने टोपी को देखा रुपये उस में थे। सरदार उस के निकट बैठा था अब उसे अपना स्वप्न याद आया। ज़मीन तो बहुत है, न जाने भगवान मुझे जिन्दा भी रहने देगा या नहीं! मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। अब मैं किसी तरह भी वहां तक नहीं पहुंच सकता। उस ने सूर्य की ओर देखा तो आधा डूब चुका था। बची खुची ताकत से झुक कर दौड़ा जिस से गिर न पड़े। ज्योंही वह पहाड़ी तक पहुंचा, एकदम अंधेरा हो गया सूर्य डूब गया। वह चिल्लाया, सब मेहनत व्यर्थ गई, और रुकने ही वाला था कि बशकीरों ने चिल्ला कर कहा, अभी तो हमें सूर्य दीखता है, तुम्हें न दीखता होगा। फिर एक लम्बी सांस भर कर उस ने दौड़ लगाई। अभी कुछ उजाला था। वह पहाड़ी पर पहुंच गया। टोपी देखी। सामने सरदार बैठा हुआ हँस रहा है। उसे फिर स्वप्न का ख्याल आया और चिल्लाया कि मेरी टांगें रह गईं। यह कहते कहते गिर पड़ा और हाथ बढ़ा कर टोपी छू ली।

सरदार ने हँस कर कहा, खूब रही, अच्छी ज़मीन पर हाथ मारा। पाहोम का नौकर दौड़ कर आया और उसे उठाने की कोशिश की तो क्या देखता है कि उस के मुंह से खून निकल रहा है। वह मर गया था। बशकीरों ने यह देख कर बड़ा शोक प्रकट किया।

नौकर ने फावड़ा लेकर एक कब्र खोदी, और पाहोम को उस में रख दिया। देखा गया कि सिर से पैर तक सिर्फ़ ६ फीट ज़मीन की उसे आवश्यकता थी।

अनुवादक—बालप्रसाद वर्मा।

श्री शेठ सरूपचंदजी हुकमचंदजी दिगंबर जैन मन्दिर, नासिया इन्दौर.

आश्वासन।

लेखक—श्रीयुत रामचरित उपाध्याय।

१

ज्योंही हुई पतझार त्योंही पत्तियां उगने लगीं,
जग में जहां आई शरद सब मेघ-मालायें भगीं।
जो गिर गया है वह उठेगा शीघ्र ही या देर में;
तू कर्म का है मानने वाला पड़ा किस फेर में।
हो जायगा फिर भी समुन्नत सोच कुछ करना नहीं;
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

२

सत्यव्रतों ही की विजय होती चली आई सदा;
निस्वार्थियों ने विश्व में शुभ कीर्ति है पाई सदा।
निज चित्त-मन्दिर में निठुरता नहीं लाना कभी,
मायावियों की बात में मत भूल कर आना कभी।
जावें भले ही प्राण पर पीछे चरण धरना नहीं;
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

३

तू ही हटावेगा, न पर, अपने दुखद दुष्काल को;
कर सामना उसका अभी तू ठोक करके ताल को।
आतुर न होना चाहिए; कुछ धैर्य धारण कर अभी,
उद्योग करने से टलेंगे रोग-शोकादिक सभी।
अति स्वप्न हो चिन्ता-नदी में डूब कर मरना नहीं;
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

४

तू चख चुका है फूट के फल को बता क्या सुख मिला?
पाया न होगा जो किसी ने वही तुझको दुख मिला।
अब भी सँभल जा, देख आगे, हो गया सो हो गया।
जो है बचा, उसको बचा, जो खो गया सो खो गया।
निज बान्धवों की विषभरी द्वेषाग्नि से जलना नहीं।
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

५

तू शिल्प का, वाणिज्य का, कृषि, धर्म का भी मूल है;
गुरु जो कहीं चेला बने तो क्या न उसकी भूल है?
जो आत्म गौरव को बनाये हैं जगत् में वे सभी—
सम्मान पाते हैं सदा, अपमान नहीं पाते कभी।
निजधर्म पथ से एक तिल पीछे कभी टलना नहीं;
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

६

[illegible] निद्रा में पड़ा कब समय को [illegible] तू;
उठ काम कर, निज [illegible] जग को दिखा दे स्पष्ट तू।
जो समय [illegible] गया वह फिर न आता पास है;
है कर्मवीर, स्वधर्म कर, [illegible] है।
[illegible] देखो [illegible] फिर घर को [illegible] नहीं,
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

७

धक्का बड़ा है विश्व में आगे निकलने के लिए;
बाये हुए हैं मुँह सबल, निर्बल निगलने के लिए।
तू इस लिए निज चाल को वैसी बना दे शीघ्र ही—
संघर्ष पर के अंग से होने नहीं पावे कहीं।
उन्नति-शिखर पर चढ़ सम्भल कर चूक कर गिरना नहीं;
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

८

जो स्वार्थ में रत हैं कभी परमार्थ हैं करते नहीं—
वे पाप के परिणाम से कुछ भी कभी डरते नहीं।
सुन, साफ़ सुथरों के हृदय भी कृष्ण होते हैं बड़े;
देखे गये हैं विषभरे भी स्वच्छ सोने के घड़े।
पर के प्रलोभन-जाल में हो अन्ध तू फँसना नहीं;
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

९

सेवा उसी की कीजिये जिससे कभी मेवा मिले,
नौका चलाना व्यर्थ है कुछ भी न जो खेवा मिले।
वह अति घृणित है मूढ़ जो तुझसे घृणा करता रहे;
वह क्यों नहीं जल जायगा, जो और से जलता रहे?
निर्गन्ध फूलों के चमन में मुग्ध हो फिरना नहीं;
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

१०

भू-लोक का भी जो भ्रमण तू खुद कर सकता नहीं—
परलोक तक तेरा भ्रमण फिर हो नहीं सकता सही।
पर का सदा मुँह ताक कर फ़ाक़े न करना चाहिये।
निजशक्ति भर निज देश के दुख शीघ्र हरना चाहिये।
तू कोढ़ियों सा गेह ही में जन्म भर सड़ना नहीं;
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

११

जिसको न निजता ज्ञान है उसने पढ़ा क्यों व्यर्थ ही?
रटना जिसे था वह कहाँ आगे बढ़ा क्यों व्यर्थ ही?
घर की कमी पर से भला पूरी बना कब हो गई?
तू विप्र था पर हाय! तेरी बुद्धि कैसे खो गई!
निज धर्म को अब छोड़ कर पर की तरफ़ ढलना नहीं।
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

१२

तू सत्य में विश्वास करके सत्य ही करना सदा।
अन्याय से अन्यायियों के दूर ही रहना सदा।
तू भूल कर करना नहीं सत्कार दुष्टों का कभी;
सम्मान्य सज्जनों का नहीं करना कभी अपमान भी।
निज स्वत्व को मत छोड़ना, पर स्वत्व को हरना नहीं।
वर-वीर भारत! स्वप्न में भी विघ्न से डरना नहीं।

कि और न दिखाई दे, क्योंकि उसे कोई युद्ध नहीं जीतना है, वह जितना ही इस रूप को देखता है उतना ही उस के अतृप्त नयन घबराते हैं कि यह दृश्य सपने की तरह कहीं हमारी आंखों से जल्दी ओझल न हो जाय, और हम उस के दर्शनों को तरसते रह जांय। उस ने जैसे दूरबीन से भारी भारी ब्रह्माण्डों के महाप्रलय और महासृष्टि अपनी वेधशाला में बैठे बैठे देखी, जैसे उस ने कई सौ बरस पहले की घटनाओं को आज अपनी आंखों से देखा, उसी तरह उस ने परमाणु-ब्रह्माण्डों के महाप्रलय और महासृष्टि भी देखी, और सैकड़ों वर्ष पीछे भविष्य में होने वाली घटनाओं के भी दर्शन कर लिये। इन यन्त्रों के सहारे उस ने देश के अपरिमित विस्तार को नापा और भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों काल की घटनाएँ देखीं। एक तरह वह त्रिकाल-दर्शी हो गया और "अणोरणीयान् महतो महीयान्" तक उस ने अपनी दृष्टि पहुँचायी।

इस पर कहा जा सकता है, कि फिर भी आँखें ज्योति की मोहताज हैं प्रकाश बिना देखना असम्भव है। कई वर्षों से यह मोहताजी भी दूर हो गयी है। हम जो सात रंग किरणों में देखते हैं वह तो हमारी परिछिन्न दृष्टि की सृष्टि है। रंग तो वस्तुतः असंख्य हैं। इतना ही नहीं। जिस दशा में हम समझते हैं कि घोर अन्धकार है, उसी दशा में अदृश्य प्रकाश की किरणें छिटक रही हैं, उस की ज्योति बिखर रही है, और हम लाचार बैठे हैं, अन्धों को तो आँखें नहीं, परन्तु हम बड़ी बड़ी आँखों वाले भी अन्धे ही से हैं। यन्त्र के सहारे यह "अलख ज्योति" जगमगाती है इस ज्योति में फोटो ली गयी तो पहली बार देखा गया कि मनुष्य की छाया नहीं पड़ी। सिद्ध हुआ कि यदि दमयन्ती की कथा में प्रसिद्ध देवताओं की छाया साधारण ज्योति में नहीं पड़ती, यदि ऐसा शरीर सम्भव है जिस की छाया न पड़े तो ऐसी ज्योति भी अवश्य है जिस में छाया न पड़े। इन्हीं अदृष्य ज्योतियों में से एक एक्स (अज्ञात) किरणों के नाम से प्रसिद्ध है, जिस के प्रकाश से बक्स के भीतर रुपये शरीर के भीतर धंसी सीसे की गोली तक दिखाई देती है। आकाश के असंख्य तारे जो आँख से नहीं दीखते फोटो द्वारा प्रत्यक्ष हो जाते हैं। फोटो के सहारे हम उन्हें उंगलियों से गिन लेते हैं। परमाणुओं के प्रतिक्षण हज़ार हज़ार टुकड़े हो रहे हैं। यन्त्र में हम उन्हें देखते हैं पर गिन नहीं सकते। वैज्ञानिक फ़ोटो लेकर उन्हें गिना भी देता है। हमें यह अनुमान करा देता है कि यदि हम परमाणुओं की एक बड़े कमरे से तुलना करें तो उस के खंड विद्युत्कण त्रसरेणु से अधिक बड़े न होंगे। हमारी आँखों की पहुँच अब कहां तक हो गई है! यंत्रों के सहारे देखने में उसे इतनी सुविधाएं हो गई हैं कि हम बिना अत्युक्ति के कह सकते हैं कि पहले हम आँखों के लिए अँधेरी कोठरी में मन्द दीपक वाले बैठे थे, अब हम सूर्य्य के प्रकाश में लम्बे चौड़े मैदान में विचर रहे हैं।

पाश्चात्य दार्शनिक कहते हैं कि आँख की शक्ति दसों इन्द्रियों में इतनी अधिक है कि उस को समस्त इन्द्रियों का नव—दशमांश समझना चाहिए। फिर भी कानों की शक्ति यन्त्रों द्वारा इतनी बढ़ गई है कि कम्पन मापक यन्त्र द्वारा न केवल होनहार भूकम्प का ही पता लगता है, वरन् सौ वर्ष पहले के भूकम्प का भी स्फुरण आज कर्णगोचर हो सकता है, हजारों मील दूर समुद्र के तट पर तरंग के हिलोरों से भूमि कांपती है और यन्त्र के सहारे मनुष्य उस कम्पन को कर्णगोचर कर लेता है। हजारों कोस पर बैठे दो मनुष्य टेलीफ़ोन के सहारे परस्पर बात चीत कर लेते हैं, पाताल देश से बिजली की टिक टिक हमारे कानों को वहां के समाचार दम के दम में पहुंचा देती है। बीसों बरस पहले गाए हुए गीत ग्रामोफ़ोन के सहारे हम आज भी बैठे सुन सकते हैं। इस रीति से अपने मृत मित्रों और प्रियजनों के प्यारे शब्द भी बीसों बरस पीछे सुनने का उपाय हो सकता है। फ़ोटो के द्वारा जैसे अपने प्रेम-पात्रों के रूप देख सकते हैं, वैसे ही ग्रामोफ़ोन द्वारा उन के शब्द भी सुन सकते हैं। हमारी श्रवण शक्ति परिच्छिन्न है। साधारणतया मनुष्य को एक सेकण्ड में ३२ स्फुरण से लेकर ४००० स्फुरण तक सुनने की सामर्थ्य होती है, परन्तु हमारे चारों ओर इस से न्यूनाधिक स्फुरण भी होते रहते हैं, दूर दूर के स्फुरण यहीं वायु और अन्य पदार्थों में विलीन हो जाते हैं। यहीं हमारे कान इन सब स्फुरणों को सुन सकते तो जीना दूभर हो जाता पर कभी कभी ज़रूरत हमें लाचार करती है, हम दूर के दूर और ऊंचे नीचे स्फुरण भी सुनना चाहते हैं। वहां यन्त्रों की सहायता काम आती है। आँख की उंगेरुदी की तरह अभी कान की [illegible] औ

नहीं बनी कि हम ग्रह, नक्षत्र और तारों से समाचार पा सकें, पर बेतार के समाचार और फ़ोटो आदि के आविष्कार से आशा होती है कि किसी दिन हम अन्य ग्रहों से भी नाता जोड़ेंगे और उन के समाचार कानों से सुनेंगे।

साधारणरीत्या हम त्वचा से, ठण्डा-गर्म और कड़ा-नर्म पहचान सकते हैं। भार का अनुमान यद्यपि त्वचा का विषय नहीं, तथापि त्वचा के साथ ही इस पर भी विचार करने में सुभीता है। कड़े नर्म की पहचान में भी एक हद है। मोम और लाख की आपेक्षिक नर्मी और कड़ाई हमारे स्पर्श का विषय है, पर यह जानना कि इस्पात, कांच और वज्र, तीनों में किस प्रकार की कड़ाई है, केवल त्वचा से सम्भव नहीं। आंच का भी यही हाल है, त्वचा न तो हिम को सह सकती है और न खौलते जल को। हिम अधिक ठंडा है या द्रव की हुई साधारण हवा? खौलता जल अधिक गर्म है या खौलता गन्धक का तेजाब? इन बातों को जानने के लिए यन्त्रों का सहारा लेना पड़ता है। तापमापक ऐसा ही यन्त्र है। परन्तु तापमापकों की भी हद है। अब ऐसे यन्त्र बन गये हैं कि मील भर दूर रखे हुए दीपक की आंच और नौ करोड़ मील दूर सूर्य्य की प्रचण्ड ताप और अरबों योजन दूर तारों की गरमी सहज ही नापी जा सकती है। केवल नाप कर ही हम सन्तुष्ट हो रहे हों, सो भी बात नहीं है। विज्ञान ने बिजली के सहारे सूर्य्य के लगभग प्रचण्ड ताप भी उत्पन्न किया और इतनी ठण्ढक भी पैदा की कि जिस के आगे प्रकृति देवी के भी पैर नहीं बढ़ते।

हम साधारण मात्राओं की समानता दरसाने के लिए व्यवहार में तराजू से काम लेते आये हैं। परन्तु वैज्ञानिक, जिस ने सचमुच बाल की खाल खींचने में भी अपना कमाल दिखाया है, बाल से भी कहीं बारीक वस्तुओं को तोल कर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। उस ने एक ओर से तो परमाणुओं और विद्युत्कणों को तोलने के उपाय निकाले और दूसरी ओर से पृथ्वी आदि ग्रह, और सूर्य्य आदि तारों को भी विज्ञान के पलड़े में रख कर तोल डाला। आकर्षण शक्ति, जिस के सत्य का उद्घाटन भारतीय आर्य्यभट ने डेढ़ हज़ार वर्ष पहले किया था और जिस के तथ्य का पुनरुद्घाटन अंग्रेज निउटन ने तीन सौ वर्ष पहले किया था, आज तक ऐसा रहस्य है कि उस का पता लगाने में सर जे० जे० टामसन व्यस्त हैं। उन्हों ने अब तक यही निष्कर्ष निकाला है कि पदार्थ मात्र "विद्युत" है, उस के ऋणांश या धनांश का आधिक्य ही आकर्षण का कारण है। तोल और भार इसी पर निर्भर है। इसी के साथ एक और बड़ी विलक्षण बात हाल में ही मालूम हुई है। जिस आकाश के तरंगों का फल प्रकाश समझा जाता था उस आकाश को वैज्ञानिक भार-हीन समझे बैठा था। इस रहस्य पर भी गत ग्रहण ने रोशनी डाली है और यह पता लगा है कि आकाश भी भारवान पदार्थ है, अर्थात् धरती के आकर्षण का प्रभाव आकाश पर भी पड़ता है और सूर्य्य की किरणें पृथ्वी के वायु-मण्डल में आते आते धरती के आकर्षण के कारण भी मुड़ जाती हैं। हिन्दुओं के पांचो तत्व इस प्रकार भारवान पदार्थ सिद्ध हो गये*।

जिह्वा ने छः रसों का आस्वादन ही निःश्रेयस समझा था। पीछे इसे ही द्रव्यगुणों की कसौटी बनानी पड़ी। चिकित्सा की नींव इन छः रसों पर ही रखी गई। परन्तु अब इसने दरजे की मिठास पैदा की गई है जो शकर से पांच सौ गुनी अधिक मीठी है। खटाई ऐसी निकली है कि त्वचा भस्म हो जाती है। कड़वापन ऐसा कि उस के सामने नीम विष भी पानी भरे—जीभ के ऐंठने के पहले चखने वाला ही ऐंठ जाये। लवण की तीक्ष्णता भी चले सिर की। इन के परखने के लिए रसायन ने अपने उपाय अलग ही निकाले, और अब चिकित्सक को यह जानना हो कि अमुक पदार्थ का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है तो विज्ञानाचार्य्य सर जगदीशचन्द्र वसु के गवेषणालय में जा कर उन अद्भुत यन्त्रों से काम ले, जो मनुष्य और पशुओं से नहीं, वरन वनस्पतियों से लिखवा लेते हैं कि अमुक पदार्थ का क्या और कैसा प्रभाव है।

---

* [illegible] के प्रसिद्ध [illegible] अनुवादित [illegible] संस्कृत के [illegible] रेखा का [illegible] है, [illegible] है। परन्तु अब [illegible] नहीं [illegible] विस्तार [illegible]।

—लेखक।

मनुष्य के शरीर में घ्राण की शक्ति अत्यन्त कम है। तो भी उस ने सुगन्ध और दुर्गन्ध की अच्छी विवेचना की है। अनेक उत्तम उत्तम सुगन्धों का सेवन उस का व्यसन है। वैज्ञानिक ने ऐसे ऐसे पदार्थों का आविष्कार किया जिस का सुवास शीशी से बाहर होते ही मुहल्ले के मुहल्ले को क्या, सम्पूर्ण नगर को आमोदित कर देता है। साथ ही क्लोरोफार्म ईथर आदि ऐसी ओषधियां निकालीं जिन के सूंघने से मनुष्य अचेत हो जाता है और उसे डाक्टर के नश्तर की पीड़ा नहीं होती।

कर्मेन्द्रियों की सहायता के लिए जितने यन्त्र बने और बनते जा रहे हैं, उनकी तो गिनती ही नहीं हो सकती। पेट काम नहीं करता हो तो पचा पचाया अन्न खाने को मौजूद है। मुंह में किसी रोग के हो जाने से भोजन पान असम्भव होने पर पेट के भीतर छिद्र कर के नलिका द्वारा भोजन पहुंचाया गया है। नकली दांत, बांह, हाथ, जंघे, पैर, सभी कुछ मिलते हैं और मनुष्य इन से काम ले रहा है।

यह सच है कि मनुष्य के नन्हें नन्हें हाथ पांव बीसों हज़ार फीट ऊंचे पहाड़ों पर और हज़ारों फीट नीचे धरती के गर्भ में जा कर काम करते रहे हैं, परन्तु इन्हों ने इस से कहीं बढ़ कर महत्व का काम किया है। जो काम किसी युग में लाखों मज़दूरों ने चींटी की तरह मिल कर मिश्र देश के स्तूपों के लिए किया था उसी काम को सुभीते से करने के लिए मनुष्य के हाथों ने ही ऐसे यन्त्र बनाये हैं जो अकेले हज़ारों का काम करते हैं। भारी से भारी बोझ को, बने बनाये समूचे मकान तक को, एक अष्टपद यन्त्र अपने चगल में पकड़ कर उठा लेता है और ममकड़ी सब तरह की धरती पर चार चार पांच चारों चारों से थम कर बराबर टहलता हुआ निर्दिष्ट स्थान को पहुंचता है और नियत स्थल पर उस घर को स्थापित कर देता है।

खेत जोतना, बोना, सींचना, निराना, काटना और दवाना, नाज पीसना, पकाना, सभी काम आज यन्त्र कर रहे हैं। रूई का ओटना, धुनना, कातना, बुनना, तहाना गांठों में कसना, एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाना, काटना, सीना, सभी कुछ, यन्त्र कर रहे हैं। रंगाई, धुलाई भी बिना कल नहीं होती। ये सब तो बड़े साधारण काम हैं, परन्तु गाना, बजाना, यहां तक कि जोड़, बाकी, गुणा भाग आदि लेखा भी आज कल यन्त्र द्वारा होता है। यन्त्रों का बड़े वेग से अभ्युदय देख कर बीस वर्ष पहले लोग कहा करते थे कि अब सब हो चुका, आदमी के लिए उड़ने की बस एक ही कसर रह गई। अब देखते हैं कि उस ने पर भी खोंस लिये और वायुयानों में बैठ कर यात्रा भी करने लगा। आकाश में पक्षी की तरह उड़ते फिरना और जल के भीतर ही भीतर मछलियों की तरह तैरते रहना भी उस ने यन्त्रों के सहारे एक साधारण सी बात कर ली।

जल, थल और आकाश तीनों पर विज्ञान के सैनिकों ने विजय पाई। बिजली को नकेल में रस्सी बांध कर उसे जिधर चाहा उधर दौड़ाया। झाड़ू दिलाने, बासन मँजवाने, खाना पकवाने, चौकीदारी कराने और हलकारों से भी अधिक दौड़ाने, से लेकर कल कारखानों में जितने मजूरों के काम हैं वे सभी आज बिजली के घोड़ों से लिये जा रहे हैं। बिजली ने मानों मनुष्य की चाकरी लिखाई है। वह सारे काम करने को हाथ बँधे तय्यार है। वह उस के ज्ञान की सीमा बढ़ाने में बड़ी मददगार है। मनुष्य की दशा आज उस लँगड़े, अन्धे, अपाहिज बौने भिखमँगे की सी है जो गत की लकड़ी खुलाते ही बड़ा बलवान, असीम शक्तिमान और धन-पौरुष सम्पन्न दानवों का राजाधिराज बन गया, जिस की आज्ञा के आधीन पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश पांचों तत्व थे।

परन्तु आत्म-रहस्य इस बहिरंग परीक्षा में कहां?

* मेरा सर्गदा, कारनाब कुजारत।
आब हुस्नू रवी कि आब कुमारत।

---

* दो॰ भानु विकल हेरत फिरत, जिन किरनन को मूल।
धावत अपनी खोज में, आप आप को भूल॥ आर=मम,

सत्याग्रही।

हों चाहे युद्ध दुःख कठिन सब सहते जाना।
रखना अपना धैर्य न उल्टी मुंह की खाना॥
जो आवें आपत्ति हृदय से उन्हें लगाना।
दावानल को देख न पीछे पैर डिगाना॥
सत्य न्याय मय पन्थ जब तुम [illegible] आयेंगे।
साधन [illegible] पर [illegible] सफलता फल पायेंगे॥१॥

• • •

जो है हो सब स्वार्थ देखने वाला ज़माना।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

• • •

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कार्य प्रथम सब देख कष्ट कभी घिर आयेंगे।
किन्तु बिना पथ पान लौट मौन ही आयंगे॥
यदि गिरि से दें छोड़ तुम्हें मत फिर भी डरना।
मस्तक भी दें फोड़ स्वयं शिर आगे धरना॥
जो मोड़ें मुख तुम्हें कृपा उनसे मत मोड़ना।
शक्ति भक्ति की दृष्टि से संकट पथ को मोड़ना॥४॥

• • •

कर के [illegible] प्राण कार्य सब करने होंगे।
आगम के सब दुःख तुम्हीं को हरने होंगे॥
सत्य परीक्षा देनि मुदित [illegible] होंगे।
'प्रेम' शान्ति के साथ तुम, आगम में होंगे॥
[illegible]
[illegible] विजय प्राप्त है [illegible] में॥५॥

• • •

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]॥६॥

—[illegible]

कृषी करने योग्य भूमि ... ... ११३,८२०,००० एकड़
कुल जमीन जिस से कृषी की गई ... २२१,७७८,००० एकड़

यह तो कुल भारत वर्ष का हुआ। अब यह देखना है कि प्रत्येक प्रान्त में कुल जमीन में से कितने एकड़ प्रति शतक कृषी के काम में आता है:—

बंबई ५२ एकड़ प्रति शतक
बिहार ४६ " "
यू०पी०५६ " "
बंगाल ४८ एकड प्रति शतक
पंजाब ४० " "
मद्रास ३८ " "
सं०पी०३८ " "

उपरोक्त टेबिल के अध्ययन से हमारा भाविष्य अत्यन्त निराशाजनक प्रतीत होता है विशेष कर जब हम सोचते हैं कि हमारी जन संख्या इस समय ३१५,०००,००० है और बराबर बढ़ती जा रही है। पहिली बात तो यह है कि अब कृषी करने योग्य भूमि ही कम रह गई है, और जो है वह पशुओं के चरागाह के लिये अत्यन्त आवश्यक है कारण कि इनकी भी अवनति हो रही है जो हमारे लिये कभी कल्याणकारी नहीं हो सकती। हम अपना भोजन तो बाहर से भी मगा सकते हैं किन्तु पशुओं के लिये ऐसा करना सर्वथा असंभव होगा। इस में सन्देह नहीं कि अभी भी आसानी से बहुत कृषी करने योग्य भूमि हमारे उपयोग में आ सकती है किन्तु हमारी बढती हुई जन संख्या के लिये जिस में ८२ प्रति शतक केवल कृषी द्वारा अपना निर्वाह करते हैं, भूमि अब परिमित ही कही जा सकती है। पुनः भारत में भूमि से जितना काम लिया जाता है उतना किसी देश में नहीं लिया जाता, यूरोप में प्रत्येक कृषी किये हुए वर्ग मील भूमि में केवल २५० मनुष्य ही अपना पालण करते हैं ये केवल भूमि ही पर निर्भर नहीं रहते साथ साथ इन का उद्योग धन्धा तथा व्यापार भी शामिल है जो भारतीयों से कम से कम १० गुना अधिक है। किन्तु यहां पर केवल कृषी द्वारा ही अपना पालन करने वाले प्रति वर्ग मील पर ५०० से ७५० मनुष्य तक है। फिर इस में यह विशेषता कि जन संख्या तो बराबर बढ़ रही है किंतु कई कारणों से हमारी भूमि की उपजाऊ शक्ति बराबर कम होती जा रही है। मिस्टर दत्त, जिन्हें सरकार ने वस्तुओं के भारत में बढ़ते हुए मूल्य का कारण जानने के लिये नियत किया था, कहते हैं कि यहां जन सख्या बराबर बढ़ती जारही है। विदेश को खाद्य पदार्थ भी बहुत भेज दिया जाता है किन्तु इनकी उत्पत्ति उपयुक्त मात्रा में नहीं कीजाती। इन सब बातों से कम से कम यह बात तो अवश्य सिद्ध हो जाती है कि केवल कृषी ही हमारे भरण पोषण के लिये पर्याप्त नहीं है और केवल इसी के सहारे हम अपनी स्थिति पूर्ण रीति से नहीं सुधार सकते। हमारे पास इतना धन भी नहीं है कि यूरोपियन देशों के समान बाहर से अन्न मंगा कर हम अपना गुज़र कर सकें, इस साल पहिली बार भारत को आस्ट्रेलिया से गेहूं खरीदना पड़ा। यदि हमारी यही स्थिति रही तो हमारी रक्षा ईश्वर ही कर सकेगा। यदि हम अपने को अन्न कष्ट से बचाना चाहते हैं, यदि बार बार दुर्भिक्ष के चगुल में फंस कर अपने भाइयों का अमूल्य जीवन हमें नष्ट नहीं करना है तो हम को व्यापार की ओर भी ध्यान देना चा[illegible]

कई [illegible]

हम [illegible]

तरह ज्ञात हो जायगा। अठारहवीं सदी के अन्त तक हम कृषी के साथ साथ व्यापार भी खूब करते थे। हमारे कारीगर कई कलाओं में सिद्धहस्त थे, लाखों का माल विदेश जाता था और हम आनन्द से जीवन यापन करते थे। ढाके का मल मल, बनारस तथा कोयम्बतूर [illegible] तथा सूरी के लोहे के सामान यूरोप भर में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। कृषी की ओर भी लोगों का विशेष ध्यान रहता था इसलिये सब खाद्य पदार्थ भी सस्ते थे। कारीगर यही प्रयत्न करते थे कि उन का माल अच्छा बने। संख्या की ओर उन का ध्यान नहीं रहता था, अपने काम में उन को लाभ के साथ साथ आनन्द तथा आत्माभिमान भी होता था। देश में चारों तरफ अशान्ति होने पर भी पेट की ज्वाला से बहुत कम कष्ट पाते थे। हमारी यह अवस्था चिरस्थायी न हो सकी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने कई प्रकार के अनुचित उपायों से जिन का यहां वर्णन करना अनावश्यक है, हमारे व्यापार

को नष्ट कर दिया। थोड़े बहुत कारीगर जो बच रहे थे वे [illegible] कार वाणिज्य के कारण विदेशीय मशीन के बने सस्ते माल से न कर सके और अपना वंशपरंपरा से चला आता हुआ पेशा [illegible] कर कृषी पर ही अवलंबित हो अपना जीवन काटने लगे। प्रत्येक गांव में आज कल भी देखने में आती है कि कारीगर काम त्याग या तो कृषी करने लग जाता है या सब कुछ त्याग करने लगता है। व्यापार के नाश हो जाने पर केवल कृषी पर अब निर्भर हो गये और यही कारण है कि हम सदैव [illegible] वाद दुर्भिक्ष के शिकार बने रहते हैं। हम चाहे कृषी की [illegible] उन्नति क्यों न करें हमारी बढ़ती हुई जन संख्या की सब [illegible] ताओं को हम उस से पूरा नहीं कर सकते। अपनी जीवन [illegible] लिये हमें इस ओर तो ध्यान देना ही चाहिये। आज कल [illegible] जितना माल आता है उस में से ८० सैकड़ा तैय्यार माल होता [illegible] हमारे यहां से बाहर जाने वाले माल में आधा कच्चा माल होता [illegible] इस को हम यहीं पर अपने कारखानों में उपयोग कर सकते हैं [illegible] न करना यह सूचित करता है कि हम अयोग्य हैं और [illegible] लिये वस्तुयें नहीं तैय्यार कर सकते। हमारे यहां से चमड़ा, तैय्यार करने का मसाला, रुई, मेगनीस बहुमात्रा में विदेश [illegible] और वहां से बन कर हमारे ही हाथ अठगुनी और दसगुनी [illegible] पर बेचा जाता है। यदि हम चाहें तो यह धन हम आसानी से ही देश में रख सकते हैं और इस तरह अपने भूखे भाइयों की रक्षा भी कर सकते हैं।

युद्ध छिड़ जाने पर ऐसी आशा हो गई थी कि भारत सरकार इस ओर ध्यान देगी और जर्मनी के माल न आने से विदेशीय [illegible] में जो जगह खाली होगी कम से कम उसे तो भारतवर्ष अवश्य कर लेगा। किन्तु यह आशा भी दुराशा मात्र निकली क्योंकि [illegible] देखते ही देखते जापान घुस पड़ा और भारत में उस ने अपना [illegible] भरवाना शुरू कर दिया। युद्ध के समय जापान ने भारत में [illegible] व्यापार कितना अधिक बढ़ा लिया यह निम्न लिखित अंकों से [illegible] हो जायगा। युद्ध के पहिले जितना विदेशीय माल भारत में आता [illegible] जापान का उस में केवल २.५ प्रति शतक होता था। यह सन् १९१[illegible] १६ में ५.७ हो गया और सन् १९१६–१७ में ८.१ प्रति शतक तक [illegible] गया। आश्चर्य होगा कि जहां युद्ध के पहिले जापान [illegible] केवल ६ लाख का माल आता था सन् १९१६–१७ में [illegible] लाख का सामान हम ने खरीदा। कांच का सामान, घड़ियां, [illegible] बनैन, लोहे का सामान, सूत, व खिलौने सब सामान जापान [illegible] भरने लगा है। घटिया होने पर भी विवश हो हम जापानी माल खरीदते हैं। तात्पर्य यह कि युद्ध के पहिले हमारी जैसी स्थिति अब भी वैसी ही है केवल इतना फ़र्क है कि अच्छे जर्मन-माल [illegible] बदले हम रद्दी जापानी माल पा रहे हैं। युद्ध के अन्त होने पर [illegible] वाले भी भारत में ही अपना माल खपत करना चाहते हैं इंग्लैंड या जापान सब की यही इच्छा है कि भारत स्वयं कुछ न कर के हमा[illegible] माल खरीदे। इस सम्बन्ध में सर-आकलैंड गेडीज़ ने पार्लियामेंट [illegible] कहा था "युद्ध के समय भारतीय बाजार में जहां अंग्रेजी माल [illegible] अभाव से जापानी माल ने अधिकार कर लिया था अब अंग्रेजी मा[illegible] की मांग होने लगी है और जापान बाज़ार न छोड़ने का जी तोड़ प्रय[illegible] करेगा। भारतवर्ष में आने वाले विदेशीय माल में जापान का २० प्र[illegible] शतक माल आज कल होता है। जहां सन् १९१७, १८ में जापान [illegible] भारतीय कच्चे माल के मूल्य में अपने तैय्यार माल के अतिरिक्त [illegible] करोड़ रुपया और देना पड़ता था वहां आज स्वयं भारत जापान [illegible]

[illegible] रुपया [illegible]
[illegible] इन से यह [illegible]
[illegible] य लग गया [illegible]
[illegible] उन्नति [illegible]

माल की विशेषता के कारण नहीं हुई है। इस का मुख्य कारण [illegible] है कि युद्ध के कारण यूरोप से उतना माल नहीं आसका और [illegible] दीर्घसूत्रता के कारण हम लोगों ने भी कुछ नहीं किया। बस [illegible] को पूरा अवसर मिल गया। बड़े कष्ट की बात है कि जापान [illegible] इंग्लैंड भारतीय बाज़ार के लिये इस तरह स्पर्धा करें और हम [illegible] चाप तमाशा देखें विशेष कर उस दशा में जब कि हमारे करोड़ों [illegible] दुःख से तड़प रहे हों। जो हुआ सो हुआ हमें अब नहीं सोना चाहिये कमर बांध कर तुरंत हमें व्यापारिक क्षेत्र में उतर कर अपने देश [illegible] विदेशीय व्यापारियों के पंजे से शीघ्र बचाना चाहिये।

—[illegible]

पंजाब प्रकरण की कुछ बातें !

कासूर का १० वर्ष का लड़का। जिसके उपर बादशाह की विरुद्ध युद्ध करने का आरोप रक्खा गया है।

हवाई जहाज में से फेंके हुए बम्ब गोले से जिसका हाथ टूटा गया। वह गुजरवाला का लड़का सरदारीलाल।

बादशाह के विरुद्ध युद्ध करने के गुन्हा के लिये आजन्म काला पानी की शिक्षा पाया हुआ १० वर्ष का लड़का कुन्दनलाल।

[illegible]

[illegible]

देना ही इस पुस्तक का मुख्य हेतु है, और कैसर कथन के अनुसार ही यह लिखी जाती है। परन्तु यह कार्य्य न जाने किस अशुभ घड़ी में आरम्भ हुआ है कि उसकी समाप्ति के कोई लक्षण नहीं देख पड़ते। बेरन का लेख दो बार नष्ट किया जा चुका है। पहली बार विचार बदल जाने के कारण ८० पृष्ठ अग्नि देव की भेंट किये। कैसर ने बेरन से कहा कि जो कार्य्य करने में मेरा दिल दुखे उस को न करना ही बुद्धिमानी है। कुछ दिनों बाद यह कार्य कर डालने का विचार फिर उत्पन्न हुआ। कुछ समाह पश्चात् छः प्रकरण तक पढ़ कर वह क्रोध के मारे उबल उठा और कहने लगा कि यह शैली क्षमा पात्र की सी प्रतीत होती है। मुझे जो कहना, मैंने किया, उस के लिए माफ़ी माँगना या कारण बतलाना मैं कदापि नहीं चाहता। इतना कहते कहते उस ने कागज़ों को नोच कर के रद्दी की टोकरी में डाल दिया। परन्तु अब वही कार्य फिर आरम्भ किया गया है। मन की मौज इसी को कहते हैं।

कैसर पर एक धुन और भी सवार है। कभी कभी वह एकाएक अदृश्य हो जाता है। जब वह सम्राट् था तब भी, कभी कभी, अचानक कहीं चल देता था और एकाएक आ जाता था। बेन्टिक-कैसल से एक बार तीन दिन तक वह गायब रहा। तरह तरह की गप्पें उड़ने लगीं। किसी ने कहा, वह भाग गया। किसी ने कहा, पेरिस चला गया। परन्तु वह सरहद के एक छोटे से गाँव में मौजूद था। एक रात उस ने एक मज़दूर के झोंपड़े में बिताई। दो रातें रेल की गाड़ियों में काटी। चौथे दिन अचानक किले में उपस्थित हो गया!

एमरञन का बेन्टिक-कैसल योरप के इतिहास में एक प्रसिद्ध स्थान है। फ्रांस के राजा लुई चौदहवें ने, नेदरलेंड के सैन्य-समूह का सामना करने के लिए प्रस्थान करते हुए, यहीं मुकाम किया था। कहते हैं, रूस के मास्को नगर से लौट कर नेपोलियन ने भी उसी कमरे में विश्राम किया था जिस में इस समय कैसर निवास करता है। उस का भाड़ा कैसर को प्रति मास पाँच सौ पाउंड देना पड़ता है। मकान के बाग बगीचों के माली और नौकरों का वेतन गृह स्वामी ही देता है।

विधि और समय के नियोग से आज कैसर इस दुर्गति में है। सोचने को उस ने सब कुछ सोचा, पर हुआ वही जो परमात्मा चाहता था। जो रात को राव के ठाठ से सोया था, उसी को सवेरे रंक के रूप में प्राण लेकर भागना पड़ा। किसी कवि ने ठीक कहा है, "न जाने जानकीनाथ प्रातः काले किं भविष्यति"? —सरस्वती।

श्री० युगलसिंह।

भारतीय महिलाएं और वोट देने का अधिकार।

(लेखिका—श्रीमती विद्यावती सेठ, बी० ए० ।)

ऐसे विषय पर विवाद करना, जिस के अंकुरित बीज समस्त भू-मण्डल को आच्छादित कर रहे हैं, कोई सरल बात नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानव जाति में न्याय और उदारता का नया सवत् अभी प्रादुर्भूत हुआ है और उस के साथ साथ पक्षपात और बाधाओं के संकुचित बन्धनों को तोड़ कर स्वातंत्र्य की आशा का सुप्रभात हुआ है। संसार की प्रत्येक दिशा-प्रदिशाओं में 'स्त्रियों के अधिकार' की पताका उड़ाई जा रही है। यह लहर यद्यपि पाश्चात्य गोलार्ध में विशेष प्रबल है, तथापि, दूरवर्ती पूर्व में भी उस का प्रवेश हो गया। उस की गड़गड़ाहट से भारतीय महिलाओं के प्रशान्त गृहस्थ जीवन के भी कम्पायमान होने की आशंका है। चारों ओर जोशीली स्त्रियां इस पताका के नीचे एकत्रित दीख पड़ती हैं और अपनी योग्यता तथा शक्ति द्वारा यह दर्शाने का यत्न करती हैं कि वे इस अधिकार के पूर्ण योग्य हैं। यही नहीं, शक्तिशाली योग्य पुरुषों के साहाय्य और नेतृत्व में स्त्रियों की स्वाधीनता का प्रश्न इस समय जैसा बल पकड़ रहा है, पचास वर्ष पूर्व उस का अनुमान भी नहीं हो सकता था। किन्तु यह कहना अत्युक्ति नहीं कि इस का परिणाम मानव जाति के लिए अनिष्टकर और भयंकर होगा। यद्यपि सहस्रों स्त्री-पुरुष इस स्वतन्त्रता का स्वागत कर रहे हैं, नित्य नए प्रयत्न द्वारा नूतन अधिकार प्राप्त करने का उद्योग हो रहा है, तथापि यह अवश्य विचार लेना चाहिए है कि, हम किस राह पर चल रहे हैं? और कहां पहुंचेंगे? अथवा हमें कहां जाना अभीष्ट है? किन्तु जब पहाड़ी नदी धारा-प्रवाह बह रही हो तब उस के प्रवाह को कौन रोक सकता है? एक नई समस्या सब जगत को आच्छादित कर रही है। ऐसा कौन है जो उसे रोक सके? एक मनुष्य के लिए यह असम्भव है। कदाचित् कोई नवीन सार्वजनिक घटना ही इसको टहरावे। कदाचित आगामी शताब्दी में इस के सिद्ध करने की कोई सरल युक्ति निकल आवे, अथवा स्वयं स्त्रियां ही अपने प्रयत्न से उपार्जित स्वत्वों के कडुवे अनुभव से इन अधिकारों को-जिन से कदाचित् उन्हें स्वतन्त्रता और स्वाधीनता तो मिलती है किन्तु जिन से न केवल उनकी अपनी भलाई और सुख ही दूर हो जाते हैं बल्कि सारी मानव जाति की भलाई, सुख और शांति नष्ट हो जाती है—प्राप्त करने से विरक्त हो जावें। ये दुष्परिणाम क्या हैं, यही इस लेख में दिखाया जायगा। इस कठिन समस्या को हमारे शास्त्रकारों ने बड़ी उत्तमता से हल किया था। पाश्चात्य विद्वानों की भी सम्मति प्राच्य विचारों को ही पुष्ट करती है, जैसा कि आगे दिखाया जायगा। प्रथम मैं स्त्रियों की स्थिति पर एक दृष्टि डालूँगी और यह दिखलाऊँगी कि यदि स्त्रियां पुरुषों की स्पर्धा में आवेंगी तो उनकी शक्ति कितनी रहेगी।

वर्तमान समय में पाश्चात्य देशों में स्त्रियों को वोट देने के अधिकार के विषय में जो आन्दोलन हो रहा है वह शिक्षित समुदाय से छिपा नहीं। वहां की अवस्था विशेष से बाधित होकर ही वहां की स्त्रियों ने यह किया है। वहां के विचारवान लोगों को भय था कि यदि स्त्रियों को वोट देने का अधिकार मिल जायगा तो पार्लियामेंट में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक होने से स्त्रियां अधिक निर्वाचित होंगी और। पार्लियामेंट और मन्त्रि मण्डल में अधिकांश स्त्रियां होने से शासन स्त्रियों द्वारा ही होगा। स्त्री पुरुषों के अनेक नैसर्गिक भेदों और उन की भिन्न २ शक्तियों को भुला कर ब्रिटिश साम्राज्य के शासन का कार्यभार स्त्रियों के कोमल कन्धों पर पड़ेगा। जो श्रेयस्कर न होगा। इतना ही नहीं, उन की उक्ति थी कि यदि स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त हो जायेंगे तो वह अपना अधिकांश समय, ध्यान और शक्ति राजनीति और शासन कार्य्य में लगा देंगी, और उस का आवश्यक परिणाम यह होगा कि उन का निज का जीवन तथा गृहस्थ जीवन समुचित रीति से सञ्चालित न हो सकेगा। बहुत अंशों में गृहस्थ जीवन बन्धन समझा जावेगा और गृहस्थ धर्म गौण हो जायगा। पुरुष लोग न तो बच्चों को ही पाल सकते हैं और न गृह कार्यों को ही निभा सकते हैं। अतः जितनी ही अधिक संख्या में स्त्रियां इन कर्तव्यों से विमुखता और वैमनस्यता दर्शायेंगी उतनी ही अधिकता से जाति की अधोगति होगी और राष्ट्र का नाश होगा।

इन युक्तियों में बहुत कुछ सत्यता है। वोट द्वारा अधिकार प्राप्त होने पर भी स्त्रियां पुरुषों के विरुद्ध कृतकार्य्य नहीं हो सकतीं। धर्म-बल और शारीरिक बल-दो ही राजा-प्रजा के सम्बन्ध को नियमित करते हैं। धर्म नीति में स्त्री पुरुषों को अपने २ अधिकार आप सुरक्षित करने की आवश्यकता ही न होगी, और बल-नीति में स्त्रियां वैसे ही पुरुषों से कम हैं। वर्तमान शासन-कार्य बहुत कुछ शारीरिक बल पर ही निर्भर है। और वोट देने की शक्ति एक प्रकार की बनावटी रीति है, जिस के द्वारा यह सिद्ध होता है कि अपनी सम्मति [illegible] न्याय-युक्त [illegible] पड़ता है कि [illegible] अधिक शक्ति होती है वही शासन करते हैं। अतः वोट की शक्ति वोट देने वालों की शक्ति पर ही निर्भर है। यदि साधारण वोट देने वाले के पक्ष में उस के अन्य जातीय सहायकों की सम्मति या शक्ति न हो तो उस में

निश्चय करने की शक्ति नहीं रहती, और यदि बहुपक्ष इतना कमज़ोर हो कि हर किसी को यह ज्ञात हो जाय कि वे अपने प्रतिनिधियों के निश्चयों को लघुपक्ष पर बाधित नहीं कर सकते तो यह स्पष्ट ही है कि लघुपक्ष यदि चाहें तो उन के निश्चयों को नहीं मानेंगे। यदि स्त्रियां को वोट दे भी दिये जांयगे तो उन का फल वह न होगा जो पुरुषों को वोट देने का होता। स्त्रियों में शारीरिक बल कम ही नहीं बल्कि पुरुषों की अपेक्षा न होने के ही बराबर है। फिर सब स्त्रियाँ एक तरफ़ ही वोट नहीं देती रहेंगी और न साधारणतया यही होगा कि वे पुरुषों के विरुद्ध वोट दें। किन्तु जो बात आवश्यक और विचारणीय है वह यह है कि यदि स्त्रियों का बहुपक्ष भी हो जाय और पुरुष लघुसंख्या में हों, पर यदि लघुपक्ष बहुपक्ष की सम्मति न माने तब क्या होगा? उदाहरण के लिए आयरलेंड के होमरूल आन्दोलन में एडवर्ड कार्सन के नेतृत्व में अल्स्टर के लघुपक्ष का विघ्न डालना प्रस्तुत किया जा सकता है। जब पुरुषों की पार्लियामेन्ट में ही लघुपक्ष पर बहुपक्ष का निश्चय बाधित नहीं किया जा सका तो, ऐसी अवस्थाओं में स्त्रियों के बहुपक्ष की सफलता की क्या आशा हो सकती है? माना कि सामान्यतया लोग इस का विचार भी न करेंगे, किन्तु जब पुरुषों के भाव उत्तेजित होंगे और उन के आवेग अनियमित होंगे तब बड़ा अनर्थ उपस्थित होगा। यदि पराजित पक्ष के पुरुषों को यह विश्वास हो जायगा कि स्त्रियां उन के विचार में बाधा डालती हैं तो, वे उच्छृ-ङ्खल हो जावेंगे। मान लो कि कोई युद्ध विषयक प्रस्ताव है। स्त्रियों की बहु सम्मति है कि सन्धि कर ली जाय और पुरुष वर्ग जो अन्य संरक्षक हैं युद्ध जारी रखने के पक्ष में हैं, क्या ऐसी अवस्था में शोक जनक झगड़े उपस्थित न होंगे? अथवा स्त्रियों की सम्मति युद्ध करने के पक्ष में हो और पुरुष वर्ग की शांति स्थापन करने के पक्ष में, क्या तब उनकी अवस्था हास्य जनक न होगी? इसी प्रकार यदि शराब-खाने बन्द करने का प्रस्ताव हो और स्त्रियां सब उस के पक्ष में हों और पुरुष विपक्ष में तो क्या उस समय उस प्रस्ताव का पास हो जाना अशान्ति और विद्रोह का कारण न होगा? उसे कौन मानेगा? अतः इन बातों से स्पष्ट है कि, बल पूर्वक अधिकार प्राप्त करने से स्त्रियों का कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह पुरुषों से बलात्कार कार्य नहीं करा सकतीं, और न उन का विरोध ही कर सकती हैं। और यदि वे उन के पीछे पीछे चलती रहेंगी या चुप बैठी रहेंगी तो वोट का अधिकार प्राप्त करना ही व्यर्थ है। साथ ही अनुभव से यह भी सिद्ध हो रहा है कि यह कार्य्य ही स्त्रियों के लिए अस्वाभाविक है। वोट देने का अधिकार प्राप्त होने पर भी अब तक पार्लियामेन्ट में केवल एक ही स्त्री चुनी गई है। न्यूज़ीलैण्ड में जहां स्त्रियों को वोट का अधिकार मिल गया है वहां वे उसे बहुत कम काम में लाती हैं।

स्त्रियों की दशा ही किसी जाति की उन्नति-अवनति का निश्चय करने की कसौटी है। प्राचीन मिश्र देश में, जो कि सब जाति से अधिक शिक्षित गिना जाता है, स्त्रियों को पदाधिकार न था। वह बाह्य जीवन से पृथक रह कर गृह कार्य में ही रत रहती थीं और बच्चों को शिक्षित बनाती थीं। उन में शिक्षा का प्रचार था। अरिस्टाटल ने उन्हें गृहस्थी में पति के बराबर अधिकार दिये, और प्लेटो ने कहा कि "बहुत सी स्त्रियां कई कार्यों को पुरुषों से अच्छा कर सकती हैं और राज्य या सेना में कोई विभाग ऐसा नहीं जो स्त्रीत्व के कारण स्त्रियों के लिए या पुरुषत्व के कारण पुरुषों के लिए विशेषतया उचित हो। किन्तु प्रकृति के पुरस्कार दो वर्गों में विभक्त हैं, और अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार प्रत्येक व्यवहार में पुरुष और स्त्रियां दोनों का भाग है। विशेषता इतनी ही है कि हर एक व्यवहार में स्त्री का भाग कमज़ोर है। इतने पर भी राष्ट्र-संगठन में स्त्रियों को कोई भाग नहीं दिया गया था और न स्त्रियां उस में प्रवेश कर के प्रभाव डालती थीं। रोम में, जहां स्त्रियों को बहुत स्वाधीनता थी, और जहां उन्हें गृहस्थी में उच्च अधिकार प्राप्त थे, राजनैतिक विभागों में स्त्रियों का भाग न था। यद्यपि उन्हों ने देश के लिए बहुत त्याग किया, किन्तु उन की सेवा के बदले उन को राजनैतिक अधिकार नहीं दिए गये। ट्यूटन जाति में स्त्रियों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। टेसिटस कहता है कि, लोग उन्हें देवता की भांति मानते थे। युद्ध में वह सैनिकों को [illegible] थीं। युद्ध के [illegible] पर शासन करती थीं। [illegible] रहना था। [illegible] थीं। [illegible]

थी। घायलों की सेवा करती और थान्तों को उत्साहित करती तथापि इतनी उच्च अवस्था को प्राप्त हो कर भी पुराने जर्मन नियम अनुकूल वे अपने पिता और पति के आधीन समझी जाती थीं। कई स्त्रियों ने, यद्यपि, शासन भी किया, तथापि शताब्दियों से जाति ने राजनीति में स्त्री-अधिकार के लिए आन्दोलन नहीं किया यद्यपि राज्यों के उत्थान और पतन होते रहे, फ्रांस के महा-विप्लव समय प्रथम बार स्त्रियों ने सामाजिक बराबरी के लिए आन्दो किया था किन्तु राजनैतिक कार्यों में भाग लेना उस समय निय विरुद्ध माना गया था।

परन्तु फ्रांस ने तो स्त्रियों के समान अधिकार के आन्दोलन उत्तेजित ही किया था, अमेरिका और इंग्लैण्ड ने उस को क्रियात्म रूप दे दिया। सन् १८४८ में अमेरिका के न्यूयार्क शहर में स्त्रियों सभा में यह प्रस्ताव पास किया गया कि, मनुष्य जाति के उस आ हिस्से को, जिस पर उतना ही कार्य-भार है जितना कि पुरुषों प तो बराबरी के अधिकार मिलने चाहिये। अमेरिका में स्त्रियां कार्य्यों को करने लगीं और उन पदों पर पहुंच गईं जो कि पहले पुरु ही के लिए थे। अमेरिका के बाद इंग्लैण्ड की बारी आई। वहां स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक थी और अब भी है, अतः वहां इस आन्दोलन ने भयंकर रूप धारण किया। उस के बाद जर्मनी आस्ट्रिया, हंगरी, नोर्वे, स्वीडन इत्यादि सब जगह यह आन्दोलन फैल गया। किन्तु राजनैतिक अधिकार लेने के विषय में सब स्त्रियों की सम्मति एक नहीं हुई। इंग्लैण्ड में ही बहुत सी स्त्रियां उस के विरुद्ध हैं। उन का कथन है कि "बाह्य बातों में पुरुषों की बराबरी करन स्त्रियों के लिए व्यर्थ ही नहीं बल्कि अधोगति का मार्ग है। उस से स्त्रियों की सच्ची शोभा और विशेष कर्तव्यों के प्रति भ्रम हो जाता है। वे व्यक्तिगत झगड़े और स्पर्धा की ओर ले जाते हैं, जब कि मानव जाति के दोनों हिस्सों का मुख्य कर्तव्य यह होना चाहिए कि अपने परिश्रम और प्राकृतिक शक्तियों के पुरस्कार द्वारा समस्त मानव जाति को लाभ पहुँचायें।"

सामाजिक बन्धन बहुधा मानव जाति के मानसिक विकास के लिए ही बनाये जाते हैं, इस लिए उन का तोड़ना सहज नहीं होता। अमेरिका में स्त्रियों का आन्दोलन यूरोप की भाँति आर्थिक अवस्था के कारण तथा स्त्रियों की संख्याधिक के कारण न था, बल्कि स्वाधीनता की लहर में यह कर वहां भी गृहस्थ जीवन की बड़ी दुर्दशा हुई है।

मृत्यु-संख्या अधिक है। वहां की स्त्रियां हमारे स्त्री धर्म के आदर्श को पूरा नहीं करती और सामान्यतया वे योग्य पत्नी, सन्तानवत्सल माता और गृहदेवी नहीं बन सकती।

अब यूरोप की ओर आइए। वहां युद्ध के पूर्व जर्मनी में ८,००,०००, आस्ट्रिया हंगरी में ६,००,०००, नोर्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड और डेन्मार्क में ३,००,००० स्त्रियां पुरुषों से अधिक थीं। विलायत में भी कई लाख स्त्रियां पुरुषों से अधिक थीं। और कुमारी स्त्रियां विवाह करने वाले पुरुषों से बहुत अधिक हैं। युद्ध के बाद यह संख्या और भी अधिक बढ़ गई है। केथरीन एन्टोनी नामक स्त्री अपनी "जर्मनी और स्कैण्डीनेविया में स्त्रीत्व" नामी पुस्तक में लिखती है कि, "स्त्रियों की वृद्धि के कारण समाज संगठन में एक बड़ा भारी विप्लव होगा। यह तो निश्चय ही है कि स्त्रियों के स्वत्वों के लिए जो आन्दोलन किया जा रहा है उस को यदि स्त्रियां पूर्ण शक्ति से न भी करें तो भी वह कम शक्तिशाली न होगा। क्योंकि व्यापार और शिल्प के विकास ने इसे जितनी उत्तेजना दी है उतनी शायद अपने आप न होती।" अतः पाश्चात्य देशों में स्त्री-पुरुषों के स्वत्व का झगड़ा वहां की आर्थिक दशा का दुष्परिणाम होने के कारण अनिवार्य हो गया है। फिर भी वहां इन में स्त्री-पुरुषों के सुख की कुछ भी वृद्धि नहीं हुई है। जब तक वहां का राष्ट्र-संगठन धर्म की धुरी पर स्थापित न होगा, और पाश्चात्य जनता स्त्री जाति का सम्मान करना न सीखेगी, जब तक स्त्री-पुरुष अपने कर्तव्यों पर दृढ़ न होंगे, तब तक इस प्रश्न का हल होना बड़ा कठिन है। इस संघर्ष के दुष्परिणामों के कारण अभी से मानवतत्व [illegible] का ध्यान स्त्री पुरुषों के स्वाभाविक कार्य्य-विभाग की ओर खिंचने लगा है, और एक दो दिशाओं से आवाज़ उठने लगी है कि विवाहित स्त्रियां और [illegible] स्त्रियों के राजनैतिक क्षेत्र में आने से

निश्चय करने की शक्ति नहीं रहती, और यदि बहुपक्ष इतना कमज़ोर हो कि हर किसी को यह ज्ञात हो जाय कि वे अपने प्रतिनिधियों के निश्चयों को लघुपक्ष पर बाधित नहीं कर सकते तो यह स्पष्ट ही है कि लघुपक्ष यदि चाहें तो उन के निश्चयों को नहीं मानेंगे। यदि स्त्रियां को वोट दे भी दिये जायंगे तो उन का फल वह न होगा जो पुरुषों को वोट देने का होता। स्त्रियों में शारीरिक बल कम ही नहीं बल्कि पुरुषों की अपेक्षा न होने के ही बराबर है। फिर सब स्त्रियाँ एक तरफ़ ही वोट नहीं देती रहेंगी और न साधारणतया यही होगा कि वे पुरुषों के विरुद्ध वोट दें। किन्तु जो बात आवश्यक और विचारणीय है वह यह है कि यदि स्त्रियों का बहुपक्ष भी हो जाय और पुरुष लघुसंख्या में हों, पर यदि लघुपक्ष बहुपक्ष की सम्मति न माने तब क्या होगा? उदाहरण के लिए आयरलैंड के होमरूल आन्दोलन में एडवर्ड कार्सन के नेतृत्व में अलस्टर के लघुपक्ष का विघ्न डालना प्रस्तुत किया जा सकता है। जब पुरुषों की पार्लियामेन्ट में ही लघुपक्ष पर बहुपक्ष का निश्चय बाधित नहीं किया जा सका तो, ऐसी अवस्थाओं में स्त्रियों के बहुपक्ष की सफलता की क्या आशा हो सकती है? माना कि सामान्यतया लोग इस का विचार भी न करेंगे, किन्तु जब पुरुषों के भाव उत्तेजित होंगे और उन के आवेग अनियमित होंगे तब बड़ा अनर्थ उपस्थित होगा। यदि पराजित पक्ष के पुरुषों को यह विश्वास हो जायगा कि स्त्रियां उन के विचार में बाधा डालती हैं तो, वे उच्छृंखल हो जावेंगे। मान लो कि कोई युद्ध विषयक प्रस्ताव है। स्त्रियों की बहु सम्मति है कि सन्धि कर ली जाय और पुरुष वर्ग जो अन्य संरक्षक हैं युद्ध जारी रखने के पक्ष में हैं, क्या ऐसी अवस्था में शोक जनक झगड़े उपस्थित न होंगे? अथवा स्त्रियों की सम्मति युद्ध करने के पक्ष में हो और पुरुष वर्ग की शांति स्थापन करने के पक्ष में, क्या तब उनकी अवस्था हास्य जनक न होगी? इसी प्रकार यदि शराबखाने बन्द करने का प्रस्ताव हो और स्त्रियां सब उस के पक्ष में हों और पुरुष विपक्ष में तो क्या उस समय उस प्रस्ताव का पास हो जाना अशान्ति और विद्रोह का कारण न होगा? उसे कौन मानेगा? अतः इन बातों से स्पष्ट है कि, बल पूर्वक अधिकार प्राप्त करने से स्त्रियों का कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह पुरुषों से बलात्कार कार्य नहीं करा सकतीं, और न उन का विरोध ही कर सकती हैं। और यदि वे उन के पीछे पीछे चलती रहेंगी या चुप बैठी रहेंगी तो वोट का अधिकार प्राप्त करना ही व्यर्थ है। साथ ही अनुभव से यह भी सिद्ध हो रहा है कि यह कार्य्य ही स्त्रियों के लिए अस्वाभाविक है। वोट देने का अधिकार प्राप्त होने पर भी अब तक पार्लियामेन्ट में केवल एक ही स्त्री चुनी गई है। न्यूज़ीलैण्ड में जहाँ स्त्रियों को वोट का अधिकार मिल गया है वहां वे उसे बहुत कम काम में लाती हैं।

स्त्रियों की दशा ही किसी जाति की उन्नति-अवनति का निश्चय करने की कसौटी है। प्राचीन मिश्र देश में, जो कि सब जाति में अधिक शिक्षित गिना जाता है, स्त्रियों को परराधिकार न था। वह बाहर जीवन से पृथक रह कर गृह कार्य में ही रत रहती थीं और बच्चों को शिक्षित बनाती थीं। उन में विद्या का प्रचार था। आरिस्टाटल ने उन्हें गृहस्थी में पति के बराबर अधिकार दिये, और प्लेटो ने कहा कि "बहुत सी स्त्रियां कई कार्यों को पुरुषों से अच्छा कर सकती हैं और राज्य या सेना में कोई विभाग ऐसा नहीं जो स्त्रीत्व के कारण स्त्रियों के लिए या पुरुषत्व के कारण पुरुषों के लिए विशेषतया उचित हो। किन्तु प्रकृति के पुरस्कार दो वर्गों में विभक्त हैं, और अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार प्रत्येक व्यवहार में पुरुष और स्त्रियां दोनों का भाग है। विशेषता इतनी ही है कि हर एक व्यवहार में स्त्री का भाग कमज़ोर है। इतने पर भी राष्ट्र-संगठन में स्त्रियों को कोई भाग नहीं दिया गया था और न स्त्रियां उस में [illegible] कर के प्रभाव डाल सकती थीं। रोम में जहां स्त्रियों को बहुत स्वाधीनता थी, और जहां उन्हें गृहस्थी में उच्च अधिकार प्राप्त थे, राजनैतिक विभागों में स्त्रियों का भाग न था। यद्यपि उन्हों ने देश के लिए बहुत त्याग किया, किन्तु उन को कभी भी राजनैतिक अधिकार नहीं दिए गये। [illegible] में स्त्रियों की बड़ी [illegible] थी। [illegible]

थी। घायलों की सेवा करती और थकों को उत्साहित करती तथापि इतनी उच्च अवस्था को प्राप्त हो कर भी पुराने जर्मन नियम अनुकूल वे अपने पिता और पति के आधीन समझी जाती थीं। कई स्त्रियों ने, यद्यपि, शासन भी किया, तथापि शताब्दियों से जाति ने राजनीति में स्त्री-अधिकार के लिए आन्दोलन नहीं किया यद्यपि राज्यों के उत्थान और पतन होते रहे, फ्रांस के महा-विप्लव समय प्रथम बार स्त्रियों ने सामाजिक बराबरी के लिए [illegible] किया था किन्तु राजनैतिक कार्यों में भाग लेना उस समय [illegible] विरुद्ध माना गया था।

परन्तु फ्रांस ने तो स्त्रियों के समान अधिकार के आन्दोलन उत्तेजित ही किया था, अमेरिका और इंग्लैण्ड ने उस को [illegible] रूप दे दिया। सन् १८४८ में अमेरिका के न्यूयार्क शहर में स्त्रियों [illegible] सभा में यह प्रस्ताव पास किया गया कि, मनुष्य जाति के उस हिस्से को, जिस पर उतना ही कार्य-भार है जितना कि पुरुषों पर तो बराबरी के अधिकार मिलने चाहिये। अमेरिका में स्त्रियां उन कार्य्यों को करने लगी और उन पदों पर पहुंच गई जो कि पहले पुरुषों ही के लिए थे। अमेरिका के बाद इंग्लैण्ड की बारी आई। वहां पर स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक थी और अब भी है, अतः वहां पर इस आन्दोलन ने भयंकर रूप धारण किया। उस के बाद जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, नोर्वे, स्वीडन इत्यादि सब जगह यह आन्दोलन फैल गया। किन्तु राजनैतिक अधिकार लेने के विषय में सब स्त्रियों की सम्मति एक नहीं हुई। इंग्लैण्ड में ही बहुत सी स्त्रियां उस के विरुद्ध हैं। उन का कथन है कि "बाह्य बातों में पुरुषों की बराबरी करना स्त्रियों के लिए व्यर्थ ही नहीं बल्कि अधोगति का मार्ग है। उस से स्त्रियों की सच्ची शोभा और विशेष कर्तव्यों के प्रति भ्रम हो जाता है। वे व्यक्तिगत झगड़े और स्पर्धा की ओर ले जाते हैं, जब कि मानव जाति के दोनों हिस्सों का मुख्य कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि अपने परिश्रम और प्राकृतिक शक्तियों के पुरस्कार द्वारा समस्त मानव जाति को लाभ पहुँचावें।"

सामाजिक बन्धन बहुधा मानव जाति के मानसिक विकास के लिए ही बनाये जाते हैं, इस लिए उन का तोड़ना सहज नहीं होता। अमेरिका में स्त्रियों का आन्दोलन यूरोप की भाँति आर्थिक अवस्था के कारण तथा स्त्रियों की संख्याधिक के कारण न था, बल्कि स्वाधीनता की लहर में बह कर वहां भी गृहस्थ जीवन की बड़ी दुर्दशा हुई है। स्त्रियों का होटलों में रहना, घर के कार्य्य न करना, विवाह से अरुचि सन्तानोत्पत्ति से विमुखता और उन का यथोचित पालन पोषण इत्यादि न होना, उस के भयंकर परिणाम हैं। इन्हीं कारणों से वहां बच्चों की मृत्यु-संख्या अधिक है। वहां की स्त्रियां हमारे स्त्री धर्म के आदर्श को पूरा नहीं करती और सामान्यतया वे योग्य पत्नी, सन्तानवत्सला माता और गृहदेवी नहीं बन सकती।

अब यूरोप की ओर आइए। वहां युद्ध के पूर्व जर्मनी में ८,००,०००, आस्ट्रिया हंगरी में ६,००,०००, नोर्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड और डेन्मार्क में ३,००,००० स्त्रियां पुरुषों से अधिक थीं। विलायत में भी [illegible] स्त्रियां पुरुषों से अधिक थी। और कुमारी स्त्रियां विवाह करने वाले पुरुषों से बहुत अधिक हैं। युद्ध के बाद यह संख्या और भी अधिक बढ़ गई है। कैथरीन एन्टोनी नामक स्त्री अपनी "जर्मनी और स्कैंडिनेविया में स्त्रीत्व" नामी पुस्तक में लिखती है कि, "स्त्रियों की वृद्धि के कारण समाज संगठन में एक बड़ा भारी विप्लव होगा। यह तो निश्चित ही है कि स्त्रियों के स्वत्वों के लिए जो आन्दोलन किया जा रहा है उस को यदि स्त्रियां पूर्ण शक्ति से न भी करें तो भी यह कम [illegible] शाली न होगा। क्योंकि व्यापार और शिल्प के विकास ने इसे जिस उत्तेजना दी है उतनी शायद अपने आप न होती।" अतः [illegible] देशों में स्त्री-पुरुषों के स्वत्व का झगड़ा वहां की आर्थिक दशा के दुष्परिणाम होने के कारण अनिवार्य्य हो गया है। फिर भी वहां [illegible] के स्त्री-पुरुषों के सुख की कुछ भी वृद्धि नहीं हुई है। जब तक [illegible] का राष्ट्र-संगठन धर्म की धुरी पर स्थापित न होगा, और [illegible] जनता स्त्री जाति का सम्मान करना न सीखेगी, जब तक स्त्री [illegible] अपने कर्त्तव्यों पर पुनरारूढ़ न होंगे, तब तक इस प्रश्न का हल [illegible] बड़ा कठिन है। इस संघर्ष के दुष्परिणामों के कारण अभी से [illegible] [illegible] का ध्यान स्त्री-पुरुषों के स्वाभाविक कार्य्य-विभाग की [illegible] खिंचने लगा है, और एक दो दिशाओं से आवाज़ उठने लगी है [illegible] विवाहित स्त्रियों और कर्मचारिणी स्त्रियों के राजनीति क्षेत्र में [illegible]

कुस्तुन्तुनिया का एक रमणीय दृश्य।

सन्धि-परिषद् द्वारा टर्की के प्रश्न का जो निर्णय हुआ है, वह बिलकुल ही असंतोषजनक है। इस बात को सब ने स्वीकार किया है। इस निर्णय की शर्तों से मुसल्मान और हिंदुओं को जो दुःख हुआ है, वह कई जगह प्रगट किया गया है। महायुद्ध उपस्थित करनेवाले जर्मनी और आस्ट्रिया की राजधानियों पर यद्यपि मित्र-सर्कार ने अपना अधिकार नहीं जमाया है न उनके राजकुमारों को ही किसी बन्धन में डाल दिया है। किन्तु टर्की की राजधानी को अलबत्ता मित्र सेना ने छीन लिया है, और टर्क युवराज को राजपरिवार सहित एक जहाज पर पहुँचा दिया है। जर्मन नेताओं को मित्रों ने हाथ तक नहीं लगाया है, किन्तु टर्की के तीस राष्ट्रीय नेता कैद कर लिये गये हैं। सारांश विजयी नेताओं ने टर्की की तोड़ जोड़ का काम शुरू कर दिया, किन्तु उससे इस देश में असंतोष फैल रहा है। यदि इस समय लार्ड हार्डिंज जैसे वायसराय होते तो अवश्य उन्हों ने सर्कार को त्याग पत्र देकर लोगों के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रगट की होती। और इस प्रश्न का योग्य निपटारा करने के लिए यत्न किया होता। क्या हम लार्ड चेम्सफर्ड से यह आशा कर सकते हैं!

कुस्तुन्तुनिया का एक रमणीय दृश्य।

महायुद्ध के छठे वर्ष का मार्च मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी. ए. ।)

मार्च के प्रथम सप्ताह में मित्र सर्कार की सेना द्वारा तुर्कों का कुस्तुन्तुनिया नगर हथिया लिया जाने के बाद, सारे योरोप का ध्यान पूर्णतयः तुर्क परिस्थिति की ओर लगा रहना चाहिये था, किंतु इसी मास के दूसरे सप्ताह में जर्मनी में एक छोटीसी राज्यक्रान्ति हो जाने के कारण सब का ध्यान जर्मनी के भविष्य की ओर खिंच गया। युद्ध समाप्ति के समय जर्मनी में बादशाही सत्ता नष्ट होकर ईबर्ट के मंत्रिमंडल का साम्राज्य स्थापित हो गया था। नये चुनाव के बाद वहां जो पार्लमेण्ट संगठित हुई; उसने भी ईबर्ट के मंत्रिमंडलको ही अनुमोदन दिया। इस मंडल ने जर्मनीवाली बाल्शेविक स्वरूपिणी हलचल नष्ट कर दी, मि० नास्की ने सेना की व्यवस्था रख कर पुरानी छिन्न भिन्न सेना में से ही नई ३।४ लाख नई सेना तय्यार करली, और सन्धि नियमानुसार जर्मनी को जो भी दो लाख से अधिक सेना न रखने की आज्ञा मिली थी, तथापि अंतस्थ शांति की रक्षा के बहाने पुलिस के नाम से अपनी सेना को नौ लाख की संख्या तक पहुंचा देने का क्रमागत प्रयत्न वहां की सर्कार करही रही थी। ईबर्ट का मंत्रिमंडल सोशियालिष्टिक रूप में सामने आया सही, किंतु इसे भी फौजी प्रभुत्व स्थायी बनाये रखने की हवस लग जाने के कारण, सोशियालिष्टिक मतों को विशेष रूप से अंतस्थ व्यवस्था में प्रयोग करने के बदले, अन्य मतों से संलग्न होकर ही इस मन्त्रिमंडल ने राज्य कार्य चलाया। इस मण्डल ने पुरानी सेना और उसके अधिकारियों का चित्त न दुखानेवाला ध्येय स्वीकार किया था। पत्थर के कोयले जैसे बड़े २ कारखानों को राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाने का उद्योग भी इसने नहीं किया। जब जर्मन श्रमजीवियों को पता लगा कि यह मण्डल केवल नामधारी ही है, काम करनेवाला नहीं। तब उन्होंने कितनीही बार छोटी बड़ी हड़तालें की। किन्तु मि० नास्की की नई सेना के द्वारा मन्त्रिमण्डल ने आसानी से उनका भंग कर दिया। इस प्रकार जर्मन सर्कार के पुष्ट नींव पर स्थिर होने का अनुभव प्राप्त होते समय, अर्थात् मार्च के दूसरे सप्ताह में ही जर्मनी में राज्यक्रांति हो गई। कैसर की चौकसी या जांच करने सम्बन्धी मित्र सर्कार का हठ न चल सका। क्योंकि हालेण्डने ही कैसर को मित्र सर्कार के हवाले करना स्वीकार न किया, किन्तु अन्य फौजी अमलदारों की जांच का प्रश्न सामने आया ही। उस समय जर्मन सर्कार ने मित्र सर्कार को सूचित किया कि जिन लोगों ने अधर्म का आचरण किया है उन्हें दंड देने में हम किसी भी प्रकार की कसर न रखेंगे। तब मित्र सर्कार का यह आग्रह दृष्टिगोचर हुआ कि उन अपराधियों को हमारे सिपुर्द कर दो। किन्तु जर्मन सर्कार अपने फौजी अमलदारों को मित्र सर्कार के सिपुर्द करना नहीं चाहती, वरन् उसे (मित्र सर्कार) खुश करने के लिये वह आप ही उन अधिकारियों की चौकसी सख्ती और न्याय निपुणता पूर्वक करने को तय्यार है। इस बात के प्रगट होने पर कि—अब निश्चय ही हमारी जांच होगी—जर्मनी की अवशिष्ट सेना ने सोचा कि इस से तो हमारा बड़ा ही अपमान होगा, अतः इस अप्रतिष्ठा को टालने और सेनानुकूल मंत्रि-मंडल स्थापित करने के लिये कुछ मुख्य सेनाधिकारियों ने ईबर्ट की सर्कार को नष्ट कर देने का षड्यन्त्र रचा। किन्तु इसका भेद मि० नास्की को पहले से ही ज्ञात हो गया, तब मार्च के दूसरे सप्ताह में षड्यंत्र कारियों को निश्चित तिथि से पूर्व ही बर्लिन पर धावा कर देना पड़ा। इन लोगों का नेतृत्व ईस्ट प्रशिया में की जर्मन सेना ने ग्रहण किया था। यह सेना महायुद्ध की समाप्ति के समय रीगा की ओर रशियन प्रान्त में ही थी। गत अक्टूबर-नवम्बर में जब सेनापति गुडेनिच ने बाल्शेविकों के पेट्रोग्राड पर धावा की, उस समय रीगा के आसपास ऊधम इसी जर्मन सेना ने मि० गुडेनिच को त्रस्त कर डाला था। मित्र सर्कार की ओर से डांट दिया जाने पर जर्मन सर्कार को यह सेना स्वदेश को बुलावा लेनी पड़ी। इसी सेना के बल पर जर्मनी ने पौलेण्ड से उद्दण्डता का बर्ताव किया, और इसी के भरोसे बाल्शेविकों को सहायता पहुंचाने के लिये अपने को शक्तिमान प्रगट करने की उसने धृष्टता भी कर दिखाई। गत वर्ष के परराष्ट्रीय कार्यों में इस सेना को विशेष महत्व प्राप्त हो गया था, इस कारण उसे ज्ञात हुआ कि, नई जर्मन सर्कार का आधारस्तंभ भी मैं ही हूं। ऍग्लों फ्रेंचों की धमकी से डर कर फौजी अमलदारों की बेइज्जती करनेवाली ईबर्ट सर्कार को भी अनधिकारी सिद्ध करने का उसने निश्चय कर लिया। सेना० हिंडेन्बुर्ग तथा लुडेनडार्फ जैसे सेनापति जर्मन लोकशाही के भी अध्यक्ष के नाते—जिस किसी रूप में जर्मन सिंहासन पर बैठ सकें, उस राज्यव्यवस्था को अमल में लाने के लिये स्थान २ के मुख्य फौजी अधिकारियों ने चर्चा शुरू की। इस चर्चा के चलते रहने और समस्त फौजी अधिकारियों का सम्मिलन हो कर हिण्डेन्बुर्ग तथा लुडनेडार्फ की सम्मति का सिक्का उस षड्यंत्र पर मारा जाने का प्रयत्न होता रहने की ही दशामें उसका भेद मि० नास्की को मिलगया। बंधी हुई मुठी पहले से ही खुलती देख कर षड्यंत्रकारियों की सेना एकदम बर्लिन पर टूट पड़ी। इसे रोकने का मि० नास्की ने प्रयत्न किया, किन्तु बर्लिन में की सेना षड्यंत्रवालों के विरुद्ध हो जाने से ईबर्ट के मंत्रिमण्डल को दक्षिण जर्मनी की ओर भाग जाना पड़ा। और केवल चोवीस घण्टे में ही बर्लिन में नाम को भी रक्तपात न होते हुए ईबर्ट के स्थान पर डा० कॉफ नामक एक अति प्रसिद्ध पुरुष की योजना हो कर फौजी मण्डल के अनुकूल नई सत्ता स्थापित हो गई। डा० कॉफ की फौजी सत्ता तीन चार दिन से अधिक न टिकी। ईबर्ट की सर्कार दक्षिण जर्मनी में चली गई और वहां सोशियालिष्टिक पक्ष की सहायता से बहुत कुछ सेना जुटाने का उसने प्रयत्न किया। और समस्त श्रम जीवियों को आज्ञा दी कि डा० कॉफ की सत्ता फौजी वाले की है। और उसका उद्देश्य कैसर को वापस लाने का है। अतः सब को हड़तालें कर के समस्त कारखाने बंद कर देने चाहिये। ईबर्ट सर्कार की आज्ञानुसार जर्मनी में चारों ओर सर्व राष्ट्रीय हड़ताल शुरू होगई। इस हड़ताल से डा० कॉफ की सर्कार को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। असमयही डा० कॉफ की क्रान्ति हो जाने से सेनापति हिंडेन्बुर्ग और लुडेनडार्फ भी उस क्रान्तिकारी सर्कार का नेतृत्व स्वीकार न करने लगे, इस कारण मध्यम स्थिति वाले सामान्य लोगों में डॉ० कॉफ के मंत्रिमण्डल का प्रभाव न पड़ने लगा। सारी जर्मन सेना के विषय में दृष्टिपात करने पर ज्ञात हुआ कि एक मात्र पूर्व प्रशिया में की सेना ही डा० कॉफ के अनुकूल और शेष मि० नोस्की की पक्षपाती है। अन्त को सेना में ही परस्पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ और युद्ध की आग से बची हुई जर्मन सेना के अपने हाथों ही मर मिटने के चिन्ह दीखने लगे। सब लोग यही समझने लगे कि डॉ० कॉफ ने बेमौके की वारदात खड़ी कर दी है। उसके मन्त्रिमण्डल की बर्लिन में बड़ी अप्रतिष्ठा हुई। कॉफ सर्कार की तबियत ठिकाने लानेवाली अखिल जर्मनराष्ट्रीय हड़ताल का परिणाम भी कुछ विचित्र ही दृष्टिगोचर हुआ। अपना सिर ऊपर उठाने के लिये उस मौके को अच्छा समझ जर्मन बाल्शेविकों ने कई स्थान की हड़तालों का नेतृत्व स्वीकार कर लिया और पश्चिम जर्मनी में चारों ओर बाल्शेविक स्वरूपिणी सत्ता स्थापित करना आरम्भ किया। डॉ० कॉफ से रेल एवं कारखानों की हड़तालें भंग न की जा सकीं, और न युद्ध करने का ही साहस हुआ। बाल्शेविकों का भूत प्रबलता से उत्पात मचाने लगा। उस विकट प्रसंग के उपस्थित होने पर डॉ० कॉफ की सेना राज्यक्रान्ति की महत्वाकांक्षा को तिलांजली देने के लिये तैयार हो गई और बर्लिन से पीछारा करके उसने चार पांच ही दिन में ईबर्ट सर्कार के लिये पुनः बर्लिन में आ बसने का मार्ग खोल दिया। यह अवश्य है कि ईबर्ट सर्कार जर्मनी को लौट आई किन्तु जिस स्थिति में गई थी उसी में वह न आसकी। डॉ० कॉफ की सेना को जर्मनी से

ा देने का कार्य मि० नोस्की की सेना ने नहीं किया। डॉ० कॉफ
[भागे, वह हड़तालों और बालशेविकों के भय के कारण ही। उन्हें
[च्युत करने में मजदूर दल और सोसियालिस्ट पक्ष की कृति और
सके ·भाव का बहुत कुछ उपयोग हुआ। अर्थात् इन दोनों पक्षों ने
[ट दल से प्राप्त विजय में हिस्सा मांगा। गत दस बारह महीनों में
र्मनी की हड़तालों को तोड़ने का काम जिन मि० नोस्की ने किया
। उन्हें मंत्री मण्डल में सम्मिलित करने का मजदूर दल ने हठ
[रण किया। सोसियालिस्ट पक्ष के अनेकानेक मन्त्री ईबर्ट सर्कार ने
[पने मण्डल में ले लिये। मि० नोस्की ने अपने पद से इस्तीफा दे
[या, और यह संवाद प्रगट किया गया कि, पत्थर के कोयले जैसी
ही २ खानें और कारखाने राष्ट्रीय सम्पत्ति बना लिये जायेंगे। दक्षिण
भाग जाने और फिर लौट आनेवाली सर्कार का रूपान्तर
[ई अंशों में सोशियालिष्टिक स्वरूप का बन गया। कैसर के
[ाग जाने पर जर्मनी में स्थापित की हुई नई सर्कार नाम मात्र की
कर लिये। मार्च के तीसरे और चौथे सप्ताह में पश्चिम जर्मनी में बाल्शेविक पक्ष की सत्ता स्थापित हो गई। जर्मनी के इस पश्चिम विभाग में न्हाइन नदी बहती है और फ्रान्स तथा बेलजियम की सीमा से परेवाला न्हाइन तक का जर्मन प्रान्त सन्धि-नियमानुसार मित्र सर्कार की सेना के हाथ में आ गया है। सन्धि नियमानुसार जर्मनी की ओर से मित्र सर्कार को इस बात का विश्वास हो जाने पर कि-, वह अपनी सेना कम कर देगा और युद्ध दंड एवं अन्यान्य कर पूरी तरह चुका देगा-न्हाइन के बायें किनारे पर की मित्र सेना हटाई जायगी। सन्धि-पत्र में दूसरी कलम यह है कि न्हाइन नदी के दाहिनी ओर पचास मील तक, मित्र सर्कार की सेना बायीं ओर बनी रहनेपर्यंत जर्मनी को न तो वहां अपनी फौजी थाने ही रखना चाहिए और न सेना ही भेजनी चाहिए। न्हाइन के दाहिनी ओर वाले इस भाग को खाली रखवाने के दो कारण हैं। पहला यह कि जर्मनी न्हाइन नदी से बायीं ओर वाली मित्रसेना पर सहसा आक्रमण न कर सके। दूसरा
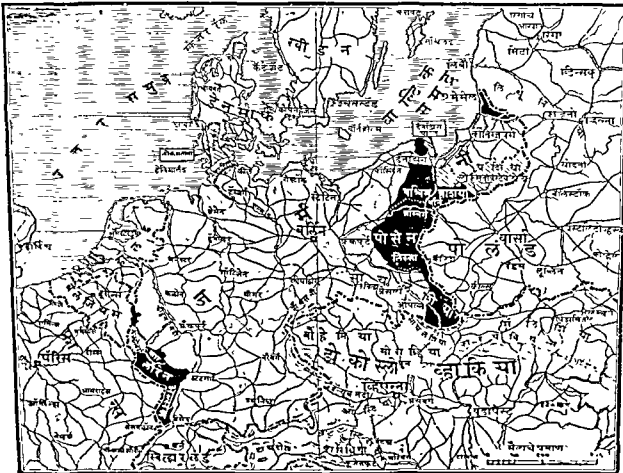
सोशियालिष्टिक थी। वहां की लोकशाही ऐंग्लो-फ्रेंच लोकशाही की ही तरह पूंजीदारों की बड़ी गुलाम थी। पूंजीदारों का प्रभाव जमने की अपेक्षा यद्यपि सोशियालिष्टिक मत की बर्लिन में स्थापना हो गई थी, तथापि मि० नोस्की ने जो फौजी जाल बनाया था उसे भी ईबर्ट की रूपान्तरित सेना में पहले की ही तरह जगह मिल गई। फौजी अमलदारों की नियुक्ति बादशाही जमानेवाले अथवा पूंजीदारों के पक्षपातियों में से न कर के सोशियालिष्टिक लोगों को विशेष रूप से आश्रय देने का निश्चय किया गया। सोशियालिष्टिक सेना निर्माण करने का तो यह उद्योग हुआ, किन्तु सेना की स्थापकता को घटाने, अथवा उसकी तयारी रोकने या उसे बिलकुल ही छुट्टी दे देने का विचार सोशियालिष्टिक सर्कार में नाम को भी न दिखाई दिया। केवल बड़े २ कल कारखानों को ही राष्ट्रीय सम्पत्ति बना देने से जर्मन बाल्शेविकों को सन्तोष न हुआ, और उन्हों ने चाहा कि रशियन बाल्शेविक सत्ता की ही तरह यहां, तदापि केवल श्रम जीवियों के निर्वाचित मंत्रिमण्डल की सत्ता स्थापित कर दी जाय। अर्थात् बर्लिन सर्कार की उन से ठीक २ न रही। तब पश्चिम जर्मनी में बाल्शेविक पक्ष ने अपनी तीस चालीस हजार की सेना जुटा ली और उसी भाग के भिन्न २ बैंक तथा सर्कारी कारखाने अपने अधिकार में

यह कि जर्मनी से अब युद्ध-दंड एवं कर वसूल होने की आशा न रहे-तब मित्र सेना न्हाइन को पार कर उसके दाहिनी ओर का समग्र प्रदेश सुगमता से अधिकृत कर सके। यह प्रदेश कल कारखानों से पूरी तरह भरा हुआ है। इस कारण यदि इस पर फ्रान्स की सत्ता जमी तो वहां सुगमता से वह अपनी क्षति पूर्ति कर सकेगा। मार्च के तीसरे सप्ताह में जर्मन बाल्शेविकों की जो सत्ता स्थापित हुई वह न्हाइन के दाहिनी ओर वाले भाग में ही हुई। चौथे सप्ताह में जब बर्लिन सर्कार के साथ इस बाल्शेविक सत्ता की न पटी-तब उसने मित्र सर्कार से इस सत्ता को नष्ट करने के लिये सेना भेजने की अनुमति मांगी। इस में न इंग्लैण्ड ने बाधा की न अमेरिका ने, और न इटली ने ही। किन्तु फ्रान्स अड़ गया, उसका कहना यह था कि बाल्शेविकों का षड्यंत्र भंग करने के लिये जर्मन सेना ज्योंही एक बार उस खुले प्रान्त में घुसी कि, फिर उसे उस प्रान्त से हटाना कठिन हो जायगा और न्हाइन से बायीं ओरवाली फ्रेंच सेना कभी सुरक्षित न रह सकेगी। बर्लिन की रूपान्तरित नई जर्मन सर्कार यद्यपि विशेष रूप से सोशियालिस्ट बन गई है, तो भी उसका फौजी ढांचा कभी पलटा नहीं। इसी कारण वह फ्रान्स की दृष्टि में भयङ्कर बन रही है, और बिना जर्मन सेना के घटे फ्रान्स का भय दूर नहीं हो सकता।

मार्च के चौथे सप्ताह में खास जर्मनी से ही र्‍हाइन नदी पर के बाल्शेविकों को खाद्य सामग्री मिलना कठिन हो गया। इसी प्रकार फ्रान्स, बेल्जियम, हालैण्ड की ओर से भी अन्न जल मिलना कठिन हो गया। तब फ्रान्स ने सम्मति दी कि, अब बाल्शेविक सत्ता नम्र बन कर बर्लिन सर्कार की आज्ञा मानने लगेगी और फिर बर्लिन सर्कार को सेना भेजने की अवश्यता ही न रहेगी। बर्लिन सर्कार ने कई प्रकार से फ्रान्स की सेवा में निवेदन किया कि, बाल्शेविक सत्ता फैलती जा रही है, इसलिये सेना भेजने की आज्ञा दीजिये, किंतु अन्य मित्र सर्कारों का मत इस कार्य्य में फ्रान्स के अनुकूल न रहने पर भी उसने खुद अपने ही जी पर भरोसा रख कर आज्ञा देने से इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं वरन् यह धाक भी जमाई की यदि रुक्त प्रान्त में जर्मन सेना प्रविष्ट हुई तो बर्लिन सेना के फ्रान्स में उतरने का जो मुख्य मार्ग है, उस में के र्‍हाइन के दाहिने तटवाले फ्रेंकफोर्ट नगर को फ्रान्स की सेना अधिकृत कर लेगी और उसके उत्तर दक्षिण एवं पूर्व ओर का बीस पच्चीस मील का भाग किसी न किसी रूप में फ्रान्स के अधिकार में चला जायगा। बर्लिन सर्कार और फ्रान्स के मुख्य मंत्री एम. मिलेरँड की ओर से इस प्रकार का विवाद होते रहने की दशा में र्‍हाइन के दाहिनी ओरवाले टापू में के बाल्शेविकों ने चारों ओर से लूटपाट आरंभ कर दी। तब बर्लिन सर्कार ने अप्रैल के आरम्भ में फ्रेंच सर्कार को सूचित किया कि केवल शान्ति रक्षा के लिये हम सेना भेजते हैं और यह काम होते ही उसे हम वापस बुलवा लेंगे। इसके उत्तर में मि० मिलेरँड ने कहा कि—बर्लिन सर्कार सन्धि नियमों को तोड़ती है और इसीलिये फ्रेंक-फोर्ट का भाग हस्तगत करने से सेनापति फॉक कभी न चूकेंगे। अप्रैल की दूसरी और तीसरी तारीख को बर्लिन सर्कार की लगभग चालीस हजार सेना र्‍हाइन के सीधे किनारे पर आई, और पांच तथा छह तारीख को फ्रेंच सेना ने पहलेवाली धमकी के अनुसार र्‍हाइन के दाहिनी ओर वाला भाग हस्तगत कर लिया। अप्रैल के आरंभ में फ्रान्स और जर्मनी के बीचवाले इस नये झगड़े का परिणाम सुने बिना तुर्क सन्धी की ओर मित्र सर्कार का ध्यान जाना बिलकुल अशक्य सा है। कामेल पाशा के प्रबन्ध करने का भार ग्रीस एवं फ्रान्स की सेना को मार्च के प्रथम सप्ताह में सौंपा गया था, किन्तु ज्ञात हुआ कि अप्रैल के आरम्भ में पाशा से बात चीत करने के लिये एक पार्लमेंटरी कमेटी गई है। कुस्तुन्तुनिया में का पिछला मंत्रिमण्डल हटा दिया जाकर मित्र सेनाने पाशा से बिलकुल ही असम्बद्ध नया मंत्रि मण्डल स्थापित करा दिया है। इसी मण्डल से सन्धि नियम ठहराये जाकर सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कराये जायँगे। कुछ लोगों का तर्क है कि सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद पाशा की सेना क्रान्तिकारी बतलाई जाकर उसकी पूरी पूरी खबर ली जायगी। किंतु फ्रेंको-जर्मनी के बीच का यह नया टंटा मिटे बिना कुछ भी न होगा। इस समय काकेशस के उत्तर भाग पर सब प्रकार बालशेविकों का अधिकार है और दक्षिण रशिया के सेनापति डेनि-किन की कथा भी समाप्त हो चुकी है। फ्रेन्को-जर्मन विवाद आरंभ होजाने से पोलैण्ड भी बालशेविकों से सन्धि करने को तैयार हो गया है, किंतु बालशेविक इसके विरुद्ध पोलैण्ड से नई नई मांगे मांगने लगे हैं। जर्मनी में गड़बड़ मच जाने के कारण अपना प्रभाव मध्य योरोप में विशेषरूप से जमाने का विचार रशियन बालशेविकों को इस समय होना एक साधारण सी बात है।

साहित्य-परिचय।

श्री शारदा—सम्पादक साहित्यशास्त्री पं. नर्मदाप्रसाद जी मिश्र बी० ए० विशारद। प्रकाशक शारदा कार्यालय दीक्षितपुरा जबलपुर सी० पी०। पृष्ठ संख्या (सरस्वती आकार) ६४ से ७२ तक प्रतिमास वार्षिक मूल्य ५) रुपये। एक संख्या ॥) में।

चैत्र संवत १९७७ से शारदा भवन पुस्तकालय ने पं० नर्मदा प्रसादजी मिश्र के सम्पादकत्व में "श्री शारदा" नामक पत्रिका निकलना आरम्भ किया है। प्रकाशन से पूर्व हिन्दी जनता इसके विषय में नाना प्रकार की कल्पनाएं बान्ध रही थी, किन्तु हमें यह प्रगट करते हुए हार्दिक प्रसन्नता होती है कि "श्री शारदा" उन कल्पनाओं से भी (और कम से कम हमारी कल्पना से तो) आशातीत उन्नत स्वरूप में निकली है। अबतक इसकी ३ संख्याएँ हमारे देखने में आई है। सभी एक दूसरी से बढ़ बढ़ कर निकली हैं। एक बात में तो यह हिन्दी की सर्व शिरमौर पत्रिका कही जा सकती है—वह यह कि अपने उद्देश्यानुसार यह पत्रिका एकमात्र मौलिक लेखों को ही प्रकाशित करती है। इस बात का हिन्दी की अन्य उच्च पत्रिकाओं में अधिकतर अभाव सा ही है। आज कल लोग अधिकांश अनुवादित लेखों को स्वतंत्र रचना बतला कर ख्याति पाने की चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु इस से साहित्य की मौलिकता नष्ट होती है। यही कारण है कि इस पत्रिका ने यह नियम रक्खा है कि—"लेखकों को अपने लेख की मौलिकता या आधार के विषय में स्पष्ट सूचना देनी चाहिये।" हमारी राय में यह नियम नये लेखकों की परीक्षा के लिये एक एक खासी कसौटी है। पत्रिका सचित्र है। प्रतिमास एक रंगीन और दो चार सादे चित्र दिये जाते हैं। हां, इसकी एक और विशेषता है, और वह इस के नाम तथा मुख पृष्ठ पर के चित्र को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर सहज ही ज्ञात हो सकती है। इस का नाम रक्खा गया है श्री शारदा (श्री=लक्ष्मी और शारदा=सरस्वती) अर्थात् अपने नामानुसार यह साहित्य और अर्थशास्त्र दोनों की ही विशेष रूप से चर्चा करनेवाली पत्रिका है। नाम के अनुकूल मुख पृष्ठ का चित्र भी है। इस चित्र के चित्रकार पं० गणेशरामजी मिश्र की कारीगरी का उच्च आदर्श प्रगट हो जाता है। ऊपर की ओर नाम के स्थान पर जहां "श्री (लक्ष्मी) लिखी गई है, उसी के नीचे रुपये पैसे मुहर और नोटों का ढेर है, तो दूसरी ओर शारदा के सामने पुस्तक और दावात कलम भी हैं। इसी प्रकार एक रम्य उपवन में सरोवर के किनार शिलासन पर "श्री" की गोद का सहारा लिये "शारदा" कुछ झुकी हुई हिन्दी गीतारहस्य पढ़ रही है। चित्र जैसा नेत्ररंजक है वैसाही भाव पूर्ण भी है। अन्य दो रंगीन चित्र श्रीकृष्ण दर्शन और संगीत अपने ढंग के अनूठे हैं। किंतु तीसरी संख्या में प्रकाशित "सहसा दर्शन" नामक रंगीन चित्र बहुत ही बढ़िया निकला है। यदि हम यह भी कहदें कि आजतक हिंदी ही क्या, मराठी और कदाचित बंगाली मासिक पत्रों में भी ऐसा उत्तम चित्र नहीं निकला तो अत्युक्ति न होगी। इस चित्र की उत्तमता के आगे जर्मनी के कुशल चित्रकार भी दांतों अंगुली दबावें तो आश्चर्य नहीं। इसी प्रकार सादे चित्र भी मार्मिक और शिक्षाप्रद हुए हैं। बीसवी शताब्दि के दम्पत्ति, दामाद बाबू और लेने के देने ये तीनों विनोदी और आलोचनात्मक सामाजिक चित्र अपूर्व कहे जा सकते हैं। प्रतिमास समाज के भिन्न २ अंगों को इस प्रकार के आलोचनापूर्ण चित्रों द्वारा सुधारने का प्रयत्न स्तुत्य है। सारांश, बाह्यांग इस का सब प्रकार श्रेष्ठ है। किन्तु अंतरंग की आलोचना करना जरा टेढ़ी खीर है। क्योंकि हमें यही समझ नहीं पड़ता कि किस लेख को हम घटिया और किसे बढ़िया बतलावें! सभी लेख कविता एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए अपने ढंग के अपूर्व हैं। लेखक गण सभी बड़े २ साहित्य महारथी हैं, कवियों में भी सब उच्च कोटि के विद्वान हैं। प्राचीन और अर्वाचीन गौण राजनीति, समाज, स्त्री सुधार, शिक्षा, विज्ञान, अर्थनीति आदि प्रत्येक विषय की इस में खासी चर्चा रहती है। पत्रिका के पिछले अंश में विविध विषय, साहित्य सुमन, विश्व वैचित्र्य आदि छोटे २ स्तम्भ हमें विलायती पत्रों का सा आनन्द प्रदान कर सकते हैं। मर्यादा की प्रभा से भी इसी प्रकार के कुछ स्तम्भ थे, किन्तु उनकी बातें और ढंग की थीं। अस्तु, इस प्रबन्ध का सारा श्रेय एक मात्र हिन्दी हितैषी बाबू गोविन्ददासजी को दिया जा सकता है क्योंकि आप ही की संरक्षकता में यह इस अपूर्व स्वरूप में निकल रही है। इसी प्रकार संपादक जी भी धन्यवाद के पात्र हैं। पत्रिका साहित्य में आदर की वस्तु है। हम इस की चिरायु कामना करते हैं।

इस के दूसरे [illegible] —सम्पादक।

[illegible] १९१० के [illegible] "[illegible]" [illegible] पं० माधवराम शर्मा [illegible],

[illegible] —सम्पादक।

वर्ष १०　　　　　　संख्या ४-५

ॐ तत्सत

चित्रमयजगत

सचित्र मासिक

अप्रैल, मई १९२०　　　　APRIL, MAY 1920

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो ! आत्मीयता दीजिए । देखें हार्दिक दृष्टि से सब हमें ऐसी कृपा कीजिए ॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से । फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से ॥

दया कीजिये !

मंगलमय सुनिये इतनी विनय हमारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त भय हारी ॥

१

यह आरत जग विद्रोह अनल बुझि जावै ।
सुख शान्ति-मधुर फल यह मानव कुल पावै ॥
सतपथ में नहिं दुर्नीति प्रपंच अड़ावै ।
सब के उर समता-भाव पवित्र समावै ॥
होय न वसुधा पै भार पाप को भारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त-भय हारी ॥

२

स्वारथ मद स्वेच्छाचार यहां सों भागे ।
शुचि नवजीवन की ज्योति हृदय में जागे ।
प्रिय बन्धु परस्पर पुण्यप्रेम में पागें ।
नित सदाचार व्यवहार करन में लागें ॥
निज देश दशा को समझैं लोग अनारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त भय हारी ॥

३

आतम गौरव को भाव जगत विस्तारै ।
यहं सुमति प्रभा प्रगटाइ कुमति को टारै ॥
शुभ भाव भविष्यत-आशा जियमें धारै ।
प्रिय हिंद देश हिन्दी-भाषा उद्धारै ॥
घर घर महं छावै हरि-हरियारी भारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त भय हारी ॥

४

अपनी पूंजी से हम व्योपार बढ़ावैं ।
उपयोगी देशी सकल पदार्थ बनावैं ॥
उन ही को बनै कान्ति से रुचिर कहावैं ।
लखि और न कोऊ भृकुटी वृथा चढ़ावैं ॥
बस हो कबहूं नहिं यहां किसान दुखारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त भय हारी ॥

५

लखिवे जो यहं के पुत्र विदेशहिं जावैं ।
तन सों सुख मोरि न कुमतहिं कलंक लगावैं ॥
जग-विदुषन सम हनि सकल न्याय दरसावैं ।
सब भारत-कीरति-लता विमल फहरावैं ॥
शुचि धीर आवैं जासों हम पर बलिहारी ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त-भय हारी ॥

६

हो उज्ज्वल उच्च उदार मंजु अभिलाषैं ।
कबहूं नहिं जासों हम मर्यादा नाखैं ॥
सत-धर्म सब देशी यहां हरषित राखैं ।
सुन्दर सुराज को स्वाद निरन्तर चाखैं ॥
नर नारि नव आनन्द ज्योति सरस संचारैं ।
कीजै निज अनुपम दया भक्त-भय हारी ॥

अदन–उपनिवेश।

(लेखक—श्रीयुत टी. व्ही. तालीम बी. ए., एल. सी. ई.)

ज्य कारोबार की सुगमता के लिये अदन की गणना बम्बई प्रान्त में की जाती है। यह नगर अरब के ठीक दक्षिण तट पर बम्बई से लगभग १६०० मील की दूरी पर बसा हुआ है। बम्बई से अदन जाने के लिये स्टीमर (मेल) से दूसरे दर्जे का किराया २६० से ३०० रुपये तक लगता है। अदन पहुँचने में छह दिन लगते हैं। बम्बई से प्रस्थानित होने के बाद पाचवें अथवा छठे दिन अरब देश का किनारा दृष्टिगोचर होने लगता है। बीच में कहीं भी भूभाग के दर्शन नहीं होते। हां, कभी २ मछलियों के समूह उछल कूद मचाते हुए अवश्य दीख पड़ते हैं। जहाज पर मनोरंजन के लिये शतरंज, ताश, क्रिकेट आदि खेलों की व्यवस्था रहने से यात्रियों को समय बिताने में कोई कठिनता नहीं पड़ती।

जहाज अदन बन्दर-गाह पर जा कर खड़ा रहता है, धक्के तक नहीं जाता। यात्रियों को छोटी २ नावों में बैठ कर धक्के पर आना पड़ता है।

इस उपनिवेश में चार गांवों की गणना होती है। (१) अदन बन्दर-गाह, अर्थात् स्टीमर पाइन्ट अथवा तवाई (२) माला (३)
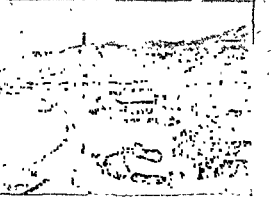
अदन बन्दर-गाह।

प्राचीन अदन अथवा क्रेटर (४) शेख उस्मान। अदन से ये शेष के तीन गांव ३ से ६ मील तक के अन्तर बसे हुए हैं।

यह प्रान्त बिलकुल पहाड़ी है, किन्तु फिर भी इस का कोईसा भाग दर्शनीय नहीं। चारों ओर रूक्ष एवं वृक्षहीन प्रदेश दिखाई देता है। पहाड़ों पर ही नहीं—गांवों में भी वृक्ष इनेगिने ही देखने में आते है।

तवाई।

ई० सन १८३६ में अदन बन्दर-स्थान अंग्रेज सर्कार ने अरब से लिया। तवाई गांव पहाड़ी की तलेहटी में व्यवस्थित रूप से बसा हुआ है। मध्य भाग में महारानी विक्टोरिया की मूर्ति खड़ी की हुई है, जिसके पीछे की ओर अर्धचंद्र की आकृति में बड़ी २ दुमंजली इमारतें बनी हुई हैं। इन्हीं इमारतों में ऑफिसेस, भोजनालय, दूकानें और कारखाने हैं। महारानी की मूर्ति के आसपास बहुत सा स्थान खुला रख दिया गया है। यहां के सार्वजनिक स्थान, रेसिडेन्ट ऑफिस, पोर्ट ट्रस्ट-ऑफिस, डाकघर एवं मिलिट्री के लिये कई इमारतें हैं। अदन की लोकसंख्या लगभग ४५००० है। इनमें छत्तीस हजार मुसलमान, पचीस सौ ईसाई, सैंतीस सौ ज्यू और दो हजार हिन्दू हैं।

अदन में वर्षा बहुत ही कम (अर्थात् सालभर में ४-५ इंच) होने से पानी की बड़ी कमी रहती है। नये कुएं खोदने पर भी पानी का स्वाद अच्छा नहीं होता। इसी कारण आजकल यंत्र द्वारा समुद्र का पानी मीठा बना कर लोगों को पीने के लिये बेचा जाता है। एक मटके भर पानी के लिये चार आना खर्च पड़ते हैं। प्रतिदिन ऊंट-गाड़ी पर पीने का जल घरोंघर बेच दिया जाता है। पानी बेचने वाला अरबी आदमी होने से हिन्दुओं को उतने समय के लिये अपनी धार्मिक कल्पनाएं एक ओर रख देनी पड़ती हैं। नहाने धोने के लिये पानी शेख उस्मान से नहर द्वारा और ऊंटगाड़ी पर लाया जाता है। गरीब लोग प्रायः यही पीते भी हैं।

शीतकाल में अदन की आबहवा प्रायः बंबई सरीखी ही रहती है, अथवा यदि यहां से कुछ अच्छी भी कह दी जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। खास अदन में किसी चीज़ की पैदावार नहीं होती। अन्न, शाक-पात आदि सभी सामग्री १५-२० मील पर से लाई जाती है। अर्थात् यहां वालों को अधिक तर विदेश पर ही अवलंबित रहना पड़ता है। अदन और अरब में सस्ती मिलनेवाली खास चीज़ें-कॉफी, गोंद, बादाम, शुतुरमुर्ग के पर और सिगरेट हैं। यहां गाय का दूध मिलता है। भैंस का नाम को नहीं होती। यहां बोतल भर दूध ४ आने में मिल जाता है।

भारतवासियों की कल्पना है कि अदन में हिन्दू बहुत कम रहते होंगे, किन्तु यह भ्रम मात्र है। यहां दो हजार से अधिक हिन्दुओं
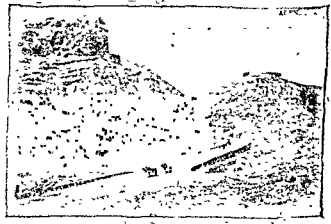
दरों-घाटी।

का निवास है। इन में काठियावाड़ी गुजरातियों की संख्या अधिक है। तीन चार हिन्दू देवालय भी हैं। तवाई में राम-मन्दिर है, इस देवालय में स्थापित करने के लिये पूना के एक सज्जन ने नवीन मूर्तियाँ भेजी हैं। क्रेटर में देवी और हनुमान के मंदिर हैं।

यहां की विशेष जनता आफ्रिकन सोमाली और अरबी है। सोमाली यहां उद्योग के लिये आ बसे हैं, ये लोग अरबों की अपेक्षा अधिक काले रंग के होते हैं। इनका धर्म इस्लाम होते हुए भी ये लोग दाढ़ी नहीं रखते। वेशभूषा बहुत कुछ मद्रासियों से मिलता हुआ है। कमर पर धोती लपेट कर उस पर कमर बन्द लगा रखते हैं। शरीर पर भी एक सफेद दुपट्टा ओढ़े रहते हैं। निम्न श्रेणी के अरबी सोमालियों की अपेक्षा ये बहुत गन्दे रहते हैं। ये लोग पायजामा नहीं पहनते। सोमालियों में पर्दे की प्रथा विशेष नहीं है।

अदन में ज्यू लोग बहुत पाये जाते हैं। इनकी बस्ती लगभग चार हजार के है। कई पारसी भी व्यापार के लिये यहां जा बसे हैं, इसी प्रकार ग्रीक, इटालियन, तुर्क आदि अन्यान्य देशों के लोग भी यहां पाये जाते हैं। यहां सिगरेट के कारखाने बहुत से हैं, इसी कारण वह सस्ती मिलती है। सौ सिगरेटों के डिब्बे का मूल्य १ से ५ रुपये तक होता है।

व्यापारी कम्पनियों में सब से बड़ी कावस जी दिनशा की कम्पनी है। इस कम्पनी के कई जहाज हैं और व्यापार का कार्य बहुत बढ़ा हुआ है। इस कारखाने में लगभग १०० पारसी नौकर हैं। इन के

रहने आदि का पूरा २ प्रबंध है। यहां अरबियों की चाय, कॉफी की दुकानें बहुत हैं।

यहां का मुख्य व्यापार चमड़ा, कॉफी, मसाले की चीज़ें, गोंद, सिगारेट, निमक, कोयले आदि का है। प्रत्येक आने जाने वाले जहाजों को कोयला यहीं से भरना पड़ता है। इस कारण बन्दर-स्थान पर कोयले के बहुत से ढेर लगे रहते हैं। अदन के बन्दर-गाह और समुद्र तट के सुन्दर दृश्य को ये कोयले के ढेर मानों कालिमा लगाते दीख पड़ते हैं। एक अंग्रेज का कथन है कि:—Aden's face which ought to be its fortune is its misfortune.

इसी कारण कोयले के बड़े २ ढेर देख कर प्रवासी को बंदर पर उतरने की इच्छा नहीं होती। फिर भी प्रति सप्ताह लगभग २०० यात्री अदन देखने के लिये किनारे पर आते हैं। शीघ्रही कोयले के लिये एक अलग स्थान तय्यार किया जाने वाला है। लेख के साथ दिये हुए चित्रों पर से बन्दर-स्थान की थोड़ीसी जानकारी पाठकों को अवश्य हो सकती है। पहले चित्र के बीच में दिखाई देनेवाली बड़ी इमारत डाकघर की है। सामने की पहाड़ी पर एक घण्टाघर
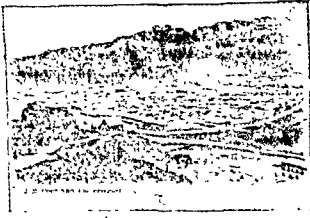
क्रेटर।

है, इसका उपयोग विशेषत समुद्र प्रवासियों को होता है। अदन का टाइम बम्बई की अपेक्षा दो घण्टा आगे है।

माला

अदन बन्दर-गाह अथवा तवाई से यह स्थान ३ मील पर है। यहां बहुतसी कोठियां हैं। माल का लेन देन और चढ़ाई उतराई यहीं होती है। पास ही में एक गांव बसा हुआ है, जिस में विशेषतः मजदूर लोग रहते हैं।

क्रेटर

माला से प्राचीन अदन अथवा क्रेटर डेढ़ मील दूर है। और तवाई से लगभग पांच मील पड़ता है। तवाई से क्रेटर तक जाने के लिये मोटार द्वारा जाने में दस आने प्रति मनुष्य भाड़ा देना पड़ता है। इस दर्रे को पार करते ही सामने पुराना अदन दिखाई देने लगता है। दोनों स्थान के चित्र यहां दे दिये गये हैं।

ई० सन ३४२ तक का इस शहर का इतिहास पाया जाता है, उस समय चीन, भारत, मिश्र आदि देशों से इस इसका व्यापार सम्बन्ध था। कहा जाता है कि पहले यहां एक ज्वालामुखी पर्वत था, इसी से इसे क्रेटर कहते हैं। आज कल चारों ओर पहाड़ों से घिरी हुई बीच की सपाट जमीन पर शहर बसा हुआ है। लोगों की धारणा है कि यहां पहले कोई नगर था-वह जमीन में समागया है। अधिकांश व्यापारी लोग यहीं उतरते हैं। भारतीय लोग भी प्रायः यहीं विशेष रहते हैं।

सरोवर

क्रेटर के निकट पहाड़ी दर्रे की तलेहटी में भिन्न २ आकृति के पुराने सरोवर बने हुए हैं। ये सरोवर दर्शनीय हैं। इन में पानी प्रायः बहुत ही थोड़े दिनों तक रहता है। प्रथमतः पहाड़ी प्रदेश और उस में भी फिर अधिक ढालूपन होने से थोड़ीसी वर्षा में ही तालाब भर जाते हैं। इनके पानी का नीलाम सर्कार द्वारा होने के बाद लोगों को पानी बेचा जाता है। सरोवर का चित्र इस लेख में दिया जा रहा है।

सरोवर।

शेख उस्मान

इस उपनिवेश में का बचा हुआ एक गावँ शेख उस्मान है। यह स्थान अदन बन्दर गाह से नौ मील की दूरी पर है। यह अभी ही अंग्रेज सर्कार के अधिकार में आया है। इस गावँ के पानी के कुए और बगीचों के लिये खुले मैदान ही-इस की महत्ता को बढ़ाने में कारणीभूत हुए हैं। यहां ३।४ बड़े २ बगीचे हैं। अदन वासी यहीं नौ मील पर आकर बगीचे की सैर किया करते हैं। अदन में जो कुछ शाकपात आता है, वह २१ मील की दूरी पर के लाहेज नामक स्थान से मंगवाते हैं। शेख उस्मान और माला में नमक की बड़ी २ खानें हैं। इन पर एक मुसल्मान तथा इटालियन कम्पनी का अधिकार है। अधिकतर यहां का नमक कलकत्ते भेजा जाता है।

उपसंहार

अदन में रहने के स्थान की कमी और अधिक महंगाई होने से हमारे मध्यम श्रेणि के आदमीयों को रहना यहां कठिन हो जाता है। 'मिलीट्री' में रहने वाले लोगों को प्रतिदिन 'रेशन' और रहने के लिये झोंपड़े मिलते हैं, इस कारण उन्हें कुछ भी कठिनता नहीं उठाना पड़ती।

व्यापारिक दृष्टि से देखा जाने पर अरब का कच्चा माल चमड़ा, कॉफी, गोंद, बादाम आदि खरीद कर विदेश भेजने में बड़े लाभ की संभावना है। हमारे व्यापारि समाज को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये।

काव्य-सृष्टि।

भारत विस्तृत भूमि ऊंच कद नीच निकाई।
भूपर कविजन हृदय भाव भरना सुखदाई ॥
प्रेम कर्म [illegible] और अब [illegible] सुहाई।
है [illegible] तट [illegible] कविताई ॥
अलंकार पंकज जहां, [illegible] उमंग में।
'समर' [illegible] हरि, [illegible] तरंग में ॥

—[illegible] 'समर'।

ग्रॉड अपेरा हॉउस !

संसार में जैसे भारतीय मुकुट हिमालय पर्वत सब से बड़ा माना जाता है। वैसे ही पेरिस नगर में एक मकान है। यह मकान दुनिया भर के मकानों से बड़ा है। इस मकान का नाम ग्रांड अपेरा हाउस है। यह १०० फीट चौड़ा है और करीब [illegible]०० फीट के इसका घेरा है तथा ८०० फीट तक ऊंचा है। संसार के अनेक आश्चर्यों में इसकी भी गणना की जानी चाहिये। टिट-बिट्स और Strand.

—[illegible]

श्रीवैष्णव सभा कामठी, नागपुर सी. पी.।

यह सभा श्री जगद्गुरु श्री० १००८ महाराज अनन्ताचार्यजी प्रतिवादि भयंकर माठाधीश के सभापतित्व में हुई थी। इसमें प्रमुख वक्ता साहित्य रत्न महंत लक्षणाचार्यजी वाणीभूषण (नृसिंह देवला-अमभरा-मालवा) थे। स्वामीजी के दाहिनी ओर खड़े हुए श्वेतवस्त्रधारी उक्त महंतजी ही हैं। 'जगत' के पाठक आपकी मधुर कविताओं का स्वाद गत वर्ष कई बार चख चुके है।

यवतमाल (बरार) की कृषि प्रदर्शिनी समिति।

बाईं ओर से—श्री० सेठ मूलचंद, सेठ रामगोपाल, सेठ हीरजी भाई, एच० जी० कूपर, डा० एस० ए० एच० मास्स, डी० एस० पी०; डा० एस० के० कार्वे।
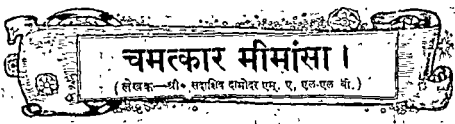
चमत्कार मीमांसा।

(लेखक—श्री० सदाशिव दामोदर एम्. ए, एल-एल बी.)

संसार में हम अनेक बातें इस प्रकार की देखते हैं कि जिनकी उत्पत्ति का हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है। किन्तु उन सभी बातों के लिये हमें आश्चर्य नहीं होता। क्योंकि उन में से कुछ तो हमारे नित्य परिचय की होती है, और साथ ही हम यह भी जानते हैं कि उनके हेतुओं का समझना हमारी शक्ति के बाहर की बात है। किसी छोटे से बीज से उत्पन्न होने वाला विशाल वृक्ष, आकाश में गर्जना करने वाले मेघ, चमकने वाली बिजली और प्रकाशमान ग्रह नक्षत्रादि हमें आश्चर्यकारक नहीं जान पड़ते। यही दशा मनुष्य अथवा प्राणियों की शरीर रचना एवं उनके खान पान, बोल चाल प्रभृति व्यवहारों की भी है। नींद आना भी वास्तव में एक आश्चर्य की बात है, किन्तु यह भी हमें स्वाभाविक ही जान पड़ती है। क्योंकि हम समझते हैं कि ये सब बातें सृष्टिक्रम के अनुसार होती हैं। यह क्रम ईश्वरीय नियमानुसार चलता है। इन नियमों में से कुछ का तो हमें ज्ञान होता है, और कुछ हमें अच्छी तरह समझ नहीं पड़ते, किन्तु फिर भी उनकी अस्पष्ट कल्पना हमें होती ही है। उन में से एकआध विशिष्ट नियम द्वारा जब किसी बात की उपपत्ति हम लगा नहीं सकते, तो उस बात को हम चमत्कार के नाम से सम्बोधित करते हैं। अर्थात् किसी बात का चमत्कारित्व हमारे ज्ञान अथवा अज्ञान पर ही अवलंबित रहता है। यदि पहले ही उन चमत्कारिक बातों का ठीक २ ज्ञान करा दिया जाय तो हमें इसी बात पर आश्चर्य होगा कि ये सब हमें चमत्कारिक क्यों जान पड़ी थीं। सारांश यह कि, किसी बात का पूर्वापर सम्पूर्ण ज्ञान होते ही उसकी चमत्कारिकता नष्ट हो जाती है। फलतः संसार में चमत्कार कोई वस्तु ही नहीं हो सकती। किन्तु यह बात केवल उस ज्ञानी के लिये ही कही जा सकती है, जो कि इन सब बातों को जानता है। हम जैसे साधारण व्यक्तियों के लिये तो यह चमत्कार चमत्कार ही है।

चमत्कार एक वैयक्तिक गुण है। किसी मनुष्य से जब अपने संचित ज्ञान द्वारा अमुक बात की ठीक २ उपपत्ति नहीं लग सकती, तब वह उसे चमत्कार कह बैठता है। अर्थात् जो बात बहुजन समाज को चमत्कारिक जान पड़े, वही उच्च श्रेणि की चमत्कारिक कही जा सकती है। अवतारी पुरुष अथवा साधु महात्माओं के दिखलाये हुए, अथवा उनके नाम से कहे जाने वाले चमत्कार इस समूह में सम्मिलित हो सकते हैं। भिन्न २ चमत्कारों का यथाक्रम परीक्षण करने पर हमें अपनी ज्ञान-मर्यादा का ठीक २ पता लग सकता है।

बाज़ीगर के खेल—जिन्हें हमने कितनी ही बार देखा है सब से निम्न कोटि के चमत्कार कहे जा सकते हैं। बच्चों को उनसे बड़ा ही आनंद मिलता है और कितनी ही बार बड़े आदमी भी उनकी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखते हैं, और कइयों को जादू यथार्थ में ही अमानुषी शक्ति जान पड़ता है! किंतु विचारने की बात है कि यदि यथार्थ जादूगार में ही उसमें यह शक्ति होती तो, वह इस प्रकार भीख क्यों मांगता फिरता! दर्शकों में से कइयों को उसके खेल की मूल बातें ज्ञात होती हैं। बाज़ीगर हाथ की सफाई से खेल दिखलाता है। उस में यद्यपि एक प्रकार का कौशल्य होता है, तथापि वे ही बातें एक बार सीख लेने पर सहज सिद्ध बन सकती हैं। नाटकगृहों के अंग्रेज़ी प्रोफेसरों के जादू के खेल की भी यह दशा होती है। उन में ऊपरी बनावट अधिक होती है, किंतु कुशलता अधिक तर बाज़ीगरों से कम ही होती है। उनकी ऊपरी टीमटाम और व्यवस्था को देख कर ही लोग उनके खेल देखने जाते हैं और उन्हें खूब पैसा भी मिलता है। अन्यथा उन में विशेष चमत्कार कुछ नहीं होता। कुछ स्वयं साधन सम्पन्न व्यक्ति भी "जादू के खेल" किया करते हैं, और वे कॉलेज अथवा स्कूल किंवा अन्य संस्थाओं के सम्मेलन के समय अपने खेल दिखला कर लोगों का मनोरंजन करते हैं। किन्तु यह कार्य उनकी आजीविका का धन्दा न होने से, वे स्पष्ट कह देते हैं कि इस में अमानुषी दैवी शक्ति या जादू कुछ भी नहीं है। इन खेल के दर्शकों को यद्यपि खेल करना नहीं आता, तथापि उनको क्रिया के विषय में साधारण कल्पना अवश्य होती है। बहुत ही कम लोगों को ये खेल जादू के जान पड़ते हैं। कलियुगी भीम प्रो० राममूर्ति अथवा मिस् ताराबाई प्रभृति शक्तिशाली स्त्री-पुरुषों के दिखलाये हुए आश्चर्यकारक शक्ति के प्रयोग किसी रूप में उच्च श्रेणि के चमत्कार कहे सकते हैं। ये प्रयोग आरम्भ में ही सुनने वाले को अशक्य से प्रतीत होते हैं, और प्रत्यक्ष देख लेने पर भी उनको कई बार आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। छाती पर भारी और वज़नदार पत्थर रखवाना, उसे घन की चोट से तुड़वाना, दौड़ती हुई मोटार रोकना, छाती पर आदमियों की लदी हुई गाड़ी निकलवाना आदि काम साधारण मनुष्यों को आश्चर्यकारक जान पड़ते हैं, किन्तु ये सब अभ्यास और श्रम द्वारा सिद्ध हो सकते हैं। इस बात पर उन्हें विश्वास हो जाता है, और यद्यपि वे सब को सिद्ध नहीं हो जाते तो भी उनका चमत्कारिक गुण शीघ्र ही लुप्त हो जाता है। जब तक ये खेल पूरी तरह परिचय में नहीं आ जाते तभी तक उनका चमत्कार बना रहता है, और उनकी सत्यता एवं साध्यता पर कुछ काल के पश्चात विश्वास होता है। चमत्कार का दर्जा निश्चित करने के लिये यह एक कसौटी ही कही जा सकती है। सुननेवालों में से बहुतों को जिनकी सत्यता पर सन्देह होता है और बिना प्रत्यक्ष प्रयोग देखे उनको विश्वास नहीं होता-वे सब उच्च कोटी के चमत्कार कहे जा सकते हैं।

रसायनशास्त्र, पदार्थविज्ञानशास्त्र अथवा अन्यान्यशास्त्रों में होती हुई नई खोज के कारण कितनी ही चमत्कारिक घटनाएं बन आती हैं। रेल, तार, जहाज, विमान, दुर्बिन तथा विद्युच्छक्ति के द्वारा होने वाले नये२ कार्य, एवं फोटोग्राफी सिनेमा आदि यंत्र चमत्कारिक कहे जा सकते हैं। इन सब वस्तुओं को जिस ने पहले कभी देखा या सुना न हो, उसे पहली ही बार देखने पर इनके विषय में अवश्य ही चमत्कार जान पड़ेगा, किन्तु ज्यों ही उसे इन के आरंभिक तत्वों का ज्ञान करा दिया जायगा, त्यों ही ये सब उसे स्वाभाविक जान पड़ने लगेंगे। इन वैज्ञानिक चमत्कारों की ओर यदि हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो ज्ञात होगा कि, संसार की नई नई खोज-सभी प्रथमतः लोक-दृष्टि में चमत्कार ही थीं। ज्यों २ उनके विषय में लोगों का परिचय बढ़ता गया, त्यों २ उनका चमत्कार भी कम होता गया। कल का चमत्कार आज व्यवहार की एक साधारण बात बन जाता है, और आज का चमत्कार कल इसी अवस्थाओं को प्राप्त हो जाता है। महायुद्ध के कारण नवाविष्कृत आश्चर्यकारक बातें सामान्य बन गई हैं। यही कारण है कि वैज्ञानिक मतानुसार अशक्य बात कुछ भी नहीं है।

मंत्रविद्या का चमत्कार, अर्थात् मंत्रद्वारा विष उतारना, अथवा प्रेत बाधा दूर करना—ये सब बातें आधुनिक वैज्ञानिक शक्ति की मर्यादा से परे सी हैं। स्वतः को सुशिक्षित समझने और तर्क शक्ति को विशेष मान देने वाले अश्रद्धावान मनुष्य को ये बातें प्रत्यक्ष देखे बिना बहुधा असत्य ही प्रतीत होती हैं। और देखने पर भी उसे इन में कुछ तुच्छता ही जान पड़ती है। इसके विरुद्ध अशिक्षित एवं भोले भाले श्रद्धावान लोगों को इन पर अत्याधिक विश्वास होता है। यही नहीं वरन् बीमारी में भी किसी वैद्य या डाक्टर से दवाई न लेते हुए किसी मांत्रिक के तावीज़ अथवा अन्य किसी उपाय से निरोग होने का प्रयत्न करते हुए भी ये कई बार देखे जाते हैं। आज कल के समाचार पत्रों एवं मासिकों में प्रकाशित होने वाले त्रिकालदर्शी ज्योतिषी और जादू के तावीज़ों के विज्ञापन की बहुलता ही इस प्रकार के भोलेभाले लोगों की संख्या का ज्ञान करा दे सकती है। देवता का शरीर में संचारण कर उस से प्रश्नों के उत्तर दिलवाने की प्रथा आज भी भारत में कई जगह प्रचलित है। ग्रीस देश में भी पहले ये बातें प्रचलित थीं, इसका पता Oracle of Delphi की प्रसिद्धि पर से लग सकता है। किसी व्यक्ति की हस्तरेखा पर से उसका आनेवाला भविष्य भी इसी प्रकार का चमत्कार कहा जा सकता है। पंडित ज्योतिष कहता है या ऐसी यह सब भाग्यपूर्ण है, किन्तु इस पर

विश्वास रखने वाले लोग हमें यूरोप जैसे सुधरे हुए देश में भी मिल सकेंगे। सचमुच ही यदि ज्योतिष के द्वारा भावी बातें कही जा सकती हों तो मंत्रविद्या भी उसी की जोड़ की कही जानी चाहिये। "There are more wonders on this earth than are dreamt of in your philasophy" हेम्लेट की इस प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार इस भूमंडल पर अन्य कई चमत्कार दिखाई दिये और दे रहे हैं तथा आगे भी दिखाई देते रहेंगे। किन्तु अवतरित पुरुषों और साधु महात्माओं के चरित्र में वर्णित चमत्कार सब से अधिक आश्चर्यकारक होते हैं। चमत्कार का नामाभिधान भी विशेषतः उन्हें ही किया जा सकता है। इन चमत्कारों का अब हम विवेचक बुद्धि से परीक्षण करेंगे।

इस प्रकार के चमत्कार अधिक तर महपुरुषों के ही जीवन में पाये जाते हैं, जिन में कई तो सृष्टिक्रम के ज्ञात नियमानुसार होते हैं और कुछ उस से विभिन्न। प्रथम प्रकार के चमत्कार काकतालीय न्यायानुसार घटित होते हैं, अर्थात् वे भले ही यथार्थ हों अथवा अयथार्थ, उनका विशेष महत्व नहीं होता। वर्णन करते समय उस में थोड़ी बहुत अतिशयोक्ति हो ही जाती है। किन्तु दूसरे प्रकार के अर्थात् सृष्टि क्रम के विरुद्ध चमत्कारों की उत्पत्ति जानना कुछ कठिन कार्य है। विशेषतः सृष्टिनियम ही सम्यगरूपेण ईश्वरीय कहे जा सकते हैं। ऐसी दशा में ईश्वरीय नियम विरुद्ध बातें महापुरुषों अथवा ईश्वर-भक्तों द्वारा होना युक्ति संगत नहीं कहा जा सकता। तब मृत पुरुषों को जीवित करना, दीवारों को चलाना और एक ही रोटी के टुकड़े से हजारों लोगों को तृप्त कर देना आदि जो २ चमत्कार अनेक चरित्रों में पाये जाते हैं, उनका हेतु क्या है?

कितने ही लोगों को-अर्थात् सुशिक्षित लोगों को इन चमत्कारों पर विश्वास नहीं होता, इस का मुख्य कारण उपरोक्त सृष्टि नियम का विरोध ही है। वे लोग इस बात का विचार करने लग जाते हैं कि उनके चरित्रों में ही इस प्रकार के चमत्कार क्यों हुए! विचार के अन्त में उन्हें समस्त चमत्कारों की मूल स्वरूपिणी कुछ साधारण बातें मालूम हो जाती हैं। सब से पहली बात स्वतः उन महापुरुषों के लिखे हुए ग्रंथों में इस प्रकार के चमत्कारों का उल्लेख न करना है। महात्मा तुलसीदास लीजिये, अथवा सूरदास, किंवा दक्षिण के तुकाराम लीजिये या रामदास, इसी प्रकार भगवान रामचंद्र के विषय में देखिये अथवा योगेश्वर कृष्णचन्द्र के, किंवा बुद्ध के विषय में विचार कीजिये या ईसा मसीह के विषय में, इन महापुरुषों ने कभी इस बात का उल्लेख नहीं किया कि हम में अमानुषी-दैवी शक्ति है, और हम जो चाहें कर सकते हैं। और न इस प्रकार की बातें ही कभी मुँह से निकाली हैं। यहीं पर कोई शंका करेगा कि "क्या श्रीकृष्णचंद्र ने यह नहीं कहा कि "मैं अवतार पुरुष अथवा देवता हूं!" किन्तु जिस ग्रंथ में श्रीकृष्णचंद्र के मुख से उच्चारण कराई जानेवाली इन बातों का उल्लेख है, निश्चय ही वह ग्रंथ स्वतः उनका बनाया हुआ नहीं हो सकता। वरन् उनके गुणगानात्मक अथवा चरित्रात्मक दूसरों के लिखे ग्रन्थों में ही इस प्रकार के चमत्कार पाये जाते हैं। यही स्थिति [illegible] बुद्ध आदि के विषय में भी है। उनके विषय में लिखे जाने वाले ग्रंथ अधिकतर उनके बाद के हैं। यही कारण है कि उन में वर्णित चमत्कारों की विश्वसनीयता बहुत कम हो गई है। ये चमत्कार [illegible] के रूप में रहे हैं, और उनके बाद उन महात्मा के भक्तों ने उनकी महिमा बढ़ाने के लिये यही बातें उनके चरित्र में लिखा दी हैं। ईसा मसीह के चरित्र का यदि हम इस दृष्टि से अवलोकन करें, तो हमारे उपरोक्त अनुमान को बहुत कुछ पुष्टि मिल सकती है। उनके चरित्र (न्यू टेस्टामेंट) चार व्यक्तियों के लिखे हुए हैं, उन में कई स्थलों पर विरोध प्रकट होता है। इन चार चरित्रकारों में दो तो ईसा के शिष्य थे, और अन्य दो [illegible], जिन्होंने ईसा को देखा भी न होगा! अतः यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इन ग्रंथों के लिखने के समय में अधिकतर सुनी हुई बातों को ही काम लाया गया होगा। [illegible]

अधिकांश बातें सुनी हुई हो सकती हैं, साथ ही अपनी वाणी में उन चरित्रों का वर्णन करते हुए अपनी जानकारी अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में उल्लेख करना भी स्वाभाविक क्योंकि लेखक अपनी ही तरह दूसरों के चित्त में भी नायक के प्रति पूज्यभाव उत्पन्न कराना चाहता है। यह दूसरी है कि रसमय एवं चमत्कारिणी वाणी के भाविक चरित्रकार लोकप्रिय बन गया हो! किन्तु उसके इसी गुण अथवा दोष के कारण विवेचक बुद्धिवाले को चरित्र की दृष्टि से वह कभी महत्व-पूर्ण नहीं जान पड़ता। अविश्वास के लिये एक महान कारण और भी है। अंग्रेजी वत है कि 'No prophet is honoured in his own ar day' और यही दशा हमें भारत में भी देखाई पड़ती है। महात्मा एक ही समय और एक ही जगह उत्पन्न नहीं होते। समय की तरह यह नियम बराबर चला आरहा है, किन्तु साधु इस प्रकार के चमत्कार करते हुए हमारे देखने में नहीं आते, उनके वर्णन अवश्य ही उनकी भक्तमण्डली द्वारा सुने जाते हैं। हमारे एक मित्र एक सत्पुरुष की कीर्ति को सुनकर उनके गये थे, किंतु उन्हें उस महापुरुष में कुछ भी विशेषता नहीं दिखाई। फिर भी उनका चरित्र यदि उन्हीं के भक्तों द्वारा लिखा भाविष्यकाल के पाठकों को अवश्य ही उस में कई चमत्कारिक बातें पढ़ने को मिलेंगी। साधु लोग निस्पृह और निरभिमान वृत्ति के होने चाहिये। चमत्कार दिखाकर लोगों को अपना अनुयायी बनाना निरर्थक बात है। यदि यह भी मान लिया जाय कि उनमें दैवी सामर्थ्य है-तो भी सृष्टि नियम के विरुद्ध उस का उपयोग या दुरुपयोग कर के वे लोगों को उस नियम के विरुद्ध आचरण करने की आज्ञा न देंगे। क्योंकि "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः" इस गीता वाक्यानुसार अन्य लोगों के लिये साधु महात्मा ही मार्गदर्शक हो सकते हैं, अतः उनका आचरण सृष्टि नियमानुसार ही होना आवश्यक है। केवल एक दृष्टि से अलबत्ता ये चमत्कार संभावनीय एवं अर्धसत्य कहे जा सकते हैं। हिप्नाटिज़्म (वशीकरण विद्या) के आश्चर्यकारक प्रयोग आजकल हमारे देखने में आते हैं। प्रबल इच्छाशक्ति के द्वारा निर्बल इच्छाशक्ति वाले मनुष्य को वशीभूत कर के उससे मन चाही बातें कहलवाने या कृत्रिम कराने के चमत्कार हम आजकल भी देखा करते हैं। मानसिक एकाग्रता-समाधि-के द्वारा शिष्यों को समझाने साधु पुरुषों की योजित युक्ति का नाम ही चमत्कार है। टाईज़ हो जाने पर अथवा गुरु कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त पर अदृष्ट पूर्व और अश्रुतपूर्व चमत्कारिक बातें मनुष्य दे और कह सकता है। भगवद्गीता के ११ वें अध्याय वाले वि की उपपत्ति भी हम इसी प्रकार लगा सकेंगे। श्रीकृष्ण अर्जुन हैं कि, "अपने इन नेत्रों से तू मुझे (मेरे विश्वरूप को देख सकता, इसलिये मैं तुझे दिव्य दृष्टि देता हूं, तू मेरे को देख।" (गीता अध्याय ११) इस वाक्य में वर्णित दिव्य यदि वशीकरण विद्या होती तो उसके द्वारा भीष्म द्रोणादि वीर पहले ही मर गये हैं-इस प्रकार अर्जुन को विश्वास हो युद्ध के लिये तय्यार हो जाता, यह एक स्वाभाविक बात थी। वि श्वास कर विश्वरूप दर्शन का हेतु अर्जुन को युद्ध के लिये तय्यार ही था। यह अवश्य है कि मनुष्य का ज्ञान बढ़ता है और प्रगति के साथ ही साथ जिन सृष्टि नियमों को हम आज बाधित समझते हैं, वे उस प्रकार के नहीं हैं ऐसा समझ असंभव नहीं। क्योंकि यदि सृष्टि रचना के दूसरे नियम समझ जावें, अथवा यह कह दिया जाय कि सृष्टि रचना के कोई नियम ही नहीं हैं तो इन में से किसी एक बात के घटित हो चमत्कार (Miracles) की गणना शक्य कोटि में ही आवेगी। विवेचक बुद्धिवाले व्यक्तियों को प्रत्यक्ष देखे बिना ये चमत्कार शब्द प्रमाण न होंगे, यही नहीं वरन् प्रत्यक्ष देख लेने पर भी विश्वास न होगा और वे इस में कोई चालाकी समझ कर खोज में लग जावेंगे। किन्तु इन बातों पर तो इन्हें अवश्य ध्यान देना चाहिये, क्योंकि कितनी ही बार देखा गया है कि प्रकार के चमत्कारों की मूलभूत चालाकी प्रकट हो कर अनायास ही देखने में आ जाती है।

जगल्लहरी अथवा लहरीजगत।

(लेखक—श्री० वैकुंठराय)

(उत्तरार्ध)

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

Science and religion are twin sisters.

Huxley.

विज्ञान और धर्म दोनों ही संयुक्त भगिनियाँ हैं, (हक्सले.)

सितम्बर १९१३ के "जगत" में यह लेख सम्पूर्ण हुए चुका है, सम्भव है कि इस विचित्र शीर्षक को देख कर पाठकों ने लेखक के मस्तिष्क की अनूठी कल्पना पर हँसी उड़ाई हो ! किंतु ऐसा करने की आवश्यता नहीं है। क्योंकि किसी विज्ञापन की विचित्रता बढ़ाने के लिये जिस प्रकार उसके शीर्षक और भाषा में चित्ताकर्षक ...ों का प्रयोग किया जाता है, यह बात इस लेख के विषय में न

कृष्णरेखांकित रंगपट—प्रकाश दर्शक यंत्रद्वारा सूर्य प्रकाश की किरणों का पृथक्करण हो कर जो रंगपट दृष्टिगोचर होता है, उसमें स्थान २ पर लगभग २००० विखरित कृष्ण वर्णांकित रेखाएँ दीख पड़ती हैं। इन रेखाओं पर से ही विद्वानों ने सूर्य एवं ताराओं की बनावट के विषय अनेक बातें जान ली है।

...मनी चाहिये। भौतिक विज्ञान का विषय सामान्य पाठकों के ...ये एक तो वैसे ही रूखा सा होता है, और उस में भी फिर ...न्हों ने कभी उस ओर दृष्टिपात ही नहीं किया उनके लिये यदि यह ...आवश्यक भी प्रतीत हो तो इस में आश्चर्य ही क्या ? अस्तु: जगत् के ...थोड़े के पाठकों का इन पृष्ठों से मनोरंजन हो और वे इन्हें थोड़ी ...उत्तेट दें, इस आशय से ही यदि उपरोक्त शीर्षक की रचना की ...ई हो तो भी उदार हृदय पाठक इस प्रयत्न को क्षम्य ही समझेंगे। ...योंकि जिस प्रकार शिवभक्तों को 'पिनाकी प्रथमाधिप उग्र: कपर्दी' ...इति अनेक नामों की अपेक्षा "शंकर" ही विशेष प्रिय होता है, ...ही बात इस शीर्षक के विषय में भी कही जा सकती है। अस्तु।

आज हम अपने जीवन की दशा पर विचार करेंगे। दृश्यादृश्य जगत ...और देखने के लिये ईश्वरने हमें आँख, नाक, कान, जीभ, और त्वचा ...पांच इंद्रियां दी हैं। इंद्रियां बाह्य जगत् के सम्बन्ध में जो २ संवाद ...तिक्षण प्राप्त करती हैं, वे सब उन्हें अपने राजा अर्थात् मन को ...र्पित करने पड़ते हैं।

इन्द्रियाणां मनश्चास्मि,

...परोक्त पांचों इन्द्रियां मन महाराज की आज्ञाकारिणी सेविकाएं ..., और बाह्य जगत् के सम्बन्ध में जो कुछ कि ज्ञान होता है उसे ...अपने स्वामी को सूचित कर देने मात्र का इन्हें अधिकार है। किसी ...बात के सत्यासत्य का निर्णय अथवा उसके विषय में गूढ़ विचार ...करना मन का काम है। यथार्थ में देखा जाय तो इन पंच ज्ञानेन्द्रियों ...के द्वारा मन ही बाह्य जगत का निरीक्षण करता है। अतः इस ...प्रकार का संवाद प्राप्त होने के पश्चात कोई बात आवश्यक हो, तो ...उसे सिद्ध करने अथवा यदि वह पहले ही प्राप्त हो गई हो तो उसे ...कार्य बनाने के लिये, किंवा यदि कोई बात अनिष्ट ज्ञात पड़े तो ...उससे बचने के लिये, और यदि वह पहले से ही हम में मौजूद ...हो तो उसका परित्याग कर देने के लिये मन को कठोरतर प्रयत्न ...करना पड़ता है। मन देखता है, इस विधान में देखना शब्द, ..., ...के पूर्वार्ध में प्रयुक्त ... की ही तरह भ्रम में डालने वाला ...है, अतः पाठक गण इस पर कुछ विचार करें।

(१) ठहरो, यह क्या करता है सो मुझे देखने दो!
(२) देखना तो रामदत्त आया है या नहीं!
(३) पहले यह देखो कि बिस्तर साफ हुआ है या नहीं!

इन वाक्यों में देखने का भावार्थ संवाद प्राप्त करना है।

इस प्रकार समय २ पर मन के कार्यालय में जो २ संवाद आते रहते हैं, उन्हीं पर हमारा सम्पूर्ण जीवन अवलंबित रहता है।

बाह्य जगत सुखद है या दुःखद ? और किसे ? मन को या तुझे ? तू कौन है ? इस जगत में चलने फिरनेवाला तू कौन ? यहां आने से पूर्व तू कोई था या नहीं ? और यहां से गठड़ी बांध कर तू कहीं आगे बढ़ेगा, या यहीं समाप्त हो जायगा ?

पाठक गण ! क्षमा कीजिये ! विषयान्तर हो गया है, यदि आप पूछें कि जगल्लहरी से इसका क्या सम्बन्ध ? तो उत्तर में मैं यही निवेदन करूंगा कि, अपनी बात को सिद्ध कर के ही यह लेखनी विश्रांति लेगी, आप कुछ धैर्य रखिये।

निरे भौतिक शास्त्री तो इस प्रकार के प्रश्न पूछने ही नहीं देते, क्योंकि उन्हें दृढ़ विश्वास होता है कि, ये बातें मानवी बुद्धि की कक्षा से परे की हैं। ये लोग इस प्रकार के प्रश्नकर्ता और उत्तर-दाता दोनों को ही पागलखाने में भेज देना चाहते हैं, और स्वयं स्वस्थ बैठते हैं। उनका सिद्धान्त है कि, यह जगत मानों अकस्मात ही पूर्वापर सम्बन्ध रहित उत्पन्न हो जाने वाली एक आपत्ति परंपरा है।

हमारा अखिल जीवन, विचार सामर्थ्य एवं निसर्ग आदि जिस सर्वसत्ताधीश (परमेश्वर) के व्यक्त स्वरूप हैं, उसे जानना मानवी सामर्थ्य से परे की बात है, इस बात का यथार्थ ज्ञान केवल भौतिक शास्त्र पारंगतों को ही होता है, इस प्रकार स्पेन्सर का कथन है। किन्तु भौतिक शास्त्ररूपी अंजन आँखों में भली भांति न आँज दिया जाने के कारण उनकी बुद्धि इस प्रकार भ्रमित बन जाती है। क्योंकि

सूक्ष्म प्रकाश दर्शक यंत्र—... ... पृथक्करण होता ... और ... दूरबीन के द्वारा नेत्रों में इच्छित रेखाएं दिखाई पड़ती हैं। (इसका मूल्य लगभग १५) रुपये होता है।

...कितने ही भौतिक शास्त्री इस जगत को ईश्वर के कर्तृत्व एवं अपूर्व बुद्धिसामर्थ्य एवं कल्पना चातुर्य का एक सुन्दर और प्रत्यक्ष नमूना समझते हैं, तथा वे इस छोटे नमूने पर से ही मानों इस सर्वव्यापी गुणिश्रेष्ठ परमेश्वर को प्रत्यक्ष देखते हैं—इस भाँति वे भावना से आनंदित बन कर घूमते रहते हैं। उपरोक्त प्रश्नों के ... उत्तर आर्य मुनियों एवं ... साधु महात्माओं ने अपने तपोबल के द्वारा वेदान्त विद्या में ... दे ... दिये हैं, किन्तु फिर भी जिस प्रकार बाह्य जगत की कोई भी एक ही बात किसी एक को दुःखदायक प्रतीत होती है, वही दूसरे के लिये महान सुखदाई बन जाती है, इसी प्रकार विविध मंतव्यों के

कारण बाहरी बातों पर से इष्टानिष्ट अनुमान का निर्णय करनेवाले मन की विविध कल्पनाओं का कौन पता लगा सकता है, और कौन उसका हाथ पकड़ सकता है। किंतु मुख्य प्रश्न यह है कि जिन पांच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाह्य जगत के अनेक अनुभव प्रतिदिन हमारे प्रत्यय में आते हैं, और जिन पर कि हम अपने जीवन के सुखदुःख का मन्दिर निर्माण करते हैं—वे सब हमें कैसे प्राप्त होते हैं? इस विषय में समस्त भौतिक शास्त्रज्ञों का एक ही मत है, और वह यह कि, यह सब अनुभव विविध भांति की लहरियों के कारण प्राप्त होता है। इन लहरियों को आप लहर, कम्प, आन्दोलन आदि किसी भी नाम से पहचान सकते हैं।

विविध शब्द, स्वर, संगीत और भाषण अथवा यदि संक्षेप में कहा जाय तो, हमें प्रतीत होनेवाला शब्दमय अथवा ध्वनिमय जगत वातावरण में उत्पन्न होनेवाली लहरों के द्वारा ही भासमान होता है।
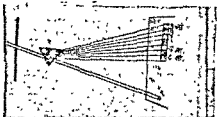
इसी प्रकार नेत्ररूपी द्वार से प्रकाश की सहायता लेकर दृश्य जगत का हमें दर्शन होता है। वह प्रकाश भी तो भौतिक शास्त्रियों की ईश्वरदत्त कल्पना शक्ति द्वारा निर्मित ईथर नामक एक विचित्र द्रव्य के सर्वव्यापी महोदधि में उत्पन्न होने वाली लहरियों के कारण ही हमें विविध रूपों का भान कराता है।

ऊष्णता (अथवा सर्दी) भी ईथर में से फैलने वाली लहरियों के कारण ही अपनी त्वचा के द्वारा हमें नाना प्रकार के सुखदुःखों का भास कराती है।

जीभ और नाक इन दो इन्द्रियों द्वारा हमें जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है, उस का आरंभिक कारण भी इसी प्रकार की अन्य विलक्षण लहरियों का कार्य होना चाहिये, इस प्रकार समस्त इन्द्रिय विज्ञान के महापंडितों का मत है। ऐसी दशा में हमें यह भी स्वीकार करना ही पड़ेगा कि हमारा सम्पूर्ण जीवन इसी प्रकार की विविध लहरियों के कारण ही भासमान होता है, और इसी को मैं भी जगल्लहरी कहता हूं, तो बतलाइये इस में अनुचित बात ही क्या है? अच्छा जिस महापंडित ने इस दृश्य जगत की उत्पत्ति बतलाते समय अपनी मति कुंठित न होने देकर ईथर नामक सर्वव्यापी, अतिविरल, सर्वान्तर्गत, अपरिमेय विलक्षण वस्तु की कल्पना की है, उसकी यदि लहरी जगत में गणना न की जाय तो दूसरा स्थान ही कौन सा बचता है! कहिये!!

... की ही तरह प्रकाश ... ह विषय जितना हम ... जाग्रति के लिये ही इस प्रकार के विषय का विस्तार बढ़ाना उचित प्रतीत नहीं होता।

प्रकाश लहरी का भान होने के लिये तीन बातें आवश्यक हैं—

(१) प्रकाशोत्पादक पदार्थ
(२) प्रकाश वाहक पदार्थ
(३) प्रकाश ग्राहक पदार्थ

त्रिगुणात्मक संसार की तरह यहां भी तीन की ही आवश्यकता रहती है। सृष्टि में प्रकाश ग्राहक पदार्थ तीन हैं। उन में से समस्त विचित्र वस्तुओं में अतिशय सुन्दर एवं आश्चर्यकारक हमारे नेत्र प्रथम, और फोटोग्राफ अर्थात् प्रकाश-लेख ग्रहण करने वाला कांच अथवा कागज़ दूसरा पदार्थ है। इन दोनों में विचित्र सामर्थ्य है। वह सुनिये—

कल्पना कीजिये कि कई वर्षों बाद हमें अपने संग्रह में का कोई पत्र दृष्टिगोचर हुआ, अथवा अनेक वर्ष पूर्व देखे हुए किसी नाटक का एकाध पद कर्णगोचर हुआ, तो उस समय जो बात अथवा जो वस्तु तुमने देखा होगा, उसका स्मरण हो कर तत्काल उसका [illegible] चित्र हमारे नेत्रों के सन्मुख आ खड़ा होगा। इस पर से क्या [illegible] होता है? यही कि, अपने नेत्रों से अनेक बार देखी हुई बातों का [illegible] हमारे मस्तिष्क में होता है, और वह किसी साधारण से [illegible] द्वारा पुनःस्मरण हो जाता है।

इसी प्रकार प्रकाश-लेखन कागज़ पर जो रासायनिक द्रव्य लगे रहते हैं उनके सन्मुख जो कुछ भी पदार्थ रखा जायगा उसकी प्रतिमा सूर्य प्रकाश की सहायता से सहज ही में तय्यार की जाकर संग्रह में रह सकेगी। किंतु इन दो प्रकाश ग्राहकों में भी एक बात का अन्तर है। गुलाब के फूल पर जो भी एक ही स्वेत सूर्य प्रकाश गिराता है। किंतु फिर भी आंखों को उसका रंग गुलाबी ही दीखता है, और पत्तों का रंग हरा। किंतु प्रकाश लेखक कांच को यह उस प्रकार नहीं दीखता। यह कांच समस्त रंगों का उल्लेख केवल सफेद और काले दोही रंगों में कर सकता है। इस प्रश्न का विवेचन करने से यहां विषयान्तर हो जाने की संभावना है। अतः इसे यहीं छोड़ना पड़ता है। इन दो प्रकाश ग्राहकों के सिवाय शेष सभी दृश्य पदार्थ प्रकाश का ग्रहण और किसी अंश में परावर्तन भी करते हैं। किंतु ग्रहीत पदार्थ को स्थायी नहीं रख सकते।

प्रकाशोत्पादक पदार्थ स्वयं प्रकाशी होते हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, विद्युद्दीपक, मोमबत्तियाँ आदि कई पदार्थ स्वेत-शुभ्र प्रकाश उत्पन्न करते हैं। बिजली के दिये में यदि कुछ क्षार अथवा धातुओं की भाफ प्रविष्ट की जाय तो विविध रंगों की प्रकाश किरणें उत्पन्न होंगी। जिन्हों ने कोई रंगीन धूमकेतु देखा होगा, अथवा दूरबीन के द्वारा विवक्षित रंग के तारे अवलोकन किये होंगे—उन्हें स्वेत प्रकाश के सिवाय अन्य रंगीन प्रकाशोत्पादक स्वयंप्रकाशी पदार्थों की कल्पना बड़ी ही सुगमता से हो सकेगी।

ध्वनि और प्रकाश के बीच कई बातों की समता है। इसी कारण प्रकाशोत्पत्ति का परिचय पाते समय पद २ पर ध्वनि के विषय में विचार करना पड़ता है, किंतु प्रकाश-सम्बन्धी कितनी ही बातें बिलकुल स्वतंत्र हैं, साथ ही वे उलझन भरी भी हैं।

जिस प्रकार ध्वनि-लहरी हमारे कर्णपथ पर वातावरण के समान एक मध्यस्थ पदार्थ ला पहुंचाती है, उसी प्रकार प्रकाश लहरी का पहुंचाने वाला कौन होगा?

इस प्रश्न का उत्तर विज्ञान वेत्तागण जब अन्य किसी रूप में [न दे] सके, तब उन्होंने यह युक्ति निकाली कि, जब मध्यस्थ पदा[र्थ के] बिना प्रकाश और ऊष्णता दोनों ही सूर्य एवं अन्य नक्षत्रों से आ सकते, तो अवश्य ही सर्व व्यापी एवं अतिविरल कोई द्रव्य [होना] चाहिये, और उस द्रव्य का नाम ईथर है।

वायु कणों के आन्दोलन के कारण जिस प्रकार ध्वनि लह[रें] उत्पन्न होती है, उसी प्रकार ईथर कणों के आन्दोलन के [कारण] प्रकाश लहरियाँ भी उत्पन्न होती हैं। ध्वनि लहरी के सम्ब[न्ध में] जो कुछ काम हमारे कान करते हैं, वही प्रकाशकिरणों के सम्ब[न्ध में] हमारे नेत्र भी करते हैं।

जब ध्वनि उत्पन्न उत्पन्न होती है तब वायु कण क्षितिज की सम[ानान्तर] सपाटी में आन्दोलन करते हैं। इसी भांति प्रकाश लहरी में ई[थर] कण प्रकाशकिरणों के मार्ग से लंबी सपाटी में आन्दोलन मचाते [हैं]।

जिस प्रकार सप्त स्वरों के मिल जाने से एक नया राग बन [जाता] है, उसी प्रकार स्वेत स्वच्छ प्रकाश भी सप्त किरणों का सम्मेलन
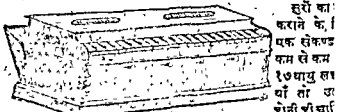
[ल]हरों का [भान] कराने के [लिये] एक सेकण्ड [में] कम से कम १७ वायु ल[हरें उत्पन्न होनी चाहिये] यों तो उ[...] होनी ही चा[हिये] और प्रकाश का भान कराने के लिये कम से कम [illegible] ल[हरें] उत्पन्न होने से काम चल सकता है।

जिस स्वर की एक सेकण्ड में ३८००० से अधिक लहरें उ[त्पन्न] होती हैं, वह कान रहते हुए भी मनुष्य नहीं सुन सकता। [इसी] प्रकार जिस प्रकाश किरण की लहरें [illegible] से अधिक उत्[पन्न] होती हैं, वह आंखों से नहीं देखा जा सकता।

हार्मोनियम अथवा सितार में जिस प्रकार भिन्न २ कम्पन (लह[रों]) के भान स्वर बजाये जा सकते हैं, उसी प्रकार कांच के त्रि[कोण] लोलक की ही तरह अन्य कितने ही स्वेत पदार्थों में से जब प्रका[श] किरण उस पार निकल जाते हैं, उस समय उनका पृथक्करण [हो]कर सात भिन्न २ मूल रंगों का चित्र-पट दृष्टिगोचर होने लग[ता] है। [illegible], मृगजल, इन्द्रधनुष, चन्द्रसूर्य के आसपास दिख[ने] वाले प्रकाश मण्डल आदि प्रकाश किरणों के अनेकानेक चमत्का[र] [illegible], [illegible] आदि विविध धर्मों पर अवलम्बित रहते हैं।

प्रकार के चमत्कारों की घटना के समय प्रकाश लहरों में क्या २ विकृतियां होती हैं, इसका यदि विवेचन किया जावे तो संभव है कि पाठकों को अरुचि उत्पन्न हो जाय ! इसीलिये हम प्रकाशविषयक एक आश्चर्यकारक बात सुना कर इस लेख को पूरा कर देते हैं।

श्वेत प्रकाश की किरणें त्रिकोन छिद्रों को पार करते समय पृथक २ हो जाती हैं और उनका जो सप्त रंगी पट बनता है, उसमें रंगों का क्रम इस प्रकार होता है:—लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और जामुनिया। किंतु अन्य कई पदार्थों के कारण जब प्रकाश किरणों का पृथकरण होता है, तब इस क्रम में फेरफार भी हो जाता है।

किसी किरण को बारीक दराज से प्रविष्ट होने देकर यदि तिकोनी कांच में से पार निकलने दिया और इसके बाद पृथग्भूत किरणों को किसी छोटे से दूरबीन में लेकर पर्दे पर डाला जाय तो उस पट में विवक्षित स्थानों पर काली रेखाएँ दिखाई देंगी। यह रंग पट यदि विवक्षित लम्बाई का हो तो वे काली रेखाएँ भी निश्चित अन्तर पर ही दृष्टिगोचर होंगी। इन काली रेखाओं की संख्या लगभग २००० है। इन रेखाओं पर से विद्वान लोगों ने सूर्य, तारे आदि की घटनाओं का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है। हमारी पृथ्वी और सूर्यचन्द्रादि आकाशस्थ पदार्थों के बीच क्या सम्बन्ध है, इसका भी वे ठीक २ निर्णय कर सके हैं। ये बातें यद्यपि बड़े ही महत्व की और आश्चर्यकारक हैं तो भी मैं उनके विषय में कुछ भी न कहूंगा ! किंतु फिर भी इस शरीर में रह कर अपनी आयु बितानेवाला यह जीव-मैं किधर से आया और कहां को जाऊंगा-इस बात को भूल कर-पाठशाला को जाते हुए मार्ग में बाज़ीगर की पुंगी सुन कर खेल देखने में निमग्न हो जानेवाले विद्यार्थी की तरह बीच में ही ईश्वररूपी अमर्यादित महासागर के तल भाग में स्पर्श, रुचि, गन्ध, ध्वनि प्रकाश आदि की लहरों के बीच वाली परम्पराओं में स्वच्छन्द विलास करता है, इसी पर रह रह कर आश्चर्य होता है। और इसीलिये इसे लहरी जगत कहना पड़ता है।

राष्ट्रीय-प्रगति।

(लेखक—श्री. मधुसूदन दामोदर दवे, एम्. ए. एल-एल. बी.)

Old order changes yielding place to new.
Tennyson.

आधुनिक समाज-शास्त्रानुसार संसार के समाज दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। एक प्रागतिक अथवा प्रगमनशील समाज (Dynamic society) और दूसरा स्थिर अथवा अचल समाज (Static society)। साधारणतः पाश्चात्य राष्ट्र प्रथम प्रकार के कहे जा सकते हैं और जापान को छोड़ कर शेष एशिया महाद्वीप और आफ्रिका तथा दक्षिण अमेरिका आदि भिन्न २ राष्ट्र दूसरे प्रकार के हो सकते हैं। चीन और भारत की गणना पाश्चात्य समाज शास्त्रज्ञों के मतानुसार स्थिर अथवा अचल समाज में की जाती है। उन लोगों का कहना है कि, इन दो देशों में दो ढाई हजार वर्ष पूर्व जो कुछ संस्कृति प्रचलित थी-वही थी। उसके बाद इन हजार वर्षों से तो यहां के समाज की गति कुंठित एवं बद्धमूल हो बन गई है। प्रत्येक राष्ट्र अथवा समाज की प्रगति होने के लिये उस में निरन्तर चलनशक्ति होनी चाहिये। किसी भी प्रकार का आन्दोलन न करने वाला समाज मृत प्राय होता है। आगे न बढ़ कर अपने ही स्थान पर चुप बैठे रहना एक प्रकार से अवनतावस्था की ओर गमन करना ही है। स्थिर-जल भारी, निःसत्व और पचन क्रिया को हानि पहुंचाने वाला होता है, और वही जल यदि प्रवाहित हो तो स्वाद में मधुर एवं शक्तिवर्धक तथा पाचन क्रिया के लिये उपकारक बन जाता है। जब तक शरीर में रुधिराभिसरण भली प्रकार होता रहता है, और जब तक नाड़ियों में जीवित रक्त संचार करता रहता है, तब तक शरीर सुदृढ़ और तेजस्वी बना रहता है। किंतु ज्योंही रक्त शिथिल पड़ता है कि तत्काल शरीर की सब क्रियाएं बंद हो जाती हैं। लोकसमूह और राष्ट्र के लिये यही नियम लागू किया जा सकता है। राष्ट्ररूपी महापुरुष को जीवित बनाये रखने के लिए उसकी शिरारूप जनता में उत्साह का रक्त प्रवाहित रहना चाहिये, अन्यथा वह रक्तहीन, (anemic) अशक्त और निस्तेज बन जायगा।

राष्ट्र की प्रगति उसी दशा में होगी, जब कि इसके घटकावयवों में एकदम और एक समय ही चलन शक्ति शुरू हो जावगी। एक अवयव यदि विशेष हलचल करने वाला हो और दूसरा बिलकुल ही स्वस्थ हो तो वह गति हानिकारक ही होगी। गाड़ी के पहिये समान-गति के हुए बिना उस (गाड़ी) का हिल सकना असंभव ही है, और यदि वह चल भी पड़ी तो निःसन्देह मार्ग में कहीं टोकर खाती जावगी !

राष्ट्र के घटकावयव मानों, उस में की संस्थाएं हैं, और ये संस्थाएं यदि निरन्तर कार्यक्षम बनी रहें तो अवश्य ही समाज प्रगति कर सकेगा। इनकी कार्यक्षमता को निरन्तर जागृत रखने के लिये देशकालानुरूप प्रयत्न होते रहने चाहिये कि जिस से नये उत्साह की उत्पत्ति होती रहे। दो तीन हजार वर्ष पूर्व जिन २ नई संस्थाओं का अस्तित्व हुआ था, वे ठीक उसी रूप में आधुनिक परिस्थिति के लिये उपयुक्त हो सकती हों-यह असंभव है। इतने दीर्घकाल में तो ईश्वर निर्मित सृष्टि का रूप भी बदल सकता है, तो फिर मानवी प्रयत्न से चलने वाली संस्थाएं यथा पूर्व रूप में ही कैसे रह सकती हैं? मनुष्य प्राणी की परिस्थिति प्रत्येक पीढ़ी में बदलती जाती है, और जिस प्रकार वातावरण का परिवर्तन होता रहता है, उसी प्रकार मनुष्य के आचार विचार और विकारों पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की वस्तुस्थिति रहते हुए भी पहले किसी समय में जिन सामाजिक अथवा धार्मिक बन्धनों से समाज नियमित बन सका है, वही बन्धन आधुनिक परिस्थिति के लिये किसी भी दशा में प्रयुक्त नहीं हो सकते। पूर्वकालीन नियम उत्तरकाल में प्रयुक्त करना मानों ऐतिहासिक अनुभव की ओर दुर्लक्ष्य करना है। प्रमाण के लिये हम अपने धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं की ओर दृष्टिपात करते हैं। हिंदू आर्य संस्कृति जिस नींव पर खड़ी की गई है-उस वर्णाश्रम धर्मपद्धति की ओर देखा जाय तो ज्ञात होगा कि, यही नियम आज हजारों वर्ष से भारत में बने हुए हैं। और उनके इतने दीर्घकाल तक टिक रहने पर से ही उनकी उपयुक्तता का प्रमाण मिल जाता है। किंतु केवल दीर्घकाल तक अस्तित्व रहना ही किसी संस्था की कार्यक्षमता के लिये प्रमाण नहीं हो सकता। देखना चाहिये कि यथार्थ में ही उस में यह गुण है या नहीं। मनु आदि प्राचीन ऋषियों मुनियों की निर्मित वर्णाश्रम पद्धति में आज तक कोई सा भी परिवर्तन नहीं हुआ, ऐसा कोई पुराण मतवादी भी नहीं कह सकता। समय समय पर परिस्थिति के अनुरूप उनके प्राचीन बन्धन शिथिल हो कर नये नियमों की रचना होती रही है। इसी कारण वर्णाश्रम पद्धति में एक प्रकार का लचीलापन आ गया है, और इसी गुण के कारण यह इतनी शताब्दियों से सिर ऊंचा किये हुए है। कैसी ही विकट परिस्थिति हो अथवा कठिन प्रसंग उपस्थित हुआ हो, तो भी अपने मूलतत्वों को बनाये रख कर नई परिस्थिति से संलग्न होने का गुण उपरोक्त संस्था की एक विशेषता है। बेंत को कितना ही नमाइये, छोड़ कर तत्काल ही वह अपना पूर्व रूप धारण कर लेगी। इसी प्रकार हिंदू संस्थाएं अपने स्थिति स्थापकता रूपी अपूर्व गुण के कारण अनेक कठिन प्रसंगों को पार कर सकी हैं। यही नहीं बरन् उन उन नये विकट प्रसंगों के अनुरूप परिवर्तन भी उनमें हुए हैं। इसके लिये हिंदू धर्म का इतिहास साक्षी देता है, और कोलेब्रुक इतिहासकार एवं संस्कृतज्ञों ने इसी

विशिष्ट गुण के कारण उस को शाबाशी दी है। अर्थात् मूल विवेचन पर से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि, यदि आजतक ये संस्थाएं विरुद्ध प्रसंगों का सामना करती रही हैं, तो फिर आगे के लिये इन्हें अपना मुख उज्वल बनाये रख कर खड़े रहने में क्या कठिनता उपस्थित हो गई है? इतना अवश्य है कि इन में काल के प्रवाहानुसार जिन आनुषंगिक अर्थात् निरुपयोगी बातों का समावेश हो गया है, उनको दूर कर देना चाहिये। उन में संचित कूड़ा कर्कट निकाल देना चाहिये। प्रत्येक मानवी संस्था सदोष होगी, क्योंकि इस संसार में परिपूर्णता किसी को भी नहीं मिली है। फलतः सौ दो सौ शताब्दियों के पूर्व हमारे ऋषि मुनियों द्वारा स्थापित संस्थाएं निर्दोष हैं और उन में परिवर्तन करना हमारे लिये असंभव सी बात है-ऐसा कहना मानों अपने पुरुषाओं के ज्ञान के विषय में अयथार्थ कल्पना कर लेना है! इस बात को अप्रत्यक्ष रूप में स्वीकार करने से देश की भावी स्थिति के लिये निराशा प्रदर्शित करने का पातक हमारे सिर मढ़ा जाता है। अतः इस अनुचित प्रसंग से बचने का सच्चा मार्ग यही हो सकता है, कि समयानुसार हम अपनी सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं में सुधार करके प्रगति मार्ग में अग्रसर बनें।

राष्ट्र के सामाजिक एवं धार्मिक अंगों के संशोधन की जिस प्रकार आवश्यकता बतलाई गई है, उसी प्रकार उसकी राजकीय परिस्थिति की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है। हमारा व्यवहार अधिकतर हमारी राजकीय परिस्थिति पर अवलंबित होता है। राजनैतिक आन्दोलन से हीन समाज चैतन्य हीन शरीरवत् है। यदि प्रजा को आचार विचार एवं उच्चार (भाषण) की स्वतंत्रता प्राप्त न हो तो उसके अन्य समस्त प्रयत्न व्यर्थ हो जायँगे। इसीलिये उचित है कि प्रत्येक समाज सब से प्रथम अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ले। साथ ही स्वतंत्र राष्ट्रों को भी, सामाजिक चैतन्य बनाये रख कर उसे निरन्तर कार्यक्षम बनाने के लिये राजनैतिक आन्दोलन का अवलंबन करना चाहिये। फलतः जिस राष्ट्र को स्वतंत्रता प्राप्त करना है, उसे यह कहां तक उपयोगी होगा, इसका विशद विवेचन करना ही व्यर्थ है।

राजनैतिक आन्दोलन के साथ ही पक्षभेद भी लगा हुआ है। अधिकारारूढ़ और लोकमत ये दो दल साधारणतः प्रत्येक देश में होते ही हैं। राज्यपद्धति किसी भी स्वरूप की हो-अर्थात्-भले ही वह राजसत्ताक हो अथवा प्रजासत्ताक किंवा अल्पसत्ताक हो-राजनैतिक आन्दोलन के हेतु प्रस्तुत अधिकारी वर्ग प्रत्येक दशा में लोकपक्ष सन्मुख जवाबदार ही रहेगा। वास्तविक सत्ता लोक प्रतिनिधि के हाथ में रहकर उनके मतानुसार राज्यसूत्र चलाया जाना राजनीति का अंतिम ध्येय है। महात्मा रामदास का कथन है कि "लोगों को राजी (खुश) रखने वाला राष्ट्र ही शक्ति सम्पन्न होता है।" वर्तमानकाल के विद्वान भी यही कहते हैं कि "लोगों की इच्छा और अनुमति पर ही राज्य का अस्तित्व अवलंबित रहता है।" किसी व्यापारिक व्यवहार का लाभ जिस प्रकार रुपये, आने और पाई के रूप में गिना जा सकता है, वैसा राजनैतिक आन्दोलन का नहीं। क्योंकि पहले का फल जहां तात्कालिक एवं दृश्य स्वरूप का होता है वहां दूसरे का अदृश्य रूप एवं दीर्घकाल के पश्चात अनुभव में आने वाला होता है। राजनीति के कारण यद्यपि आर्थिक अथवा औद्योगिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है, तथापि उसका स्वरूप मुख्यतः मानसिक अथवा आत्मात्मिक होता है। यदि राष्ट्र सम्पन्न है, विद्या कला का घर है, जनता सुखी है, शरीर सम्पत्ति भी उत्तम है, किंतु इतना हो कर भी यदि वह स्वतंत्र नहीं, तो यह कभी नहीं कहा जा सकता कि उसकी नैतिक अथवा मानसिक उन्नति हो रही है, फलतः इसके लिये राजनैतिक आन्दोलन का आश्रय लेना पड़ेगा। दूसरे रूप में उपरोक्त सुखसाधनों का अभाव रहते हुए भी राष्ट्र को यदि एक मात्र स्वतंत्रता प्राप्त हो जाय तो, उसके बाद ही उसे वे सब साधन सुलभ हो सकते हैं। तिजोरी में के द्रव्य का स्वतंत्र किसी मौके से युक्ति द्वारा प्राप्त करने की, अथवा-उसकी कुंजी हस्तगत करने की विशेष महत्व का कहा जा सकता है। क्योंकि पहली अवस्था में तिजोरी में के द्रव्य पर दूसरे का अधिकार होता है, और दूसरी दशा में वही हमारे हाथ आ जाता है, यही इन दो स्थितियों के बीच का महान अन्तर है। यही कारण है कि सुराज्य की अपेक्षा स्वराज्य श्रेयस्कर बतलाया जाता है, और दूसरे की तृषा पहले उपाय द्वारा नहीं बूझ सकती।

राज्यकीय आन्दोलनों से लोकशाही का अस्तित्व होता है, अपना कारोबार हस्तगत होता है, अपना द्रव्य अपने जेब में पड़ता है, और इस प्रकार संक्षेप में यह कि राष्ट्र को स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है। किंतु यह फल तत्काल ही नहीं मिल सकता। इसके लिये बर्षों झगड़ना पड़ता है, अर्थात् बाबा के लगाये हुए पेड़ के आम पोते को खाने के लिये मिलते हैं। किंतु नैतिक दृष्टि से राजनैतिक आन्दोलन द्वारा विशेष महत्व का लाभ पहुंचता है। किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये हम जो कुछ प्रयत्न करते हैं, और उससे शरीर में जो उत्साह उत्पन्न होता है, उसका महत्व उस वस्तु के मिल जाने पर भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसी आशय को लेकर कवि कालिदास ने "औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा" इत्यादि सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। फलतः राजनैतिक आन्दोलन से समाज में इच्छाशक्ति, कर्तृत्व, साहस और आत्मप्रत्यय की वृद्धि होती है। उत्साह के द्वारा जो काम हो सकता है, वह केवल शारीरिक शक्ति से नहीं होता। शरीर के सुदृढ़ रहने पर भी उसे चैतन्य प्रदान करने वाला कोई आत्मा अवश्य होना चाहिये। इच्छा-बल और उत्साह उसी आत्मा के धर्म हैं। मानसिक दुर्बलता के कारण हमें जो कार्य अशक्य जान पड़ते हैं, वही उसकी चैतन्यावस्था में सरल बन जाते उद्दंड शक्ति के काम करने की टेव पड़ जाने पर आत्मविश्वास होने लगता है, और आत्मविश्वास से कर्तृत्वशक्ति की वृद्धि है। अपनी भावी स्थिति के विषय में जनता को सुखस्वप्न दि पड़ते हैं, और लोग आशावादी बन जाते हैं। राजनीति में मनुष्य निरन्तर उद्योग रत रहने की प्रेरणा करने वाले उत्साह को रखने के लिये आशा के समान दूसरी औषधि ही नहीं है। अभ्युदय की आशा से ही प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करता है, और वातावरण में रहते हुए शरीर में जो समाधान वृत्ति पुष्ट बनती उसका लोप आशा भंग करने से भी नहीं हो सकता। इस प्रकार समाज दीर्घ उद्योगी, जीवित और कर्तृत्ववान एवं निरन्तर प्रग अवस्था में होता है, उस राष्ट्र की उन्नति होने में कुछ भी नहीं लगती।

सारांश, हमारे भारतीय भाइयों को अच्छी तरह याद र चाहिये कि-सौभाग्य से ही संसार के अग्रगामी राष्ट्रों के शिर देश से हमारा सम्बन्ध हो सका है। यद्यपि इस ऋणानुबन्धन लाभालाभ क्या हुआ, यह प्रश्न दूसरा है। तथापि इंग्लैंड के इति का हमें जो कुछ ज्ञान हो सका है, उसके प्रतिफल में भारतीय का कितना ही शोषण (Drain) होता हो तो भी उसके लिये चिंता न करनी चाहिये। इंग्लैंड स्वतंत्रता का घर है और पतित को उठाना उसका मुख्य उद्देश्य है। ब्रिटिश लोग न कभी किसी गुलाम हुए हैं न होंगे, (Britons never shall be slaves) नहीं वरन् यदि परराष्ट्रीय गुलामों की भी वहां किसी प्रकार प हो जाय तो उसकी शृंखलाएं टूट पड़ेगी। प्रातिनिधिक संस्था लोकसभा (Prliament) की जननी भी ब्रिटानिया ही है। सब का मूलाधार अंग्रेजों का स्वभाव और उनका इतिहास है लार्ड मेकाले जोर देकर कहते हैं कि "ब्रिटिश लोगों का इति निर्विवाद प्रगति शील है।" तब यह इतिहास जिस के नि परिशीलन में आता है, उस राष्ट्र का उन्नति की दौड़ में पिछड़ क्या योग्य कहा जा सकता है? भारतीय विद्यार्थियों को इतिहास का नित्य अध्ययन कर के, प्राप्त ज्ञान का उपयोग अपने की परिस्थिति के अनुसार करना चाहिये। यही भारत की उसके उद्धार और प्रगति का उपाय है। और इसी से उसे "शांति पूर्ण स्वराज्य" मिल सकेगा।

* हम और हमारे समाज की दशा। *

(लेखक—श्री॰ कन्हैयालाल गुप्त-' यदसेनी ')

इस समय सर्वत्र ही सुधार की प्रतिध्वनि हो रही है। नित्यप्रति नई लहरें और नये रंग दिखाई दे रहे हैं। यह बीसवी शताब्दि का सुधार काल भविष्य के लिये एक अनोखा इतिहास होगा। उस नवयुग के लिये नई तय्यारियाँ धड़ाके के साथ हो रही हैं, और होती जा रही हैं। इन तय्यारियों के प्रवाह में प्रत्येक राष्ट्र अपना नया रंग लाना चाहता है। किंतु इस समय एक बड़ी विचित्र बात यह हो रही है कि कहीं समाज सबल होना चाहता है तो कुटिल नीतिज्ञ स्वार्थवश उसको निर्बल बनाने की चेष्टा कर रहे हैं, और कहीं सत्यप्रिय राजनीतिज्ञ उसे सबल बनाना चाहते हैं। परन्तु धनिक समाज अपने प्रसार के आगे इनके छक्के छुड़ाने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। अर्थात् वर्तमान सुधार क्या है, मानो एक दूसरे से स्पर्धा करने का युग है। परन्तु यह और कुछ नहीं, केवल वर्तमान सुधार-काल के नवांकुरित भाव हैं, जो भविष्य में अपने नये रंग दिखलायेंगे।

भारत भी वर्तमान-(सुधार) काल के उच्च आदर्श की ओर अग्रसर हो रहा है। यह भी सौभाग्यवश सब कुछ चाहता है, और नये रंग देखने के लिये इसने भी अपनी ठुमुकइयाँ चाल में चलना आरम्भ कर दिया है। इस समय भारत की सभी छोटी बड़ी संस्थाओं में सुधार की लहर बह निकली हैं। सभी सुधाररूपी सुधारस पीकर एक निश्चित सीमा तक पहुंचना चाहते हैं। राजनैतिक क्षेत्र के लिये तो इस समय कहना ही क्या है! जिसे देखो वही इस अखाड़े में कूदा पड़ता है। भारत के एक छोटे से छोटे नगर पर दृष्टि डाली जाय, तो वहां भी कोई न कोई राजनैतिक नेता अवश्य निकल आवेगा। दूसरे मेल का यदि नेता ढूंढ़ा जाय तो कोई न कोई धार्मिक नेता भी वहां अवश्य मिल सकेगा। क्योंकि भारत में इस समय सुधार के विशेषतः दो ही मार्ग पाये हैं। पहिला राजनैतिक और दूसरा धार्मिक। इन दोनों में राजनैतिक क्षेत्र तो इस समय सर्व श्रेष्ठ बन रहा है। क्योंकि जिसे देखो वही इस समय इसका दम भर रहा है। रहा धार्मिक, सो तो आज कल एक खेल समझा जाता है। जिस धार्मिक प्लेटफार्म पर देखो वहीं वेदान्तवाद गाया जा रहा है। वक्ता वहां अपने सुधार में एक मात्र वेदान्तवाद ही की व्याख्या कर देना इति-कर्तव्यता समझता है।

परंतु अब हमारा कहना यह है, कि जिस सुधार के बिना यह दोनों बातें अधूरी रह जाती हैं उसकी ओर किसी का ध्यान क्यों नहीं है? क्या! आज दिन कोई माई का लाल यह कह सकता है, कि जिस देश की सामाजिक स्थिति खोखली हो रही हो वह भी पूर्ण रूप से किसी सुख का अनुभव कर सकेगा? अनुभव करना तो दूर रहा, क्या वह समाज की हैसियत से, पुकारा भी जा सकता है? जब हम प्रत्येक देश को इस समय देख रहे हैं कि, वह अपने समाज को एक नियमित रूप में लाकर परिचालन करना चाहता है, और चुपचाप हम हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। यद्यपि इस समय कार्य्य बहुत कुछ हो रहा है, व्यवसाय की ओर लोग अग्रसर हो रहे हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार का काम जोरों के साथ हो रहा है। कांग्रेस सुधार की धूम मचा रही है। इसी प्रकार अन्यान्य संस्थाएं अपने २ योग्य कार्य कर रही हैं। यदि इस समय कुछ काम नहीं होता है तो एक मात्र समाज सुधार का ही। यदि यह होता भी है तो सिवाय इसके कि वर्ष भर में सिर्फ एक बार कांग्रेस के मंच पर ही एकाध-दिन रात को सामाजिक कान्फ्रेंस में व्याख्यान हो गये और बस, आगामी कांग्रेस तक छुट्टी।

इस समय हमारा कर्तव्य है कि हम समाज की आवश्यकताओं को पूरा करें। अन्यथा ध्यान रहे कि इस समय की कमी आगे चल कर न जाने क्या कर दिखावेगी। इस समय समाज में बड़े २ भयंकर रोग घुस रहे हैं। उन रोगों से न तो अभ्युदय होने की ही आशा की जा सकती है और न निःश्रेयस की। हाल ही में अमेरिका से यह समाचार मिला है, कि वहां सिर्फ सिगारेट पीना बन्द करने के लिये करोड़ों रुपया जमा किया गया है। क्यों? उनका कहना कहना है कि इससे व्यभिचार की मात्रा अधिक बढ़ती है। कुछ लोगों ने यह नियम पास किया है, कि कपड़े उतार कर और हाथ पैर धो कर भोजन करना बहुत अच्छा है। क्योंकि ऐसा करने से भोजन ठीक रीति से पचता है, और स्वास्थ्य के लिये ऐसा करना बहुत ही उपयोगी है। कुछ लोगों का यह कहना है कि जहां पर हम रहते हैं उस स्थान को कभी २ गोबर से लीपना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से उस स्थान की वायु शुद्ध हो जाती है, और वहां के विषैले जन्तु भी नाश हो जाते हैं। इसी प्रकार एक नियम वहां की स्त्रियों ने भी हाल ही में पास किया है। वे कहती हैं कि हमें ऐसी पोशाकें न पहिनना चाहियें, जिससे हमारे हाथ की कलाई या गर्दन के नीचे का हिस्सा, सीना आदि खुला रहे। क्योंकि इससे अमेरिकन युवकों के विचार गन्दे होते हैं और उनका जीवन प्रायः बहुविलासी एवं निकम्मा बन जाता है। ऐसा होना राष्ट्र के लिये एक बहुत बड़ा हानिकर, असाध्य रोग है। हम लोगों की पोशाकें ऐसी हों जो हाथ की कलाई को अच्छी तरह ढँक दें, और सीना आदि तनिक भी खुला न रहे, तथा मस्तक भी ढंका रहे। ऐसा करने से अमेरिकन युवकों का ध्यान हम लोगों की ओर बहुत बुरे विचारों को लेकर न न उपस्थित होगा, जोकि राष्ट्र के लिये शुभ सूचक लक्षण कहा जासकता है।

परन्तु भारत में इस समय सामाजिक बीड़ा उठाने वाला कोई भी नहीं। सभी आर्थिक उद्योग की ओर दौड़े चले जा रहे हैं। इस समय हम को हमारे कार्य्य और कर्तव्य का ध्यान दिलानेवाला कोई नहीं मिलता। हम जैसा राग सुनते हैं वैसा ही अलापने लग जाते हैं। जिस में आत्मबल, साहस, धैर्य्य, सहिष्णुता, अनुभव और तत्वज्ञान आदि का कहीं पता तक नहीं। क्योंकि इस समय किसी को कार्य्य और कर्तव्य का विचार तो है ही नहीं, जिस ने जो देखा वह उसी को किये जाता है।

अब हम एक बार फिर इसी पर विचार करते हैं, कि जिस देश की सामाजिक स्थिति का ठीक परिचालन न हो रहा हो, क्या वह देश भी अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों का बोझा साथ २ ढोता हुआ चला जायगा? इस समय हमारे समाज में "गुरु और दीक्षित" 'यजमान और पुरोहित' बोली, भाषा, भेष, रहन, सहन, आचार, विचार, वर्णाश्रम धर्म के कर्तव्य का सभी दम भर रहे हैं। किंतु फिर भी इस समय कोई ऐसा माई का लाल नहीं दिखाई पड़ता है, कि इन सिसकते हुओं को गंगाजल का छींटा दे कर एक बार फिर सचेत कर दे। जिससे कि इनके महत्व से समाज एक बार फिर अपनी गई हुई शक्ति को प्राप्त कर सके। इस समय न गुरू गुरू है, और न शिष्य शिष्य है। यजमान यजमान नहीं है और न पुरोहित पुरोहित ही। तब बोली, भाषा, और भेष के लिये कहना ही क्या! बातचीत हो रही है हिन्दी में, और बीच बीच में अंग्रेजी के शब्दों की पुट दी जा रही है। यह दशा, भाषा, और बोली की है। कोई शेरवानी और अचकन धारी है, तो कोई सूटेड बूटेड और कोई चप्पाधारी नेकटाई आदि से ससज्जित। अर्थात् दस दुकड़ों

तो इसों की अलग २ पोशाकें देख लीजिये । हम कोई ऐसी पोशाक न पायेंगे जो राष्ट्रीय हो। हां, जहां लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और माननीय मालवीय आदि अथवा अन्य कोई हिन्दी या हिन्द का प्रेमी विद्यमान हो वहां की बात दूसरी है । स्वतंत्रता चाहने वाली स्त्रियों ने भी आजकल विचित्र ही ढंग बना रक्खा है। वह सोहाग-सिन्दूर आदि की प्रथा और नूपुर, पायल, नथ आदि तो ग़ायब हो गये और उसके स्थान पर हाथ में एक 'रिस्टवाच' कुछ ब्रेसलेट चूड़ियां 'पैर में स्लीपर' और हाथ में 'लेडीज़ अम्ब्रेला' लेकर खुले सिर, बिखरे हुए बाल और सांढ़ों का सा मुख बनाये स्टेशन के प्लेट-फार्म पर टहलती रहती हैं। यहां हमारा यह भाव न समझ लेना चाहिये कि, हम स्त्री स्वातंत्र्य के विरोधी हैं। बल्कि हमारा मतलब यह है कि, उनके रहन सहन और विचारों में परिवर्तन हो। रहन, सहन, आचार, विचार तो इस समय हमारा जैसा है वह हम खूब जानते हैं, क्योंकि यदि कोई और खाना बुरा समझता है तो वह स्टेशन के रिफ्रेशमेंट (Refreshment जहां पर कुछ खाने पीने सामान हो) रूम में बैठ कर बिस्कुट और रोटी खाना बुरा समझता। उसका कहना है कि मैं विजीटेरियन हूं (Vegeter वनस्पति खानेवाला) बस, हो गया। आचार के बारे में इस कहना ही क्या, और विचार के बारे में रोना क्या!

अन्त में फिर एक बार हमारा यही निवेदन है कि, जहां आज दूसरे देश अपनी सामाजिक स्थिति को बदल कर दूसरे रूप में चाहते हैं, वहां हमें भी इसके लिये कुछ ध्यान अवश्य देना चाहि क्योंकि वर्तमान समय परिवर्तन का युग है, इसलिये हम को सुधार पर भी शीघ्र ही दृष्टि डालनी चाहिये।

आर्त-अपील !*

(पुरी के भयंकर दुर्भिक्ष पर)

विपद् व्यथित जन देख, दया जिसके उर आई।
अपनी ही सी समझ, रहा जो पीरपराई ॥
निरख देश दुर्दशा नयन, जिसके जल बरसे।
करने को पर-काज, प्राणतक जिसके तरसे ॥
जो सत्यमार्ग पर अटल रह, करता पर-उपकार है।
वह धन्य-पुरुष इस विश्व का, प्रियतम प्राणाधार है ॥ १ ॥

होता है वह मुक्त, दूर हटती है माया।
पड़ती उस पर नहीं, पाप की तिल भर छाया ॥
अवनी-तल का दिव्य-ज्योति मय वही प्रकाशक।
वह है अनुपम सूर्य्य कष्ट तम तुमुल विनाशक।
सच्चा योगी त्यागी वही, धर्म-ध्वजा का दण्ड वह।
करता शासित वह देश क्या, बस, सारा ब्रह्माण्ड वह ॥२॥

ऐसा है नर रत्न, भाग्य से हमने पाया।
धर कर "मोहन" रूप वही हम में है आया।
कर्म-वीरता है जिसकी, भारत में फैली।
दिखा मार्ग जो ठीक, हरण करता मति मैली।
वह "गांधी" संज्ञक शूरही, करता अब आह्वान है।
आ जाओ सम्मुख बंधुओं! जिन्हें देश अभिमान है ॥ ३ ॥

अहह! अन्न बिन आज, मर रहे बन्धु हमारे।
सगे, सहोदर बुढ़िया, मांके प्रिय दृगतारे।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
हा! दावानल- दुरभिक्ष यह, पुरी बाग को दाहता ॥ ४ ॥

कहीं रो रहा 'अन्न' "अन्न", कहता लघु बालक।
नहीं पास कुछ रहा, करें क्या उनके पालक।
नहीं पेट में अन्न, दूध क्यों स्तन में होवे।
मृत बालक ले गोद, प्राण क्यों जननि न खोवे।
हैं अङ्ग ढाँपने के लिए, वस्त्र पास जिनके नहीं।
वे भाग्यहीन तज गेह भी, क्योंकर जा सकते कहीं ॥ ५ ॥

दग्ध-लतासी कहीं, दुखिनी हैं घर वामा।
कहीं पड़ी हैं मरी, अन्न बिन सुन्दर श्यामा।
कनकलतासी कहुँ कुमारिका, मुरझ पड़ी है।
सत्यानाशी चाल दैन्य की, आह! निरी है।
हैं पत्ते तक मिलते नहीं, उनको खाने के लिये।
अति कठिन कष्ट से भूख से, बचकर जाने के लिये ॥ ६ ॥

ऐसा दुख दुर्भिक्ष, पुरी में प्यारे! छाया।
गान्धीजी ने अतः तुम्हें है आज जगाया।
कर के धन एकत्र, करो दीनों की रक्षा।
लज्जित मत हो देश—कार्य्य-हित मांगो भिक्षा।
माँ यह [illegible]
वही [illegible]

अगर धर्म अभिमान, शास्त्र का कुछ सुज्ञान हो।
धर्म-पुरी का ध्यान, तथा रक्षाभिमान हो।
तो जो कुछ संग्रह हो सके, अन्न द्रव्य या वस्त्रही।
देकर, रक्षा कीजिये, आर्त्त जनों की शीघ्रही ॥ ८ ॥

—श्रीजगन्नाथशर्मा (पाटली-पुत्र से)

*इस समय पुरी में भयकर अकाल है, जिसका दिग्दर्शन इस कविता से हो सकता है। समाचार पत्रों में इसके लिये बड़ी २ अपीलें हो रही ही हैं। हम भी 'जगत्' के पाठकों से अनुरोध करते है कि वे अवश्य ही यथाशक्ति सहायता भेज कर देश भाईयों को मरने से बचावें। सब प्रकार की सहायता भेजने का पताः—
बाबू जगबन्धु सिंह कोषाध्यक्ष, फेमिन रिलीफ कमेटी, पुरी (उड़ीसा)
(सम्पादक "जगत्")

यूरोप में वीरता की बाज़ियाँ।

लन्दन की ... रेस में प्रथम आनेवाला खिलाड़ी।

दो सौ मीटर की बाज़ी में प्रथम आनेवाले कनाडा के 'कर' नामक पुरुष का स्वागत।

शरीर-विज्ञान ।

(लेखक—श्री० सीताकान्त)

कहा जाता है कि कुम्भकर्ण की हजामत बनाने के लिये एक खास हज्जाम नियुक्त किया था। किसी निश्चित स्थान से यह नाई अपना काम शुरू कर जब सारे मस्तक को मूंड देता, तब तक पूरा वर्ष हो जाता और उसी क्षण उसे फिर से हजामत बनाने का काम शुरू कर देना पड़ता था। अर्थात् बारहों महीने वह अपनी ड्यूटी पूरी करता रहता था।

इसी प्रकार सत्तर योजन की नाक और हजार योजन के हाथवाले मनुष्यों के वर्णन भी पुराणों में पाये जाते हैं। अंगुष्ठ मात्र अर्थात् पूरे एक इंच ऊंचाईवाले साठ हजार बालखिल्य ऋषियों का वर्णन तो कई पौराणिकों और पुराणभक्तों को स्मरण भी होगा। 'जगत' के विगत फर्वरी-वाले अंक में "वामनमूर्ति और राक्षसमूर्ति" नामक लेखद्वारा इस विषय का दिग्दर्शन कराया जा चुका है। उस में कुछ चित्र भी दिये गये हैं किन्तु ये सब पाश्चात्य देशों के हैं। फिर भी यह न समझ लेना चाहिये कि भारत में ईश्वर के ऐसे विचित्र चमत्कार नहीं दिखाई पड़ते। कुछ वर्ष पूर्व इस लेख के लेखक ने एक सर्कस कम्पनी में तीन फुट से कुछ कम ऊंचाईवाले एक विदूषक की बुद्धिमत्ता अपनी आंखों से देखी थी। किन्तु इस प्रकार के प्राणियों के छायाचित्र संग्रह करने की अभिरुचि भारतीय जनता में अभी विशेष प्रमाण में जाग्रत नहीं हुई है।

हमारे पाँव आदि की ओर धर्मपूर्वक कार्य कर रही है यह सौभाग्य की बात है। अन्यथा यदि उनमें कुछ गड़बड़ मचाई होती, तो अवश्य ही हम डो० वामन-मूर्ति अथवा राक्षस बन जाते।

फिर भी ये पौराणिक राक्षस और पौराणिक बालखिल्य, दोनों ही कल्पना सृष्टि के हों या प्राचीन सृष्टि के, किंतु इतना अवश्य है कि उनके दर्शन हमें आज नहीं हो सकते। हाँ, आफ्रिका में अलबत्ता आज भी दो हाथ ऊँचे मनुष्य देखे जा सकते हैं। यही नहीं वरन् वहाँ एक स्वतन्त्र मानववंश ही दृष्टिगोचर होता है। "जगत" में पाठकों को उसका परिचय भी करा दिया गया है। हम सामान्यतः इन वामन मूर्तियों को अपवादात्मक समझेंगे। किंतु जिन्हें हम इस प्रकार न समझ कर सर्व सामान्य और सर्वसाधारण मानव वर्ग में गिनते हैं, उनमें भी ऊंचाई और चौड़ाई की बड़ी विभिन्नता रहती है। आप भारतीय योद्धाओं में सिक्ख और गुर्खे, काबुली पठान और मावले मराठे, पश्चिम के गोरे और पीले जापानी आदि में परस्पर इतना अधिक अंतर रहता है कि, यदि इन दो जातियों में का एक एक मनुष्य पास पास खड़ा कर दिया तो दर्शक आश्चर्यमुग्ध ही बन जायगा।

इन दो विभिन्न जातीय विभिन्नताओं को अपेक्षा एक ही जाति के दो व्यक्तियों में का वैचित्र्य और भी अधिक कौतुकास्पद प्रतीत होगा। ऊंट और बकरी की जोड़ी कभी २ कहीं मजे की दीख पड़ती है, किंतु इसके उदाहरण बहुत ही कम देखे जाते हैं। यद्यपि सामान्य व्यवहार में भले ही इसका विशेष महत्व न हो, पर मनोरंजन मात्र के लिये असामान्य उदाहरण मिल ही जाते हैं।

छह फुट ऊंचा पति और उसकी तीन फुट ऊंची पत्नि का उदाहरण प्रेक्षकों को विशेष मनोरंजक प्रतीत होगा। यद्यपि इस प्रकार का दृश्य सहसा कहीं न दीख पड़ेगा, किंतु फिर भी प्रसिद्ध और प्रमुख व्यक्तियों में इस प्रकार के विरोधात्मक विलक्षण उदाहरण मिल ही जायेंगे।

राई को पर्वत कर देने वाले मनुष्य व्यवहार में कभी २ हमारे देखने में आ जाते हैं। इन मनुष्यों के स्वभाव की ही तरह कुछ अवयव शरीर में भी मौजूद हैं, और ये बड़े ही अजीब हैं। राई को पर्वत अथवा पर्वत को राई कर देने की शक्ति उन में भी होती है। शरीर यंत्र में लगभग आधा दर्जन रस पिंड हैं। उन में सब से बड़ा पिंड बालखिल्य ऋषि के बराबर अर्थात् अंगूठे के आकार का और सब से छोटा राई के बराबर अथवा राई की नोक के जितना है, किंतु इन इतने बड़े पिंडों में यह शक्ति है कि ये हमें जो चाहें और जैसा चाहें बना सकते हैं। ये हमारी भावी वृद्धि का नियमन कर सकते हैं, यही नहीं वरन् शरीर की ही तरह मन का भी नियमन कर सकते हैं। अधिक तो क्या आयुर्मर्यादा भी यही पिंड निर्माण करते हैं। ताड़, बांस, साल, तमालादि वृक्षों की पेरियों अथवा शाखाओं पर से उनकी गत आयु का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। किंतु इन पिंडों पर से वृक्षों की तरह पिंडधारी की गतायु का पता नहीं लगाया जा सकता, हां संसार मार्ग का कितना भाग क्रमण किया जा चुका है, इस का पता अलबत्ता लग सकता है।

शरीरस्थ समस्त रस पिंडों के नियमानुसार अपना २ काम करते रहने पर ही जीवन व्यवस्था अवलंबित रहती है। यदि सभी रस पिंड अपना २ कार्य नियमानुसार करते रहें तो संभवतः बुढ़ापे और मृत्यु का अस्तित्व ही मिट जाय, और पचहत्तर वर्ष का बुड्ढा पचीस वर्ष के तरुण के समान तथा साठ वर्ष की बुढ़िया सोलह वर्ष की युवती के तुल्य दीखने लगेगी।

इन सब रस पिंडों में लगभग आधा दर्जन तो बड़े ही महत्व के हैं। उन्हें हम साम्राज्य-हीन सम्राट अथवा स्वावलंबी कार्यकर्ता कह सकते हैं। अन्य रस पिंडों की तरह इन में का रस शरीर में चारों ओर अथवा निर्दिष्ट स्थानों पर पहुंचाने के लिये नलियों का एक एक जाल बना है, इसे Ductless Glands कहते हैं। इन पिंडों में भीतर ही भीतर रस संचित हो कर वह रक्तप्रवाह में मिल जाता है, जिस से शरीर का सम्पूर्ण कार्य व्यवस्थापूर्वक चल सकता है।

इन रस में एक प्रकार के सूक्ष्म पदार्थ होते हैं, जो [illegible] कहलाते हैं। इन में विशेष गुण यह होता है कि, शरीर के जिस अवयव में वे पहुंच जाते हैं, वहीं हलचल मचा देते हैं। किंतु यदि किसी अवयव में रोग जन्तु अथवा [illegible] का प्रवेश हो जाय तो उसकी हलचल भी "[illegible]" के विरुद्ध होने लगे [illegible] की तरह [illegible] हो जाती है।

वे रस पिंड शरीर की [illegible] जाते हैं। शरीर की वृद्धि और [illegible] का नियमन करते हैं, शरीर की [illegible]

। लोगों के एकमार्गी ध्येय त्याग देने पर, अर्थात् अपने काम में वे [illegible]ही दिखाने पर ताड़िका प्रसाद की मूर्ति दृष्टिगोचर होने लगती । अथवा यों कहिये कि बोलता हुआ चित्र हमें देखने को मिल जाता । भस्मरोग, संधिवात आदि में थायमस अर्क विशेष उपयुक्त सिद्ध [हु]आ है। इन्हीं बातों परसे इस पिण्ड की महत्ता प्रगट हो सकती है।

इस प्रकार अब तक देखने में ढब्बू के जैसे रूपवाला मीठा, [इ]तु के समान अडेनान्स और लघु मूर्ति के गुण वाली 'थॉयराइड' की [ज]ोड़ी और पॅराथायराइड की चौकड़ी तथा इनका सहोदर बन्धु थायमस [आ]त्मक पूर्ण पंचायतन पर विचार हो चुका। छठा पिण्ड बड़ा ही [प्र]बल है। है तो यह बिलकुल ही छोटा अर्थात् बच्चे के नाखून के [ब]राबर, किन्तु गुण उसके प्रबल हैं। इसे श्लेष्मल पिण्ड कहते हैं। [ज]िसका अंग्रेजी नाम है पिटुइटरी बॉडी अथवा पिटुइफिसिस। इस [सू]क्ष्म पिण्ड की सत्ता सारे शरीर पर चलती है। इसकी आज्ञा होते [ह]ी सारे शरीर की वृद्धि तत्काल रुक जाती है। उचित समय पर आज्ञा मिल गई तो ठीक ही है, अन्यथा शरीर में प्रमाण से अधिक चर्बी बढ़ने अथवा मांस-वृद्धि होने का भय रहता है।

यह पिण्ड दुहेरा अर्थात् एक दूसरे [से] लपेटा हुआ होता है। अपने स्वरूप[के] अनुसार यह कार्य भी भिन्न २ प्रका[र] का करता है। और वे दोनों [परस्]पर विरुद्ध होते हैं। इन में [ऊप]र वाले श्लेष्मल का कार्य विशेष [हित]कारक होता है, और जीवन को [स्फूर्]तिवान एवं सुखमय बनाने के लिये [उस]की विशेष आवश्यकता रहती है। [श]रीरस्थ रक्त का 'पंपिंग' करनेवाले [आ]श्चर्यमय यंत्र हृदय का नियमन भी [य]ह ऊपरवाला श्लेष्मल पिण्ड ही करता [है]। अतः इसे हृदयेश्वर कह देना अनु[चि]त न होगा।

इस पिण्ड से "पा-थ्रोन" नामक [र]स टपकता है। कदाचित् "तारु[ण्]यामृत" नामक जिस द्रव्य की खोज [में] सैकड़ों मस्तिष्क रात दिन लगे रहते [हैं] वह यही रस हो! फिर भी इतना [त]ो निश्चित है कि इस पिण्ड के अलग [क]र देने पर शरीर में पञ्चप्राण अधिक [दे]र टिक नहीं सकते।

इसी पिंड से लगा हुआ दूसरा [क]निष्ट पिण्ड भी इसी नाम से सम्बो[ध]ित किया जा सकता है। कह नहीं सकते कि यह गुप्त रूप से शरीर को क्या लाभ पहुँचाता है। किंतु जब ऊपरी पिण्ड पर यह आक्रमण करता है, तब अलबत्ता मनुष्य दुर्दैव के फंदे में फँसे बिना नहीं रहता। पहले तो शरीर पोषण क्रिया बिगड़ जाती है, उत्तम भोजन कितना ही अधिक खाया पिया जाय—वह नाम को भी लाभ नहीं पहुँचा सकता। अनेक बार इस प्रकार के लोगों की मेदवृद्धि होने लगती है। खान पान में बिना किसी विशेष परिवर्तन के मनुष्य फूलने लगता है। फिर वह लगातार बढ़ताही जाता है, और अन्त को समान लम्बाई चौड़ाई वाला फुटबाल बन जाता है।

शरीर में प्रविष्ट होनेवाले शर्करामय अथवा विषमय पदार्थ पर संस्कार डालने का काम इसी कनिष्ट श्लेष्मल पिंड के जिम्मे होता है। पिण्ड के कार्य में बिगाड़ उत्पन्न होते ही ये द्रव्य शरीर में बढ़ने लगते हैं। फलतः मनुष्य वृद्धिरूप में नहीं, वरन् परिधि रूप में ही बढ़ता चला जाता है। भाग्य से इतना अवश्य है कि अपाय के लिये उपाय मौजूद हैं। वे उपाय क्या हैं। इस प्रश्न का उत्तर फिर कभी दिया जायगा। क्योंकि इस समय हमें उन प्रश्नों का खुलासा करना है जो कि प्राचीन काल से सब के सन्मुख उपस्थित होते आये हैं। वे इस प्रकार हैं:—

(१) हम निश्चित ऊंचाई और मुटाई तकही क्यों बढ़ते हैं?
(२) निश्चित प्रमाण के बाद हमारी वृद्धि क्यों रुक जाती है?

(३) एकही मानव जाति के लोग सामान्यतः निश्चित प्रमाण में ही क्यों बढ़ते हैं, और निश्चित समय के बाद उनकी वृद्धि क्यों रुक जाती है?

प्रत्येक मनुष्य की ऊंचाई एवं मुटाई के विषय में हमारी कुछ निश्चित कल्पनाएँ होती हैं, उससे जिस किसी प्रमाण में कोई व्यक्ति भिन्न प्रतीत होता है उसके विषय में हमें उतनाही अधिक आश्चर्य होने लगता है। एकआध डेढ़ हाथ का अथवा सात फुट ऊंचा मनुष्य हमें बहुत कुछ विचित्र जान पड़ेगा। इसीप्रकार साढ़े पांच वर्ग फुट का (लम्बा चौड़ा) मनुष्य देख कर भी हमें कम आश्चर्य न होगा। कुछ आफ्रिकन अपने लोकनायक का सौन्दर्य उसकी मुटाई पर से निश्चित करते हैं, उन्हें इनसे अवश्यही हँसी के बदले प्रेम हो सकता है। बहुत ऊंचे और लट्ठ मनुष्य सामान्यतः बदन के जोड़ों में हलके और शुष्क मस्तिष्क होते हैं। उनकी शक्ति अपरिमित मांस-पिण्ड और हड्डियों की रक्षा में ही खर्च हो जाती है। मस्तिष्क में दुष्टता और सन्धियों में जोश लाने के लिये शक्तिही नहीं बच रहती। छोटी पूंजी पर बड़ा रोजगार करनेवाले व्यापारी की तरह, ऐसे मनुष्यों की दशा होती है।

इस चित्र में मनुष्य की गर्दन का चित्र दिखलाया गया है। उसमें जहां अंग्रेजी में २८ का अंक बनाया गया है वहां यदि प्रकृति ने थायराइड की खूंटी कस दी तो मनुष्य के लिए स्वर्ग २ अंगुल दूर रह जायगा। कान के ऊपरी भाग में जहां ६ का अंक है, ...

यदि कोई साधु बैरागी अथवा कोई [म]ुक्त स्त्री इस प्रकार लट्ठ निरंजन हो तो कोई हानि नहीं, किंतु यदि "बाप सा बेटा" पैदा होने लगे, और कन्या गत [म]ाता के ढंग पर जाने लगें तो अवश्य ही यह दृश्य नाशकारी होगा! किंतु ऐसा होता नहीं, मानव समाज के लिये यह एक सौभाग्य की ही बात है। परन्तु ऐसा होता क्यों नहीं? क्या बड़े बाप के बड़े बेटे पैदा नहीं होते? मर्कट समाज को मानव जाति का पूर्व-पुरुष बतलानेवाले डार्विन साहब इसके विषय में उत्तर देते हैं कि 'जो उपयुक्त होगा वही टिक भी सकेगा', इस नैसर्गिक निर्वाचन तत्वानुसार ऐसी असामान्य घटनाएँ होना रुक जाता है। जिस प्रकार कथक्कड़ की कथा के अन्त में वही आरम्भिक बात आ जाती है, उसी प्रकार प्रकृति ने कितनी ही चालें दिखाई होंगी तो भी वह अन्त को मूलस्थान आ जायगी। यही नहीं वरन् क्रिया के प्रमाण में प्रतिक्रिया भी होने लगती है। और प्रो० लट्टेश्वर के पुत्र लाड़देव पैदा होही जाते हैं!"

डार्विन साहब का यह स्पष्टीकरण ठीक है, किन्तु फिर से पूर्व पद पर आने का आद्य कारण और समाधान भी तो कुछ होना चाहिये? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है, कि लट्टेश्वर या लाड़देव निर्माण होने का कारण और कुछ नहीं होता, एक मात्र हृदयेश्वर पिण्ड पर आपत्ति आना ही इसका आद्य हेतु कहा जा सकता है!

यह पिण्ड यदि व्याधि के कारण रूठा या फूलगया हो अथवा सुमा[]या दब गया हो, किंवा उसे अन्य किसी प्रकार की व्याधि हुई हो, तो उस (व्याधि) के स्वरूपानुसार ही मनुष्य की वृद्धि में इस प्रकार का परिवर्तन हुआ करता है, और यह आगन्तुक परिवर्तन आनुवंशिक (खान्दानी) नहीं हो जाता। यदि होताही तो आज हम इस प्रकार के विचित्र प्राणियों की दशा पर आश्चर्य करने के बदले अपनी ही दशा पर आश्चर्यान्वित होते रहते।

विचित्र वृद्धिवाले अनेक मनुष्यों के शरीरच्छेदन पर से जान [लिया] गया है, कि इस विचित्र वृद्धि का मूलकारण श्लेष्मल पिंड की विकृति ही होता है।

इस प्रकार हमने विचित्रता के मूल हेतु की चर्चा भी करदी है, किन्तु अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस प्रकार की अनुचित बाढ़ को रोकने का भी कोई उपाय है? हमारी समझ में तो अब से [अ]च्छा काम यही है कि, इस आपत्ति के मूल को ही नष्ट कर दिया

जाय! अर्थात् खोपड़ी में से मार्ग निकाल कर मस्तिष्क के मूल-भागस्थित इस पिंड का अनावश्यक भाग काट छांट कर निकाल दिया जाय। शस्त्रक्रिया का यह मार्ग सीधा सादा और सरल है। अनेक शस्त्रक्रियाएं कारगर भी हुई हैं। अतः इस प्रकार के रोग के स्वल एवं परिणाम पर दृष्टि रखने से यदि शस्त्रक्रिया में कुछ असफलता हो तो इससे निराश न हो जाना चाहिए।

दूसरा एक सीधा सादा और सरल मार्ग और भी है। वह है औषध सेवन! सुखपूर्वक खाते जाइये, यदि अच्छे हो गये तो ठीक ही है अन्यथा मरना तो वैसे ही है। किन्तु फिर भी मरनेवाले को यह तो विश्वास हो जाता है कि, डाक्टर के शस्त्र से नहीं का फांसी सेही मैं मर रहा हूं।*

* यह लेख मामूली दृष्टि से पढ़ने पर अवश्य नीरस जँचेगा, किंतु यदि पूर्वक पढ़ा गया तो यही पाठकों को मनोरंजक साथ २ शरीर-विज्ञान की का ज्ञान कराते हुए कई आवश्यक बातों से जानकार बना देगा। इस प्रकार के विलायती पत्रों में विशेष रूप से निकालते हैं, उन्हीं की शैली पर ... लिखा गया है।

(सम्पादक 'जगत')

शिक्षा का वैदिक ध्येय।

(लेखक— श्रीयुत श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, औंध)

शिक्षा और मानवी उन्नति।

शिक्षा ही मानवी उन्नति का मुख्य साधन है। जिस देश में शिक्षा की कमी होगी वह कभी उन्नति न कर सकेगा। इसी प्रकार जहां शिक्षा विशेष प्रमाण में होगी वह बड़ी ही फुर्ती से उन्नति-पथ पर अग्रसर हो सकेगा। अर्थात् उत्कर्षेच्छुक देश को सबसे प्रथम शिक्षा का प्रचार बढ़ाना चाहिये।

आज कल "राष्ट्रीय शिक्षा" का प्रश्न जोरों पर है। इस प्रश्न का निर्णय करके जितनी ही शीघ्रतासे भारत में "राष्ट्रीय शिक्षा" का प्रसार किया जाय-वह हमारे लिये लाभकारी ही होगा। इस प्रश्न की ओर से बेपर्वाही करना मानों राष्ट्रीय उन्नति के कार्य में ढिलाई करना है। फलतः इस प्रश्न की ओर शीघ्र ध्यान देकर इसका निर्णय करना प्रत्येक देशहितैषी का धर्म है।

राष्ट्रीय शिक्षा पर विचार करते समय यह अवश्यक जान पड़ता है कि हम ऋषि कालीन शिक्षा का स्वरूप समझ लें। वह इस लिये कि भारत, भारत रह कर ही उन्नति कर सकेगा, न कि योरोप अथवा अमेरिका बन कर। अतः ऋषिकालीन उन्नत पुरुषों के लिये उस समय का शिक्षाक्रम क्या था वह जानना आवश्यक है।

ऋषिकालीन विद्याभ्यास।

क्योंकि भारत अपने पूर्व नियमानुसार ही उन्नति कर सकता है। अतः हमें अपने पूर्वज अर्थात् ऋषियों के समय की शिक्षापद्धति पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। छांदोग्य उपनिषद में भगवान सनत्कुमार से नारद ने कहा है कि मैं इतनी विद्याएं जानता हूं-

" स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं, सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराण, पंचमं वेदानां वेद पित्र्यं राशिं दैवं निधिं, वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेव-जनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥२॥ छांदोग्य ७।१

अर्थात्- चारोंवेद, इतिहास, पुराण, निरुक्त, पितृविद्या, गणित, दैवविद्या, अर्थशास्त्र, व्याकरण, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या और सर्पजन-देवविद्या।

फलतः ये इतनी विद्याएं जानते हुए आगे पढ़ने के लिये सनत्कुमार के पास गये तो यह स्पष्ट है, कि सनत्कुमार इससे भी अधिक पढ़ाने के लिये समर्थ थे। कितने ही लोगों के मतानुसार (१) त्रयी-वेद (२) आन्वीक्षिकी-तर्क एवं मानसशास्त्र (३) दण्डनीति-राजनीतिशास्त्र (४) वार्ता (५) आत्मविद्या ये पांच ही विद्याएं उस समय विशेष प्रचलित समझी गई हैं। इन्हीं पांचों के अन्तर्गत अनेक विद्याएं समाविष्ट हो सकती हैं।

अनिवार्य शिक्षा।

आज कल की भांति उस समय विद्याध्ययन के लिये विशेष कष्ट न थी, क्योंकि प्रायः सभी जाति के बालक उस समय सुशिक्षित बनाये गये थे। दासीपुत्र, धीवर पुत्रादि का वेदशास्त्र सम्पन्न होना भी इसी बात की साक्षी देता है। उपनिषद के इस वाक्य पर से उस काल की शिक्षा का पता लग जाता है।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः। छान्दोग्य ५।११।५

अर्थात्— "मेरे राज्य में चोर, कादर, मद्यपी, हवन न करने वाला, अविद्वान, व्यभिचारी और व्यभिचारिणी नाम को भी नहीं हैं।" यह ... अश्वपति राजा ने कही है। इस वाक्य में "न अविद्वान" (मेरे राज्य में मूर्ख कोई भी नहीं) इसके ऊपर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये। मेरे राज्य में सभी पुरुष बालक, बालिकाएं सभी शिक्षित हैं। भला, ऐसा कहना किस राजा के लिये सहज की बात नहीं हो सकती। इसे अतिशयोक्ति मान कर भी यदि आधी जनता को ही सुशिक्षित समझलें तो भी आजकल की एक पंचमांश से कम शिक्षित प्रजा उसके आगे किसी गिन्ती में है। किंतु फिर भी इसे उन्नतशील बीसवीं शताब्दि कह रहे हैं, भला इस आश्चर्य का भी कुछ ठिकाना है? क्या आज कोई राजा महाराजा भी की तरह कुछ कह सकते हैं? अस्तु।

शिक्षा का वैदिक ध्येय।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट प्रगट होता है कि शिक्षा का वैदिक (१) चोरी एवं लूट-पाट विषयक लोक प्रवृत्ति का नियमन (२) अर्थात कादरता या कृपणता हटा कर उसके स्थान पर उदारता वीरत्व का प्रसार (३) मद्यपान का निषेध (४) ... प्रसार (५) व्यभिचार का दूरीकरण (६) और यज्ञादि की ओर लोगों को विशेष प्रवृत्त करना। यह ध्येय राजा ने अपने राज्य में प्रचलित कर रक्खा था। इसीलिये वह वाक्य उच्चारण कर सका है।

यूरोप, अमेरिकादि शिक्षित देश भी जब अभी तक इस ध्येय सिद्ध न कर सके हैं, तब निराश्रित भारत की तो कथा ही क्या! फल चोरी, व्यभिचार, मद्यपान, अशिक्षा आदि का यहां पूरा है, किंतु फिर भी लोग इसे बीसवी शताब्दि का उन्नत भारत रहे है! इसी पर रह रह हमें तरस आता है। निम्न शिक्षा के ध्येय को व्यक्त करता है:—

सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषा...

" अध्ययन किया हुआ ज्ञान हमारी रक्षा करे, वह हमें अन्न दे। ओ! हम सब मिल कर उस ज्ञान के योग से पुरुषार्थ करें। अध्ययन किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो और हम में का द्वेष भाव ... कर दे।" इस मन्त्र में जो शिक्षा का ध्येय कथन किया गया है यह कि (१) स्वावलंबन (२) आजीविका प्राप्ति का (३) पराक्रम दिखाने का उत्साह (४) एकता (५) ... पांच बातों की प्राप्ति शिक्षा द्वारा होनी चाहिये। बस, यही ... का वैदिक ध्येय है।

आधुनिक विश्व-विद्यालयों में जो शिक्षा दी जा... इस ध्येय के अनुसार किस ढंग की है, इसका निर्णय ... ही स्वयं कर सकेंगे। बतलाइये कि, आज का डिग्री... विद्यालय से निकलने वाला कौन सा ऐसा विद्यार्थी है, ... स्वावलम्बन, पराक्रम, तेजस्विता, एकता और अपना नि... कर सकने आदि के पांचों गुण मौजूद हैं? फलतः यह शि... कही जा सकती!

अर्थात् शिक्षा के वैदिक ध्येय में निम्न बातें रखने से उस... हो सकती है.—

(१) मनुष्य की तेजस्विता बढ़े (२) एकता ब... (३) पराक्रम की (शौर्य) वृद्धी हो (४) स्वावलंबन की... जाय (५) निर्वाह का प्रश्न सुगमता से हल होने के उ... जायँ (६) चोरी, ठगी आदि कपटवृत्तियों का उ... (७) उदारता बढ़े (८) मद्यपानादि दुर्व्यसनों की रोक हो, (... व्यभिचारादि दुर्वृत्तियों का निर्दलन कर दिया जाय।

यही शिक्षा का वैदिक ध्येय है और यही राष्ट्रीय-शिक्षा... मन्य बनाया जाने से भारत की सच्ची उन्नति होगी।

इस प्राचीन ध्येय पर विचार कर सब न सही, क... आधुनिक परिस्थिति के अनुसार ही यथाशक्य सुधार कर... क्रम निश्चित किया जाना चाहिये। अधिक न सही, केवल मूल उद्देश्य को ही कम न होने देकर यदि आधुनिक निश्चित किया गया और तदनुसार शिक्षा प्रसार होने लगा, भारत की उन्नति के दिन दूर न समझना चाहिये।

काम न हो सकता होतो, अकेले फ्रान्स को उसके लिये आज्ञा। यदि जर्मनी के लिये कुछ जोड़-तोड़ नहीं लगाया गया तो अकेले फ्रान्स को जर्मनी पर आक्रमण करने के लिये महीने डेढ़ महीने के भीतरही,-आज्ञा दिये बिना इँग्लैण्ड और इटली का काम चल सकेगा। इस काम में अपनी २ सेनाओं को लगा रखने की इच्छा न तो इँग्लैण्ड को है, न इटली को। अब तो उन दोनों को यह पड़ रही है कि, किस यहाँ ऋण मुक्त हो कर हम पुनः पूर्ववत व्यापार करलें और धनवान बन जाँय। यही कारण है कि फ्रान्सकी तलवार चलानेवाली बात इन्हें रुचिकर नहीं प्रतीत होती। किंतु फ्रान्स लगातार इँग्लैण्ड के पीछे यही तकाजा लगा रहा है कि जर्मनी को शीघ्र बुलवा कर जो कुछ निर्णय करना हो फौरन करो। अप्रैल मास की सेनेरिमा परिषद् के बाद मई में 'स्पा' में जर्मन मुसद्दियों को बुलाकर, उनसे प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप में समानता के नाते से जोड़-तोड़ कर के यथार्थ निर्णय करने के आशय से इँग्लैण्ड ने इटली के द्वारा 'स्पा' परिषद के लिये आमंत्रण भी दे दिया गया था। किंतु मई के प्रथम सप्ताह में उनकी ओर से यह उत्तर मिला है कि, इसी महीने में मंत्रिमंडल का नया निर्वाचन होनेवाला है, अत: उसका चुनाव हो जाने के बाद निर्णय के प्रश्न विषयक लोकमत का अनुभव किये बिना, नये मंत्रियों का परिषद् में उपस्थित होना व्यर्थ ही है। जान पड़ता है कि इस चर्चा में ही जर्मनी महीना डेढ़ महीना बितादेगा। किंतु यदि उसकी ओर से इसी प्रकार की टालाटूली की जाती रही तो मई, के अन्त या जून के प्रारंभ में फ्रान्स को अपनी फ्रैंकफोर्टवाली सेना आगे बढ़ानी पड़ेगी, और दक्षिण जर्मनी यानी बव्हेरिया, प्रान्त को हथियाकर जेकोस्लाव और पोलैण्ड से संलग्न होना पड़ेगा। केवल जर्मनी की टालाटूली दूर करने के लिये ही फ्रान्स को यह आक्रमण न करना पड़ेगा, वरन् रशियन बालशेविक और पोलैण्ड के बीच मई में जो लड़ाई छिड़गई है-उसके लिये भी बिना इँग्लैण्ड और इटली की सम्मति लिये फ्रान्स को दक्षिण जर्मनी घेर लेना पड़ेगा। पोलैण्ड और रशिया के बीचवाली यह लड़ाई कदाचित जर्मनी के लिये विशेष लाभकारी सिद्ध हो सकने की संभावना रहने से, बिना इसका पूरा २ रंग ढंग देखलेने तक जर्मनी मित्रसर्कार से ही टालाटूली करता रहेगा। यह एक प्रगट बात है। इस युद्ध से जर्मनी को जरा भी लाभ न पहुँचने देने के आशय से, नाममात्र के लिये इस प्रकार के चिन्ह दृष्टिगोचर होने ही फ्रान्स की फ्रैंकफोर्ट वाली सेना बव्हेरिया प्रान्त की उत्तरी सीमा पर ठहर कर जेकोस्लाव और पोलैण्ड के पक्ष से आगे बढ़ने की हलचल दिखाये बिना न रहेगी। पोलैण्ड और रशिया के बीच की इस लड़ाई के कारण जर्मनी टाला टूली करती होगा और उसके लिये फ्रान्स की सहायता नहीं पड़ेगी, इसी बात पर अब हम विचार करते हैं। मार्च में पोलैण्ड और रूस की सेना के बीच [illegible] की ओर कुछ लड़ाइयाँ होती रही और उसमें पोलैण्ड को सफलता प्राप्त हुई थी। मिन्स्क [illegible] [illegible] ... [illegible] है। उत्तर की ओर बाल्टिक समुद्र से लगाकर [illegible] तक, [illegible] [illegible] ... [illegible] है, वह भी [illegible] [illegible] ... [illegible] का प्रान्त दलदल युक्त है। मार्च महिने में मिन्स्क की विजय प्राप्त होने के बाद अपनी सीमा को और आगे बढ़ाने की पोलैण्ड की इच्छा हुई, किंतु उसी सन्धीमें डेनिकन वाली गड़बड़ हो जानेसे मित्र-सर्कार ने उसे सम्मति दी कि, अब तुम रशियन बालशेविकों से सन्धी करलो। उस समय पोलैण्ड को फ्रान्स एवं इँग्लैण्ड की ओर से गोली बारूद शस्त्रास्त्र एवं आर्थिक सहायता पूरे प्रमाण में मिली थी। डेनिकन की ही तरह पोलैण्ड को भी सहायता पहुँचाई गई थी। किंतु पोलैण्ड की तैयारी होने के पूर्व ही डेनिकन का पराभव हो गया, तब सब की यही राय ठहरी कि, इसी मार्च में पोलैण्ड
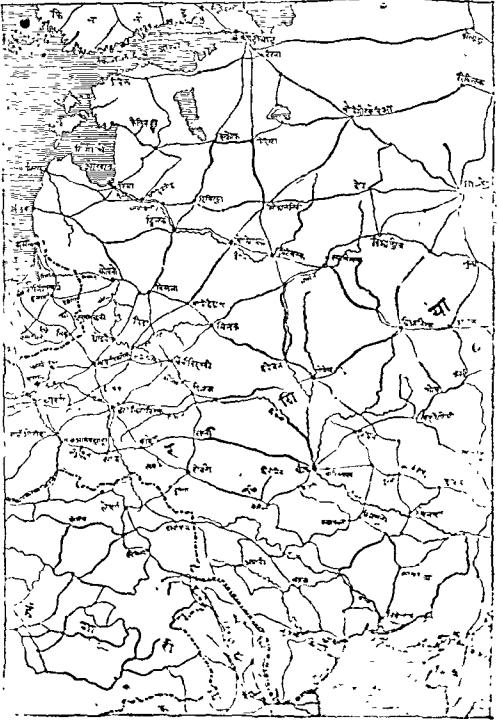
बालशेविकों से सन्धी करले। इस सन्धि की बात मार्च-अप्रैल में किसी हद तक चल रही थी कि, इसी बीच युक्रेन ने एक नई बात [illegible] किया। पोलैण्ड और [illegible] के बीच [illegible] जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार युक्रेन स्वतंत्र कर दिया गया था। किंतु फिर [illegible] की इच्छा हुई कि युक्रेन [illegible] से अलग न होने पावे! [illegible] युक्रेन तथा बालशेविकों के बीच लड़ाई छिड़ गई। यह लड़ाई [illegible] [illegible] ... [illegible] इस [illegible]

कर्मफल।

—⟫⟪—

(लेखक—श्रीयुत " विमल ")

ब घर में हमारा रहना कठिन सा प्रतीत होता है, नारायण बाबू !"

नारा०—" क्यों श्याम बाबू ? "

श्याम०—" इसीलिये कि अब झारखण्डी का व्यवहार मेरे साथ अच्छा नहीं होता।"

नारा०—" हैं ! यह क्या। झारखण्डी तो आप को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था न ? "

श्याम०—हां पहले तो ऐसा ही था, किन्तु अब यह बात नहीं है।"

नारा०—" क्यों ? "

श्याम—" इसका यथार्थ उत्तर तो वही दे सकेगा। मैं तो यही अनुमान करता हूं, कि अब मेरी नौकरी छूट गयी और आँख में मोतिया पड़ जाने से मैं बिलकुल बेकार सा होगया हूं। मल्लिका की माता (श्याम की धर्म पत्नी) भी स्वर्गीया होगयी। मेरी ओर से काम करने वाला सो कोई रहा नहीं। बेकार हम लोगों को कोई भोजन वस्त्र क्यों देने लगा? तिस पर भी अब मल्लिका विवाह के योग्य होगई है, अतः यह सब खर्च भी तो उसी के सिर पड़ेगा।"

नारा०—इससे क्या ! आज वही किसकी कृपा से मनुष्य हो पाया है ? जन्म लेते ही तो माता पिता को डकार बैठा था। यदि मल्लिका की माता नहीं रहती तो यह कब का मर गया होता। उसी ने तो अपना दूध पिला कर पुत्र के समान इसका पालन किया था।"

श्याम—" यह सब आज कौन देखने आता है। उसकी स्त्री तो और भी कुढ़े दिल की है, बात बात में मल्लिका को खरी खोटी सुनाया करती है। बेचारी जहां तक कर सकती है घर के कार्यों को सम्हालती है। चौका बर्तन करने के अतिरिक्त उसके बच्चों का मल मूत्र साफ करना भी उसका दैनिक कार्य है। लेकिन इस पर भी यह कभी भली बात नहीं सुनपाती है।" रात को भी मेरे निकट आकर यह रोई, न मालूम झारखण्डी ने उसको क्यों डांटा था ! "

नारायणबाबू—" झारखण्डी भी निरा बेवकूफ़ है जान पड़ता है। क्या यह स्त्री की बात ही को वेद वाक्य समझता है? "

श्यामबाबू—" आप का अनुमान ठीक है। कल उसकी स्त्री ने भी मल्लिका को डण्डे से मारा था, अगर वहीं हट न जाती तो खोपड़ी ही फट जाती।"

नारायणबाबू—ऐसी अवस्था में तो आप को उससे अलग ही रहना चाहिये। कहीं क्रोध में आकर यह आप का सर्वनाश न करदे।"

श्यामबाबू—" मेरा सर्वनाश होने में शेष रहा ही क्या है? किसी प्रकार मल्लिका का कन्यादान हो जाय कि, बस मैं तो गंगा नहाया। अब आज ही मैं झारखण्डी से अलग ही रहूंगा। मेरे लिये उसको रुपये व्यय उठाना पड़ता है।"

नारायणबाबू—" आप अलग होकर कहां, और कैसे रहेंगे ! आंखें भी तो बिलकुल बिगड़ गयी हैं ! "

श्याम०—" जहां और जैसे ईश्वर रक्खे।"

(२)

[illegible]पुर, दामोदर नद के [illegible] तट पर एक छोटा सा गांव है, [illegible] कान्तिबाबू नामक [illegible] पुरुष निवास करते थे। [illegible] बाबू साहब के [illegible] ही बाबूजन [illegible] की सहायता उन्होंने [illegible] हाथ से [illegible] भी कर दिया था। [illegible] [illegible] का [illegible] नहीं [illegible] है। क्योंकि [illegible] अधिक [illegible] का [illegible] करता है। लोगों के अधिक [illegible] बाहर नहीं [illegible]। [illegible] की सहा- [illegible] लगे। [illegible] [illegible] करते थे। [illegible] कोई निराश होकर विमुख नहीं जाता था। यही कारण था कि वृद्धावस्था में उनकी सब सम्पति महाजनों के हाथ में चली गयी थी। कान्तिबाबू को दो पुत्र थे। बड़े रेलवे विभाग में दो सौ रुपया मासिक वेतन पर कार्य करते थे, और छोटे लड़के दानापुर के जमींदार के यहां तीस रुपये पर क्लर्क थे। कांतिबाबू ने अपने बड़े लड़के शशिनाथ का हाथ छोटे पुत्र को सौंप अपनी भवलीला संवरण करली।

पिता के स्वर्गीय हो जाने पर शशिबाबू पर ही घर का सब भार पड़ गया। नौकरी के अतिरिक्त उनको कुछ स्थायी सम्पति नहीं थी। पिता के प्रथम ही उनकी माता स्वर्गीया हो चुकी थी। यही कारण था कि शशिबाबू के घर की अवस्था सुधरने नहीं पाती थी। क्योंकि उनकी धर्मपत्नी तथा अनुज वधु गृह कार्यों में उतनी दक्ष नहीं थीं।

बन्धुद्वय तो दिन को अपने कार्य पर चले जाते और इधर उन दोनों की धर्मपत्नियाँ घर का काम सम्हाला करती थीं। उन दोनों में अपूर्व प्रेम था। मिलजुल कर सब कामों को किया करती थीं। उधर दोनों भाइयों में भी बड़ा प्रेम था। शशिनाथ श्याम की सम्मति लेकर ही सब काम करते थे।

(३)

शशिनाथ को कई पुत्र हुए, लेकिन जन्म होने की बाद दो तीन दिन से अधिक एक भी नहीं रहा। इस कारण वे, और विशेष कर उनकी पत्नी विनोदिनी दोनों बहुत दुखी रहते थे। इसका दुख श्याम और उनकी स्त्री देवकी को भी कम नहीं था। लेकिन ईश्वर के आगे किसका वश चल सकता है। अनेक यत्न करने पर भी विधि-विधान नहीं टलता। सुख दुख के साथ उन लोगों की जीवनयात्रा भी और किसी तरह तैर होती जारही थी। कुछ दिनों के बाद देवकी ने पुत्र प्रसव किया। इस शुभ समाचार से शशिनाथ तथा विनोदिनी आनन्द से फूले न समाये, लेकिन ईश्वर को यह भी मन्जूर नहीं हुआ। जन्म के छः ही महीने बाद देवकी का नवजात पुत्र रत्न भी संसार से उठ गया। इस भीषण वज्रपात से शशिबाबू का हृदय चूर हो रहा था। किसी ने सच कहा है कि, दुख अकेले नहीं आता है। उसी समय विनोदिनी को फिर एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ, लेकिन वह प्रसूतावस्था में ही संसार से चल बसी। सब पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा, किन्तु उन सब दुखों को सहते हुए भी देवकी ने उसके पुत्र का प्रेम से लालन पालन किया। ईश्वर की लीला भी विचित्र है। विनोदिनी का यह पुत्र उत्तरोत्तर बढ़ता गया, उसका शरीर बड़ा ही हृष्ट पुष्ट था, उसे देख कर कोई नहीं कह सकता कि यह बिना माँ का है। देवकी उसे देख कर अपने पुत्र के मरने की बात बिलकुल भूलसी गयी, उसी का प्रेम से प्रतिपालन करने लगी। विनोदिनी के स्वर्गीया होने के पांच वर्ष बाद शशिनाथ बाबू भी [illegible] की शिकार होगये। इस प्रकार भाई के स्वर्गीय होजाने से श्यामबाबू अत्यन्त दुखी हुए। वर्षों तक पागल की भांति इधर उधर भटकते रहे। जमीन्दार साहब ने एक वर्ष की छुट्टी लेली थी, लेकिन इस प्रकार इधर उधर भटकने से चित्त में वही अशांति [illegible] थी। [illegible] भाई के पुत्र रत्न को देख देख कर उन्होंने बन्धुवियोग का दुख भूलने की चेष्टा की, और पुनः अपने कार्य को पूर्ववत् करने लगे। [illegible] ने भ्रातृ पुत्र का नाम झारखण्डी रक्खा था।

(४)

शशिनाथबाबू को स्वर्गीय हुए आज बीस वर्ष बीत गये। [illegible] झारखण्डी की अवस्था पचीस वर्ष की होगई। श्यामबाबू ने इसे [illegible] पढ़ाने की बहुत चेष्टा की, किन्तु इन्ट्रेंस परीक्षा में [illegible] बार वह आगे नहीं बढ़ सका। वह कुछ दिन के लड़कों से [illegible] होगया था। श्यामबाबू ने देखा कि अब यह आगे नहीं बढ़ सकता [illegible] इसलिये कोई कार्य ही इसको सीखना अच्छा है। फलतः अपने [illegible]

से कह सुन कर उन्होंने उसे बीस रुपये महीने पर क्लार्क का पद दिलवा दिया।

श्यामबाबू अब वृद्ध होगये थे, दिनों दिन अबलता बढ़ती जाती थी। सन्तान तो उनकी कोई बचती ही नहीं थी। अन्तिम बार की एक कन्या मल्लिका को सौंप उनकी धर्मपत्नी देवकी ने भी उनका साथ छोड़ दिया था। घर में अकेली पांच वर्ष की कन्या मल्लिका माता के लिये बिलख बिलख कर रोया करती थी। यद्यपि श्यामबाबू ने झारखण्डी का विवाह करा दिया था, लेकिन उसकी पत्नी अभी तक घर नहीं आती थी। जब से झारखण्डी की स्त्री 'मेदनी' श्यामबाबू के घर आई है, तब से मल्लिका उसके साथ रह कर माता की सुध भूलने लगी है। धीरे २ मल्लिका तेरह वर्ष की होगई और उधर मेदनी को भी दो तीन लड़के लड़की होचुके। श्यामबाबू ने आंख में मोतिया पड़ जाने से अपनी नौकरी छोड़ दी, अब वह जगह उनके भ्रातृ-पुत्र झारखण्डी को मिली है। कुछ दिनों तक तो इन सबों में प्रेमभाव रहा, किन्तु फिर नित्य कुछ न कुछ खटकने लगा। जब से देवकी को अपना पुत्र हुआ, तभी से वह मल्लिका को आंख के कांटे की भांति समझने लगी। वह सदा उसे खरी खोटी सुनाया करती थी। ज्यों २ मल्लिका की उम्र बढ़ती जाती थी, त्यों २ झारखण्डी के सिर का बोझ भी भारी होता जाता था। यद्यपि चचा के डर से वह कुछ बोलता तो नहीं था, लेकिन आंखें तनी और भवें चढ़ी ही रहती थी। अन्त को विवश होकर श्यामबाबू को अलग होजाना पड़ा।

(४)

यामबाबू की अवस्था पर उनके मित्र बाबू नारायण प्रसादजी को बड़ी दया आई। श्यामबाबू ने एकही नहीं अनेकों बार उनको दुःखावस्था में सहायता दी थी, उन सब बातों का स्मरण कर नारायण बाबू ने उनकी सहायता करने की ठानी। इधर इनकी आर्थिक अवस्था भी अच्छी होगई थी। सब बातों का ठीक-ठाक कर के उन्होंने योगीपुर के जिमीन्दार ललित नारायण के पुत्र चन्द्रानन से मल्लिका का पाणिग्रहण करा दिया। मल्लिका जैसी रूप गुणसम्पन्न बालिका बहुत कम देखी जाती है। लड़की ही के रूप गुण पर मुग्ध होकर जिमीन्दार साहब ने अपने पुत्र का विवाह निर्धन के घर किया था। विवाह में जितना खर्च हुआ सब नारायणबाबू ने दिया था। लेकिन अब यह बात श्यामबाबू के जिमीन्दार साहब को ज्ञात हुई कि, झारखण्डी ने इस में कुछ खर्च नहीं दिया है, तो उन्हों ने श्यामबाबू को लड़की के विवाह का कुल खर्च और जीवन भर के लिये २०) बीस रुपया मासिक वेतन देकर अलग रहने का प्रबन्ध कर दिया, और झारखण्डी को बड़ी डांट डपट सुनाई।

थोड़े दिनों के बाद ही झारखण्डी ने भी पिता माता को मिलने की इच्छा से संसार छोड़ दिया। वृद्ध श्यामबाबू पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा, रोते कलपते वे भी मरणासन्न होगये। झारखण्डी के बच्चे तथा देवकी अब दाने २ को तरसने लगे। क्योंकि झारखण्डी ने जो कुछ कमाया सब खर्च कर दिया था, स्थायी सम्पति कुछ भी नहीं थी। अन्त को श्यामबाबू ने ही उन्हें अपने साथ कर लिया, और उसी बीस रुपये से किसी न किसी रूप में सब खर्च चलते रहे।

कृष्णा-भीष्म-सम्वाद।

(कवि—श्रीयुत पं० बबूरामजी बिरथरिया।)

[मनुष्य पर कुधान्य का प्रभाव]

१

मणि पुष्प सब धारण किये।
कर पुष्प सौरभित लिये॥
पर भीष्म शर-शय्या समाविष्ट हैं वहीं।
श्रीकृष्ण युत पाण्डव सभी।
थे धर्मवक्ता [illegible] सभी॥
बैठे, महाभारत समाप्त हुये जहां॥

२

[illegible]
[illegible]
हैं [illegible] उपदेश देते [illegible]।
[illegible]
[illegible]
[illegible] भीष्म के [illegible]॥

३

व्याख्या रहे वर धर्म की।
रचना समान कर्म की॥
बहु प्रेम युत सानन्द [illegible] से।
न रहा कुमति का नाम था।
[illegible] का नहिं काम था॥
हैं मुग्ध [illegible] भक्ति श्रद्धा [illegible] से॥

४

कृष्णा लगी हँसने लगी।
[illegible] लगी॥
[illegible]।
[illegible] हुये।
[illegible] हुये॥
[illegible]॥

५

आया न उनको क्रोध था।
बस भीष्म का अनुरोध था॥
बेटी! बता कारण हमें इस हास का!
कर जोड़ उत्तम रीतिसे।
पंकज मिला दो प्रीत से॥
कारण लगी कहने सभी उपहास का।

६

वर धर्म धारी धीर हैं।
योधा सभी में वीर हैं॥
बस रण विशारद आप ही शिरमौर हैं।
संदेह पर होता यही।
पढ़ती कहावत है यही॥
'राज रह लम्बाने और, भाने और है॥'

७

करके क्षमा सुननीतिये।
मन धृष्टता चित दीजिये॥
हूं दासिनी कुल की तुम्हारे सर्वदा।
विस्मय यही मैं दिलभुना।
[illegible] को यदि हूं सुना॥
सब मोम [illegible] भूलकर निज [illegible]॥

८

[illegible] पाण्डव [illegible]।
कटु वचन जब सुनने [illegible]॥
[illegible] दुर्योधन की सभा।
[illegible]।
[illegible]॥
बैठे [illegible] भी [illegible]॥

९

[illegible]।
[illegible]॥

सार्वजनिक सभा पूना का अर्धशत् साम्वत्सरिक उत्सव ।

सबके पीछे खड़े हुए — श्री. हरिभाऊ फाटक, २ डा. पटवर्धन, ३ श्री. भट, ४ अतूकाका फडनवीस।

दूसरी पंक्ति—१ श्री. ज. स करंदीकर, २ श्री. फाटक, ३ श्री. जोशी, ४ श्री. टोकेकर, ५ श्री वि वा जोशी, ६ श्री. तुळपुळे, ७ डा. साठे, ८ श्री. तळवलकर, ९ श्री वझे।

तीसरी पंक्ति बैठे हुए—१ श्री मुरडकर, २ श्री. सेठ बालूभाई, ३ श्री. खी. के दामले, ४ श्री प्रो. शिवराम महादेव परांजपे, ५ लो॰ तिलक, ६ श्री॰ नरसिंह चिंतामण केलकर, ७ श्री सेठ गोकुलदास, ८ श्री. कृ प्र खाडिलकर, ९ श्री॰ पोतदार।

चौथी पंक्तिः—१ श्री फुले, २ श्री. लवाटे, ३ म. म. मराठे, ४ डा लोहोकर, ५ वैद्यपंचानन कृष्णशास्त्री कवडे, ६ श्री॰ कुलकर्णी, ७ श्री. ल॰ ब. भोपटकर, ८ श्री. दा वि. गोखले, ९ श्री. पटवर्धन।

यह सारी मंडली ही पूने का राष्ट्रीय समाज है। लोगों की दाद सरकार के कान पर डाल कर प्रत्येक प्रश्न पर निर्भयतापूर्वक अभिमत प्रगट करने के निमित्त स्थापित की हुई, इस सभा का ५० वाँ वार्षिकोत्सव ता॰ २३ मार्च को सानंद मनाया गया। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की स्थापना होने से पूर्व ही पूने में इस सभा का जन्म हो चुका था। इस सभा ने आज तक अनेकानेक महत्त्व के प्रश्नों पर लोकमत प्रगट करने का काम कर दिखाया है। विगत वर्षों में पूने के प्रायः सभी ख्यातनामा व्यक्तियों का इस सभा के साथ सम्बन्ध रहा है। सभा के आज तक के संचालक और आश्रयदाताओं के चित्र जो कि सभाभवन में इकट्ठित किये जा चुके हैं, उनके दर्शन मात्र से ही इसकी महत्ता एकदम प्रगट हो जाती है। इस बार के उत्सव के उपलक्ष में सभा के मंत्री ने एक मराठी और दूसरी अंग्रेजी पुस्तक प्रकाशित की है, जिस में सभा का नवीन और प्राचीन इतिहास एवं अन्य कई महत्वपूर्ण लेख और चित्र संग्रह कर दिये गये हैं। पुस्तक का मूल्य एक रुपया रक्खा गया है। इसी उत्सव के प्रसंग पर कै॰ न्यायमूर्ति रानडे के तैल-चित्र का उद्घाटनोत्सव भी हुआ। यह चित्र श्री॰ रमाबाई रानडे ने अपने पतिदेव के स्मरणार्थ यहां के प्रसिद्ध चित्रकार श्री. त्रिवलकर से तैय्यार करवा कर सभा को अर्पित किया है।

सोलापूर प्रान्तिक परिषद।

स्वयंसेवकों सहित लोकमान्य तिलक एवं परिषद के अध्यक्ष नरसिंह चिन्तामण केलकर आदि।

धारवाड़ में प्रथम कर्नाटक परिषद् ।

इसी अप्रैल में यह परिषद् कई विशेषताओं को लेकर हो गई । कर्नाटक प्रांत दस बारह भाग में बाँट दिया जाने के कारण वहाँ पर एकता नहीं थी ? किन्तु आन्ध्र परिषद, गुजरात परिषद अथवा बंगाल परिषद की ही तरह कर्नाटक परिषद की योजना करके कन्नड़ी भाषा के आत्मपुत्रों में ए... करना आवश्यक और शक्य एवं व्यवहार्य सिद्ध करके प्रत्यक्ष उसका अनुभव करा देने के लिये इस परिषद के कार्यकर्ता धन्यवाद के पात्र कहे जा सकते ... सर्वमान्य हो चुका है कि, भाषावार प्रान्तों की रचना ही भारत की उन्नति के लिये आधारभूत तत्व है। तब कर्नाटकीय जनता के इस उपक्रम पर श्रद्धा ... की जा सकती है । इस बार इस के सभापति दिवान बहादुर व्ही. पी. माधवराव जैसे महापुरुष चुने गये थे । आपकी कांग्रेस डेपुटेशन के साथ ... कर्तव्यदक्षता सर्वश्रुत है । ऐसे नेता के श्रम और कर्नाटक प्रान्त की नैसर्गिक अनुकूलता एवं साम्पत्तिक परिस्थिति के ...

सार्वजनिक सभा पूना का अर्धशत् साम्वत्सारिक उत्सव ।

सबके पीछे खड़े हुए — श्री. हरिभाऊ फाटक, २ डा. देशमुख, ३ श्री. भट, ४ अंतूकाका फड़नवीस ।

दूसरी पंक्ति —१ श्री ज. स करंदीकर, २ श्री. फाटक, ३ श्री. जोशी, ४ श्री. टोकेकर, ५ श्री. वि. वा जोशी, ६ श्री. गुरुजुने, ७ डा. साठे, ८ श्री. लवलकर, ९ श्री. बर्वे ।

तीसरी पंक्ति बैठे हुए.—१ श्री मुरडकर, २ श्री. सेठ लालूभाई, ३ श्री. बी. के दामले, ४ श्री प्रो शिवराम महादेव परांजपे, ५ लो० तिलक, ६ श्री० नरसिंह चिंतामण केलकर, ७ श्री सेठ गोकुलदास, ८ श्री. कृ. प्र खाडिलकर, ९ श्री० पोतदार ।

चौथी पंक्तिः—१ श्री कुले, २ श्री. लवाटे, ३ म म. मराठे, ४ डा. लोहोकर, ५ वैद्यंचानन कृष्णशास्त्री कवड़े, ६ श्री० कुलकर्णी, ७ श्री. स० ब भोपटकर, ८ श्री. दा. वि. गोखले, ९ श्री. पटवर्धन ।

यह सारी मंडली ही पूने का राष्ट्रीय समाज है । लोगों की दाद सरकार के कान पर डाल कर प्रत्येक प्रश्न पर निर्भयतापूर्वक अभिमत प्रगट करने के निमित्त स्थापित की हुई, इस सभा का ५० वाँ वार्षिकोत्सव ता० २३ मार्च को सानंद मनाया गया। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की स्थापना होने से पूर्व ही पूने में इस सभा का जन्म हो चुका था। इस सभा ने आज तक अनेकानेक महत्व के प्रश्नों पर लोकमत प्रगट करने का काम कर दिखाया है। विगत वर्षों में पूने के प्रायः सभी ख्यातनामा व्यक्तियों का इस सभा के साथ सम्बन्ध रहा है। सभा के आज तक के सभासद और अध्यक्षों के चित्र जो कि सभाभवन में इकट्ठित किये जा चुके हैं, उनके दर्शन मात्र से ही इसकी महत्ता एकदम प्रगट हो जाती है। इस बार के उत्सव के उपलक्ष में सभा के मंत्री ने एक मराठी और दूसरी अंग्रेज़ी पुस्तक प्रकाशित की है, जिस में सभा का वर्तमान और प्राचीन इतिहास एवं अन्य कई महत्वपूर्ण लेख और चित्र संग्रह कर दिये गये हैं। पुस्तक का मूल्य एक रुपया रक्खा गया है। इसी उत्सव के प्रसंग पर कै० न्यायमूर्ति रानडे के तैल चित्र का उद्घाटनोत्सव भी हुआ। यह चित्र श्री० रमाबाई रानडे ने अपने पतिदेव के स्मरणार्थ यहां के प्रसिद्ध चित्रकार श्री. [illegible] से तैयार करवा कर सभा को अर्पित किया है।

सोलापूर प्रान्तिक परिषद ।

[illegible]

धारवाड़ में प्रथम कर्नाटक परिषद।

इसी अप्रैल में यह परिषद कई विशेषताओं को लेकर हो गई। कर्नाटक प्रांत दस बारह भाग में बाँट दिया जाने के कारण वहां पर एकता की संभावना प्राय
सोही थी ? किन्तु आंध्र परिषद, गुजरात परिषद अथवा बंगाल परिषद की हां तरह कर्नाटक परिषद की योजना करके कनड़ी भाषा के आत्मपुत्रों में एकता की भावना
करना आवश्यक और शक्य एवं व्यवहार्य सिद्ध करके प्रत्यक्ष उसका अनुभव करा देने के लिये इस परिषद के कार्यकर्ता धन्यवाद के पात्र कहे जा सकते हैं। अब यह
सर्वमान्य हो चुकी है कि, भाषावार प्रान्तों की रचनाही भारत की उन्नति के लिये आधारभूत तत्व है। नव कर्नाटकीय जनता के इस उपक्रम पर यहाँ की उन्नति की म.
की जा सकती है ? इस वार इस के सभापति दिवान बहादुर व्ही. पी. माधवराव जैसे महापुरुष चुने गये थे। आदकी कांग्रेस डेपुटेशन के साथ विलायत में दिखाई
कर्तव्यदक्षता सर्वश्रुत है। ऐसे नेता के श्रम और कर्नाटक प्रान्त की नैसर्गिक अनुकूलता एवं साम्पत्तिक परिस्थिति के योगसे इस की उन्नति होने में विशेष दिन न लगेंगे।

किंग एडवर्ड मेमोरियल हॉस्पिटल रास्ता पेठ, पूना सिटी।

यह अस्पताल केवल स्त्रियाँ और बच्चों के लिये है। इसमें निःशुल्क औषधि दी जाने के
अतिरिक्त गरीब एवं साधारण श्रेणी की स्त्रियों के लिये "प्रसूति" कार्य भी किया जाता है।
संस्था दान के लिये उपयुक्त कही जा सकती है। धनिक लोक यथाशक्ति सहाय करें।

महात्मा श्री० केशवानन्द।

साईंखेड़ा जिला नरसिंहपुर (सी० पी०)...
ये महात्मा जी कई दिनों से आये हुए हैं। ...
जाता है कि, आप एक अवधूत हैं। ...
हजारों की संख्या में लोग आपके दर्शनार्थ ...
चुके हैं। नित्यप्रति आपके आश्रम में ...
भीड़ रहती है। कई लोगों के दुख दर्द ...
आपने मेट दिया है। इस महात्माजी ...
साईंखेड़ा के सैय्यद कासिम अली ने ...
की कृपा की है। भावुक जनों को अवश्य ...
स्वामीजी के दर्शन का लाभ उठाना चाहिये ...

जिस को शैव लोग शिव कह कर उपासना करते हैं, वेदान्ती जिसे ब्रह्म करके मानते हैं, बौद्ध लोग जिसे बुद्ध समझते हैं, प्रमाण कुशल नैयायिक जिसे कर्ता बतलाते हैं, जैन धर्मानुयायी जिसे अर्हन् कह कर पूजते हैं, मीमांसक जिसे कर्म मानते हैं, वह त्रैलोक्य पालक भगवान् हमारी मनोकामना सफल करे।

इसी प्रकार आदि-नाम स्तोत्र में कहा गया है कि —

> बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्
> त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात्।
> धाताऽसि धीरशिव मार्ग विधेर्विधानात् ॥१॥

महाज्ञानी लोग जिसे बुद्ध रूप से सम्बोधन करते हैं, वह त्रिभुवन कल्याणकारी शंकर स्वरूप तू ही है। इस पर से यह व्यक्ति अर्हन् नहीं वरन् परमेश्वर सिद्ध होता है। जिस प्रकार कि "न वै वेदाः प्रलीयन्ते महाप्रलयेऽपि" महाप्रलय में वेद नष्ट नहीं होते। इस प्रकार जहां त्रिकालाबाधित सिद्धान्त है, वहां वेदोक्त अर्हन् मत को भी ज्ञान रूप से त्रिकालाबाधित मानने में कोई रुकावट नहीं जान पड़ती। अस्तु। अब देखिये कि जैन धर्म के प्रथम उपदेशक तीर्थंकर ऋषभ देव के विषय में हमारे ऋग्वेद के आठवें अष्टक में क्या कहा गया है:—

> ऋषभं मासमानानां सपत्नानां विषासहितं।
> हंतारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपितं गवाम् ॥ऋग्वेद अष्टक ८.अ.२४.

यद्यपि सायणाचार्य ने इस मंत्र की व्याख्या करते हुए जैनधर्म के ऋषभ नामक तीर्थंकर का कहीं उल्लेख नहीं किया है, तथापि इस मंत्र में जैनधर्मोपदेशक ऋषभदेव वाचक ऋषभ शब्द को न मानना केवल दुराग्रह ही होगा। क्योंकि उस अर्थ का सूक्ष्म रीति से अवलोकन करने पर "हे रुद्ररूपी (रोदयतीति रुद्र =कर्मनाश- करनेवाला रुद्र) परमेश्वर तू अर्हन् नामक आदि पुरुष बन कर मुझे (मा) समानानां अर्थात् हम जैसे कुलीनों में विशाल ऋषभरूपी देवता को उत्पन्न कर। और वह विशेष रूप से शत्रुओं का नाश करनेवाला हो (अर्थात् वह कामक्रोधादि षड्रिपुओं का दमन करनेवाला बना)। रुद्रगण में के इस प्रथम सच्चिदानन्द 'अर्हन्' रूपी परमात्मा की प्रार्थना कर, स्वयं 'अर्हन्' रूप में ही जैनधर्म के प्रथमोपदेशक ऋषभ के उत्पन्न होने की बात उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट सिद्ध होती है। इसी प्रकार आदिनाथ तीर्थंकर (ऋषभदेव) का वर्णन कुछ स्मृतियों में भी पाया जाता है।

> अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्।
> श्रीआदिनाथ देवस्य, स्मरणेनापि तत्फलम् ॥

यह श्लोक हाल की छपी हुई मनुस्मृतियों में तो नहीं मिलता, किंतु प्राचीन प्रतियों में अवश्य पाया जाता है। जान पड़ता है कि, जैन लोगों के विषय में द्वेषबुद्धि रखनेवाले लोगों ने ही जान बूझ कर इस श्लोक को निकाल दिया है। फलतः जिस आशय से यह श्लोक निकाल दिया गया है—वह आदिनाथ, जैनियों का प्रथम तीर्थंकर ही होना चाहिये। इस श्लोक पर से स्पष्ट सिद्ध होता है कि, जैन धर्म का अस्तित्व मनुस्मृति से पूर्व रहने विषयक जैनियों का सिद्धान्त युक्तिसंगत है।

जिस प्रकार हमारे यहां विष्णु के दश अवतार क्षत्रियों में माने गये हैं, उसी प्रकार ये तीर्थंकर भी क्षत्रिय कुलोत्पन्न हैं। क्षत्रिय कुल में इस प्रकार के महापुरुषों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि तत्कालीन दुष्ट प्रकृति को राज्यसत्ता द्वारा अवरोध कर उसे उचित मार्ग पर लगा देने की शक्ति क्षत्रियों में ही थी। अस्तु।

इसी प्रकार ऋग्वेद में और भी एक स्थान पर कहा गया है —

> स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
> स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
> ऋग्वेद प्रथमाष्टक अ. ६ व. १६

अर्थ—"वृद्धश्रवा (अत्यंत बहुश्रुती के लिये उपयुक्त) जो इन्द्रदेव है, वह हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे। विश्ववेदा (सर्व पदार्थों का ज्ञाता) और पूषा (अर्थात् पोषक परमात्मा) हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे। तार्क्ष्य-अरिष्टनेमि (संसार सागर को पार कर जाने में समर्थ) ऐसा जो अरिष्टनेमि तीर्थंकर है वह हमारा कल्याण करे। बृहस्पति (सम्यक् [illegible] पालक) परमात्मा ([illegible] दयालु) हमारा कल्याण करे।" इस मंत्र में भी संसार रूपी [illegible] नहीं पहुँचा सकता अर्थात् जो जैन [illegible] है, वही अरिष्टनेमि हो सकता है। अरिष्टनेमि शब्द का अर्थ सायणाचार्य ने 'नेमि [illegible] अरिष्ट [illegible]' [illegible] द्वारा स्पष्ट सिद्ध किया है। किंतु हम इससे सहमत नहीं। वास्तविक अरिष्टनेमि शब्द जैन धर्म के तीर्थंकर का ही बोधक है।

यह शब्द ऋग्वेद और यजुर्वेद में कई स्थान मिलता है, [illegible] अरिष्ट नेमि का वास्तविक अर्थ हिंसा निवारण करनेवाला नेमि-अर्थ आयुध-फलत जैन संन्यासी अहिंसा निवारण के लिये बगल में कपड़े का जो आयुध (जिसमें एक डण्डे पर कपड़ा चढ़ा हुआ और सिर पर बारीक धागों का भारी गुच्छा रहता है) रखते हैं उसका वाचक है। और जिस तीर्थंकर के समय से उस आयुध के रखने की प्रथा चली है; उसी का नाम अरिष्टनेमि हुआ है। तथा उसी अरिष्टनेमि के धर्मात्मक-अर्थात् प्राणी संरक्षण करने के लिये अस्त्र धारण करने का उपदेश देनेवाला साक्षात् ईश्वर रूपी तीर्थंकर हमारी रक्षा करे। इस प्रकार उपरोक्त वेद मन्त्र में स्तुति की गई है। यह मंत्र यजुर्वेद में जहां कहा गया है, वहां उव्वटाचार्य ने अरिष्ट नेमि का अर्थ 'अनुपाहिंसितानाः' (जिसके कारण प्राणियों की हिंसा नहीं होती) अर्थात् अहिंसा का उपदेशक किया है। फलतः यह अर्थ भी जैन धर्म के तत्वों की पुष्टि करता है।

और भी ऋग्वेद में अरिष्ट नेमि शब्द का उल्लेख देखिये—

> त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम्।
> अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहाहुवेम ॥ ऋ० अ.म.व.३६

इस मंत्र में भी अरिष्ट नेमि एक तीर्थंकर का ही नाम है, और इस का अर्थ भी अरिष्ट अर्थात् अहिंसा पालने के लिये जो नेमि अर्थात् आयुध धारण किया जाता है, वह अरिष्ट नेमि अर्थात् कक्ष में उपरोक्त आयुध रखने की प्रथा डालनेवाला, अथवा इसी अरिष्ट नेमि तीर्थंकर के समय से यह प्रथा चली हो-इस प्रकार का होता है।

शिव पुराण में उपरोक्त आयुध धारण करनेवाले जैन साधु का वर्णन पाया जाता है।

> मुंडं मलिन वस्त्रं च कुंडी पात्र समन्वितं
> दधानाः पुंजिका हस्ते चालयंतः पदे पदे ॥
> हस्ते पात्रं दधानाश्च तुंडे वस्त्रस्य धारकाः।
> मलिनान्येव वासांसि धारयंतोऽल्प भाषिणः ॥

अर्थात्:—मुंडन किये हुए, मलिन वस्त्र, कमण्डलु युक्त, हाथ में पुंजिका धारण करने वाले, रास्तों में घूमने वाले, हाथ में पात्रादि धारण किये हुए, मुंह पर कपड़ा बांधे, अल्पभाषी, मलिन वस्त्र धारण करने वाले जैन साधु हैं।

इन श्लोकों पर से भी शिवपुराण का निर्माण होने के पूर्व जैन धर्म का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि शिवपुराण के कर्ता महर्षि व्यास मान लिये जायें, तो उनका समय जो पांच हजार वर्ष पूर्व का कहा गया है-जैन धर्म के अस्तित्व हो जाने के बाद का निश्चित होता है।

एक बंगाली बेरिस्टर ने 'प्रेक्टिकल पाथ' नामक ग्रन्थ बनाया है। उस में एक स्थान पर लिखा है कि ऋषभदेव का नाती मरीचि प्रकृति वादी था, और वेद उसके तत्वानुसार होने के कारण ही ऋग्वेदादि ग्रन्थों की ख्याति उसी के ज्ञान द्वारा हुई है। फलत मरीचि ऋषि के स्तोत्र, वेद, पुराण आदि ग्रन्थों में यदि स्थान २ पर जैन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है, तो कोई कारण नहीं कि हम वैदिक काल में जैन धर्म का अस्तित्व न मानें।

सारांश यह कि, इन सब प्रमाणों से जैन धर्म का उल्लेख हिन्दुओं के पूज्य ग्रन्थ वेद में भी मिलता है। और वह पूर्ण हिन्दूधर्म की ही एक शाखा माना जा सकता है। जो जैनियों को नास्तिक एवं अवैदिक बतला उन्हें हिन्दू समाज से अलग समझते हैं, वे केवल दुराग्रह ही कर रहे हैं। यद्यपि सायणाचार्य ने वेद में आये हुए किन्हीं २ ऋषभ शब्द का तीर्थंकर वाची अर्थ नहीं किया है, किन्तु फिर भी कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि वह शब्द तीर्थंकर वाची नहीं है! क्योंकि सायण भाष्य कई जगह भ्रम पूर्ण है।

उन्होंने 'यास्काद् ऋते नैरुक्तम्' [?] के अनुसार सर्वत्र ही [illegible] वाचक शब्दों को महत्व देकर स्वतन्त्र पौराणिक कथानक का अनुसरण कर के वेद मन्त्रों का अर्थ किया है। किंतु इन स्थानों में तीर्थंकर के रूप तत्वानुसार अर्थ करना वे भूल गये हैं। यही नहीं, उन्होंने जैन धर्म के विरुद्ध और भी कुछ लिखा है। फलतः वे इससे द्वेष रखने के कारण जो कुछ कर गये, वह उनके मतानुसार ठीक ही था।

उन वेदमंत्रों का विवरण यहां हम ऊपर लिख चुके हैं। उन से निर्विवाद सिद्ध होता है कि, वे जैन तीर्थंकरों को [illegible] कर के ही लिखे गये हैं! इस विवेचन पर से और भी एक बात सिद्ध होती है कि-इस समय जैन एवं वैदिक धर्म में परस्पर पूर्ण सहानुभूति थी। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो कभी संभव न था कि, तीर्थंकरों का इस प्रकार गौरव के साथ उल्लेख किया जाता। इस प्रकार वेदों में जैन धर्म का अस्तित्व सिद्ध करने वाले बहुत से प्रमाण हैं। वेद के [illegible] जैन धर्म के प्रति सहानुभूति प्रकट करने

किया जाता, तो उन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़ते। इसीलिये धर्म को सुखदायक मान कर महात्माओं ने उसके मार्ग बतला दिये हैं, किन्तु दुःखमार्ग की ओर जाने का उपदेश उन्होंने कभी किसी को नहीं दिया। किसी धर्म या पंथ को अपमानित अथवा अधर्म सिद्ध करने की धृष्टता सहसा कोई नहीं कर सकता। क्योंकि उन महात्माओं को अधर्म मार्ग का उपदेश देकर जनता को दुःखमय बनाने में लाभ ही क्या मिलता? उन्होंने निःस्वार्थ भाव से धर्मोपदेश किया है। यदि कोई पुरुष (जो उनका शिष्य हो) उनके धर्म की निन्दा करे, अथवा धर्म की आड़ में दुराचार में प्रवृत्त हो तो, उसका दोषारोपण उस धर्म या उसके प्रवर्तक पर करना अज्ञता का चिन्ह है। संसार में ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं कि, किसी एक व्यक्ति के दोषी होने पर लोग तत्काल उस महान धर्म की निन्दा करने लग जाते हैं।

यदि किसी संस्कृतज्ञ को जैन अथवा मुहम्मदी धर्म के अनुयायी ने त्रास दिया तो वह तत्काल यह श्लोक बोल उठेगा कि:--

> हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मंदिरम्।
> न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कंठ गतैरपि॥

अर्थात्:--यदि हाथी भी मार डालने को उपर आरहा हो तो भी जैन मन्दिर में (बचने के लिये) न घुसो। इसी प्रकार यदि प्राण कण्ठगत हो जायें तो भी यवन भाषा का उच्चारण न करो।

यद्यपि इस श्लोक द्वारा उन महापुरुषोंने अपने धर्म को प्रबल बनाने और अपने अनुयायियों को परावलम्बी न बनने देने के उद्देश्य से ऐसी कठोर आज्ञाएँ दी हैं, किन्तु फिर भी शास्त्रीय दृष्टि से यह अन्याय ही कहा जायगा। क्योंकि:--

> "प्रियं च नानृतं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।"

असत्य रूप में प्रिय वाक्य हो तो भी उसे उच्चारण न करो, इसी प्रकार कठोर सत्य वाक्य भी कभी मुँह से न निकालो।

यदि हम निष्पक्षपात हो कर अनुयायियों को धर्मोपदेश करते रहें, तो कोई भी व्यक्ति हमारे धर्म को न छोड़ेगा! किन्तु जब किसी को परधर्मावलम्बी बनने की इच्छा ही हो गई, तो उसके लिये देवालय अथवा व्यवहारोपयोगी निर्मित भाषा कर ही क्या सकते हैं? क्या उस भाषा में न बोलने देना व्यवहार विघातक नहीं है? तब इस प्रकार के पोपट पंथी श्लोक निर्माण करने से लाभ ही क्या? कहना नहीं होगा कि, इन्हीं संकीर्ण विचारोंने देश को इस दशा में पहुंचा दिया है।

अब हम अपने मुख्य विषय पर कुछ लिखेंगे। सब से प्रथम हमें "जैन" शब्द की यथार्थ उपपत्ति पर विचार करना होगा।

"स्याद्वादमंजरी" नामक ग्रंथ में "रागादि जेतृत्वाज्जिनः" के रूप में जो प्रतिपादन किया गया है, और "आप्तनिश्चयालंकार" नामक ग्रंथ में:-

> सर्वज्ञो जितरागादि दोषस्त्रैलोक्य पूजितः।
> यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥
> बल भोगोपभोगानामुभयोर्दानलाभयोः।
> अन्तरायस्तथा निद्रा भीरज्ञानं जुगुप्सितं॥
> हिंसा रत्यरती रागद्वेषौ रतिररति स्मरः।
> शोको मिथ्यात्व मेतेऽष्टादश दोषा यत स्मृतः॥
> जिनो देवो गुरुः सम्यक् तत्वज्ञानोपदेशकः।

सर्वज्ञ, राग दोषादि को जीत लेनेवाला, त्रिलोक वंद्य और यथास्थित रूप से कहनेवाला, अर्हन् देव साक्षात् परमेश्वर है। बल, भोग और उपभोग का एवं दोनों दान लाभ का विघ्न, और निद्रा, भीति, अज्ञान, निंदा, हिंसा, रति, अरति, राग, द्वेष, कामादि-विकार, शोक, और मिथ्यात्व ये अठारह दोष यतियों के लिये माने हैं। जिन देव उत्तम ज्ञानोपदेश करनेवाला गुरु है।

इत्यादि प्रमाणों से जिन या जैनका भावार्थ राग, द्वेष, मोहादि दोषों को जीत लेनेवाला, और जो अजरामर अर्थात् मृत्युंजयरूपी परमेश्वर है, उसका अर्थ अर्हन से समझा जाकर जैन धर्म की उपपत्ति कथित की गई है। जिस प्रकार ईश्वरीय प्रेरणा से अग्नि, वायु, आदित्य, आंगिरस, इन चार ऋषि देवताओं द्वारा वेदोंके प्रादुर्भूत होने का सिद्धान्त हम मानते हैं, उसी प्रकार "अर्हन्" रूपी ईश्वरी प्रेरणा से ऋषभादि चौबीस, तीर्थंकरों द्वारा जैनधर्म के प्रादुर्भूत होने के सिद्धान्त पर जैनियों का विश्वास है।

वे २४ तीर्थंकर ये हैं --

१ ऋषभदेव	९ सुविधिनाथ	१७ कुंथुनाथ
२ अजितनाथ	१० शीतलनाथ	१८ अरनाथ
३ अभिनंदन	११ श्रेयांसनाथ	१९ मल्लिनाथ
४ संभवनाथ	१२ वासुपूज्य	२० मुनिसुव्रत
५ सुमतिनाथ	१३ विमलनाथ	२१ नमिनाथ
६ पद्मप्रभु	१४ अनंतनाथ	२२ नेमिनाथ
७ सुपार्श्वनाथ	१५ धर्मनाथ	२३ पार्श्वनाथ
८ चंद्रप्रभु	१६ शांतिनाथ	२४ महावीर

द्वेष-द्वेष के कारण धर्म प्रचार को रोकनेवाली विपत्ति ... जैन शासन कभी पराजित न होकर सर्वत्र विजयी ही होता ... इस प्रकार जिन का वर्णन है, वह 'अर्हन् देव' साक्षात् ... (विष्णु) स्वरूप है, इसके प्रमाण भी आर्ष ग्रंथों में पाये जाते हैं।

उपरोक्त अर्हन् परमेश्वर का वर्णन वेदों में भी पाया गया है।

> अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्व अर्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपं।
> अर्हन् इदं दयसे विश्व मभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति॥

इस मंत्र पर सायणाचार्य ने यह व्याख्या की है:—

"हे रुद्र! त्वमर्हन् अर्हो योग्य एव सन् सायकानि ... बिभर्षि धारयसि। तथा अर्हन्धनयन्तं यजनीयं विश्वरूपं ... रूपयुक्त निष्कं, हारं बिभर्षि तथा अर्हन्नेव इदं विश्वं सर्वम्। महत्वेन अतिविस्तृतं जगत् दयसे रक्षसि (हे रुद्र) त्वत् त्वत्तोऽन्यत् किंचित् ओजीयः-ओजस्वितरं न वा नास्ति। विद्यते। अतस्त्वमेव सर्वकार्येषु योग्य इत्यर्थः"

इस विवेचन में सायणाचार्य ने यद्यपि अर्हन् शब्द का भावार्थ "योग्य" करके लिखा है, किन्तु इसके लिये सन्देह ... की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इसमें 'हे रुद्र' तू अर्हन् ... (सर्व सत्तार्थीश) विश्व संरक्षणादि करने के लिये धर्मोपदेश ... धनुष धारण करता है, और तू इतना बलवान् है कि, तुम से ... कर बली या ओजस्वी प्राणी इस अखिल ब्रह्माण्ड में भी नहीं ... सकता। तेरा शासन इतना बलवत्तर है कि, कोई भी उस का ... उल्लंघन नहीं कर सकता। इस प्रकार स्पष्ट अर्थ होने से यह मंत्र ... धर्म सम्बन्धी ही समझना चाहिये। क्योंकि अर्हन् की व्याख्या करते हुए "तू अर्हन् बन कर" ऐसा स्पष्ट लिखा गया है। फलत ... "योग्य" शब्द मात्र से अर्हन् की व्याख्या कर देना असंगत ... होता है। सायणाचार्य ने "सर्व दर्शन संग्रह" नामक ग्रंथ में ... धर्म को अर्हन् धर्म कहा है। फलतः उपरोक्त अर्हन् शब्द की ... व्याख्या इससे पुष्ट होती है। यह विवेचन सिद्ध करता है कि ... काल में जैन धर्म का अस्तित्व था। इस वेद मंत्र का आधार ... "स्याद्वादमंजरी" कर्ता 'मल्लिषेण' नामक कवि ने जिन शासन ... वर्णन किया है:—

> य एव दोषाः किल नित्यवादे विनशवादेऽपि समस्त एव।
> परस्परध्वंसिषु कंटकेषु जयत्यदृष्यं जिनशासनं ते॥

नित्यवाद में जिन २ दोषों का समावेश होता है, वही अनित्य ... में भी पाये जाते हैं। परस्पर ध्वंस करनेवाली संसाररूपी विप ... तेरा निर्दोष जिन शासन सर्वत्र ही विजय पाता है। जैसा कि ... को त्रिमूर्ति स्वरूप मान कर पंडित हेमचन्द्र स्तुति करते हैं:—

> अकारेण भवेद्विष्णु रेफो ब्रह्मा व्यवस्थितः।
> हकारेण हरः प्रोक्तस्तस्यांते परमं पदम्॥

अकार से विष्णु का सम्बोधन होकर रेफ (रकार) ब्रह्मा का ... और ह को हर स्वरूप समझ कर सब के अन्त में परम पद ... गया है।

> भवबीजांकुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
> ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥

इति महादेवस्तोत्रे।

संसार बीज के अंकुर को उत्पन्न के करनेवाले रागद्वेषादि ... जिसके नष्ट होगये है, वह भले ही ब्रह्मा हो अथवा हर या ... हो-उसकी सेवा में मेरा नमस्कार है।

> यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
> बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैयायिकाः॥
> अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
> सोऽयं वो विदधातु वांछित फलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

जिस को शैव लोग शिव कह कर उपासना करते हैं, वेदान्ती जिसे ब्रह्म करके मानते हैं, बौद्ध लोग जिसे बुद्ध समझते हैं, प्रमाण कुशल नैय्यायिक जिसे कर्ता बतलाते हैं, जैन धर्मानुयायी जिसे अर्हन् कह कर पूजते हैं, मीमांसक जिसे कर्म मानते हैं, वह त्रैलोक्य पालक भगवान् हमारी मनोकामना सफल करे।

इसी प्रकार आदि-नाम स्तोत्र में कहा गया है कि —

> बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधाः
> त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात्।
> धाताऽसि धीरशिव मार्ग विधेर्विधानात् ॥१॥

महाज्ञानी लोग जिसे बुद्ध रूप से सम्बोधन करते हैं, वह त्रिभुवन कल्याणकारी शंकर स्वरूप तू ही है। इस पर से यह व्यक्ति अर्हन् नहीं वरन् परमेश्वर सिद्ध होता है। जिस प्रकार कि "न वै वेदाः प्रतीयन्ते महाप्रलयेऽपि" महाप्रलय में वेद नष्ट नहीं होते। इस प्रकार जहां त्रिकालाबाधित सिद्धान्त है, वहीं वेदोक्त अर्हन् मत को भी ज्ञान रूप से त्रिकालाबाधित मानने में कोई रुकावट नहीं जान पड़ती। अस्तु। अब देखिये कि जैन धर्म के प्रथम उपदेशक तिर्थंकर ऋषभ देव के विषय में हमारे ऋग्वेद के आठवें अष्टक में क्या कहा गया है:—

> ऋषभं मासमानानां सपत्नानां विषासहिनं।
> हंतारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपितं गवाम् ॥ऋग्वेद अष्टक ८.४.२४.

यद्यपि सायणाचार्य ने इस मंत्र की व्याख्या करते हुए जैनधर्म के ऋषभ नामक तीर्थंकर का कहीं उल्लेख नहीं किया है, तथापि इस मंत्र में जैनधर्मोपदेशक ऋषभदेव वाचक ऋषभ शब्द को न मानना केवल दुराग्रह ही होगा। क्योंकि उस अर्थ का सूक्ष्म रीति से अवलोकन करने पर "हे रुद्ररूपी (रोदयतीति रुद्र=कर्मनाश करनेवाला रुद्र) परमेश्वर तू अर्हन् नामक आदि पुरुष बन कर मुझे (मा) समानानां अर्थात् हम जैसे कुलीनों में विशाल ऋषभरूपी देवता को उत्पन्न कर। और वह विशेष रूप से शत्रुओं का नाश करनेवाला हो (अर्थात् उसे कामक्रोधादि षड्रिपुओं का दमन करनेवाला बना)। रुद्रगण में के इस प्रथम सच्चिदानन्द 'अर्हन्' रूपी परमात्मा की प्रार्थना कर, स्वयं 'अर्हन्' रूप में ही जैनधर्म के प्रथमोपदेशक ऋषभ के उत्पन्न होने की बात उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट सिद्ध होती है। इसी प्रकार आदिनाथ तीर्थंकर (ऋषभदेव) का वर्णन कुछ स्मृतियों में भी पाया जाता है।

> अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्।
> श्रीआदिनाथ देवस्य, स्मरणेनापि तत्फलम् ॥

यह श्लोक हाल की छपी हुई मनुस्मृतियों में तो नहीं मिलता, किन्तु प्राचीन प्रतियों में अवश्य पाया जाता है। जान पड़ता है कि, जैन लोगों के विषय में द्वेषबुद्धि रखवाले लोगों ने ही खास कर इस श्लोक को निकाल दिया है। फलतः जिस आशय से यह श्लोक निकाल दिया गया है—वह आदिनाथ, जैनियों का प्रथम तीर्थंकर ही होना चाहिये। इस श्लोक पर से स्पष्ट सिद्ध होता है कि, जैन धर्म का अस्तित्व मनुस्मृति से पूर्व रहने विषयक जैनियों का सिद्धान्त युक्तिसंगत है।

जिस प्रकार हमारे यहां विष्णु के दश अवतार क्षत्रियों में माने गये हैं, उसी प्रकार ये तीर्थंकर भी क्षत्रिय कुलोत्पन्न हैं। क्षत्रिय कुल में इस प्रकार के महापुरुषों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि तत्कालीन दुष्ट प्रगति को राज्यसत्ता द्वारा अवरोध कर उसे उचित मार्ग पर लगा देने की शक्ति क्षत्रियों में ही थी। अस्तु।

इसी प्रकार ऋग्वेद में और भी एक स्थान पर कहा गया है —

> स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
> स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
> ऋग्वेद प्रथमाष्टक अ. ६ व, १६

अर्थ—"वृद्धश्रवा (अनंत स्तुतियों के लिये उपयुक्त) जो इन्द्रदेव हैं, वह हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे। विश्ववेदाः (सर्व पदार्थों का ज्ञाता) और पूषा (अर्थात् पोषक परमात्मा) हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे। अरिष्टनेमि (संसार सागर को पार कर जाने में समर्थ) ऐसा जो अरिष्टनेमि तीर्थंकर है वह हमारा कल्याण करे। बृहस्पति (समस्त हित पुरुषों का पालक) परमात्मा (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे।" इस मंत्र में भी संसार रूपी चक्र जिन्हें कष्ट नहीं पहुँचा सकता अर्थात् जो जीवन्मुक्त हैं, वही अरिष्टवाचक हो सकता है। अरिष्टनेमि शब्द का अर्थ सायणाचार्य ने "नेमि रित्यायुध नाम अरिष्टो अहिंसितो नेमिर्यस्य यद्वा रथचक्रस्य धारा नेमिः पक्षस्वामिनी रथस्य नेमिर्न हिंस्यते सोऽरिष्टनेमि" इत्यादि उक्तियों द्वारा गरुड़ सिद्ध किया है। किन्तु हम इससे सहमत नहीं। वास्तविक अरिष्टनेमि शब्द जैन धर्म के तीर्थंकर का ही बोधक है।

यह शब्द ऋग्वेद और यजुर्वेद में कई जगह मिलता है, और अरिष्टनेमि का वास्तविक अर्थ हिंसा निवारण करनेवाला नेमि-अर्थ आयुध-फलतः जैन संन्यासी अहिंसा निवारण के लिये बगल में कपड़े का जो आयुध (जिसमें एक डण्डे पर कपड़ा चढ़ा हुआ और सिरे पर बारीक धागों का भारी गुच्छा रहता है) रखते हैं उसका वाचक है। और जिस तीर्थंकर के समय से उस आयुध के रखने की प्रथा चली है; उसी का नाम अरिष्टनेमि हुआ है। तथा उसी अरिष्टनेमि के वर्णनात्मक-अर्थात् प्राणी संरक्षण करने के लिये अस्त्र धारण करने का उपदेश देनेवाला साक्षात् ईश्वर रूपी तीर्थंकर हमारी रक्षा करे! इस प्रकार उपरोक्त वेद मन्त्र में स्तुति की गई है। यह मंत्र यजुर्वेद में जहां कहा गया है, वहां उव्वटाचार्य ने अरिष्ट नेमि का अर्थ 'अनुपाहंसितासुः' (जिसके कारण प्राणियों की हिंसा नहीं होती) अर्थात् अहिंसा का उपदेशक किया है। फलतः यह अर्थ भी जैन धर्म के तत्वों की पुष्टि करता है।

और भी ऋग्वेद में अरिष्ट नेमि शब्द का उल्लेख देखिये:—

> त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम्।
> अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहाहुवेम ॥ ऋ० अ.८.४.३६

इस मंत्र में भी अरिष्ट नेमि एक तीर्थंकर का ही नाम है, और इस का अर्थ भी अरिष्ट अर्थात् अहिंसा पालने के लिये जो नेमि अर्थात् आयुध धारण किया जाता है, वह अरिष्ट नेमि अर्थात् कक्ष में उपरोक्त आयुध रखने की प्रथा डालनेवाला, अथवा इसी अरिष्ट नेमि तीर्थंकर के समय से यह प्रथा चली हो-इस प्रकार का होता है।

शिव पुराण में उपरोक्त आयुध धारण करनेवाले जैन साधु का वर्णन पाया जाता है।

> मुंडं मलिन वस्त्रं च कुंडी पात्र समन्वितं
> दधानाः पुंजिका हस्ते चालयंतः पदे पदे ॥
> हस्ते पात्रं दधानाश्च तुंडे वस्त्रस्य धारकाः।
> मलिनान्येव वासांसि धारयंतोऽल्प भाषिणः ॥

अर्थात्:—मुंडन किये हुए, मलिन वस्त्र, कमण्डलु युक्त, हाथ में पुंजिका धारण करने वाले, रास्तों में घूमने वाले, हाथ में पात्रादि धारण किये हुए, मुँह पर कपड़ा बांध, अल्पभाषी, मलिन वस्त्र धारण करने वाले जैन साधु हैं।

इन श्लोकों पर से भी शिवपुराण का निर्माण होने के पूर्व जैन धर्म का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि शिवपुराण के कर्ता महर्षि व्यास मान लिये जायँ, तो उनका समय जो पाँच हजार वर्ष पूर्व का कहा गया है—जैन धर्म के अस्तित्व हो जाने के बाद का निश्चित होता है।

एक बंगाली बेरिष्टर ने 'प्रेक्टिकल पाथ' नामक ग्रन्थ बनाया है। उस में एक स्थान पर लिखा है कि ऋषभदेव का नाती मरीचि प्रकृति वादी था, और वेद उसके तत्वानुसार होने के कारण ही ऋग्वेदादि ग्रन्थों की ख्याति उसी के ज्ञान द्वारा हुई है। फलतः मरीचि ऋषी के स्तोत्र, वेद, पुराण आदि ग्रन्थों में यदि स्थान २ पर जैन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है, तो कोई कारण नहीं कि हम वैदिक काल में जैन धर्म का अस्तित्व न मानें।

सारांश यह कि, इन सब प्रमाणों से जैन धर्म का उल्लेख हिन्दुओं के पूज्य ग्रन्थ वेद में भी मिलता है। और यह पूर्ण हिन्दूधर्म की ही एक शाखा माना जा सकता है। जो जैनियों को नास्तिक एवं अवैदिक बतला उन्हें हिन्दू समाज से अलग समझते हैं, वे केवल दुराग्रह ही कर रहे हैं। यद्यपि सायणाचार्य ने वेद में आये हुए किसी २ ऋषभ शब्द का तीर्थंकर वाची अर्थ नहीं किया है, किन्तु फिर भी कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि यह शब्द तीर्थंकर वाची नहीं है! क्योंकि सायन भाष्य कई जगह भ्रम पूर्ण है।

उन्होंने 'योगाद् रूढिर्बलीयसी" के अनुसार सर्वत्र ही रूढ़िवाचक शब्दों को महत्व देकर तद्रूप पौराणिक कथानक का अनुसरण कर के वेद मन्त्रों का अर्थ किया है। किंतु इन स्थानों में तीर्थंकर के रूढ़ नामानुसार अर्थ करना वे भूल गये हैं। यही नहीं, उन्होंने जैन धर्म के विरुद्ध और भी कुछ लिखा है। फलतः वे इससे द्वेष रखने के कारण जो कुछ कर गये, वह उनके मतानुसार ठीक ही था।

उन वेदमंत्रों का निष्पक्ष अर्थ हम ऊपर लिख चुके हैं। उन से निर्विवाद सिद्ध होता है कि, वे जैन तीर्थंकरों को लक्षीभूत कर के ही लिखे गये हैं! इस विवेचन पर से और भी एक बात सिद्ध होती है कि—उस समय जैन एवं वैदिक धर्म में परस्पर पूर्ण सहानुभूति थी। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो कभी संभव न था कि, तीर्थंकरों का इस प्रकार गौरव के साथ उल्लेख किया जाता। इस प्रकार वेदों में जैन धर्म ... वाले ... से स्पष्ट है। वेद के ... प्रगट करने

वाले उल्लेख पाये जाते हैं। पीछे से जब ब्राह्मण लोगोंने यज्ञ यागादि में बलिदान क्रिया का समावेश कर "मा हिंस्यात् सर्व भूतानि" वाले वेद वाक्य पर हड़ताल फेर दी उस समय जैनियों ने उन हिंसामय [illegible] गों [illegible] दे [illegible] त

प्रमाण पर से सिद्ध होती है:—

"ज्ञान दर्शन चरित्रस्य वर्णस्य वर्मानि स्या द्वादस्य प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमानि च नित्यानित्यात्मकं सर्वं नव तत्त्वानि सप्त वै।"

इसका स्पष्टीकरण करने के साथ २ हम यह भी दिखलायेंगे कि, इन नौ तत्त्वों में से कौन २ से तत्त्व वैदिक धर्म से किस प्रकार मिलते हुए हैं।

उन में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, और सम्यक् चरित्र ही मुख्य माने गये हैं, और इन्हीं के द्वारा निर्वाण पद प्राप्ति का वर्णन किया गया है। जिस प्रकार अद्वैतवादी स्वामी शंकराचार्य "सत्संग स्वाध्याय और सद्विचार" को ही मुक्ति साधन मानते हैं, उसी प्रकार "सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चारित्र्याणि मोक्षः" के रूप में जैन ग्रन्थकारों का भी मत है। यहां पर उल्लिखित सम्यग्दर्शनादि की व्याख्या योगदेव प्रभृति विद्वानों ने की है।

यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेणवा।
योऽवबोधस्तमत्राहुः सम्यग् ज्ञानं मनीषिणः।

किसी पदार्थ का यथार्थ ज्ञान—उसके स्वरूपानुसार संक्षेप या विस्तार पूर्वक—कर लेना ही सम्यक् ज्ञान कहलाता है।

रुचिर्जिनोक्त तत्त्वेषु सम्यग् श्रद्धानमुच्यते।
जायते तन्निसर्गेण गुरोरधिगमेनवा॥

अर्थात्:—जिनोक्त तत्त्वों में प्रेम ही श्रद्धा माना जाता है, और यह श्रद्धा स्वाभाविक रीति से अथवा गुरु उपदेश द्वारा प्राप्त होती है।

जिस प्रकार कि जीवादिक अर्थ व्यवस्थित हैं, उसी प्रकार अर्हंत का ज्ञान भी है, और उसके विरुद्ध आग्रह न करना ही सम्यक् दर्शन है। चारित्र्य का भावार्थ यथार्थ चरित्र व्रत धारण करना है, इसके पांच भाग माने गये हैं। वे भाग, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं। इन में से प्रथम अहिंसा के विषय में वेद शास्त्राधार लेकर विचार किया जाता है। योगशास्त्रादि ग्रन्थों में अहिंसा की प्रशंसा की गई है। यथा:—

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः।"

पातंजलि योगदर्शन साधनपाद सूत्र ३५।

अर्थात्, जो मनुष्य स्वप्न में भी हिंसा का विचार नहीं करता, उस पवित्रात्मा के निकट स्वाभाविक वैरी-व्याघ्रादि हिंसक प्राणी भी अपना वैर भाव भूल कर अत्यंत प्रेमी बन जाते हैं। इसी प्रकार व्यास (भाष्यकार) का कथन है:—

"सर्वदा सर्वथा सर्व भूतानामनभिद्रोहः अहिंसा ज्ञेया।"

सब प्रकार से सदा सर्वदा किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुंचाने का नाम अहिंसा है। जब कि किसी भी प्राणि के दुःख न पहुँचाने का अर्थ अहिंसा किया जाता है, कभी सम्भव नहीं कि उस (वैदिक) धर्म में उन्हीं महापुरुषों ने प्राणि-वध करने की आज्ञा दी हो! यही नहीं वरन् जब हम भोजन करने के लिये बैठते हैं, तब भी अन्न की आशा से कोई भी प्राणी पृथ्वी पर रखे हुए भोजन पात्र में न गिर पड़े—इस आशय से उस के चारों ओर जल फिराते हैं! इसे "ईश्वरार्प्य" (ब्रह्मार्पण भी) कह कर उसके प्रति आदरभाव व्यक्त किया गया है। भूतदया प्रगट करने के लिये, उस जल मर्यादा के बाहर हम प्रथम तीन ग्रास निकाल रखते हैं; क्योंकि आये हुए प्राणी भीतर न आकर बाहर डाले हुए अन्न से तृप्ति कर के अपने प्राण बचालें। इसी उद्देश्य से ऋषियों ने देवताओं के निमित्त वैश्वदेवबलि और नैवेद्य एवं जल सींचने की प्रथा चला दी है। देवता के सन्मुख नैवेद्य रखने का भाव यह है कि, "हे ईश्वर यह सब कुछ तेरा ही है, इस में मेरा कुछ भी नहीं।" इस प्रकार उसके प्रति अनन्य श्रद्धा प्रगट की जाय। इसी प्रकार वैश्वदेव बलि का आशय भी "विश्व (संसार) में दिव्य जीव धारण करने वाले प्राणिमात्र को अन्नदान हो" है। और इसी लिये भोजन करते समय प्राणियों को अन्नदान करने की प्रथा चलाई गई है।

इसी भांति—महाभारत के शांति एवं वनपर्व में भी सर्वत्र ही भूतदया रखने का विशद वर्णन पाया जाता है। अर्थात् अहिंसा के विषय में वैदिक धर्म में सर्वत्र ही प्रतिपादन किया गया है। जैन धर्म के श्वेतांबर और दिगम्बर ये दो भेद हैं। उन में भी [illegible] श्वेताम्बरों में मूर्तिपूजक अर्थात मन्दिर मार्गी और साधु मार्गी [illegible] दो सम्प्रदाय हैं। दिगम्बर केवल मूर्ति पूजक होते हैं, और नग्न [illegible] (निर्ग्रन्थ) को विशेष मान देते हैं। इन दोनों में मुँह पर पट्टी [illegible] और हाथ में पुंजिका धारण कर अहिंसा व्रत पालन करने [illegible] केवल श्वेताम्बर जैनी होते हैं। मुँह पर कपड़ा रखने का [illegible] यह है कि, श्वासोच्छ्वास में प्राणी नहीं मरें अथवा पेट में [illegible] कर आरोग्यता को बाधा न पहुँचावें। यह तथा इसी प्रकार अन्यान्य कई क्रियाओं को को देख कर हम जैनियों की हँसी उ[illegible] हैं, किन्तु विचार कीजिये कि यह कितनी बुरी बात है। क्योंकि य[illegible] में ही यदि देखा जाय तो हमारे सन्यासी और जैन साधुओं [illegible] कई क्रियाएँ मिलती हुई हैं। महाराष्ट्र प्रांत में आज भी अ[illegible] वैदिक कहने वाले कई दक्षिणी ब्राह्मण और साधु संन्यासियों मे[illegible] बांधने की प्रथा पाई जाती है। और ऐसा करने में जो उद्देश्य [illegible] साधुओं का है, वही हमारे महात्माओं का भी है। तब विचार[illegible] स्थान है कि हम जैनियों की हंसी क्यों उड़ावें! हम तो यही सम[illegible] हैं कि, वे अभी तक साधुओं के व्रतों का पालन करते हैं और [illegible] लोग तथा हमारे साधु महात्मा कहाने वाले गुरु ठाटबाट में लिप्त [illegible] जाने से उनका यथार्थ पालन नहीं कर पाते। बस, इसी से हमें उन[illegible] हँसी आती है। जिस प्रकार हमारे यहां सन्यासियों के लिये [illegible] बतलाया गया है कि, वे अग्नि का स्पर्श न करें, रात को दीप[illegible] जलावें, भोजन बना कर न खावें, भिक्षा मांग कर खावें, पास [illegible] न रक्खें, एक ही स्थान पर अधिक दिन न ठहरे रहें, थोड़े से [illegible] रक्खें, और ब्रह्मचर्य का पालन करें, इत्यादि। इसी प्रकार के नियम जै[illegible] साधुओं के भी हैं। किन्तु हमारे सन्यासी लोग गृहस्थों को सा आव[illegible] रखते हैं और जैनियों के इससे विरुद्ध। इसी कारण वे हमें [illegible] और चमत्कारिक प्रतीत होते हैं, और हम उनकी हँसी उड़ाते हैं [illegible] इसी प्रकार जैनियों के अहिंसा सम्बन्धी नियमों को देख कर भी ह[illegible] उनकी हँसी उड़ाते हैं, किन्तु इस प्रकार केवल उनका मजाक उड़ा[illegible] ही न्याय्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि:—

"न हिंस्यात्सर्वभूतानित्यादि चांडाल साधारणो धर्मः।"

इस प्रकार विज्ञानेश्वर ने प्रतिपादन किया है, और इसीलिये मनुष्य मात्र को जल जीवों तक की हिंसा न करने के विषय में भागवत पुरा[illegible] में आज्ञा दी गई है कि:—

"सूक्ष्माणि जेतूनि जलाश्रयाणि जलस्य वर्णाकृति संस्थितानि।
तस्माज्जलं जीव दयानिमित्तं निरग्र शूरा परिवर्जयन्ति॥"

जल का आश्रय लेकर सूक्ष्म जन्तु उसमें रहते हैं, और वे जल वर्णा[illegible] कृति से युक्त हैं। इसलिये जीव दया के निमित्त-भूत जल को त्या[illegible] ज्ञानी छोड़ देते हैं (निर्जल व्रत करते हैं।)

इसी प्रकार "वस्त्रपूतं जलंपिबेत्" अर्थात् पानी को हमेशा छान कर पीने की आज्ञा महाभारत में भी दीगई है। इस भांति अहिंसा पालन का व्रत भूल जाने के कारण हम जैनियों के इस कार्य पर आश्चर्य करते और उनका हँसी उड़ाते हैं।

हिंसा न होने देने के लिये ही जैनी लोग रात को भोजन नहीं करते। किन्तु याद रखना चाहिये, कि यह नियम केवल उन्हीं में प्रच[illegible] लित नहीं, वरन् हमारे यहां भी महाभारत में कहा गया है कि—

नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम्।
दानं न विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः॥

अर्थात्—रात को आहुति दान, स्नान, श्राद्ध, देवपूजा और दान न करना चाहिये, और खास कर भोजन बिलकुल ही नहीं।

इस प्रकार हमारे शास्त्रों में भी निशा भोजन वर्ज्य कहा गया है। उनमें तो यहां तक कि, बैठते हुए भी हिंसा न होने पावे, इस आशय से [illegible] त है, और इसी [illegible] विधि के भी [illegible] "[illegible]हेमि" आदि [illegible] धर्म का पालन [illegible] हैं, वे [illegible]

उपरोक्त चरित्रान्तर्गत पांच भागों में से पहले और महत्व के भाग अहिंसा पर ही यहां विस्तृत रूप में विवेचन किया गया है। शेष चार भाग सर्व शास्त्र संमत होने के कारण एवं सर्व मान्य होने से यहां उनके विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया।

स्वाराज्य-समस्या।

(लेखकः-श्रीयुत दामोदर विश्वनाथ गोखले बी. ए. एल्एल्. बी.)

यह युग सुधार, स्वातंत्र्य और स्वसंमतीके तत्वोंका है पाशविक शक्ति के बलपर एक या अनेक विशिष्ट व्यक्तियों के मुट्ठीभर समूह को अनियंत्रित और बेलगामी सुल्तानशाही गजाने का अब कोई अधिकार नहीं। क्योंकि इस प्रकार की पाशविक शक्ति रूपी नींव पर खड़ी की हुई एकतंत्री साम्राज्यकी विशाल अट्टालिकाओं को गिरती हुई हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं! चंगेजखां, तैमूरलंग, औरंगजेब अथवा रोम के नीरो या फ्रान्स के लुई की प्रतिकृतियाँ आधुनिक राजनैतिक वातावरण में खुले मैदान प्रगट नहीं की जा सकतीं। वर्तमान काल पूर्ण-लोकसत्ताक होने के कारण, इस समय भलेही पर्दे की आड़ में अनियंत्रित सत्ता अथवा पाशविक सामर्थ्य का प्रकटीकरण किया जाय, और उसमें यदि किसी हद तक सफलता भी मिले, किन्तु अन्तको उस अन्यायमूलक अनियंत्रित सत्ता का-पाशविक सामर्थ्य का सर्वनाश हुए बिना न रहेगा। यह सिद्धान्त और यह नियम राष्ट्रीयबातों में भी पूर्णतय प्रयुक्त होता है। "मैं बड़ा हूं, शक्तिशाली हूं और साधनसम्पन्न हूं," केवल इन्हीं बातों के बल पर किसी व्यक्तिको अन्य अशक्त एवं सामर्थ्य हीन जनता पर प्रगट रूप में अन्याय करने का कुछ समय के लिये भले ही अधिकार मिल जाय, किन्तु अन्त में उस अन्यायी को अपने पाप के कटु फल भोगना ही पड़ेंगे। यही न्याय राष्ट्रीय सम्बन्ध में प्रयुक्त हो सकता है। अपनी चतुरंगिनी सेना के बलिष्ट एवं सामर्थ्यवान होने का गर्व धारण कर, जब जर्मनी अन्य राष्ट्रों पर अत्याचार कर अपने आराम के लिये दूसरों की स्वतंत्रता छीनने लगा, तो अन्त को संसार में उसे ही नीचा देखना पड़ा। किन्तु फिर भी अनेकों बार इन अटल नियमों को लोग भूल जाते हैं।

[illegible]

इनकी अटलता और सत्यता के विषय में अविश्वास उत्पन्न हुआ, कि फिर धंध आन्दोलन का अन्त ही हुआ समझना चाहिये। अंग्रेज अधिकारियों और राजनीतिज्ञों को यह बात भूल न जानी चाहिये। इसी प्रकार यह भी न समझ लेना चाहिये कि, पाशवी-शक्ति का उपयोग किसी एकही ओर से होसकता है। क्योंकि न्यूनाधिक प्रमाण में उसे काम में लाने का सब को अधिकार है। किन्तु सब से अच्छी बात तो यह है कि, न कोई उसका उपयोग ही करे और न दूसरों को वैसा करने का मौका ही आनेदे।

भारतीय अंग्रेजी नौकरशाही ने उपरोक्त समस्त सिद्धान्तों पर हर्ताल फेर देने का प्रयत्न जोर शोर से शुरू किया है। जिसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण पंजाबवाली घटनायें है। महायुद्ध के समय शांति रक्षा के लिये जो मुख्य अनियंत्रित सत्ता और जो अधिकार सर्व सम्मति से दिये गये थे, उन्हीं को अपने पास स्थायी रूप में बनाये रखने के आशय से नौकरशाही ने रौलेट बिल पास किये। भारत की समग्र जनता और उसके नेताओं का प्रतिवाद पैरों से ठुकरा कर अपनी पाशवी शक्ति के बल पर उपरोक्त कानून को पास करालेने का उसने प्रयत्न कर दिखाया। इस पाशवी शक्ति के अस्तित्व में आते ही इस आशय से कि भारतीय जनता को उसका स्पर्श न लग जाय—महात्मा गांधी ने आध्यात्मिक शक्ति के बल पर खड़े किये हुए, अपने सत्याग्रह आन्दोलन का शंख और प्रचार कर दिया। किन्तु नौकरशाही को यह आन्दोलन सहन कर सहन होने लगा! बस, तत्काल ही तो उसने सत्याग्रह की शांतिप्रिय जनता पर लकीर पीटना शुरू कर दिया। पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओडायर ने ही सब -एम उस शांति जनता को जन्म दिया। सम्राट के प्रतिनिधि के नाते भारत के बड़े लाट को इस विषय में विशेष रूप से विचार करना चाहिये था। किन्तु उन्हें भी उस कल्पना के फेर में आ जाना पड़ा, और तत्कालीन पंजाब में भयंकर हत्याओं का आरम्भ होगया। जनरल डायर के अघोर कृत्य, ओड़ायर की [illegible] और उसकी आड़ में किये गये जुल्मों का [illegible] नहीं है। यह निःसंदेह होकर कहा जा सकता है कि, भारत के [illegible] को देखनेवाले राष्ट्रीय [illegible] का मुख्य [illegible] रहेगा। फिर भी आशा हुई थी कि इस विषय में अंग्रेज सरकार की ओर से कुछ न कुछ न्याय अवश्य होगा, किन्तु हंटर कमेटी की [illegible] में ही प्रकाशित रिपोर्ट को देखने से [illegible] है। [illegible]

जर्मनी की हार हुई और अंग्रेजों ने उसे हराया, केवल इसी कारण से जर्मनी को झूठे और अंग्रेजों को सच्चे न मानलेना चाहिए। कल से ही अंग्रेज यदि जर्मनी का अनुकरण करने लगें, उन्हीं की तरह अन्य राष्ट्रों की स्वतंत्रता छीनने लगें, शान्तिकाल अथवा युद्ध के समय जर्मनी की तरह अत्याचार करने लगें, तो आज जर्मनी की जो दशा हुई है वही आगे चलकर अवश्य ही अंग्रेजों की भी हो सकती है। अंग्रेजी जनता और अंग्रेज मुत्सद्दी इस विषय में पहले से ही सचेत हैं, और वे भारत इंग्लैण्ड तक में इस प्रकार की बातें नहीं होने देते हैं। किन्तु फिर भी इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि भारत की नौकरशाही के हाथ से

[illegible]

बेकार हो रहा है। इंग्लैण्ड की महायुद्ध पर, [illegible] [illegible]

अधिकारियों को ही विद्रोह का भ्रम होगया था। रौलेट बिल के विरुद्ध हलचल शुरू होने के दिन से ही उन्हें सर्वत्र विद्रोह के चिन्ह दिखाई पड़ते थे। और सर्कार को 'मां बाप' समझ कर लोग नंगा सिर किये डिप्टी कमिश्नर के पास दाद मांगने गये, इसी में अधिकारियों को विद्रोह की पराकाष्ठा होती दिखाई दी, और उन्होंने उन गरीब एवं निःशस्त्र लोगों पर गोली बार कर दिया। पंजाबी अधिकारियों के मस्तिष्क में उपजा हुआ, कल्पना साम्राज्य का विद्रोह-उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगा, तो इसमें आश्चर्य जैसी बात ही क्या? सिर्फ एकही बात प्रमाण के लिये बस होगी, जिसका कि उत्तर कोई भी न देसका। वह यह है कि, ता० ३० मार्च को दिल्ली में होनेवाली हड़ताल और मचे हुए दंगे का हाल लाहौर के मुख्य सेनापति जिस पुस्तक में लिखा है, उसका नाम खुद उन्हीं ने "वार डायरी" या

युद्ध का रोजनामचा

रखा था! केवल फौजी ही नहीं वरन् ता० १० अप्रैल से पूर्व भी भी मुल्की अधिकारियों तक के पास उसी प्रकार की वॉर डायरियाँ मौजूद थीं, और उनका नाम भी यही वॉर डायरी रक्खा गया था। इसका आशय क्या होसकता है? ता० ३० मार्च को पंजाब में किसी भी अंग्रेज का खून नहीं हुआ था, और न बैंक लूटे गये या रेलवे की पटरियाँ ही उखाड़ी गई, और न तार ही तोड़े गये थे। तो फिर इस विद्रोह अथवा (सर्कारी भाषा में) वॉर या युद्ध का अस्तित्व ही कहां से हुआ? पंजाब के फौजी और मुल्की अधिकारियों को ही यहां उपद्रव खड़ा करना था, और इसी लिये यह सब खटाटोप उन्हीं का किया हुआ कहा जासकता है। सुशिक्षित लोगों से बदला चुकाने की राक्षसी बुद्धि ओडायर साहब को चक्कर में डाल चुकी थी, और यही भावना पंजाब प्रांत के सभी अधिकारियों की भी थी। उनका दृढ़ संकल्प था कि ऐसा इलाज किया जाय, जिसे भारतवासी १० वर्ष तक न भूल सकें। बस, इसीलिये उन्हों ने जहां तहां युद्ध, और
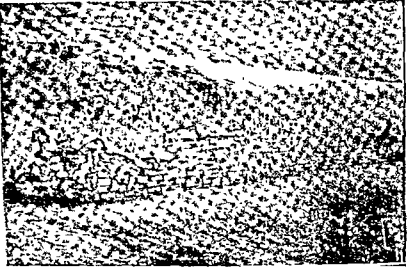
जाल्यनवाला बाग की पूर्वी दीवार, जहां कि सब से अधिक आदमी गोलियों से मारे गये।

विद्रोह की पुकार मचा कर भारत सर्कार को धोखा दिया। विद्रोह रूपी पर्दे की आड़ में गरीब भारतीयों का यथेष्ट खून किया गया! भोली और निःशस्त्र अमृतसरी प्रजा नौकरशाही में के डिप्टी कमिश्नर को माँ-बाप समझ कर खुले सिर दाद मांगने गई, और उसके उत्तर स्वरूप "युद्ध के रोजनामचे" रखनेवाले उन्हीं डिप्टी साहब ने युद्ध की पुकार मचा कर उन पर गोलियाँ बर्साई। कई आदमी मारे गये। अपने भाइयों का अकारण ही रक्तपात होता देख दुखित जनता चिढ़ कर यदि अत्याचार में प्रवृत्त हुई, तो इसमें आश्चर्य ही क्या! किन्तु क्या उसे हम युद्ध या विद्रोह कह सकते हैं! वह लोगों की नहीं वरन्, डायर और ओडायर के ही अंचल में के शैतान मुल्की और फौजी अधिकारियों की करतूत थी। उन लोगों ने सदासद्बुद्धि से हीन बन कर सत्य की हत्या कर के, हृदय एवं ईश्वर के विरुद्ध उपद्रव मचाया और युद्ध किया। और उसका बदला चुकाने के रूप में सैकड़ों गरीबों का खून होगया!! अन्यथा जर्मनी के छक्के छुड़ाने के लिये प्राणों पर खेल जानेवाला पंजाब, युद्ध के बन्द होजाने पर अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़ा होता, यह कल्पना किसी भी धर्मात्मा को स्वप्न तक में होना असम्भव थी। विद्रोह कब किया जाय और कब नहीं, इस बात को समझ सकने की बुद्धि अभी भारतीयों में है, चली नहीं गई!

ज्यों ही एक बार विद्रोह की कल्पना पर विश्वास कर लिया गया कि, फिर उसके साथ ही मार्शल्ला की पुकार और उसका प्रचारादि सभी बातें स्वभावतः उत्पन्न हो जाती हैं। "पंजाब में सर्वत्र बलवा मच गया है, रेल, तार आदि तोड़ डाले गये हैं, और किसी अंग्रेज स्त्री पुरुष का जीवन सुरक्षित नहीं।" इस आशय के तार भेजे जाने पर भारत सर्कार के अधिकारी घबरा उठे, और उन्होंने मार्शल्ला जारी कर देने की आज्ञा दे डाली। फौजी कानू… अदालतों का भी अस्तित्व हुआ, और सर्वत्र फौ… फौजी सजाएँ दी गई और वह कानून यथेच्छ अगाध … रक्खा गया। इन सब बातों का भारतीय सदस्योंने अच्छा … ऊहापोह कर के बतलाया है कि, फौजी कानून को पुकारने व प्रचार करने की कुछ भी आवश्यकता न थी। क्योंकि अधिकतर सर्वत्र ही इस कानून के प्रचलित करने से पूर्व ही शांति स्थापित हो चुकी थी। गुजरी हुई बातों का बदला चुकाने के लिये पंजाबी अधिकारीयों को उसकी आवश्यकता थी, और उन्होंने बदला चुका भी लिया! केवल एक ही बात पूछने जैसी है और वह यह कि, यदि यहां मार्शल्ला जारी करने जैसा दंगा फसाद या विद्रोह अथवा युद्ध मच गया था, तो भारत के सेनापति अथवा सम्राट् के प्रतिनिधि शिमले में बैठे हुए क्या मक्खियाँ मार रहे थे? क्या उनका कर्तव्य नहीं था कि, प्रत्यक्ष में जाकर वे चौकसी करते और लोगों को धैर्य देकर समझाते? किंतु वे जंगबहादुर सेनापति अथवा राजनीति धुरंधर वाइसराय अपनी जगह पर से हिले तक नहीं!! यह है उनका प्रजावात्सल्य और इस प्रकार की अपूर्व राजनीतिज्ञता!!! इसके बाद दूसरी महत्व की बात जनरल डायर द्वारा की हुई—

जल्यानवाला बाग पर गोलियों की वर्षा

है। इस विषय में विवशता से सब को एक मत होना पड़ा है। केवल शब्द योजना का ही अंतर है। किन्तु मनोगत भाव उससे भी प्रगट हो जाते हैं। जनरल डॉयर के इस कृत्य को सब भारतवासी कतल या खून के नाम से सम्बोधन करते हैं, और हंटर कमेटी उसे "भयंकर भूल" के नाम से उल्लेख करती है! वह खुद अपने मुँह से कह रहे हैं कि, लोगों पर नैतिक-आतंक जमाने के लिये ही ऐसा किया गया, और कमेटी उसे विश्वास पात्र होने का सार्टिफिकेट देती है! तथा भारत सर्कार और मि० मान्टेग्यू इस क्रूर कृत्य द्वारा उपद्रव की आग बुझाई जाना बतलाते हैं। इन लोगों के मतानुसार रक्तपात करना आवश्यक था। केवल पहले से सूचना दे देनी चाहिये थी, और इतने अधिक मनुष्य मार डालने की आवश्यकता नहीं थी, तथा मारने पर उनकी शुश्रूषा का योग्य प्रबन्ध करना चाहिये था, यही यही मात्र उनका अपराध है! वाहरे न्याय! हमारी समझ में तो जनरल डायर और अन्य पंजाबी अधिकारियों की मनोवृत्ति का चित्र कांग्रेस कमेटी की रिपोर्ट में देखा जा सकता है। मि० सेमूर नामक अंग्रेज व्यक्तिने लाला धोकलदास को साफ कह दिया था कि एक अंग्रेज के लिये हम हजार हिंदुस्थानियों के प्राण ले डालेंगे। जनरल स्मिथ अमृतसर पर गोलियों की वर्षा करने का भाव प्रगट कर रहे थे। माइलस आयर्विंग स्पष्टतयः कह रहा था कि, अंग्रेजों को तुमने मारा है, उसका बदला तुम और तुम्हारे बालबच्चों पर निकाले बिना न रहूंगा। इस प्रकार की मनोवृत्तिवाले पुरुषों द्वारा किये हुए रक्तपात को यदि "भारी भूल" के नाम से सम्बोधन किया जाता है, तो फिर इसी न्याय की दृष्टि से हॉल ब्रिज के निकट अपने बन्धुओं का फैला हुआ रक्त और वे तरह पड़ी हुई उनकी लाशों को देख कर चिढ़ी हुई भारतीय जनता द्वारा होने वाले एक दो खून क्यों न "भूल" की कोटि में समझे जाते हैं? बात असल में यह है कि, अपने देश भाइयों के काले कामों पर लिहाफ़ की सफ़ेदी लगाने का हंटर कमेटी के सभासद और खुद मि० मान्टेग्यू तथा भारत सर्कार आदि ओरशोर से प्रयत्न कर रहे हैं! इस कार्य्य में न्याय का नाम नहीं, केवल राजनीति की चाल चली जा रही है! यह सत्य नहीं किन्तु तर्क है, और ईश्वर प्रति कर्तव्य नहीं, वरन् पार्लमेंट के सन्मुख किया जानेवाला अपने बन्धुओं का पक्षपात है!

॥ चित्रमय जगत ॥

विचार के लिये हम घड़ी भर यह भी मान लें कि पंजाब में विद्रोह खड़ा किया गया था और मार्शल् ला पुकारने की भी आवश्यकता थी, तो भी उसकी पाबंदी जिस ढंग से की गई–उस पर विचार करने से पंजाबी अधिकारियों की राक्षसी मनोवृत्ति का खासा परिचय मिल जाता है। इंटर कमेटी के अंग्रेज सभासदोंने इस विषय में अधिकारियों को दोष दिया ही है। साथ ही भारतीय सभासद, भारत सर्कार और मि० मान्टेग्यूने भी उनके थोड़े बहुत कान खोलने का प्रयत्न किया है। लाहोर में फ्रैंक जान्सनने अपने फौजी कानून का हुक्म सुनाने के लिये हररोज प्रत्येक बाजार और मुहल्ले के सभ्य लोगों को घण्टों तक अपनी कचहरी के सामने खड़ा रक्खा, भारतीयों को अकल दुरुस्त करने के लिये धनाढ्यों की मोटर-गाड़ियाँ रोक दीं, पानी के नल बन्द किये और बिजली की रोशनी रोक कर सारे शहर में अन्धेरा कर दिया। यही नहीं वरन् फौजी कानून के फर्मान किन्हीं खास लोगों के घर की दीवारों पर लगवा कर उनकी हिफाज़त का काम भी घर के मालिकों को सौंपा। इंटर कमेटी के सामने बयान देते समय जब उससे पूछा गया कि, तुमने खास २ लोगों के घर कैसे पहचान लिये! तब उत्तर में उसने कहा कि, जो लोग अधिक राजभक्त नहीं हैं, उनकी सूची खुफिया पुलिस से मंगवा कर ही मैंने नोटिस लगवाये। फिर जब उससे पूछा गया कि. क्या ऐसा करना उचित था? तो उत्तर में तत्काल उस निर्लज्जने कह दिया कि यह तो मेरी अपूर्व बुद्धिमत्ता का एक नमूना मात्रही था। ऐसे एक दोही नहीं हजारों उदाहरण रिपोर्ट में दिये गये हैं। विद्यार्थी और प्रोफेसरों की हाजिरी, सरपट दौड़ने की आज्ञा, घुटने टेंक कर और छाता उतारकर सलाम करने का हुक्म, शरीर से मोटे होने के कारण छह लड़कों को दी जानेवाली सजा आदि, सैकड़ों उदाहरण हैं। सारे गाँव पर तोपें दागना और विमान में बैठ कर बम फेंकना आदि बातें भी पहलेसेही निश्चित हो चुकी थीं। ऊपर लिखी हुई सजाओंसे भी अधिक अपमान कारक कुछ दंड और भी दिये गये थे। माल के गट्ठे उठाना, नाकसे जमीनपर चित्र निकलवाना आदि सजाएँ प्रत्यक्ष खड़े रहकर अमल में लाई गई थी। इन सब पर यदि बाजी मार ले जानेवाली कोई सजा हो सकती है, तो वह कोड़े और बेत मारने की सजा है। सदर रास्तों और खास २ जगहों में खड़े करके दोसौ अट्ठावन आदमियों को बेत मारे गये! भला अब इससे अधिक भारत का अपमान और क्या हो सकता था! राष्ट्रीय स्वतंत्रता के साथ ही प्रकृतिदत्त मनुष्यता के अधिकार किस प्रकार चले जाते हैं और परतंत्रता में किस प्रकार नर्क यातनाएँ उठानी पड़ती हैं, इन बातों को अब भारतवासी कभी न भूल सकेंगे!!!

इंटर कमेटी का रिपोर्ट और भारत सर्कार तथा स्टेट सेक्रेटरी के लिखे हुए उसपर के खरीतों को पढ़कर किसी भी आत्माभिमानी भारत-वासी को असह्य दुःख हुए बिना न रहेगा। इस दशा को देखते हुए तो मृत्युही भली जान पड़ती है, और भारत के भविष्यत् कालीन सुख स्वप्न से मनुष्य जाग्रत हो उठता है। साथही अंग्रेजी रा[ज्य के] न्याय, सत्य और स्वातंत्र्य प्रेम तथा मुंत्र शान्ति एवं नैसर्गिक [अधि]कार बढ़ाये जाने आदि का विश्वास भी उठ जाता है। समय [समय] पर अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा कर राष्ट्रीय दल को गाली-गलौज [करने] वाले, समस्त राज्यनिष्ठ बहादुरों को एक बार इंटर कमेटी का रि[पोर्ट] अवश्य देख जाना चाहिये। लोक कल्याणार्थ राज्य-परित्याग क[र] देने का आवेश दिखाने वाले कोल्हापूर के महाराज को इस रिपोर्ट के साथ कांग्रेस कमेटी का रिपोर्ट पढ़लेने के बाद ही अपना प्रथम निश्चित करना चाहिये। अपनी नि:स्वार्थ ब्राह्मणवृत्ति, अपनी क्षत्रियवृत्ति और उदार मनस्क वैश्यवृत्ति पर जिन्हें गर्व हो, उन को कोड़े खानेवाले राष्ट्र के उद्धार के लिये कमर कसनी चाहिये। इंटर कमेटी की रिपोर्ट और उसपर दिये हुए रिमार्क को देखकर यही समझ मे नहीं आता कि, इस राज्य को सुधारा हुआ कैसे [कहा] जाय! प्रजा की सम्मति से राज्य करनाही यदि उत्तम राज्यपद्धति का लक्षण माना जाता है, तो आतंक बैठाकर सुख पूर्वक राज्य करने वालों की राज्यपद्धति के लिये 'जंगलीपन' से बढ़कर दूसरा कोई विशेषण नहीं दिया सकता। अंग्रेज और भारतीयों का हिताहित एक हो सकने सम्बन्धी कल्पना का पतला और झिंझिरा पर्दा भी इस रिपोर्ट ने फाड़ दिया है। इस पंजाबी दंगे के यथार्थ कारण रौलेट बिल और उसपर होनेवाले वाद विवाद से लगाकर, इस रिपोर्ट और इस पर दिये हुए रिमार्क के प्रगट होनेतक, प्रत्येक बात में भारतीयों के विरुद्ध अंग्रेज के रहने का दृश्य दिखाई पड़ता है। जिस लोगोंने निर्लज्जता पूर्वक उन साहबों की करतूत का अनुमोदन किया है, उन्हीं ने एकमत होकर महात्मा गांधी के सत्याग्रह और विशेषत: कानूनभंग करने के सिद्धान्त पर निरर्थक प्रलाप कर पंजाब में होने वाले समस्त अत्याचारों का खापर इस आन्दोलन के सिरपर फोड़ा है। भारत सर्कार ने भी इस अन्तर्पट के सहारे सत्याग्रह को भयंकर और उसका अनुयायी होना नैतिक अपराध बतलाने का प्रयत्न किया है। और यदि बारी की से देखाजाय तो सिर्फ इसी बात को सिद्ध करने के लिये इतना प्रपंच रचा जाने का भास होता है! किंतु सर्कार को यह अच्छी तरह याद रखना चाहिये कि, इस प्रकार की लल्लो चप्पो मे फँसनेवाला यह जाग्रत भारत नहीं है। अधीन राष्ट्र के लिये वैध आन्दोलनों में केवल सत्याग्रह ही एक तारक उपाय है। और इसी लिये सत्याग्रह का नाम लेतेही नौकरशाही काँप उठती है। सभी लोग यदि चारों ओर से सत्याग्रह रूपी सिद्धान्तपर शस्त्रप्रहार करेंगे, तोभी वह अमर ही रहेगा। भारत और कम से कम सजीव आत्माभिमानी और देशभक्त भारतीय, पंजाब, के जल्यान वाला बाग और कोड़े की मार को कभी न भूलेगा। और न कभी इस प्रकार राष्ट्रीय अपमानही सहन करेगा, यह एक निश्चित बात है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि, जगदीश्वर अपने लाड़िले किंतु दीन और असहाय बने हुए भारत-पुत्रों के शरीर में ईश्वर अपना दिव्यतेज उत्पन्न कर अवश्य उन्हें तेजस्वी और सत्ताधारी बनायेगा।

अग्निप्रलय !
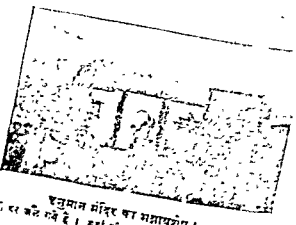
महायज्ञ गाँव का मध्यभाग।

हनुमान मंदिर का महायज्ञ।

शिकार !

(लेखक—श्रीयुत " विमल ")

रात के दस बज चुके थे, शामपुर ग्राम के उत्तर छोर छोटी सी फूस की झोंपड़ी में एक चिराग धीमी २ रोशनी के साथ टिमटिमा रहा था। चिराग से कुछ दूरी पर एक चारपायी पड़ी थी और उस पर एक अस्सी वर्ष का वृद्ध बैठा हुआ था। पैताने की ओर एक वृद्धा नीचे बैठी हुई वृद्ध से बातें कर रही थी। वृद्धा की गोद में एक सात वर्ष की बालिका बैठी २ ऊँघ रही थी।

वृद्धः—रात अधिक होगयी लेकिन अभी तक मथुरा प्रसाद लौट कर नहीं आया। क्या जाने रुपये का प्रबन्ध कहीं हुआ या नहीं !

वृद्धा—न मालूम लड़का कहाँ कहाँ भटकता होगा। भला रुपया कहां मिलेगा, निर्धन को उधार रुपया देगा कौन! तिस पर एक नहीं दो नहीं तीस रुपये की बात ठहरी, आपने व्यर्थ ही उसको भेजा है !

वृद्धः—मैं ने तो उसे जाने को नहीं कहा है। हाँ, कल ठाकुरप्रसाद का एक पत्र आया है, न मालूम उसमें क्या लिखा है।

वृद्धाः—तो क्या आप को भी मथुरा ने पत्र पढ़ कर नहीं सुनाया ?

वृद्ध—नहीं, पढ़ कर तो नहीं सुनाया, लेकिन इतना कह दिया कि ठाकुर का पत्र आया है। उसने तीस रुपया इसी पांच दिन के भीतर मांगे हैं, वह इस साल आई. ए. परीक्षा में सम्मिलित किया गया है, अतः विश्व विद्यालय का शुल्क देना पड़ेगा।

वृद्धा—सुना था कि, उसके मास्टर ने उसको दरिद्र जान कर शुल्क छोड़ दिया है !

वृद्धः—हाँ कॉलेज शुल्क छोड़ दिया था लेकिन यह तो देना ही पड़ेगा, अगर नहीं दें तो परीक्षा नहीं होसकेगी।

वृद्धाः—देखते हैं कि, गरीबों का पढ़ना भी कठिन होगया है। अगर रुपया नहीं जुट सका तो क्या हमारा ठाकुर नहीं पढ़ सकेगा। हा भगवन्! इतना कष्ट !

लड़की को ऊँघते देख वृद्ध ने कहा—"जानकी सो रही है उस की माता को पुकारो, इसे सुलादे।

वृद्धा ने पुत्रवधू 'शारदा' को ज्योंही एक बार पुकारा कि दरवाज़े पर पैर की आहट हुई, और किसी ने घर में प्रवेश किया। वृद्धा ने दरवाज़े की ओर देखा। देखती है कि, उसका पुत्र मथुरा म्लान मुख आकर सामने खड़ा है। वृद्ध ने पुत्र को बैठने का संकेत किया। पिता की आज्ञा पाकर मथुरा बैठ गया। वृद्ध ने पूछा—"क्यों, कहीं रुपये का प्रबन्ध हुआ ?

मथुराप्रसादः—नहीं बाबूजी, किसी ने उधार देना स्वीकार नहीं किया।

वृद्ध—अब क्या होगा ?

मथुराप्रसादः—मुझे तो कोई युक्ति नहीं सूझती, आखिर समय भी एक ही दिन का शेष है। अगर कल चार बजे तक उसको रुपया नहीं मिला तो वह परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सकेगा। देखता हूं, कि इस तीस ही रुपये के लिये उसका दो वर्ष का परिश्रम और मुझ दरिद्र का हज़ारों रुपया व्यर्थ चला जाना चाहता है। उसको आई. ए. तक पढ़ाने में अपनी ज़मीन भी बन्धक पड़ गयी, अब क्या शेष रह गया जो बेच कर उसका प्रबन्ध करूं !

वृद्धः—मैंने तो पहले ही कहा था कि, ठाकुर को इन्ट्रेन्स से अधिक मत पढ़ाओ, क्योंकि कॉलेज का खर्च नहीं जुटा सकोगे फिर जानकी भी बड़ी होती जारही है। अब दो चार वर्ष में इसका विवाह करना ही पड़ेगा और फिर हम लोगों की भी क्या आशा ? हम दोनों भी तो वृद्ध हुए। अब क्या, अब तो मृत्युकाल के कर में हैं। हैं हैं, नहीं है।

पिता की बात सुन कर मथुराप्रसाद चुप रह गया, किन्तु बीच में वृद्धा बोल उठी—"तू इतनी चिन्ता क्यों करता है बेटा! यदि रुपया नहीं मिल सका तो तू कर ही क्या सकेगा !

मथुराः—आखिर सब तो व्यर्थ ही होजायगा न माताजी !

जिस समय इन लोगों में बातें हो रही थी उसी समय दरवाजे की ओट में खड़ी २ शारदा ये सब बातें सुन रही थी। पति को अत्यन्त चिन्तित देख वह अपने नाक की नथनी जो तोलेभर सोने की थी, निकाल कर पति के आगे रखती हुई कहने लगी आप इसे बेच कर छोटे बाबू (ठाकुर) को परीक्षा खर्च भेजदें। बाबूजी जब रुपये कमाने लगेंगे तो मैं दूसरी बनवालूँगी"।

वृद्धा यह देख बोली—नहीं बेटी यह कभी नहीं होने दूँगी। तुम ने तो एकेक करके अपना सब गहना ठाकुर के पढ़ाने में लगा ही दिया। अब केवल यह नथिया ही तो शेष रह गयी है। तिस पर भी दो तीन वर्ष के बाद बच्ची विवाह के योग्य हो जायगी, आखिर उसको भी तो कुछ देना होगा।

शारदा ने धीरे से कहा "आप चिन्ता नहीं करें माताजी! तब तक तो छोटे बाबू कमाने योग्य हो जायँगे।

मथुरा यह देख बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा—हां तब तक सब हो जायगा माताजी !

× × × ×

कटक का रविन्सा कौलेज बड़े दिन के अवकाश में बन्द होकर, दूसरी जनवरी को ही खुल गया था। विश्वविद्यालय की शुल्क के लिये अब एक ही दिन शेष रह गया है। सब लड़के परीक्षा शुल्क दाखिल कर चुके थे, लेकिन ठाकुरप्रसाद को अभी तक रुपया नहीं मिला है, उस ने इधर उधर बहुत यत्न लड़ाया पर सब निरर्थक हुआ। कटक से बारह माइल पश्चिम की ओर पिरौना रेल्वे स्टेशन से चार माइल दक्षिण को शामपुर नामक ग्राम में ठाकुरप्रसाद का घर था। उसके घर की अवस्था बहुत बुरी थी, ठाकुरप्रसाद के बड़े भाई मथुराप्रसाद ही उस घर के अवलम्ब थे। पिता माता की वृद्धावस्था उनके लिये भारी हो रही थी। मथुराप्रसाद को जो दो तीन एकड़ पिता की अर्जित जमीन थी, वह भी भाई के पढ़ाने में बिक चुकी थी। वह अपने पड़ोसी बाबू राजकुमारप्रसाद के यहाँ आठ रुपये महीने पर क्लर्क था। बस यही उसके घर की स्थायी अथवा अस्थायी सम्पत्ति शेष रह चुकी थी, इससे वह अपने माता पिता स्त्री संतान तथा अपना निर्वाह करता था। अपने छोटे भाई को पढ़ाने के लिये उसने कई जगह से थोड़े २ चन्दे का प्रबन्ध किया था, और यही कारण था कि ठाकुर आए ए. तक पहुँच सका था। ज्यों ज्यों समय निकट आता गया त्यों त्यों ठाकुर हताश होने लगा।

× × × ×

दिन के आठ बज गये थे, पिरौना रेल्वे स्टेशन पर कटक की ओर जानेवाली पैसिञ्जर ट्रेन खड़ी हुई धूम्र वमन कर रही थी। यात्री लोग शीघ्रता से गाड़ी पर चढ़ उतर रहे थे। "कुली चाहिये कुली !" की आवाज़ और उनके (कुली) इधर उधर दौड़ लगाने रहने से स्टेशन गूंज उठा था। असिस्टेंट स्टेशन मास्टर टिकट लेने के लिये सदर दरवाजे पर खड़े हुए थे। उसी समय सिर पर तीन सेर की गठरी लादे पसीने से लथ पथ और हांफता हुआ एक युवक उक्त स्टेशन मास्टर के निकट आ गिड़गिड़ा कर बोला—"बाबू मुझे अत्यावश्यक कार्य के लिये कटक जाना है, कृपा कर एक टिकट दीजिये, बड़ा उपकार मानूँगा !

स्टेशन मास्टरः—अब समय नहीं, टिकिट नहीं मिल सकता।

युवक—बड़ा आवश्यक कार्य है बाबू, अगर यह गाड़ी छूट गयी तो दिन भर गाड़ी नहीं मिलेगी, और मेरा कार्य बिगड़ जायगा।

यदि कुछ अधिक भी लगे तो लेकर देने की कृपा करें।

स्टेशन.—आव, गार्ड से कह कर चढ़ जाना, अब अधिक समय नहीं है!

युवकः—सिर पर गठरी लिये लपकता हुआ गार्ड साहब के निकट आकर गिड़गिड़ाते हुए बोला-बाबू, मैं कटक जाऊंगा, बड़ा आवश्यक कार्य है, देर से आने के कारण टिकट नहीं लेसका, कृपा कर गाड़ी पर चढ़ने की की आज्ञा दें!

गार्ड साहबने *"हटो, अब समय नहीं है"* यों कह कर सीटी बजा हरी झण्डी दिखा दी, गाड़ी फकफकाती हुई धीरे २ आगे को बढ़ चली, युवक सिर पर गठरी लिये हताश खड़ा टकटकी बाँधे गाड़ी की ओर देखता रहा। देखते देखते गाड़ी स्टेशन से निकल गयी। युवक को खड़ा देख एक खलासीने निकट आकर कहा "चलो, खड़े २ क्या करते हो, बाबू खड़े हैं उन्हों जल्दी टिकट दो, और गठरी भी तुम्हारी बड़ी भारी मालूम होती है, इसे तोलना पड़ेगा।

युवकः—चौंककर, ऐं? टिकट कैसा? टिकट के बिना तो टकटकी लगाये,ही रह गये नहीं तो अबतक कटक ही न पहुंच जाते!

खलासीः—चलोजी, आंख में धूल डालना खूब जानते हो! पर यहां एक भी न चलेगी, तुम्हारे ऐसे चालक तो कितने ही आया करते हैं। टिकट निकालो और यदि टिकट नहीं है तो लाओ क्या देते हो! वर्ना एक के दस गिनेंगे।

युवकः—मैं क्या गाड़ी से उतरा हूं, टिकट कैसा?

खलासीने धक्का मार कर युवक की गठरी सिरसे गिरादी और हाथ पकड़ कर बड़े बाबू के निकट उसको लेगया।

बड़े बाबू ने कहा:-"क्या है?"

खलासीः—बाबू यह अभी गाड़ी से उतरा है, इसके पास टिकट नहीं है, इसलिये खड़ा खड़ा मक्खरेबाजी कर रहा है।

बड़े बाबूः—क्योंबे, "टिकट कहां है!"

युवकः—बाबू! मैं कटक जाने को था, देर से आने के कारण टिकट नहीं लेसका। आपके छोटे बाबू से पूछ कर बिना टिकट ही गार्डसाहब की आज्ञा लेकर गाड़ी पर चढ़ने गया, पर उन्होंने टिकट जाने की आज्ञा नहीं दी। गाड़ी खुल गयी और मैं खड़ा रह गया।

स्टेशन मास्टर ने छोटे बाबू को पूछा—"यह क्या कहता है"

छोटे बाबू ने कहा,"इसका कहना ठीक है, मेरे ही कहने से यह भीतर गया था। बड़े बाबूने उसी दम उसे छोड़ दिया। युवक ने जान की रिहाई तो पायी, पर गाड़ी छूट जाने की चिन्ता से किंकर्तव्यमूढ़ सा हो गया। थोड़ी देर चिन्ता सागर में गोता लगा कर वह स्टेशन से बाहर निकला और सिर पर गठरी लिये रेलवे सड़क की किनारे वाली पगडण्डी पर कटक की ओर पैदल चलता बना।

× × × × ×

दिन के तीन बज गये। ठाकुरप्रसाद अधीर हो कभी इधर कभी उधर दौड़ जाते, पर कहीं कुछ आशा न देख विह्वल हो रहे थे। बड़ बड़ा बक अब तो एक ही घण्टा शेष रह गया, अभी तक रुपयों का प्रबन्ध नहीं हुआ। अब क्या होगा व्यर्थ ही इतने परिश्रम [illegible]? इत्यादि अनेक प्रकार की बातें मन में आतीं और लुप्त हो जाती थीं। ठीक उसी समय सिर पर गठरी लिये मथुराप्रसाद अपने अनुज ठाकुरप्रसाद के डेरे पर पहुंच गया। भाई को आया देख ठाकुरप्रसाद [illegible] आनन्दित हुआ मानो शरीर में प्राण लौट आया हो। मथुराप्रसादने सिर की गठरी रख कमर से रुपये निकाल ठाकुर के हाथ में देकर कहा:—"लो इसमें [illegible] को पूरा कर आओ। [illegible]

[illegible]

× × × ×

[illegible]

इन्सपेक्टर नियत होचुका था। उसका विवाह भी कटक के बाबू कालीप्रसाद की कन्या कौशिकी से होगया था। [illegible] साहब की कृपा से ठाकुर को वह जगह भी मिली थी। [illegible] ठाकुर से 'जानकी' के विवाह के विषय में पूछा था, ले[illegible] यह कह कर टाल दिया कि-"अभी तो वह छोटी है, [illegible] उसके विवाह का जिक्र न करें, तब तक कुछ रुपये का प्रबन्ध [illegible] जायगा।" मथुराप्रसाद ने अनुज की बात स्वीकार [illegible] चीं नहीं की।

विवाह के बाद 'कौशिकी' एक ही बार पति के घर [illegible] थी, इस के बाद फिर नहीं आयी। मथुराबाबूने कई बार [illegible] को लाने की चेष्टा भी की; लेकिन सब निष्फल हुआ। शारदा [illegible] की को बड़े प्रेम से रखती और कभी कुछ करने नहीं देती, लेकिन न मालूम उस ओर से कौशिकी का चित्त क्यों हट सा [illegible] शामपुरका नाम लेतही वह बड़बड़ाने लगती थी। माता [illegible] झिड़क कर कहती कि एक दरिद्र के घर मेरा ब्याह कराकर [illegible] दुःख सागर में ढकेल दिया है। अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। [illegible] की विशेष प्यारी होने के कारण काली बाबू भी कुछ नहीं कह [illegible] थे। कौशिकी तो पिता के घर रहनेही लगी, धीरे धीरे उसने [illegible] प्रसाद को भी सिखा पढ़ाकर राजीकर लिया। अबवे घर [illegible] तक नहीं लेते। मासिक वेतन भी पोष्ट ऑफिस में ही जमा करने लगे। पहले तो दस पांच रुपये महीने के हिसाब से घर भेजते भी थे, लेकिन अब वह भी बन्द हो गया है। मथुराप्रसादने इसकी कुछ खोज भी नहीं की। क्योंकि उसका ख्याल था कि ठाकुर जानकी के विवाह के लिये रुपये जमा करता होगा।

\+ \+ \+ \+ \+

अब जानकी की अवस्था पन्द्रह वर्ष की हो गई है। एक [illegible] घर में इतनी बड़ी अविवाहिता लड़की का रहना सब को खटकने लगा। वृद्ध माता पिताने मथुरा को लड़का ढूढने को कहा। शारदा ने भी समय पाकर स्वामी से निवेदन किया कि, अब भी आप को जानकी के ब्याह की फिकर नहीं होती! आप क्यों चुप्पी लगाये बैठे हो! [illegible] छोटे बाबू से जाकर कहो, वे क्या कहते हैं!" पत्नी की बात स्वीकार कर मथुराप्रसाद अपने अनुज से मिलने के लिये कटक गये।

दस बजे भोजन कर ठाकुरप्रसाद पोष्ट ऑफिस को जारहे थे, रास्ते ही में भाई से मुलाकात होगई। मथुराप्रसाद ने स्नान भोजन भी नहीं किया था। अनुज से भेंट होते ही बड़ी आशा से वह उसके आगे आकर खड़ा होगया। ठाकुर ने कहा-"कहिये क्या कहते हैं? मुझे विलम्ब हो रहा है।" मथुराप्रसाद भाई का रुख देख भौंचक्कासा रह गया। ठाकुरप्रसाद भाई को निरुत्तर खड़ा देख बोला "बेकार क्यों देर करते हैं! कहिये क्या कहने आये हैं।"

मथुराः—और क्या कहूंगा, अब 'जानकी' पन्द्रह वर्ष की हो गयी, लोग हँसी करते हैं, अब उसका ब्याह होजाना चाहिये।

ठाकुरप्र०:—तो मैं कब रोकता हूं!

मथुराः—अब तक रुपया ही नहीं हुआ था!

ठाकुरप्र०:—तो मैं क्या करूं!

मथुराः—करोगे क्या, रुपया दो।

ठाकुरप्र०—रुपये कहां से दूं, क्या मेरे पास जमा हैं, जितना मिलता है सभी तो खर्च हो जाता है।

मथुराप्रसाद को अनुज से इस प्रकार की रूखी सूखी बातें सुनने की कभी स्वप्न में भी आशा नहीं थी, ठाकुर का रास्ता छोड़ कर [illegible] को लौट पड़े। किन्तु ठाकुर ने भाई को लौटता देख कुछ भी न [illegible]

× × × ×

मथुराप्रसाद विषण्ण मुख घर को चल दिया। उसकी आशा पर पानी फिर गया। और तो [illegible] बात की उसे चिन्ता नहीं थी [illegible] 'जानकी' के विवाह की व्याधि ने उसे व्यग्र बना दिया था। [illegible] अनेक बातें सोचता विचारता वह घर लौटा। [illegible]

थे। मथुराप्रसाद बैठा उसकी शोभा तो देख रहा था लेकिन ध्यान कहीं दूसरी ही ओर था, उसी समय एकसाथ बन्दूक की दो आवाजें हुईं। बन्दूक का शब्द सुनते ही पक्षी उड़ चले, और उड़ते ही उड़ते दो तीन बीच तालाब में गिर पड़े। मथुराप्रसाद भी इस दृश्य को चौकन्ना हो देख रहा था। उसने तालाब के दूसरे किनारे झुरमुट से एक गौरांग महाशय को हैट कोट चढ़ाये हाथ में बन्दूक लिये निकलते देखा। साहब ने उन चिड़ियों को जो छर्रे से मर कर पानी में गिर चुकी थीं निकालने का बहुत उपाय सोचा, पर कुछ भी युक्ति काम न आगई। क्योंकि चिड़ियाँ बीच तालाब में गिरी थीं। और वहां जल अथाह था। अन्त को विवश हो वे इधर उधर देखने लगे। तत्काल उनकी दृष्टि मथुराप्रसाद पर पड़ी। वे लपक कर उसके निकट आपहुंचे, और कहने लगे-"क्या टुम उन चिड़ियों को निकाल सकटा है?" मथुराप्रसाद, जी हां कह कर फौरन तालाब में कूद पड़ा और थोड़ी देर में उन पक्षियों को तालाब से निकाल कर साहब के आगे रख दिया। साहब शिकार को पाकर बोला "वेल् टुम क्या माँगटा है? टुम को बहुत मेहनट पड़ा है! हम टुम से खुश हुआ है।" साहब की बातें सुन कर मथुराप्रसाद ने कहा-"मैं कुछ नहीं चाहता हूँ, बड़ों की आज्ञा पालन करना मेरा कर्तव्य था, और वह मैंने किया।"

साहब —ठीक बोलटा है! हम टुम को कुछ इनाम डेगा, बोलो क्या चाहटे हो!

मथुराप्रसाद उसकी ओर देखता हुआ चुप खड़ा रहा। उसे निरुत्तर देख साहब ने कहा, "अच्छा टुम अपना नाम और घर का पटा बटाओ!" मथुराप्रसाद ने अपना नाम ठीक पते के साथ बतला दिया। साहब ने अपनी नोट बुक में उसे लिख लिया और मोटर साइकल पर सवार हो वह कटक की ओर चल दिया। मथुराप्रसाद भी अपना गीलावस्त्र बदल कर घर की ओर रवाना हुआ।

× × × ×

अब मथुराप्रसाद की लड़की जानकी का विवाह एक सुयोग्य धनी मानी घर में पढ़े लिखे लड़के के साथ होगया है। विवाह में कुल दो हजार रुपये खर्च हुए। रुपया तो उसके पास एक भी नहीं था, पर अचानक विवाह के कुछ समय पहले न मालूम किस ने दो हजार के नोट रजिष्ट्री द्वारा भेज दिये थे। मथुरा इस गुप्त दान को विषय में समझता था कि, होसकता है ठाकुर ही ने यह रुपया भेजा हो! लेकिन विवाह के बाद ही इसकी कलई खुलगयी। ठाकुर तो 'जानकी' के विवाहोत्सव में सम्मिलित भी नहीं हुआ, और न कौशिकी ही आयी। इस पर वृद्ध माता पिता और शारदा को बड़ा दुःख हुआ। वे लोग भी समझते थे कि, विवाह का कुल रुपया ठाकुर ही ने दिया है। क्योंकि मथुराप्रसाद ने उस दिन की घटना का वर्णन किसी से नहीं किया था। ठाकुर ने भाई के साथ जैसा व्यवहार किया उसका कुछ भी जिक्र मथुराप्रसाद ने नहीं किया। किन्तु पीछे से सब बात उन लोगों को विदित होगयी। वृद्ध माता-पिता को पुत्र की इस निष्ठुरता पर ऐसा दुःख हुआ कि जानकी के विवाह से पाचवें महीने ही दोनों संसार छोड़ कर चल बसे। किन्तु यह समाचार पाकर भी ठाकुर-प्रसाद घर नहीं आया। माता पिता का श्राद्ध कर्म परिपूर्ण होने के बाद ही मथुराप्रसाद को बुखार ने आ दबाया। ठीक उसी समय शामपुर के बाहर जिलाधीश का खेमा पड़ा हुआ था। जिलाधीश टूर में आये थे। उन्होंने चपरासी द्वारा मथुराप्रसाद को अपने खेमे में उपस्थित होने की आज्ञा भेजी। रुग्णावस्था में पड़े रहने पर भी कलेक्टर साहब की आज्ञा उल्लंघन करने का उसे साहस न हुआ। ज्यों त्यों करके ठीक समय पर मथुराप्रसाद खेमे पर उपस्थित हुआ। चपरासी उसको भीतर लेगया। साहब को झुक कर सलाम करने के बाद मथुरा आज्ञा पाकर कुर्सी पर बैठ गया। कलेक्टर ने पूछा क्या टुम हम को पहचानटा है?

मथुराप्रसादः—जी! हुजूर को सेवक कब भूल सकता है! हुजूर ही ने तो सेवक को कलंक के शिकार से बचाया, नहीं तो मैं लड़की का विवाह कर ही कैसे सकता था?

क० साहबः—टुम ने भी टो हमारा शिकार बचादिया था। अच्छा जाओ, आज से टुम सरकारी टहशीलडार हो सौ रुपये महीने पर कायम किया गया।

\+ \+ \+ \+

मथुराप्रसाद आज्ञापत्र लिये घर आया और उत्तमतापूर्वक कार्य सम्पादन करने लगा। किन्तु ठाकुर ने उसकी खबर तक नहीं ली। अब शारदा ने एक पुत्र रत्न प्रसव किया है, और उसी के लालन-पालन में पति पत्नी के दिन सुख चैन से कट रहे हैं।

विभूति-वियोग।

१

कर खोज अधिक थक जाता हूँ।
विह्वल हो दौड़ लगाता हूँ॥
जब तुम विभूति न पाता हूँ।
तब हो अधीर पछिताता हूँ॥
जब ध्यान तुम्हारा आता है।
यह हृदय टूक हो जाता है॥

२

हिन्दी-नभ उज्वल तारा था।
जीवन था, जगत् सहारा था॥
माता का एक दुलारा था।
प्राणाधिक पितु का प्यारा था॥
जब ध्यान तुम्हारा आता है।
जी सूना शोक बढ़ जाता है॥

३

ऐसा स्वदेश प्रेम धारा था।
उज्ज्वल यश बड़ा पसारा था॥
ज्ञानी था, गुरुका प्यारा था।
प्रतिभा शाली बड़ न्यारा था॥
जब याद मूर्ति वह आती है।
छाती दुखी हो फटती है॥

४

कविता जो लिख बतलाता था।
पढ़ पढ़ सस्वर सुना जाता था॥
जैसा स्वदेश गुण गाता था।
मुर्दा भी जीवन पाता था॥
जब ध्यान तुम्हारा आता है।
जलधार नेत्र बरसाता है॥

५

मुझ से जब मिलने आता था।
सादर पद शीश नवाता था॥
साहित्यिक चर्चा लाता था।
घण्टों तक तर्क लड़ाता था॥
जब याद समय वह आता है।
सीने पर सर्प दिखता है॥

६

मृदुता न किस से सीखा था।
रहता न मौन हो दीखा था॥
मद-भय व हृदय का ऊँचा था।
जो सत्य धर्मका सींचा था॥
जब ध्यान तुम्हारा आता है।
सिर चकरान हो जाता है॥

७

जब मुझे छोड़ तू जाता था।
इतनी क्या देर लगाता था॥
ज्यों पत्र तुम्हारा पाता था।
त्यों उलटा दौड़ा आता था॥
जब ध्यान तुम्हारा आता है।
सूना-संसार दिखाता है॥

८

रूठे हो, यदि दुखाये हो।
अबकी क्यों देर लगाये हो॥
क्यों शीघ्र निकट नहिं आये हो।
दिल मेरा व्यर्थ दुखाये हो॥
जब ध्यान तुम्हारा आता है।
जीवन यह व्यर्थ दिखाता है॥

९

वह भाँति तुम्हारी प्रेमी थी।
उस से क्या कहा प्रेमी थी॥
मूँदोगे आँख न देखोगे।
आशा पर पानी फेरोगे॥
सपने में भी न दिखाता है।
क्या यही प्रेम का नाता है॥

१०

यह कार्य काल का ऐसा है।
निठुर अन्यायी जैसा है॥
या भाग्य हमारा ऐसा है।
या विधि विडम्बन ही ऐसा है॥
जब ध्यान तुम्हारा आता है।
रोता है जगत् हमारा है।

[illegible]

शंखामृत।

(लेखक—श्रीयुत वैकुण्ठराय।)

देव पूजा का आरंभ करने ही प्रत्येक भावुक को सब से प्रथम हाथ में शंख लेना पड़ता है। इस बात पर मुझे अभी २ कुछ दिनों से जरा नफरत सी होने लगी थी। देवताओं के दोनों ओर जब कभी देखिये, आप को घण्टा और शंख की जोड़ी संगीन पहरा देती हुई अवश्य दिखाई पड़ेगी। शंख एक जलचर प्राणी का कवच होता है, किन्तु इस में पानी भर कर देवता के सन्मुख रखने से क्या मतलब होगा? इस प्रश्न का यथार्थ निर्णय न हो सकने के कारण ही मेरी उदासीनता दिन २ बढ़ती जाती थी।

यह एक प्रकार के शंख का कवच है। ये कवच भिन्न २ रंगों के तहों से बनी होती हैं, अतः इस पर चित्र की खुदाई करने के लिये बड़ी मांग रहती है। इस चित्र में एक मनुष्य की आकृति शंख कवच पर खोदी गई है। इस प्रकार के खुदे हुए चित्र कॅमियो कहलाते हैं।

विद्याविनोद शास्त्री से जब मैंने इस विषय में पूछा तो उन्हों ने कहा कि, महाविष्णु को शंखासुर नामक एक दुष्ट राक्षस के साथ किसी समय युद्ध करना पड़ा था। युद्ध में राक्षस की हार हुई, किन्तु उसका पराक्रम देख कर सन्तुष्ट होजाने के कारण युद्ध के स्मारक रूप में विष्णु ने अपने शत्रु का कलेवर (शरीर या कवच) हाथ में धारण कर लिया। और उसकी महिमा बढ़ाने के लिये तभी से अपने भक्तों को पूजा के समय शंख रखने की अनुमति प्रदान की है। शंखोदक को शरीर पर छींट कर चरणामृत पिये बिना पूजन कार्य समाप्त नहीं माना जाता।

किन्तु शास्त्रीजी के मुँह से सुनी हुई इस उपपत्ति द्वारा भी मेरा समाधान न हुआ। क्योंकि मैं इस बात की ठीक २ कल्पना ही न कर सका कि, इतनी बड़ी देव सेना के रहते हुए भी स्वतः विष्णु भगवान को जिस से दो दो हाथ खेलना पड़े वह राक्षस रहता कहां होगा, और यह प्रचण्ड कलेवर उसके किस अंग में कसा हुआ होगा? अन्त को अपने मनोदेव से निश्चय किया कि, मनोधैर्य्य का पाठ सीखने के लिये यह अवसर बड़ा अच्छा है। पीछे से जो कुछ होना होगा सो हो जायगा, किन्तु पूजा साहित्य में से शंख का बहिष्कार करके उस के स्थान पर चांदी की सुन्दर घण्टी रख ही देनी चाहिये। दो चार ही दिन में अपने निश्चय को कार्य रूप में परिणत करने का विचार किया, किन्तु फिर भी मन में दिन-रात इसी विषय के विचारों की हलचल मची रहती थी। जब मनुष्य किसी बात का हठ धारण कर बैठता है, तब उसकी यही दशा होती है, और उसमें भी फिर मैं ने तो हंस नाद (शंख विषयक हठ) धारण किया था। ऐसी दशा में एक दिन सबेरे मैं देवार्चन करता हुआ हाथ से शंख को धोकर मन ही मन इसका ध्यान कर रहा थाः—

शंखादौ चन्द्रदैवत्यं। कुक्षौ वरुण देवता।

....

एवं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे। इत्यादि

कि इसी बीच मेरी आंखें मुँद सी गईं। दीपक का प्रकाश ... अधिक उज्वल हो उठा। मैं क्या देखता हूं, कि शंख का मुख धीरे बढ़ रहा है। उसके मुख पर पुनर्वसु का नक्षत्र चमकने लगा। पुनर्वसु को स्वर्गद्वार (Heaven's gate अंग्रेजी में) कहते हैं। इस प्रकार स्वर्ग होने ही उस शंख का मुँह किसी राजनगर के महाद्वार की तरह दिखाई पड़ने लगा। क्षणमात्र का विलम्ब न कर तत्काल मैं उस में घुस पड़ा। आगे बढ़ कर क्या देखता हूं कि, द्वार के सन्मुख ही भीतर की ओर द्वारपाल की ड्योढ़ी पर कुछ लिखा हुआ है। मैं उसे ध्यानपूर्वक पढ़ाः—

"चिड़ियाँ अपनी तान में, जगत बीच मस्तान"

चित्र १ कवचधारी मृदु मांसल प्राणी।

इस दोहार्ध के अर्थ पर मैं विचार करता हुआ खड़ा ही था कि, इतने में एक शंखाकृति खड्गचर्मधारी द्वारपाल मेरे सामने आकर कहने लगा—

"अरे मानव प्राणी! पृथ्वी पर के समस्त मनुष्यों को अभिमानरूपी पिशाच ने झपेट लिया है। उन्हें जान पड़ता है कि, अपने कर्तव्य और ज्ञान के कारण ही हम पृथ्वी का साम्राज्य उपभोग कर सकते हैं। अखिल चराचर की डोर हिलानेवाले सूत्रधार परमेश्वर का उन्हें ज्ञान तक न रहा है। इसी बात का सारांश उपरोक्त दोहार्ध में कहा गया है। चिड़ियाँ भी अपनी २ तान लगाते समय समझती हैं कि, अहा हमारा स्वर कितना मीठा है। बस, इसी पर वे मस्त हो जाती हैं, किन्तु उन्हें इस बात का भान नहीं होता कि, उस जगन्नियन्ता ने और भी अगणित जीवों का हमारी ही तरह मधुर स्वर बनाया है। यही दशा आजकल तुम मानव प्राणियों की भी होरही है।

अरे! महान जल समूहों एवं विस्तीर्ण गिरि गह्वरों में विविध वेषधारी जीवों का जिस ने निर्माण किया है, उसने जो भी तुम्हारी पर्वाह नहीं की, तथापि उनकी जीवन यात्रा को सुखपूर्वक व्यतीत होती देख कर तुम्हें कुछ द्वेष होता है क्या? तुम्हारी अपेक्षा वे संख्या में कितने अधिक हैं, किन्तु फिर भी धन धान्यादि का संग्रह किये बिना, और गाड़ी घोड़े या विमानादि एवं नाटक तमाशे का अवलम्बन किये बिना ही वे अपना जीवन किस प्रकार सुखपूर्वक व्यतीत कर रहे हैं। इस बात का ज्ञान यदि तुम्हें होता तो अवश्य आज तुम्हारी यह दशा

ऐवाली इन कृत्रिम साधनों से तुम अपने को विशेष सुखी समझने लगे। किन्तु खूब याद रक्खो कि यह केवल तुम्हारा भ्रम मात्र ही है। तुम्हीं ने आरंभ से अपनी आवश्यकताएं बेतरह बढ़ाली हैं, और अब तुम्हीं उनकी पूर्ति के लिये रात दिन नाना प्रकार के कष्ट उठा रहे हो।

जिसने तुम्हें जन्म दिया है, उसी पर तुम्हें सुखी रखने का उत्तरदायित्व है। किन्तु हम पूछते हैं कि, क्या तुम ने कभी उससे अपने को मनुष्ययोनि में जन्म देने की प्रार्थना की थी? तुम से पूछे बिना ही यदि उसने केवल अपनी लीला के लिये तुम्हें निर्माण किया है, तो तुम्हारा योगक्षेम चलाने का दायित्व भी उसी पर हो सकता है। किंतु यदि ये बातें तुम्हें पटने लगीं तो अवश्य ही तुम स्वर्ग भूमि को पृथ्वी पर देख सकोगे! परन्तु उस दशा में तुम्हें दगा फसाद और झंझट झगड़े आदि का दृश्य कैसे देखने को मिल सकेगा! अस्तु। हमारी बस्ती कितनी प्राचीन एवं विशाल है, इसकी जानकारी श्वेतद्वीपस्थ लोगों को तुम से अधिक है, क्योंकि वे इस विषय के जिज्ञासु हैं। जरा ही भीतर को आकर फिर हमारा नगर देखो तो तुम्हें भी ये बातें ज्ञात हो जायँगी। हमारे नगर को देखने के लिये पौर्वात्य विशेषज्ञ नहीं आते, किन्तु पाश्चिमात्यों के झुंड के झुंड आया करते हैं। तो भी गर्व की पट्टी चढ़ाये हुए वे लोग हमें Native (देहाती) ही कहते हैं!
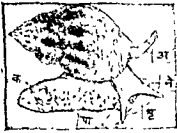
शंख प्राणी का शरीर घोंघे की तरह होता है। अ=नि सार पदार्थ बाहर निकलने का द्वार। ने=नेत्र। शृ=शृंग (स्पर्शेन्द्रिय) पा=पावँ। क=शत्रु से बचने का कवच।

(१)

भीतर आते ही सब से प्रथम मुझे एक पुस्तकालय मिला। सामने की टेबल पर एक पुस्तक रखी हुई दिखाई दी। उसका नाम "शंख विद्या" (chonchology) था। जब मैंने उसके कुछ पृष्ठ उलट कर देखे तो उसमें चित्र ही विशेष दिखाई दिये। इस एक ही बात पर से उन "शांखीय" प्राणियों की बुद्धिमत्ता का पता लग सकता है। क्योंकि भिन्न २ भाषाओं की वर्णमाला प्रत्येक मनुष्य नहीं पढ़ सकता। किन्तु चित्रों के विषय में यह बात नहीं। किसी चित्र को देखते ही प्रत्येक सामान्य संस्कृति वाले मनुष्य के चित्त में एक ही कल्पना की प्रतिभा उठती है। वृक्ष का चित्र देख कर प्रत्येक मनुष्य उसे झाड़ ही बतलाता है। अस्तु।

अपनी जाति, गण, गोत्र, वसतिस्थान आदि बातों का ज्ञान पृथ्वी
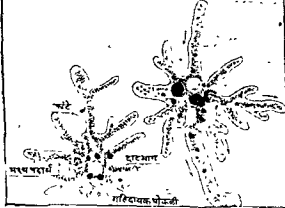
प्राणी वर्ग का श्रीगणेश। अमीबा नामक एकाकी पेशीवाले जंतु वर्ग। छोटे चित्र में अमीबा २० गुना करके दिखाया गया है, और बड़े में २५० गुना।

र से लोप न होजाय, इस आशय से उस पुस्तक में शांखीय जीवों ने ड़ी ही उत्तमता से अपना सचित्र परिचय दिया था। मैं टेबल के पास की एक कुर्सी पर बैठ गया और उस पुस्तक को ध्यान से देखने लगा। प्रत्येक भाषा की वर्णमाला के जिस प्रकार स्वर और व्यंजन दो भेद होते हैं, उसी प्रकार प्राणियों के भी मुख्यतः दो भाग होते हैं.—

(१) अस्थिमय—जिनके कि शरीर में हड्डियां होती हैं। यथा मछली, मेंढक, गाय, सांप, मनुष्य आदि।

(२) अस्थिहीन—अर्थात् जिन के शरीर में हड्डियाँ नहीं होतीं! यथा मक्खियाँ, चींटी, घोंघा आदि।
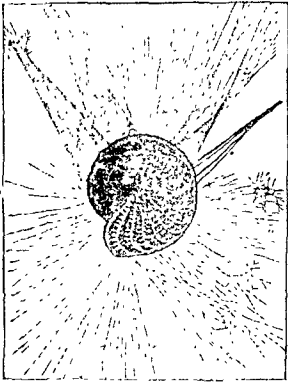
अमीबा की जाति का दूसरा एक प्राणी। इसकी पेशियाँ नर्म पत्थर के समान पदार्थ की बनी हुई होती हैं। वनस्पति के मूल-तंतुओं की भांति इसकी भी असंख्य सूक्ष्म बालों के समान जड़ें होती हैं।

इनमें से अस्थिमय प्राणियों की शरीरस्थ मुख्य अस्थि मेरू दंड (पीठ की हड्डी) होती है। इसी कारण अस्थिमय प्राणियों को उसमें पृष्ठवंशी बतलाया है, और अस्थिहीनों पृष्ठवंशीहीन। पृष्ठवंशी प्राणियों का रक्त ही लाल होता है।

पृष्ठवंशीहीन प्राणियों के तीन अन्तरभेद हैं.—

(१) जोंक प्रभृति प्राणी, कि जिनके शरीर छोटे और गोल स्वरूप में बने हुए होते हैं। इन का नाम "वलय घटित" रखा गया है।

(२) घोंघे, सीप, शंख, कौड़ी आदि प्राणी, कि जिनके शरीर में न तो हड्डियाँ ही होती हैं, और न लाल रक्त ही। ये केवल मांस के लचीले पिण्ड मात्र ही होते हैं। अत: इनका नाम मृदुमांसल रखा गया है। इनका रक्त ठंडा होता है।

पृष्ठवंशी प्राणियों के शरीर उनकी अस्थियों से ही सुरक्षित रह सकते हैं। किंतु मृदु मांसल प्राणियों की रक्षा के लिये कइयों को कठिन कवच होता है और कइयों को केवल मोटे चर्म का आवरण मात्र ही।
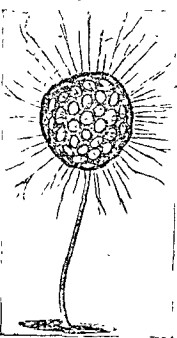
अमीबा की एक जाति। बाहरी पेशी जालीदार है, और उसमें से बाल की तरह सूक्ष्म तंतु निकले हुए हैं। इसका आकार बहुत ही सूक्ष्म होता है इस चित्र में वह १५० गुना दिखाया गया है।

(३) कई प्राणियों का मुँह उनके शरीर के मध्य भाग में होता है। उस मुँह के चारों ओर जब उनका शरीर फैलता है, तब वह किसी

से देखने पर कहा जासकेगा कि, सब प्राणियों के मुख्यतः दो भेद ही हो सकते हैं—

(१) एक पेशी के प्राणी (२) अनेक पेशी के प्राणी। इन प्राणियों को "स्पंज" कहते हैं। स्पंज का नाम सुनते ही आप को नित्य व्यवहार में आनेवाले नर्म और शोषक पदार्थ का स्मरण हो आया होगा। किन्तु नहीं, ये स्पंज जब जीवित होते हैं, तब कभी २ ये चर्म धारी और मांसल भी होते हैं। और कभी २ सींग के टुकड़े की तरह कड़े और कभी धुनकी हुई रुई के समान हलके दिखाई पड़ते हैं। ये प्राणी शिलाखंडों से चिपके रहते हैं, अथवा जलस्थ वनस्पतियों के पेंदे ये समूह बना कर रहते हैं।

स्पंज प्राणी का शरीर मांसल होता है। उसमें एक दूसरे से जोड़ने वाली अनेक नलियाँ भी रहती हैं। उनमें पानी दौड़ता रहता है। शरीरस्थ कई पेशियाँ उसका पोषण करती रहती हैं। कई पेशियों में से केल्शियम कार्बोनेट अथवा सिलिकेट नामक द्रव्य का रस टपकता रहता है। जब यह रस गाढ़ा हो जाता है तब उसके अलग २ भाग पड़ जाते हैं, और स्पंज के मांसल शरीर को अस्थिपंजर का सहारा मिल जाता है। शरीर के चारों ओर एक मृदु सच्छिद्र त्वचा रहती है। स्पंज प्राणियों का पुंज मृत स्पंज के दृढ़ पंजर का आधार लेकर बढ़ता जाता है।

नित्य व्यवहार में जो स्पंज काम में लाया जाता है, वह इस प्राणी के शरीर की मृदु त्वचा मात्र ही है। स्पंज प्राणी का पुंज पानी में से निकालने के बाद कुछ दिन तक सड़ाया जाता है, और इसके बाद उसे खूब झटकते हैं। इस क्रिया से उसके शरीर में का मांस सड़ागला और उपरोक्त काठिन्य एवं तीक्ष्ण भाग निकल कर त्वचा मात्र शेष रह जाती है; उसी को स्पंज कहते हैं।

इस ओर पोलाकार प्राणियों के नमूने रखे हुए हैं, किन्तु स्पंज पोलाकार और तारकाकृति प्राणी है, जो हमारी श्रेणि में का ही है।

इन सब सूक्ष्म प्राणियों की शरीर रचना और इनके जीवन क्रम का अवलोकन करने में कई जन्म बीत जाने पर भी पार नहीं पाया जा सकता। तो भी आप मन में यह भाव उत्पन्न न होने दीजिये कि, इन सब बातों को समझ कर हमें करना ही क्या है! इन बातों को देखते २ प्रत्येक प्राणी निरहंकार बन जाता है, और फिर उसके अंतःकरण में ईश्वर सान्निध्य एवं तद्व्याप्ति का भाव प्रकट होने लगता है। छोटे, बड़े, स्थूल-सूक्ष्मादि प्रत्येक प्राणियों की जीवन यात्रा का भार परमेश्वर ही चलाता है, इस बात का दृढ़ निश्चय रहने पर ही "हम भी परमेश्वर के एक कण स्वरूप हैं" इस प्रकार की भावना द्वारा जो भी हमारा शरीर कर्म करता रहेगा, तथापि मन के द्वारा हम उसीमें समरस हो कर कहां छुप जायँगे, कह नहीं सकते! उस निःसीम आनंद की महिमा का बखान करने के लिये हम तभी समर्थ हो सकेंगे जब कि, व्यक्ति रूप में देह धारे हुए होंगे! अब तुम जरा इस ओर देखो!

उस मार्ग दर्शक का यह भाषण सुनते २ ही मुझे भास हुआ कि धीरे २ मेरा ही अस्तित्व मिट रहा है। शंखरूपी एक क्षुद्र प्राणी के मुँह से इतनी बातें सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ। ऐसे प्राणियों में भी जब इतना ज्ञान होता है, तो फिर भगवान श्रीकृष्ण ने जो अपने विभूति-योग में "शंखानां पांचजन्योऽस्मि" कहा है, वह यथार्थ ही है।

इस प्रकार मैं मनहीमन विचार करता हुआ, कब तक आनंदानुभव करता रहा ईश्वर ही जाने! किन्तु कुछ ही देर में जो आँखे खुलीं तो क्या देखता हूं, कि मेरे हाथ में वही शंख मौजूद है!

महायुद्ध के छठे वर्ष का मई मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी. ए.।)

तुर्क सन्धी-पत्र ता० ११ मई के दिन पेरिस में फ्रान्स के प्रधान एम० मिलेरेंड ने मित्र सर्कार की ओर से तुर्क वकीलों के सिपुर्द कर दिया। साथ ही उनसे यह भी कह दिया गया कि ता० ११ जून से पेश्तर तुर्क सर्कार को अपनी सूचनाएँ मित्र सर्कार के सन्मुख उपस्थित कर देनी चाहिये। किंतु यह मुद्दत जून के आरम्भ में ही १५ दिन के लिये बढ़ाई जाकर २६ जून कर दी गई है। इस सन्धी-पत्र के मरहूम भाग हैं। यूरोपीय तुर्की राज्य का कुस्तुन्तुनियां के सिवाय अन्य कहीं न रहने दिया गया है। स्वास कुस्तुन्तुनियां शहर समुद्र तट पर बसा हुआ है, किंतु शहर से लगा हुआ समुद्री किनारा तक उसकी सीमा से निकाल दिया गया है। उत्तर की ओर बेटेलक्रा लाइन्स तक शहर की सीमा समझी जाने वाली है। सिवाय इसके शहर में पानी जहां से लाया जाता है वह भूमि भी कुस्तुन्तुनियां में ही समझी जायगी। बहर गरद अथवा समुद्र तट छीन कर शहर की वृद्धि के लिये भी थोड़ा स्थान उसके अधिकार में न रहने दिया गया है। अर्थात् म्युनिसीपालिटियों की हदबंदी की तरह तुर्क सुलतान को स्वतन्त्र बादशाह और इस्लाम धर्म के धर्मगुरु के नाते उस हदबंदी में रहने की आज्ञा दी गई है। क्योंकि इंग्लैंड फ्रान्स और इटली इन तीन राष्ट्रों की अवहेलना की देखरेख में रहना। साथ ही उसे यह भी आज्ञा दी गई है कि, जिस अवस्था में [illegible] के बदले इस शहर में अब प्रतीत होता रहे, वह भी हटा दिया जाय। नगर रक्षा के लिये सुल्तान के पास केवल सात सौ सिपाही रखने का निश्चय किया गया है। अर्थात् अब आगे के लिये मामूली पुलिस के प्रबन्ध के सिवाय अन्य फौजी दृश्य दिखाई देना कठिन हो गया है। परकीय सेना द्वारा घिरे हुए शहर में निर्बल दशा में अपनी राजधानी रखने से राजकीय दृष्टि के अनुसार तुर्की को कुछ भी लाभ नहीं, किन्तु हानि अवश्य है। राजधानी में विद्वान, धनाढ्य एवं नामांकित लोगों का निवास होता है। देश का वैभव, कलासि कलाकौशल्य, आदि भी राजधानी में ही संचित रहता है। द्रव्यबल, एवं बौद्धिक शक्ति की संपत्ति तथा प्राचीन संग्रह का मूल राजधानी ही हो सकता है। देश भर में उसके मनुष्य बल एवं द्रव्यार्जन के साधन फैले रहते हैं, और उस फैलाव का नाम ही राष्ट्र होता है। किंतु राष्ट्र की प्रचलित सम्पत्ति राजधानी की ओर ही आकर्षित होती है, तथा विद्युत्बल भी वहीं संग्रह की हुई रहती है। मनुष्यबल, बुद्धिबल, और द्रव्यबल में से कोई भी [illegible] बल का स्थायी [illegible] राजधानी में प्रस्थापित रहता है। परन्तु अब तुर्की का यह [illegible] कुस्तुन्तुनियां में [illegible] सकता असम्भव सा है। कुस्तुन्तुनियां [illegible] के [illegible] में अब तुर्की का मनुष्यबल [illegible] नहीं किया जायगा। कुस्तुन्तुनियां को लूटे बिन रहने से तुर्कों का द्रव्यबल भी [illegible] होना [illegible]

आने के समय कि-यूरोप से तुर्कों का सदैव के लिये बहिष्कार कर दिया जाय-भारतीय मुसलमानों की मनोवृत्ति की ओर ध्यान देकर, भारत सर्कार के आग्रह करने पर अंग्रेजी विद्वानों के हठ की पर्वाह न कर के कुस्तुन्तुनियाँ की सत्ता मित्र सर्कार ने तुर्कों के अधिकार में रक्खी-यह मानों उन पर एक प्रकार की कृपा ही हुई। तुर्क सन्धी में अन्य शर्तें भी इस प्रकार की रक्खी गई हैं कि, स्वतन्त्र राष्ट्र के नाते फिर से अपना अस्तित्व कायम करने के लिये तुर्कों को कई पीढ़ियाँ लग जायँगी। कुस्तुन्तुनियाँ को छोड़ कर तथा डर्डेनियालस और बासफोरस के मुहानों वाला समुद्र तट का भाग अलग रख देने पर बचा हुआ, युरोपस्थ टर्की का सारा प्रदेश ग्रीस को दे दिया गया है। बाल्कन युद्ध में ग्रीसने तुर्कों का सालिनिका वाला प्रान्त और मकदुनियाँ का कुछ भाग उनसे छुड़ा लिया था, उसके बाद युरोप में टर्की का जो भाग बच रहा था, वह भी आज उसे मिल गया है। मामला इतने पर ही खतम न हो पाया है। टर्की का एशिया मायनर में का स्मर्ना वाला भाग भी ग्रीस को दे दिया गया है। ग्रीस और एशिया मायनर के बीच में एजियन समुद्र में छोटे २ द्वीपसमूह का जो भाग है, उस में से कुछ द्वीपों पर अब तक ग्रीस का और कुछ पर टर्की का अधिकार था। बाल्कनयुद्ध के पूर्व इटली और टर्की के बीच जो लड़ाई हुई थी, उसमें इटली ने एजियन समुद्र में के कई द्वीपों पर अधिकार कर लिया था। महायुद्ध के समय भी उसने और कई द्वीप हथिया लिये। अब वे सब द्वीप तुर्क सन्धी के अनुसार इटली को मिलने वाले हैं। इटली और ग्रीस के बीच यह नया इकरार हुआ है कि, तुर्क सन्धी पर हस्ताक्षर होने के साथ ही इन सब द्वीपों का स्वामित्व इटली ग्रीस को सौंप दे। "होड्स नामक बड़ा द्वीप भी सायप्रस के गुप्त इकरार नामे के अनुसार इंग्लैंड ग्रीस को दे डालेगा। अर्थात् यह सारा द्वीप समूह ग्रीस को मिल जायगा। एजियन सागर का पश्चिम किनारा खुद ग्रीस का है ही, और उत्तर तट पर का सेलिनिका बन्दर स्थान भी अब सब प्रकार उसी का हो गया है। पूर्वी किनारा अर्थात् स्मर्ना वाला भूभाग तथा उपरोक्त द्वीप समूह भी उसे हस्तगत हो चुका है। अर्थात्-यह कह देने में अब कोई हानि प्रतीत नहीं होती कि, तुर्क साम्राज्य का सारा सत्व बाल्कन युद्ध और महायुद्ध के समय में ग्रीस ही हड़प चुका है। कुस्तुन्तुनियाँ यदि इस समय ग्रीस के हाथ पड़ जाता तो, उसका भाग्य इस तुर्क सन्धिपत्र द्वारा आस्मान से ही बातें करने लगता। यद्यपि सन्धि से नहीं, तथापि भावी प्रसंगों के कारण कुस्तुन्तुनियाँ शहर और एशिया मायनर में की दक्षिणोत्तर रेलें ग्रीस के अहाते में फँसने के बाद सदा के लिये यदि तुर्कों की छाती पर बैठने का अधिकार किसी को मिल सकता हो तो वह एकमात्र ग्रीस को ही। तुर्क सन्धि के के द्वारा सीरिया प्रान्त फ्रान्स को और पेलेस्टाइन इंग्लैंड को मिल गया है। भूमध्य सागर से लगे हुए आफ्रिकन सभी राष्ट्रों पर तुर्कों ही की सत्ता थी। वह सत्ता महायुद्ध से पूर्व तुर्कोंने गवाँ दी थी, किंतु तुर्क सन्धि के कारण वह बचा हुआ शाब्दिक स्वामित्व भी उनसे छीन लिया गया है। मिश्र पर के तुर्कों के अधिकार अंग्रेजों को मिल गये हैं, और अल्जीरिया एवं मराक्को की ओर का अधिकार फ्रान्स को। भूमध्य सागर और तुर्कों के बीच अब कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। लालसागर और अरब समुद्र के किनारे पर के तुर्क प्रदेश की सत्ता भी इस सन्धिपत्र के द्वारा उससे लेली गई हैं। मक्का के शेरिफों को स्वतंत्र राजा बना दिया गया है। और मेसोपोटेमिया वाला मोसल तक का संपूर्ण भाग अंग्रेजों में अधिकार में आगया है। मोसल के उत्तर का भाग कुर्डिस्तान स्वतन्त्र रक्खा गया है। इससे उत्तर की ओर काले सागर तक का आर्मीनिया वाला प्रान्त स्वतंत्र किया जाकर उसका पालकत्व यदि अमेरिकाने ग्रहण नहीं किया, तो तुर्क सन्धी के नियमानुसार उसे जिसकी सेना अधिकृत कर लेगी, उसी का वह बन जायगा। अमेरिका आर्मीनिया का पालक बनना नहीं चाहता, इंग्लैंडने भी इसके लिये इन्कार कर दिया है। फलतः तुर्किस्तान के युवा तुर्कों की अवशिष्ट सेना के साथ चार छह महीने जूझ हुए विना तुर्क सन्धि के नियम अमल में न लाये जा सकेंगे। इस जूझ के लिये जो सेना देगा और जिसको सफलता मिलेगी, वही आर्मीनिया का पालक बनेगा। तुर्क सन्धी के अमल में

लाये जाने में सब से विघ्नकारी युवा-तुर्कों का नेता कामेल पाशा है। एशियामायनर अथवा एशिया में के टर्की के अनाटेलिया प्रान्त के अंगोरा नामक शहर में कामेल पाशाने तुर्क पार्लमेंट की योजना कर यह प्रगट किया है कि, तुर्क सन्धी के नियम हमें पसंद नहीं, और कुस्तुन्तुनियाँ में विदेशी जलसेना के दबाव में रखे जाने वाले सुल्तान-साहब के पास कुछ भी सत्ता नहीं बच रहती है। परकीय बन्धन से सुल्तानसाहब के मुक्त होने तक सर्व सत्ता पार्लमेंटने अपने अधिकार में रक्खी है। और सब तुर्कों को इस सन्धी के विरुद्ध झगड़ा मचाना चाहिये, यह पार्लमेंट की आज्ञा है। कुस्तुन्तुनियाँ में इसके विरुद्ध घोषणापत्र प्रगट किया गया है कि, कामेलपाशा और उसकी पार्लमेंट झगड़ेखोर है। ऐसी दशा में तुर्क-सन्धी को अमल में लाने के लिये मित्रसर्कार को यानों पाशा के दल से सन्धी कर लेनी चाहिये, अथवा उसके साथ युद्ध ही करना चाहिये। इसके सिवाय मित्रसर्कार के लिये दूसरा उपाय ही शेष नहीं है। युवा तुर्कों के दल को प्रसन्न कर सकने जितना सन्धीपत्र में फेरफार करने की गुंजायश है या नहीं, इसी प्रश्न पर अब हम विचार करते हैं। तुर्क सन्धी के नियमानुसार इँग्लैण्ड को जो अधिकार और जो कुछ कि, लाभ हुआ है, उसमें के किसी भी भाग को छोड़ देने के लिये वह तैय्यार नहीं है। कामेल पाशा के उपद्रव मचाने के कारण न तो इँग्लैण्ड पीछे हटेगा और न फ्रान्स अथवा इटली ही। पाशा का षड्-यंत्र भंग करने के लिये इटली न तो एक कौड़ी खर्च करना चाहता है, और न उसकी सेना ही इस काम के लिये तैय्यार है। किन्तु फिर भी वह सन्धी की शर्तें बदलने का आग्रह न करेगा। इँग्लैण्ड फ्रांस और इटली तीनों राष्ट्रों को सामान्यतः जो समान अधिकार मिले हैं उनकी अमल बजावरी के लिये अंगोरावाले पाशा के विद्रोह का भंग करने की तीनों के लिये आवश्यकता नहीं है। कल्पना कीजिये कि, जलयानों पर की तोप के भय से अथवा अन्य किसी कारण से कहिये कि, तुर्की सुल्तान ने जून के अन्त या जुलाई के आरम्भ में सन्धी पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। हस्ताक्षर होते ही नैतिक दृष्टि से दोनों दलों के बीच मेल हो जाना संभव है। इस सन्धी के कारण इँग्लैण्ड इटली और फ्रांस को क्रम से मिश्र, ट्यूनिस अथवा अल्जीरिया प्रान्तों पर मिले हुए स्वामित्व के लिये पाशा की योजना क्या कर सकती है? अंगोरा के आसपास पाशा कितना ही प्रबल बन गया हो तो भी उ[illegible] आफ्रिका के जो टुकड़े इन तीनों राष्ट्रों ने मिल कर कर डाले हैं, [illegible] में पाशा का कुछ भी वश नहीं चल सकता। अर्थात् अब इस [illegible]रसी में किसी प्रकार का फेरफार होने की सम्भावना नहीं है। [illegible]यालस और बास्फोरस के मुहाने तथा मार्मोरा सागर पर फ्रांस, [illegible] और इँग्लैण्ड तीनों राष्ट्रों के जंगी बेड़े की सत्ता (संधि के अ[illegible]र) रहने वाली है। तीनों राष्ट्र के जंगी बेड़े आज भी उपरोक्त [illegible] स्थानों में हैं, और उन पर सम्पूर्ण अधिकार भी उन्हीं का है। [illegible] अधिकार को अंशतः छोड़ देने के लिये कोईसा भी ईसाई राष्ट्र तै[illegible]र न होगा। और कामेल पाशा का बल कितना ही बढ़ गया, अथ[illegible]यशस्वी हुआ, तो भी वह इनको कुछ हानि न पहुँचा सकेगा। फ[illegible]ः सन्धि नियमों में परिवर्तन करवाने में पाशा का कुछ भी उ[illegible]ग नहीं हो सकता। पाशा के विद्रोह-स्थान से पेलेस्टाइन और म[illegible]-मदीना अतिशय दूर रहने के कारण-इनसे सम्बन्ध रखनेवाली [illegible]ति भी पाशा के कर्तव्य क्षेत्र से बाहर की हैं, ऐसा मानना पड़ेग[illegible]। मेसोपोटेमिया के उत्तर भाग-मोसल प्रांत को अलबत्ता पाशा [illegible] ओर से कुछ हानि पहुँचने की संभावना है। इसी प्रकार फ्रेंचों [illegible] सीरिया प्रांत का उत्तर भाग भी इस ज्वाला से दग्ध हो सकता है। पाशा के उपद्रव के कारण बगदाद और मोसल प्रांत में तुर्कों [illegible]थवा अरबों की छोटी बड़ी टोलियाँ अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़ी [illegible] हैं, किन्तु मेसोपोटामिया में की अंग्रेजी सेना उनके छक्के छुड़ाने को आज ही पर्याप्त संख्या में मौजूद है। यदि पाशा का ध्यान मेसोपोटामिया की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ तो स्मर्ना और अंगोरा [illegible] बीच उपद्रव कारियों से होनेवाली लड़ाइयों में पाशा को अधिक निर्जीव कर देने का श्रेय मेसोपोटामिया को ही मिल सकता है। तब तो मेसोपोटामिया की ओर के वर्ष डेढ़ वर्ष तक सहे जानेवाले कष्ट से घबरा कर तत्सम्बन्धी सन्धिनियमों को बदलने के लिये अंग्रेज कभी तैयार न होंगे। पाशा की घुड़कियों से

डर कर सीरिया प्रांत पर से फ्रांस भी अपना अधिकार उठाले, यह असंभव बात है। मरॉक्को और अल्जीरिया में की आफ्रिकन सेना के साहस पर विश्वास रख सीरिया प्रांत को फ्रांस मुट्ठी में दबाये रह सकेगा। इस कारण पाशा की पर्वाह फ्रांस की ओर से भी बिलकुल न की जायगी। इस दृष्टि से सन्धिपत्र पर विचार करने से इंग्लैण्ड फ्रांस या इटली इन तीनों राष्ट्रों से जिन २ शर्तों का सम्बन्ध है, वे सब युवा तुर्कों की जबरदस्ती से बदली जासकने की कल्पना सेना के हिसाब से विचारणीय नहीं जान पडती। तुर्कों का फौजी बलात्कार, केवल कुस्तुन्तुनिया के उत्तर की ओर ग्रीस को दिये जानेवाले प्रांत, तथा स्मर्ना का टापू, रेलें और अंतर्व्यवस्था की कलमें, तुर्किस्तान के जमा-खर्च पर का अंग्रेजों का अधिकार, तुर्क सेना के शस्त्रास्त्र छीन कर सशस्त्र तुर्कों की संख्या पचास हजार से कम कर देने की युक्ति, इत्यादि बातों में लागू हो सकता है। इसके सिवाय अर्मीनिया और कुर्दिस्तान को प्राप्त होनेवाली स्वतंत्रता पाशा की सेना के पराभव पर अवलंबित है। इंग्लैण्ड फ्रांस और इटली तीनों ही मौजूदा तुर्क सेना को बढाना नहीं चाहते। इस कल्पना पर विश्वास रख कर अब हम तुर्क क्रांति की सफलता या असफलता पर विचार करते हैं। जून के अन्त या जुलाई के आरंभ में विवशता पूर्वक यदि तुर्क सुलतान को सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर देने पड़े, तो भी कुस्तुन्तुनिया और उसके उत्तर की ओर की तुर्क प्रान्तस्थ मुसलमान प्रजा असंतुष्ट ही रहेगी, और कुछ तुर्क सेना की टुकड़ियां उस प्रदेश में विद्रोह मचाने से न चूकेंगी। तुर्क युवाओं के विरुद्ध और अन्वर पाशा आदि तुर्क सेना नायकों का द्वेष मन-पूर्वक प्रगट करनेवाली कुस्तुन्तुनिया में की मित्रसर्कार के नेताओं को भी यही जनना पड़ता है कि, इस सन्धी से तुर्कों की स्वतंत्रता बिलकुल ही नष्ट हो जायगी। तब यह भी विश्वास नहीं किया जासकता कि, सुलतान साहब के दस्तखत कर देने पर कुस्तुन्तुनियां के आसपास के मुसलमान चुप बैठ जायेंगे। छोटे बड़े झगड़े उधर भी होंगे ही। तब उनका निवारण किसे करना चाहिये? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि, यह प्रदेश ग्रीस को मिलनेवाला है, अतः वही इसका प्रबन्ध करेगा। तुर्क सन्धी की शर्तें प्रसिद्ध होते ही ग्रीस के प्रधान एम० व्हेनिझेलास ने अपनी सेना को तैय्यार रहने की सूचना देदी है, और स्मर्नावाले भाग में भरपूर सेना पहुँचाये बिना तथा कुस्तुन्तुनियां से उत्तर की ओर पांच दस मील पर ग्रीस की सेना के खड़े रहे बिना सन्धी की अमल बजावरी ठीक २ न हो सकेगी, यह भी प्रगट कर दिया है। अतः प्रगट है कि, यह लड़ाई कामेल पाशा और ग्रिशियन सेना के बीच ही मुख्य कर होगी। यह लड़ाई कुस्तुन्तुनियां के टापू में ग्रीस के लिये भारी न हो पड़ेगी। यह बात की बात में उन सब छोटे बड़े झगड़ों को मिटा देगा, और खास कुस्तुन्तुनियां में प्रवेश कर कामेल पाशा तक को उस शहर के नष्ट कर डालने की धमकी देगा। मार्मोरा सागर के उत्तर की ओर का पक्का प्रबंध करके ग्रीस की सेना स्मर्ना में जमा होगी और तब कहीं जाकर यथार्थ युद्ध का आरंभ होगा। ग्रीस के पास आज भी दो लाख सेना तैय्यार है। महायुद्ध में उस का कुछ भी उपयोग नहीं हुआ है। मित्रसर्कार के पर्याप्त शस्त्रास्त्रों का संग्रह भी ग्रीस के पास मौजूद है। तब बास्फोर्स के मुहाने से दक्षिण की ओर अलेप्पो तक जानेवाली तुर्कों की, उत्तर-दक्षिण रेल्वे को अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न ग्रीस अवश्य करेगा। और उस में सफलता प्राप्त हो जाने पर अधिकृत प्रदेश की रक्षा के सिवाय उसे और कुछ भी न करना पड़ेगा। मित्रसर्कार की सहायता से इतना काम कर दिखाने में ग्रीस को कुछ भी कठिनाई न उठानी पडेगी। किन्तु इतने से ही पाशा का पराभव नहीं हो सकता। ग्रीस की अपेक्षा नई सेना की भर्ती पाशा के पासही विशेष होती जायगी, और केवल संख्या की ही दृष्टि से यदि विचार किया जाय, तो अन्त को ग्रीस की हार होती दीख पड़ती है। किन्तु उसकी ओर शस्त्रास्त्रों का संग्रह पर्याप्त प्रमाण में होने के कारण पाशा की सेना, ग्रीस के सन्मुख अधिक देर तक टिक न सकेगी। ग्रीस को जिस प्रकार मित्रसर्कार की ओर से शस्त्रास्त्रों की सहायता पहुँचेगी, उसी प्रकार यदि बालशेविकों की ओर से पाशा को भी सहारा मिला, तो अवश्यही अर्मिनिया और ग्रीस विषयक सन्धि नियम में वह परिवर्तन करा सकेगा। काकेशस पर्वत के दक्षिण की ओर बाकू टिफिलस और बटूम [illegible] ने पचास हजार [illegible] है। अर्मीनिया [illegible] जम गया है, और कास्पियन सागर में के ईरानी बंदर स्थान एंजेल पर भी उनका अधिकार बैठ गया है। और अब तो तेहरान की रुख से रेस्ट तक उनकी सेना भी आ पहुँची है। अर्थात् निश्चय कर लेने पर बालशेविक ईरान के सारे उत्तरीय भाग और अर्मीनिया को हस्तगत करके तुर्कों के संरक्षक बनकर खड़े रहने को आज भी समर्थ हैं। किन्तु बालशेविक इस काम को स्वीकार करेंगे या नहीं, इसका ठीक २ पता लगाने में जुलाई का महीना बीत जाने की संभावना है। पोलेण्ड युक्रेन के बीच होनेवाले बालशेविक संग्राम में इस मास में कोई विशेष घटना नहीं घटी। जून के आरंभ में इंग्लैण्ड ने बालशेविकों के साथ व्यापारी सन्धी करने का प्रयत्न जोर शोर से शुरू किया है। अफगानिस्तान, ईरान और तुर्किस्तान की ओर उठारखी करने काम बालशेविकों के बन्द कर देने पर व्यापारी सन्धी के कार्य में बालशेविकों को सहायता देने के लिये अंग्रेज सर्कार के तैय्यार रहने की बात प्रगट हुई है। व्यापारी सन्धी का उपक्रम और पोलेण्ड की लड़ाई यही दोनों बातें पाशा के पृष्ठ-रक्षक बनने में बालशेविकों के लिये प्रयोधक बन रही हैं।

भन्दर हॉल जयपुर

[illegible]

सामने, के प्रवेश द्वार मे ऊपर की ओर जयपुर के सन १५०३ [illegible] वर्तमान महाराज श्री माधवसिंहजी तक के रंगीन चित्रादि [illegible] जीवित मनुष्यों के समान बनाये गये हैं, और उन्हीं के नीचे [illegible] का नाम तथा राजत्व काल के वर्ष सन संवत् मे लिखे हुए हैं।

अमेरिका के वाशोना विग ट्री।

[illegible]

साहित्य-समालोचन।

(ग्रंथ-साहित्य)

(१) भारतीय शासन—ले० श्री. बाबू भगवानदास केला। प्रकाशक [भा]रत बुकडिपो अलीगढ़। पृ.सं. २००। छपाई उम्दा, मू० ॥।≈) आने।

यह पुस्तक अपने देश की शासनपद्धति का ज्ञान कराने के लिये गुरु[जी] का काम कर सकती है। वर्तमान युग राजनीति प्रधान होने से [प्र]त्येक भारतीय के लिये इस प्रकार के ग्रंथ पढ़ना और पढ़ाना आवश्यक [हो]गया है। पुस्तक की उत्तमता का प्रमाण यही है कि इतनी शीघ्रता [से] इस की द्वितीयावृत्ति निकल गई है। पुस्तक उपादेय एवं संग्राह्य है।

(२) यूरोप में बुद्धिस्वातंत्र्य—अनुवादक पं. शिवसहाय चतुर्वेदी, [प्र]काशक-बुद्धिस्वातंत्र्य साहित्य भण्डार देवरी (सागर) म. प्र.। पृ. सं. [३]००। छपाई सफाई अच्छी। मूल्य सवा रुपया।

यह पुस्तक हिंदी साहित्य में अपने विषय की एकदम नई कही जा [स]कती है। यूरोप के बुद्धिस्वातंत्र्य का इतिहास पढ़ कर भारत का [य]ुवा समाज बड़ा लाभ उठा सकता है। मि० लेकी जैसे धुरन्धर [वि]द्वान की लिखी हुई पुस्तक का यह गुजराती अनुवाद के सहारे किया हुआ हिंदी रूपान्तर है। पुस्तक बड़े अच्छे ढंग से लिखी गई है। आशा है कि इस माला में आगे की पुस्तकें भी बढ़िया ही होंगी।

(३) भारतीय नीति कथा—लेखक उपरोक्त चतुर्वेदी जी और प्रकाशक-नागरी हितचिंतक कार्यालय देवरी (सागर) पृ. सं. १७० मूल्य ॥) आने। छपाई और कागज़ उत्तम।

यह पुस्तक महाभारत में की, राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति आदि की कथाओं को लेकर बड़े अच्छे ढंग से लिखी गई है। पुस्तक सर्व साधारण के पढ़ने योग्य, एवं संग्राह्य कही जा सकती है। विशेष कर विद्यार्थियों को पशुपक्षियों की कथाओं के बदल इन्हें पढ़ना प्रत्येक दशा में लाभकारक होगा।

(४) आदर्श चरितावली—लेखक वही चतुर्वेदी जी तथा प्रकाशक भी उपरोक्त कार्यालय है। पृ. सं. ९२। मूल्य ।=) आने।

इस पुस्तक में देशी, विदेशी और पौराणिक-महापुरुषों के १६ चरित्रों का संग्रह किया गया है। इन चरित्रों के पाठ से स्वावलंबन, देशभक्ति, राजभक्ति परोपकार एवं लोकसेवा की उत्तम शिक्षा प्राप्त हो सकती है। विद्यार्थियों एवं नवयुवकों को यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिये।

(५) [illegible]—अनुवादक, दशरथ बलवंत यादव, प्रकाशक उपरोक्त ना० हि० कार्यालय। पृ. सं. ४३। मूल्य चार आने। छपाई ठीक है।

प्रस्तुत पुस्तक बाबू अविनाशचन्द्र दास एम. ए. की सुरुचि भरी बंगला पुस्तक का अनुवाद है। पुस्तक विशेष कर छात्रों के लिये लाभकारी होगी। इसमें १६ नैतिक निबन्धों का संग्रह किया गया है। अनुवादक का प्रथम प्रयत्न होने पर भी भाषा भाव की दृष्टि [से] पुस्तक अच्छी हुई है।

(६) [illegible]—यह पुस्तक पं. [illegible] शर्मा लिखित एवं भारत [illegible] कार्यालय अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित। [illegible] आने मूल्य की है। [illegible] "[illegible]" [illegible] ढंग पर इस पुस्तक में भारत के भिन्न २ [illegible] का वर्णन लिखा गया है। [illegible] एवं [illegible] का चित्र और अंग्रेज़ी भूमिका भी है।

(७) [illegible]—लेखक श्री० "एक भारतीय हृदय" प्रकाशक [हि]ंदी सा. सम्मेलन प्रयाग। पृ. सं. २०० मूल्य आठ आने।

सम्मेलन की ओर से [illegible] [illegible] का यह [illegible] है। [illegible] हिंदी साहित्य सम्मेलन इंदौर के सभापति, म० गांधीजी [illegible] [illegible] उपदेश दिये थे, [illegible] भिन्न २ देशी विदेशी विद्वानों के दिये हुए उत्तरों को इस पुस्तक [illegible] कर दिया गया है। आरम्भ में [illegible] महोदय का लिखा, [illegible] "राष्ट्र भाषा" सम्बन्धी विचारणीय निबन्ध भी है। [illegible] हिंदी [illegible] के लिये और राष्ट्रभाषा हिंदी के विरोधियों [illegible] उत्तर देने के लिये बड़ा काम दे सकती है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। पुस्तकान्त में कई बड़े २ [illegible] के [illegible] [illegible] और [illegible] भी दिये गये हैं।

(८) प्रथमालंकारनिरूपण—ले. पं. चंद्रशेखर शास्त्री प्रकाशक हि. सा. संमेलन प्रयाग। पृष्ठ ३४ मूल्य ≈) आने। सम्मेलन द्वारा लीजानेवाली प्रथमा परीक्षा के छात्रों को अलंकार का साधारण बोध कराने के लिये यह पुस्तक प्रकाशित कीगई है। समझाने की शैली सरल और सुबोध है। विद्यार्थी लोग इसे पढ़ कर अवश्य लाभ उठा सकते हैं।

(९) हिंदी विद्यापीठ—इस छोटी सी डेढ़ आने मूल्य की पुस्तक में प्रयाग के विद्यापीठ के उद्घाटनोत्सव का वर्णन और बाबू भगवान दास एम० ए०, पुरुषोत्तमदास टंडन और पं० श्रीधर पाठक के भाषणादि दिये गये है, *जिनमें शिक्षा सम्बन्धी नई पद्धति का अच्छा विवेचन हुआ है।*

(१०) मद्रास में हिन्दी प्रचार—यह एक आने मूल्य की पुस्तिका, इंदौर सम्मेलन में निश्चित मन्तव्य के बाद मद्रास प्रांत में होनेवाले हिन्दी प्रचार सम्बन्धी कार्यों का संक्षिप्त दिग्दर्शन करा सकती है। भारत के एक मात्र हिन्दी विहीन प्रदेश में सम्मेलन द्वारा किये गये उद्योग का परिचय इस पुस्तक में बड़े अच्छे ढंग से दिया गया है। सम्मेलन से प्राप्त।

(११) अन्योक्ति तरंगिणी—इस ७० पृष्ठ की और चार आने मूल्य की पुस्तक में हिन्दी के उत्साही कवि ईश्वरी प्रसाद शर्मा की रचनाओं का संग्रह कर अलीगढ़ के हरिश्चन्द्र प्रदर्श ने इसे प्रकाशित किया है। कवितायें सुन्दर हैं। किन्तु शब्द प्रयोग में क्लिष्टता भी कम नहीं है।

(१२) कर्म—लेखक पं० लक्ष्मी नारायण दीनदयाल अग्रवाल। प्रकाशक-हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊ। पृ० ७१। मूल्य ।≈) आने।

यह सद्विचार पुस्तक माला की बारहवीं मणि है। लेखक ने कर्म की महत्ता दिखलाने का खासा प्रयत्न किया है। इसमें न्याय, तर्क, सांख्यादि बड़े २ शास्त्रों के प्रमाणद्वारा कर्म की मीमांसा कीगई है। पुस्तक नैतिक और आध्यात्मिक विचारों से पूर्ण है। लेखक का उत्साह प्रशंसनीय है।

(१३) निर्धन की कन्या—लेखक पं० जगदीश 'झा' "विमल"। प्रकाशक उपन्यास बहार ऑफिस काशी। पृ० सं० ८० मूल्य आठ आने।

यह एक सामाजिक शिक्षाप्रद उपन्यास है। 'विमल' महाशय की गल्पें कितनी मनोरंजक और शिक्षाप्रद होती है, उसे "जगत्" के पाठक अच्छी तरह जानते हैं। उन्हीं विमलजी की यह कृति भी बड़ी अच्छी हुई है। पुस्तक इतनी रोचक है कि, हाथ में लेने पर बिना समाप्त किये छोड़ने की इच्छा नहीं होती। मूल्य कुछ ज्यादा है।

(१४) [illegible]—इसमें उपरोक्त लेखक महाशय की भिन्न २ विषय की कविताओं का संग्रह किया गया है। कवितायें सरल, भाव भरी और सुन्दर हैं। तीन आने में मनोरंजन पुस्तकालय [illegible] से मिलती है।

(१५) [illegible]—लेखक और प्रकाशक पं० गोकुलचन्द्र शर्मा अलीगढ़। मूल्य ३।) आने। छपाई सफाई बढ़िया। इस पुस्तक में हरिगीतिका छन्द में महात्मा गांधी का उज्ज्वल चरित्र अंकित किया गया है। कविता अच्छी है, किन्तु संस्कृत शब्दों की इतनी अधिक भरमार होगई है कि विवश हो लेखक को पादटिप्पणी में एक शब्दकोष ही जोड़ देना पड़ा है। फिर भी हिन्दी में इस प्रकार का प्रयत्न प्रशंसनीय कहा जाना चाहिये।

(१६) [illegible]—यह भी उपरोक्त [illegible] द्वारा अनुवादित एक [illegible] हिन्दी नाटक है। संस्कृत से अनुवाद होने पर भी पुस्तक की [illegible] में किसी बात की कमी न होने पाई है। नाटक केवल पढ़ने के ही काम का नहीं, वरन् खेलने पर भी [illegible] [illegible] है। छपाई आदि अच्छी है। इसका मूल्य दस आने है। दोनों पुस्तकें लेखक से [illegible] के पते पर मिलेंगी।

(१७) [illegible]—यह [illegible] "[illegible]" की कृष्ण-प्रेम सम्बन्धी [illegible] कविताओं का संग्रह है। [illegible] [illegible] होते हुए भी कृष्णप्रेम में ऐसे निमग्न होकर [illegible] है कि, [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] से [illegible] [illegible]। मूल्य [illegible] आने। पता—[illegible] [illegible] [illegible]।

([illegible] साहित्य)

(१) [illegible]—सम्पादक पं० [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] पृष्ठ। [illegible] मूल्य [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] से [illegible] के [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] द्वारा हिन्दी [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible]

परिचय कराना केवल धृष्टता मात्र ही है। किन्तु फिर भी सहयोगिता के नाते हमें अपने पाठकों को उसके विषय में कुछ खास बातें बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है। पत्रिका बढ़िया कागज़ पर उत्तम टाइप में छप कर तथा एक दो रंगीन एवं कई सादे चित्रों से अलंकृत हो प्रतिमास की पहली तारीख को नियमित रूप से निकल जाती है। यद्यपि यही प्रभा खंडवे से निकलते समय साहित्य के अन्यान्य अंगों के साथ २ राजनीति की भी चर्चा करती थी, किन्तु अब इस ने पूर्ण रूप से राजनैतिक बाना ही धारण कर लिया है। वर्तमान युग राजनैति प्रधान है, अतः प्रभा जैसी पत्रिका का पठन-पाठन तद्विषयक ज्ञान की वृद्धि बड़ी ही सुगमता से करा सकता है। प्रतिमास अनेकानेक धुरंधर साहित्य सेवियों के लेख कवितादि से पत्रिका का कलेवर पूर्ण रहता है। सामयिक प्रवाह, विविध विषय और सम्पादकीय मंतव्य भी नामानुकूल प्रभा-प्रसारक होते हैं। हमारी हार्दिक शुभेच्छा है कि, भारत का प्रत्येक घर २ प्रभा की प्रभा से आलोकित हो। इसी जुलाई से इसका दूसरा खण्ड शुरू हो गया है, अब पत्रिका में कई बातों की विशेषता आगई है।

(२) स्वार्थ—इस पत्र के विषय में हम कुछ ही मास पूर्व लिख चुके हैं। अब इसका दूसरा खण्ड शुरू हो गया है। इन छह महीनों में इसने साहित्य के समाज, अर्थशास्त्र, राजनीति और अर्थशास्त्र इन चारों अंगों की यथाशक्ति पूर्ति करने का अच्छा उद्योग किया है। हम इसे हिन्दी में एक उच्च कोटि का आदर्श पत्र कह सकते हैं। संपादकीय नोट्स और ज्ञातव्य अंकों की तालिकाएँ आदि सब बड़े काम के हुए हैं। हिन्दी का यह पत्र बढ़िया अंग्रेजी पत्रों से टक्कर लेसकता है। किन्तु खेद की बात है कि, हिन्दी संसार ने इसे आश्रय देने में बड़ी तंग दिली से काम लिया है। इसके संचालक महाशय घाटा उठा कर भी इसे आगे विशेष उन्नत स्वरूप में निकालना चाहते हैं, अतः हमारी जनता के प्रति विशेष रूप से अपील है कि, वह इसका समुचित आदर करे। पत्र का वार्षिक मूल्य ४) रुपये और पता—"ज्ञान मण्डल गुरुधाम काशी" है।

(३) ज्योति—सम्पादिका-श्री० विद्यावती सेठ बी० ए० लाहौर। आकार सरस्वती जैसा ७२ पृष्ठ प्रति मास। वार्षिक मूल्य ४॥) रुपये। पंजाब जैसे हिन्दी पत्र पत्रिकाओं के लिये ऊसर प्रदेश से एक महिला द्वारा इस प्रकार की उत्तम पत्रिका निकलना हिन्दी के लिये सौभाग्य की बात है। यद्यपि पत्रिका का विशेष लक्ष्य आर्य समाज की ओर है, तथापि साहित्य, समाज, अर्थशास्त्रादि पर भी इसमें बढ़िया लेख निकलते हैं। स्त्रियों के लिये एक विशेष स्तंभ रखा गया है। पत्रिका हिन्दी जगत में आदर की वस्तु है। भाषा की सरलता पर ध्यान देना चाहिये।

(४) महिलादर्पण—यह पत्र ५।६ मास हुए छपरा से निकलने लगा है। इसका संपादन एवं व्यवस्था सम्बन्धी सभी कार्य स्त्रियों द्वारा होता है। पत्र है भी स्त्रियोपयोगी। इन ५।६ अंकों में निकले हुए लेखादि पर से यह "स्त्री दर्पण" की ही जोड़ का प्रतीत होता है, स्त्री समाज में इसका आदर होना चाहिये। वार्षिक मूल्य २।) रुपये।

(५) मनोरंजन—यह पत्र विगत जनवरी मास से कानपुर के बंगाली मुहाल से निकलने लगा है। यद्यपि आरा के मनोरंजनवाली सब विशेषताएँ इसमें नहीं हैं, किन्तु फिर भी यह अपने पाठकों का मनोरंजन अच्छी तरह कर सकता है। सरस्वती साइज के ३२ पृष्ठों में यह निकलता है। प्रति मास २।३ गल्प, मनोरंजक कविताएँ और हास्यरस भरे चुटकुले एवं कई अजीब बातें इसमें निकला करती हैं। मौलिक एवं भाव पूर्ण गल्प पर प्रतिमास पुरस्कार भी दिया जाता है। वा० मू० २॥) रुपये हैं।

(६) भारती—यह भी एक पंजाब प्रांत की मासिक पत्रिका है, जो कि कन्या महाविद्यालय जालंधर की इस पत्रिका के रूप में श्री० संतरामजी बी. ए. द्वारा संपादित होकर निकलने लगी है। हमने इसकी केवल दो संख्याएँ देखी हैं, उनमें प्रायः अधिकांश लेख स्त्रियोपयोगी ही छप हैं। किन्तु फिर भी मनोरंजकता का उनमें अभाव है। प्रतिमास एकाध चित्र भी किसी स्वर्गीय रत्न का दे दिया जाता है। वार्षिक मू० २) रुपये है।

(७) कथाकुसुम—यह मासिक पत्र विगत चैत्र मास से "श्रीबिन्दु" ब्रह्मचारी द्वारा संपादित होकर अयोध्या से निकलने लगा है। पत्र में अपने नामानुकूल कथाएँ रहती हैं। किन्तु वे प्राचीन नहीं, वरन् नव रूप में रहने से विशेष मनोरंजक प्रतीत होती हैं। घटनाएँ विशेषतयः बौद्ध सम्प्रदाय की परिचायक होने से उनमें वैराग्यता का भाव अधिक रहता है। कई गल्पें बड़ी ही भाव पूर्ण निकली हैं। एकान्त कुंज भी भावपूर्ण और पढ़ने योग्य होता है, यथार्थ में ऐसी पत्रिका से हिन्दी के एक विशेष अंग की पूर्ति होगी। वा० मू० २॥) रु०।

(८) मित्र—यह एक छोटासा आयुर्वेदिक मासिक पत्र है जो कि सर्वार्थ सिद्ध औषधालय असरगंज से २।३ महीने हुए निकलने लगा है। पत्र में आयुर्वेदिक बातों की चर्चा अच्छी रहती है। वार्षिक मू०१) रुपया।

(९) छात्रसहोदर—यह मासिक पत्र पं० मातादीन शुक्ल द्वारा संपादित [illegible]

[illegible]

इच्छा रखता है, वही देश के लिये कुछ काम भी कर सकता है। हमें यह कहते हुए हर्ष होता है कि, यह पत्र उपरोक्त श्रेणि के आर्जीवन छात्रों के लिये बड़े काम का होगा। पत्र सचित्र है, किन्तु इन दो अंकों में दिये हुए चित्र केवल पत्र को सचित्र ही बनाने मात्र के काम आते हैं। उनमें न कोई नवीनता है, और न विशेष भाव ही। हमारी समझ से सादे रूप रंग में उच्च भाव लिये हुए लेखादि रखने से ही पत्र की प्रतिष्ठा बढ़ सकती है। वार्षिक मूल्य २॥) रुपये।

× × ×

(१) सुधारक—यह नया साप्ताहिक पत्र २।३ महीने हुए आगरे से निकलने लगा है। यथार्थ में अबतक आगरे से कोई खास पत्र नहीं निकलता था। हमें आशा है कि सुधारक अपने नामानुकूल सुधार कार्य करते हुए आगरे से रहती हुई पत्र की कमी को पूरा कर देगा। पत्र का आकार प्रताप जैसा, और वार्षिक मूल्य ३ रुपये हैं। पत्र का विचार क्षेत्र कुछ विस्तृत होना चाहिये।

(२) देश—यह भी एक नया साप्ताहिक पत्र है, जो बिहार के ख्यातनामा हिंदीभक्त बाबू राजेन्द्रप्रसादजी एम. ए, बी. एल् के सम्पादकत्व में पटने से निकल रहा है। इसने थोड़े ही दिनों में अच्छी उन्नति कर दिखाई है, किन्तु फिर भी संपादकीय टिप्पणियों की कमी जरा खटकती है। लेखादि सभी सामयिक और जोरदार रहते हैं। पत्र बिहार के गौरव की वस्तु है। आकार प्रताप के १६ पृष्ठ। वा. मू. २॥) रुपये।

(३) प्रेम—कई महीने बन्द रहने के बाद प्रेमने फिर दर्शन देना आरम्भ किया है। इस बार इसके सम्पादक बा. भगवानदास केला जैसे प्रसिद्ध साहित्य सेवी हुए हैं। आपने इसे नये आकार प्रकार में बढ़िया पत्र बना दिया है। अपने नामानुकूल प्रेम (एकता) की व्याख्या करते हुए यह पत्र उद्योग, अर्थशास्त्र और राजनीति की भी चर्चा करता रहता है। विशेष प्रशंसा की बात यह है कि वार्षिक मू० केवल २) रुपये ही है। हमें आशा है कि केलाजी के कार्यकाल में यह खूब उन्नति कर दिखावेगा।

(४) श्रद्धा—यह साप्ताहिकी पत्रिका स्वा० श्रद्धानन्दजी द्वारा सम्पादित होकर २।३ मास हुए गुरुकुल कांगड़ी (जि० बिजनौर) से निकल रही है। यद्यपि पत्रिका में गुरुकुल शिक्षापद्धति और आर्यसमाज सम्बन्धी ही विशेष बातें रहती हैं, किन्तु साथ ही राजनैतिक चर्चा की भी इस में कमी नहीं। यथार्थ में यही इसकी विशेषता है। इसमे हंटर-कमेटी की उधेड़बुन नामक क्रोड़पत्र बड़े काम होता है। पत्रिका का वार्षिक मू० ३॥) रुपये और आकार "जगत के ८ पृष्ठ का है।

रिपोर्टें

(१) दशम वैद्य सम्मेलन देहली—की रिपोर्ट हमें उसके प्र० श्रीयुत भागीरथजी स्वामी वैद्यने भेजने की कृपा की है। प्रस्तुत रिपो० में उपरोक्त सम्मेलन का यथातथ्य वर्णन दिया गया है। साथ ही कुछ महोदयों के छाया चित्र भी दो तीन ग्रुप में दिये गये हैं। सभापति महोदय का भाषण सारग्राही और पठनीय है। इस में कई वैद्यों के सम्मेलन में पढ़े हुए अनुभूत प्रयोग भी दिये गये हैं। रिपोर्ट देखने योग्य है। पोष्टेज के लिये एक आने का टिकिट भेजने से मन्त्री महाशय यह रिपोर्ट बिना मूल्य भेज देंगे।

(२) राजपुताना मध्यभारत सभा—यह सभा १९१८ की दिल्ली कांग्रेस के समय देशी राज्यों की प्रजा का हितसाधन करने के लिये स्थापित हुई थी। इन दो वर्षों में सभाने बहुत कुछ काम कर दिखाया है। अमृतसर कांग्रेस के बाद खास अजमेर में भी इसका एक खास अधिवेशन हुआ है। आशा है कि देशी राज्य की प्रजा के सुधार में यह सभा सफलयत्न होगी। प्रत्येक देशी राज्य का निवासी इसका सभासद् बन सकता है। सभा के मन्त्री श्री चांद करणजी शारदा वकील को अजमेर के पते पर विशेष बातें पूछनी चाहिये।

१०   सख्या ६

जून, १९२०   JUNE, 1920

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो ! आत्मीयता दीजिए । देखें हार्दिक दृष्टि से सब हमें ऐसी कृपा कीजिए ॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से । फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से ॥

युधिष्ठिर और अर्जुन।

(श्री० महन्त लक्ष्मणाचार्यजी वाणीभूषण "अनुज")

[राजभवन में समर भूमि के दृश्य पर शोक करते हुए युधिष्ठिर ।]

विजय प्राप्त कर नृपति युधिष्ठिर लगे सोचने कुल संहार ।
सुध आई आत्मीयजनों की बहने लगी अश्रु की धार ॥
व्यथित चित्त से एकाएकी रोने लगे पुकार पुकार ।
हा दुर्योधन ! कारण बन्धु हा ! हा ! मेरे बांधव सरदार ॥ १ ॥
हा ! स्वजन बन्धु कहां तुम पहुंचे, हा ! श्रीगुरुवर द्रोणाचार्य ।
मुझ पापी ने तुमको खोकर किया घोर कपटा ही कार्य ॥
कुरुपति श्रीधृतराष्ट्र पूज्य को मैंने पहुंचाया आघात ।
गांधारी जननी के मन में मैंने किया वज्र का पात ॥ २ ॥
कैसे पड़े हुए हो रण में उठो उठो भाई घर वीर ।
छिन्न भिन्न तुमको लख हा ! हा ! मेरा हिया न धरता धीर ॥
क्या मेरी गति होगी भगवान् बना जगत् में मैं बेपीर ।
मार कुटुम्ब परा जी अब तक छुट छुट तू अधम शरीर ॥ ३ ॥
बिलखातीं पैरों की नारी मुझे घृणा से देख रहीं ।
अरे युधिष्ठिर धर्म हीन क्या तुझसा होगा कभी कहीं ॥
मुख दिखलाने लायक जग में रहा नहीं तू किसी प्रकार ।
अपने लालच के वश होकर किया स्वजनों का संहार ॥ ४ ॥

ऐसे राज पाट से भी क्या पाता कभी सौख्य भगवान ।
क्या ऐसे दुष्कर्मों से भी मिलता कभी मोक्ष निर्वान ॥
अब तो मैं कानन में जाकर छोड़ूंगा यह अधम शरीर ।
बिना लिये वैराग्य हटेगी कभी नहीं यह मन की पीर ॥ ५ ॥
देख युधिष्ठिर के मन का यह बढ़ा हुआ अति ही व्यामोह ।
उस क्षण अर्जुन लगे हटाने उनके तम को करके छोह ॥
दादा ! क्या हो गया आपको जो रोते हो यों यों धार ।
ज्ञानवान होकर विवेक को कैसे इस क्षण रहे बिसार ॥ ६ ॥
मुझको भी क्या इस क्षण करना पड़ा आपको भी उपदेश ।
सोचो नाथ आप भी तो कुछ क्यों करते हो मन में क्लेश ॥
किस को कौन मारता जग में अमर आत्मा है सब ठौर ।
निज निज कर्मों पार उतरती इसको समझ लीजिये और ॥ ७ ॥
जो सकाम हैं लिप्त फलों में उनका ही है यह संसार ।
हैं निष्कामी जो इस जग में वेही होते हैं भवपार ॥
हो विरक्त या सद्गृहस्थ पर कर्म सत्य है सब का पक्ष ।
पद्मपत्र जल उदाहरण है, राजन् सोचो इसको नेक ॥ ८ ॥
सन्यासी बन, ले त्रिदण्ड कर उससे बन में क्या हो काज ।
जो हैं फंसे मोह में रोते हानि लाभ को कर सिरताज ॥
जिनने किया हृदय कानन में पद्मोज्वल सन्तोष कुटीर ।
मन वच कर्म त्रिदण्ड सवारे वही त्रिदण्डी यतिवर धीर ॥ ९ ॥
सब प्रकार हैं आप पूर्ण फिर रूप बनाने से क्या काम ।
अपना कर्म कीजिये प्रमुदित जिसका है सुनाम निष्काम ॥
राज्य त्याग कर सन्यासी बन जावोगे जो बन में आप ।
तो अरण्याश्रम ऊजड़ होंगे छा जावेगा चहुँ दिशि पाप ॥ १० ॥
बढ़ अधर्म जावेगा भूतल होंगी प्रजा सभी विध हीन ।
धर्म कृत्य सब लोपित होंगे समझ लीजिये भूप प्रवीन ॥
जिसके शासन में पीड़ित हो प्रजा न फिर उसका कल्याण ।
जो निज प्रजा सभी ही के हो भला आपको फिर प्रिय प्राण ॥ ११ ॥
आप जायेंगे बन को तो फिर हम सब क्या छोड़ेंगे संग ।
इससे तो फिर यही होवेगा श्रुतियों के अंगों का भंग ॥
हो अग्रज नृप पूज्य मुझे अब उचित नहीं समझाना और ।
प्रेमपूर्वक प्रजा पालिये जिससे हो मंगल सब ठौर ॥ १२ ॥
हुई शान्त आत्मा कुछ कुछ मन में सुनकर अर्जुन के उपदेश ।
धन्य धन्य थे अर्थ हमारे धन्य धन्य यह पावन देश ॥
धन्य धन्य था यह धार्मिक शिक्षा धन्य मातृगण प्रण सह प्रेम
धन्य धन्य यदुनाथ ! आप ही के पद पद्म में है सब क्षेम ॥ १३ ॥

× × × × (म. प्र के

चित्रकारने उसी समय का खींच दिया है उत्तम चित्र ।
बैठे राजभवन में भूपति घोर घृणा का भाव विचित्र ॥
सम्मुख पार्थ खड़े होकर क्या नैतिक भाव दिखाते हैं ।

हमारी दक्षिण भारत की यात्रा।

(लेखक:—श्रीयुत बाबासाहिब पंतसचिव युवराज भोर राज्य।)

किसी भी स्थान को देखने के लिये प्रथमतः वह भौगोलिक से दृष्टि कहां अवस्थित है, जल वायु वहां का कैसा है, प्राकृतिक सृष्टिरचना किस प्रकार की है, तथा उस पर किन २ राजाओं की सत्ता रह चुकी है, वहां की जनता का आचार, विचार, धर्मनीति और रीति रिवाज़ कैसा है, तथा राज्यपद्धति का वहां क्या ढंग रहा है, इन सब बातों का परिचय प्राप्त किये बिना वहां की शिल्पकला और अन्यान्य विशेषताओं का महत्व

टेप्पाकुलम्–मदूरा।

अच्छी तरह ध्यान में नहीं आ सकता। सब देशों में; और खास कर भारतवर्ष में तो धार्मिक विश्वास पर ही बहुत सी बातें निर्माण हुई हैं। अतः ये विश्वास बातें क्या थीं–इसका ज्ञान होना आवश्यक है। खासकर राज्यकर्ता किस जाति और किस धर्म के थे, इन दो मुख्य बातों को समझ लेने पर उपरोक्त विषयों का ज्ञान बड़ी ही सुगमता से हो सकता है।

हमने जो यात्रा की है वह तीन विभागों में बांटी जा सकती है। (१) पूना से रामेश्वर तक (२) मैसोर राज्य के भिन्न २ स्थान, और तीसरे हुबली से पूना तक। रेल मार्ग से हमने लगभग तीन हजार मील की यात्रा की, और इसके सिवाय कई स्थानों में सड़क एवं पगडंडियों से हो कर जाना पड़ा यह अलग है। हमने कुल १६ स्थान देखे। प्रत्येक स्थान पर हमारा मुकाम लगभग चार दिन के हिसाब से हुआ। उत्तर भारत और दक्षिण प्रदेश अथवा मद्रास [illegible] का हमारी यात्रा के प्रथम भाग में साधारणतः बहुत बड़ा अन्तर है। उन में खास बात यह है कि, मुसलमानी सत्ता अपने पूर्ण [illegible] में भी दक्षिण भारत तक न पहुंच सकी। इसी कारण [illegible] मसजिद आदि इस ओर बहुत ही कम पाई जाती [illegible]। यद्यपि उनकी शिल्पकला और उनके रीतिरिवाज एवं हिंदी [illegible] भाषा का बहुत थोड़े स्वरूप में इस ओर पता लग सकता है, [illegible] में हिंदुओं के बड़े २ राज्य हो चुके हैं। यही कारण है कि [illegible] भी उनके बनवाये हुए बड़े देवालय यहां विद्यमान हैं, और [illegible] कारण दक्षिण में धार्मिक श्रद्धा विशेष प्रमाण में दृष्टिगोचर [illegible] है। फलतः इस ओर के देवालयों में प्रति भी ख्याति होती है।

दक्षिण के देवालय और गोपुरों की रचना।

[illegible] भारत में [illegible] देखने की स्थान यहां के देवालय हैं। [illegible] के [illegible] लिये [illegible] प्रथमतः [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फर्ग्यूसन [illegible] है, जिसने [illegible] [illegible] की [illegible] और उसकी [illegible] के [illegible] [illegible] लिख रखा है। उसके मतानुसार

दक्षिण के देवालय प्रायः ब्राह्मणी-द्रविड़ शिल्प-कला की पद्धति पर [illegible] हुए हैं, और हिंदू राजाओं द्वारा बनवाये हुए होने के कारण स्तम्भ [illegible] उनमें की खुदाई आदि में रामायण एवं महाभारत के दृश्य [illegible] किये गये हैं। विजयनगर में तो खास वहां के राजाओं की चाल [illegible] रीति रिवाज और अन्यान्य बातों के साथ उनके पहनाव और [illegible] प्रसंगों के चित्र भी देवालय की दीवारों पर बनाये हुए हैं। ब्राह्मण [illegible] द्रविड़ शिल्पकला में खासकर चिदम्बर, तंजौर, मदूरा, श्रीरंगपट्टन और रामेश्वर तथा विजयनगर के देवालयों की ही गणना हो सकती है। और फर्ग्यूसन के मतानुसार उन देवालयों की सुंदरता योरोप के इस प्रकार के देवालयों से बढ़ कर है। इधर के कुछ देवालय ग्यारहवीं शताब्दि के बने हुए हैं। उनके सम्बन्ध साधारणतः यह बात पाई जाती है कि प्रत्येक देवालय में शिव अथवा विष्णु की मूर्ति रहती है। यदि शिवलिंग हुआ तो उसी के साथ देवालय में गणेश, पार्वती और उनके गणसमूह की प्रतिमाएँ भी अवश्य होती हैं; और उनके भिन्न २ वाहन सोने चांदी के पतरे से मढ़े हुए होते हैं। यदि विष्णु की मूर्ति हुई तो भी उसके साथ उनकी पारिवारिक मण्डली की प्रतिमाएं होंगी ही। विष्णुमूर्ति प्रायः शेषशायी ही होगी। चिदम्बर, तंजौर, मदूरा, रामेश्वर और हंसी विरुपाक्ष अथवा विजयनगर के खास २ देवालयों में शिवलिंगों की ही प्रधानता है। इसी प्रकार बहुधा प्रत्येक मंदिर में लगभग हजार २ खंभों के सभामण्डप भी पाये जायँगे, और उन मण्डपों में ही देवताओं की नानाविध पूजापद्धी होती रहेगी। इसी प्रकार यात्रियों के रहने के लिये स्थान भी होता है। खासकर देवालय के सम्मुख एक दो अथवा तीन तट होते हैं, और उन प्रत्येक की चहार दीवारी के मध्य भाग में महाद्वार बने होते हैं, जिन पर ऊंचे २ गोपुर आसमान से बातें किया करते हैं। गोपुरों की कारीगरी बढ़िया और दर्शनीय होती है। देवालय के शिखर भी उतने ऊंचे नहीं होते, जितने कि गोपुर के होते हैं। गोपुर में ऊपर जाने के लिये मार्ग बने रहते हैं। शिल्पकला की दृष्टि से मदूरा, तंजौर और विजयनगर के राजमहाल का काम किसी प्रकार मुसलमानी ढंग का प्रतीत होता है।

रामेश्वर के मंदिर का प्रदक्षिणा मार्ग।

उत्तर एवं दक्षिण भारत के बीच एक महान अन्तर यह [illegible] दक्षिण भारत भूमध्य रेखा के बिलकुल पास आ जाने के कारण [illegible] की यहां विशेषता रहती है, इसीलिये दक्षिण भारत के निवासी [illegible] बाने होते हैं। उस ओर जाड़ा नाम को भी नहीं होता। [illegible] कारण उधर वालों को विशेष कपड़े पहनने की आवश्यकता [illegible] पड़ती। पुरुष वर्ग प्रायः सदैव ही खुले सिर रहता है। स्त्रियां [illegible] दिन ही कपड़े काम में लाती हैं। बदन पर साधारण धोती [illegible] लुंगी की तरह कमर के आसपास लपेटी हुई धोती [illegible] कौपीन की लड़ियां ही वे अधिक पहनती हैं। इस कपड़े [illegible]

में लाने की प्रथा का परिणाम यहां इतना शिष्ट संमत और सर्वमान्य हो गया है कि, पुरुषों के शरीर पर वस्त्र न रहना ही दूसरे के सम्मान करने का लक्षण बनगया है। देवालयों में जाने पर ये हमारी तरह धोती या दुपट्टा आदि उत्तरीय वस्त्र शरीर पर न रख कर उसे कमर के चारों ओर लपेटे रहते हैं। मैसुर राज्य में उनका इतना सुधार हो जाने पर भी वहां के मानकरियों के सिवाय अन्य नौकर लोगों को वस्त्रादि कमर पर लपेट कर ही राज्य कार्य के लिये उपस्थित रहने की आज्ञा है।

उत्तर भारत की अपेक्षा यहां का रहन सहन बहुत गंदा है। बड़े २ शहरों में भी गटर और शौचकूपों की ठीक २ व्यवस्था नहीं है। बोलचाल की भाषा प्रायः तैलगू और तामिल है। तथापि सामान्य प्रति के लोगों को साधारण अंग्रेजी का भी ज्ञान रहता है। इसका कारण एक मात्र यह यही जान पड़ता है, कि यहां अंग्रेजी राज्य-स्थापना का आरंभ बहुत पहले हुआ है। दक्षिण भारत की नदियों से बहुत सी नहरें काट कर निकाली गई हैं, इसी प्रकार तालाब भी यहां बहुत से हैं। इन कारणों से कृषि का सर्वाधार वर्षा पर ही अवलंबित नहीं रहता। यही कारण है कि, जब हम (दिसंबर में) वहां गये, तब भी हरे २ खेत चारों ओर दिखाई पड़ते थे। तंजौर को लोग दक्षिण भारत का उपवन मानते हैं। इन लक्षणों को देख हमें उनकी धारणा सत्य प्रतीत हुई। ब्रिटिश राज्य-व्यवस्था बंबई प्रांत की ही तरह है। अन्तर मात्र यही है कि, मुख्य गवर्नमेन्ट और गवर्नर इन कौन्सिल तथा कलेक्टर के बीच कमिश्नर्स यहां नहीं होते। इस कारण यहां के कलेक्टरों का काम अधिक रहता है, और गवर्नर इन कौन्सिल की भी यही दशा है। हम जब लार्ड विलिंग्डन से मिलने के लिये गये, तब उनकी बातों से भी यही प्रतीत हुआ कि बंबई की अपेक्षा यहां उन्हें काम अधिक रहता है। मद्रास की ओर व्यापारादि बंबई प्रांत की अपेक्षा कम होता है। इसी कारण यह प्रदेश बंबई की अपेक्षा निर्धन बना हुआ है। जहां २ हम गये और वहां हमें जो कुछ आश्चर्यकारक बात दिखाई पड़ी, उसी का अब हम उल्लेख करते हैं।

दक्षिण भारत की यात्रा में सब से पहला मुकाम हमने रायचूर में किया। यह स्थान निजाम राज्य की सीमा में है। वहां से हम मद्रास पहुँचे। मद्रास में हम आर० व्यंकटराव-सर० टी माधवराव के पौत्र के यहां ठहरे थे। मद्रास शहर बंबई की अपेक्षा प्रत्येक बात में न्यूनता युक्त पाया गया। मद्रास में विशेष दर्शनीय स्थान वहां का अजायब घर है। यह अलबत्ता बंबई के अलबर्ट म्यूझियम की अपेक्षा कई दर्जे बढ़कर है। हमने उसे दो दिन तक बराबर तीन २ घण्टे समय लगा कर देखा, किन्तु फिर भी हम उसे अच्छी तरह न देख सके। वहां की दूसरी विशेष बात "जलचर-प्राणियों का संग्रह स्थान" है। इस प्रकार का संग्रह स्थान भारत में और कहीं भी नहीं है। जल प्राणियों के जुदे २ रंग और आकार देख कर आश्चर्य होने लगता है। कुछ प्राणी उनमें ऐसे हैं कि, जिनको स्पर्श करने मात्र से ही बिजली की बटरी के समान धक्का बैठता है। अंग्रेजी राज्य स्थापना के समय से फोर्ट सेन्टजार्ज

विजयानगर के माल्यवंत पर्वत पर के शिला खंड।

नामक एक और भी प्रसिद्ध स्थान मद्रास में तैयार होगया है। यह भूमि कोट की दीवारों से घिरा हुआ एक किला है। जो समुद्र की ओर अर्ध चंद्राकृति बना हुआ है, और भूभाग की ओर उसके आसपास खाई है। इसी किले में खास २ सर्कारी इमारते हैं, और बंबई में जिस प्रकार सर्कारी कागजों में "दी के कैसल्" के नाम से बंबई का उल्लेख होता है, उसी प्रकार मद्रास का "फोर्ट सेन्टजार्ज" के नाम से उल्लेख होता है। परन्तु बंबई में केसल अथवा फोर्ट के अवशेष का नाम कुछ भी पता तक नहीं लगता। मद्रास के फोर्ट सेन्टजार्ज के विषय में यह बात नहीं है। पर यह सच्चा किला है। मद्रास हाईकोर्ट की इमारत बड़ी ही खूबसूरत और भव्य है, जिसका कि भारत की अन्य हाईकोर्टों में पहला नंबर है। उसमें केवल बड़ी अदालत अथवा हाईकोर्ट का नहीं, किन्तु केवल मद्रास शहर सम्बन्धी न्याय कार्य ही होता है। मद्रास का हार्टि कलचरल् गार्डन भी दर्शनीय है। यहीं हमें एक प्रकार का वृक्ष दिखाया गया था-जो कीड़ेखाता था। हमें उसे देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। बंबई प्रांत में जिसका आज तक प्रगट रूप में उल्लेख नहीं, वह संस्था "ब्वायस्काउट" यहां प्रधान रूप में पाई गई। लार्ड विलिंग्डन के सभापतित्व में होनेवाले इस संस्था के एक समारंभ में हमें उपस्थित रहने का मौका भी आया था। उस समय हमने जो बातें सुनी, उन पर से हमें विश्वास हो गया है कि, इस समाज द्वारा अच्छे लोकोपयोगी नागरिक तैय्यार हो सकते हैं।

हमारा तीसरा मुकाम चिदम्बरम में हुआ। यहां का महान शिवालय दक्षिण भारत में बहुत प्राचीन माना जाता है। इस मंदिर का कुछ भाग शिल्प कला की दृष्टि से बड़ा ही उत्कृष्ट कहा जासकता है। देवालय के चतुर्दिक दो बड़े २ कोट हैं, जिनके भीतर लगभग ३२ वर्ग एकड़ भूमि घिरी हुई है। हमने वहां के पुजारी से भोग-मूर्ति की पूजा करवाई। यह दर्शनीय एवं पूज्य मणिमूर्ति लाल रंग के पारदर्शक पाषाण की बनी हुई है।
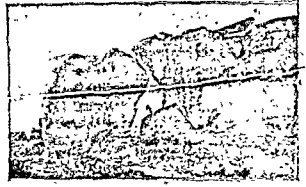
विजयानगर में हंपी के मार्ग पर का पत्थर का द्वार।

चिदम्बरम से हम तंजौर गये। वहां हम शहाजी के पुत्र व्यंकोजी राजा के वंशज वर्तमान शिवाजी राजा साहब के यहां-जिन्हें कि, सीनियर प्रिंस कहते हैं—ठहरे थे। उनका राजमहल बहुत बड़ा और ई० सन १५५० का बना हुआ है। इस प्रासाद में शिवाजी राजा साहब एवं उनका परिवार तथा जूनियर प्रिंस आदि रहते हैं। ब्रिटिश अधिकारियों के ऑफिस, पाठशाला आदि भी इसी के अन्तर्गत हैं। दर्बार घर भी यहां का दर्शनीय है। उसमें वर्तमान राजा साहब के पूर्वजों के रंगीन चित्र लगे हुए हैं। दूसरा प्रेक्षणीय स्थान-इस प्रसाद में का अति प्राचीन पुस्तकालय एवं वाचनालय है, जिसमें कि एक लाख ग्रंथों का संग्रह कहा जाता है। इसमें लगभग आठ हजार ग्रंथ ताड़पत्र पर लिखे हुए हैं। तंजौर का और भी एक दर्शनीय स्थान यहां का शिव मंदिर है। इस देवालय में पहुँचते ही प्रथमतः हमारा ध्यान शिवलिंग एवं नंदी की ओर ही गया। क्योंकि ये दोनों एक ही प्रकार के काले पत्थरों से बने हुए हैं, और दोनों की ऊंचाई १३ फुट है। शिवलिंग की पूजा सिढ़ी लगा कर करनी पड़ती है। यहां का रथ बड़ा ही सुन्दर है। उस देवालय का सर्वोच्च गोपुर दो सौ फुट ऊंचा है। किन्तु उसकी ऊंचाई कुतुब मीनार की अपेक्षा ३८ फुट और बंबई के राजाबाई टावर से ६० फुट कम है। तंजौर में जरीपट्टे के कालीन, नाना प्रकार के आभूषण आदि का काम विशेषता से होता है। साथ ही तांबा पीतल के नुकशीदार बर्तनों पर चांदी आदि धातुओं का उपयोग कर मूर्तियों के चित्र भी बनाये जाते हैं। इसी प्रकार कई प्रकार की लकड़ी के बने हुए छोटे २ सिंहासन और देवगृह भी बड़े ही सुन्दर तैय्यार होते हैं।

तंजौर से चल कर हम मदुरा पहुँचे। मार्ग में त्रिचनापल्ली आती है, किन्तु लौटते समय वहां ठहरने के विचार से हम सीधे चले गये। पर इस भ्रमण का वर्णन क्रमबद्ध रखने के लिये हम इसी के साथ त्रिचनापल्ली का वर्णन भी लिख देते हैं। त्रिचनापल्ली और श्रीरंग दोनों ही शहर पास-पास हैं। दोनों के बीच में कावेरी नदी बहती है। किन्तु यही कावेरी श्रीरंग के दोनों ही ओर दो मार्गों में विभक्त होकर बहती है, इस कारण वह द्वीप बन गया है। श्रीरंग में हम रा० ब० दी० ब० रंगस्वामी आयंगार (यहां के मिल के एक डेरेक्टर) के यहां

पुंजनन !

(लेखक—श्री० जी. एस. मराठे एम. ए , ए. आय. ए., एडबुअरी)

किसी भी बड़े समाज में जिन बालकों का जन्म होता है, उन में से कुछ लड़के होते हैं, और कुछ लड़कियां। यहां पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि, उन सब बालकों में लड़के अधिक होते हैं या लड़कियां? कई लोग इसके उत्तर में लड़कियों की उत्पत्ति ही विशेष बतलाते हैं, किन्तु बात असल में यह नहीं है। सृष्टि-नियमानुसार लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की संख्या ही विशेष रहती है। किन्तु साथ ही दूसरी एक बात और भी अनुभव में आती है, वह यह कि, अर्भकावस्था किंवा बाल्यावस्था में लड़कियों की अपेक्षा लड़के अधिक मरते हैं। तथापि इस विषय में मनुष्य का कुछ वश अवश्य चल सकता है, किन्तु उत्पन्न होनेवाला बालक लड़का ही हो लड़की नहीं, इस विषय में अलबत्ता वह कुछ नहीं सकता। हमारे षोडश संस्कारों में से पुंसवन नामका एक संस्कार कई जगह किया जाता है, और कई स्थानों में उसके बदले अन्यान्य नाना प्रकार के उपाय या यन्त्र मन्त्र से काम लेते हैं। कई पुस्तकों में भी इसके लिये उपाय लिखे रहते हैं, किन्तु इतने पर भी जिनकी इच्छा सफल नहीं होती, वे किसी सत्पुरुष की सेवा भक्ति द्वारा एवं सबके बाद द्रव्य दान करके पुत्र प्राप्ति की आशा कर बैठते हैं, किन्तु इस विषय में अभी तक अमोघ उपाय कोई खोजा नहीं गया, इसी कारण जनता की अस्थिरता दूर न हो सकी है। अस्तु। "पुंजनन" अर्थात् पुत्र उत्पन्न करने के लिये वैद्यशास्त्रात्मक अथवा अन्य किसी प्रकार के उपाय बतलाने के लिये हम यह लेख नहीं लिख रहे हैं, वरन् प्रत्यक्ष अनुभव क्या प्राप्त होता है, और लोग उस पर से अनुमान क्या बांधते हैं, इसी बात का विवेचन करने के लिये प्रस्तुत लेख लिखा जारहा है। "पुंजनन" का शाब्दिक अर्थ यद्यपि "पुत्र उत्पन्न करना" ही होता है, तथापि हम आप से थोड़ी देर के लिये 'लड़कियों की संख्या के मान से लड़के उत्पन्न होने का प्रमाण' इस भावार्थ में उस शब्द का प्रयोग करने की अनुमति लेते हैं। क्योंकि इसके लिये हमें दूसरा कोई उपयुक्त शब्द कोष में भी नहीं मिला है। अस्तु।

एक ही अंक से पुंजनन का प्रमाण दिखलाने में सुगमता हो, इस आशय से संकेत रूप में लड़कियों का जन्मांक १००० रखने पर लड़कों की जन्म संख्या क्या आती है, सो अब हमें देखना है। साधारणतः किसी भी बड़े समाज में अधिक से अधिक यह संख्या ११०० से आगे बढ़ नहीं सकती और न ९०० से कम ही हो सकती है। अर्थात् साधारणतः लड़कियों के जन्मांक की अपेक्षा लड़कों की जन्मसंख्या एक दशांश से न्यूनाधिक हो सकती है। ११०० और ९०० के अंक बहुत अन्तर के कहे गये हैं। किसी विशेष कारण के न रहने पर पुंजनन का प्रमाण १०२० और १०७० के बीच का होता है।

पुंजनन के प्रमाण में जो अन्तर पड़ता है, उसके कारणों की खोज करने के लिये जिन ११ बातों पर विचार करना पड़ता है, वे इस प्रकार हैं:—

(१) राष्ट्रभेद, वंश, जाति आदि (२) समग्र जन्मसंख्या का प्रमाण (३) औरस अथवा जारज (४) मृतजन्म (५) प्रथम सन्तान (६) बाद की संतति (७) बहु-प्रसव (८) नगर या ग्राम का निवास (९) समाज (१०) ऋतु मान (११) माता पिता की आयु।

अब हम इन्हीं बातों पर क्रम से विचार करते हैं —

(१) राष्ट्रभेद:—भिन्न २ राष्ट्रों का पुंजनन प्रमाण अलग २ होता है। युरोपियन राष्ट्रों में ग्रीस और रूमानिया की यह संख्या ११०० से भी अधिक बढ़ जाती है। भिन्न २ देशों में रहनेवाले यहूदी (ज्यू) लोगों का पुंजनन प्रमाण बहुत बढ़ा हुआ है। इटली, स्पेन, पुर्तुगाल, इन तीन देशों का प्रमाण साधारणतः बढ़ा हुआ है, रशिया, जर्मनी और ग्रेट-ब्रिटन का मध्यम और फ्रांस का सब से कम है। कुछ असंस्कृत (Uncivillzed) राष्ट्रों में यह प्रमाण ऋण अर्थात् हजार से भी कम कहा जाता है।

एक ही देश का पुंजनन प्रमाण निरन्तर एकसा नहीं बना रह सकता। स्पेन, नार्वे आदि देशों में यह प्रमाण बढ़ता जारहा है और इंग्लैण्ड एवं फ्रांस आदि में उसकी उतरती कला आने लगी है।

अर्जेण्टाइन देश के अनुभव पर से जाना जाता है कि, विभिन्न वंशों के स्त्री-पुरुषों से और विशेषतः वहां के देहाती पुरुष और अन्य देशीय (युरोपियन) स्त्रियों के संयोग से पुरुष संतति अधिक होती है।

विदेशों में थोड़े ही समय के लिये जाकर रहने से पुंजनन का प्रमाण कम हो जाता है। हां, यदि स्थायी रूप में ही वहां कोई बस जाय तो, अलबत्ता वहां के नियम उस पर लागू हो सकते हैं।

(२) समग्र जन्म संख्या का प्रमाण:—कुल लोकसंख्या के साथ जन्म संख्या का प्रमाण यदि कम हो जाय तो पुंजनन घट सकता है। अर्थात् उत्पत्ति का प्रमाण घटने पर उसका विशेष परिणाम लड़कों के जन्मांक पर ही पड़ता है। यह बात कई जगह देखी गई है, किन्तु कहीं २ स्थानों में इसके विरुद्ध परिणाम भी पाया जाने के कारण इस विषय में कोई खास नियम निश्चित नहीं किया जासकता।

(३) औरस एवं जारज (अविवाहित स्त्रियों से उत्पन्न) संतति—इस विषय की पूरी २ जानकारी करने में कठिनता पड़ती है। क्योंकि अनेकों बार इस प्रकार की सन्तति गुप्त रक्खी जाती है, और गुपचुप उसका नाश भी कर दिया जाता है। मृत सन्तति जो उत्पन्न होती है, उसका लेखा सर्कार में नहीं होता। अतः इन सब कारणों से प्राप्त ज्ञान के द्वारा विश्वसनीय अनुमान नहीं बांधा जा सकता। किन्तु फिर भी सर्कारी लेखे की जानकारी पर से ग्रेट ब्रिटन को छोड़ युरोप के अन्य भागों में पुंजनन का प्रमाण औरसों में विशेष पाया जाता है, पर ग्रेटब्रिटन में जारजों के पुंजनन की संख्या अधिक देखी गई है। अन्य स्थानों का अनुभव 'औरस-पुंजनन' की अधिकता बतलाता है।

(४) मृतजन्म.—मरी हुई सन्तति उत्पन्न होने के विषय में अलबत्ता यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि, मृतोत्पन्न बालकों में पुंजनन का प्रमाण बहुत बढ़ा हुआ है। यह प्रमाण लगभग १३०० तक पहुंच जाता है, और १२०० से तो कम कभी नहीं होता। भावार्थ इसका यह है कि पुत्र को सजीवावस्था में जन्म देना माता के लिये विशेष कष्टकारी होता है।

(५) प्रथम संन्तान—इस विषय में स्वतंत्र रूप से विचार करने का कारण यह है कि, माता-पिता की अवस्था, मनोवृत्ति और देह रचना आदि विषयों में प्रथम सन्तान के जन्मकाल की अपेक्षा आगे की सन्तान उत्पन्न होने के समय तक कुछ अन्तर पड़ जाता है। सिवाय इसके, प्रथम गर्भ संभव के ध्येयानुसार माता की गर्भ-धारणा-प्रवृत्ति किसी विशेष दिशा की ओर ही स्थायी रूप में आकृष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि, प्रथम संतान की उत्पत्ति में पुंजनन का प्रमाण भी अधिक रहता है। हां, इतना अवश्य है कि यह प्रमाण माता-पिता की अवस्था पर भी किसी अंश में अवलंबित रहता है। साधारणतः पिता की अवस्था जितनी ही अधिक होगी, उसके अनुसार प्रथम सन्तान पुत्र रूप में उत्पन्न होने की सम्भावना कम रहेगी, इसी प्रकार उस समय माता की अवस्था जितनी ही कम होगी, तदनुसार उस संतान के पुत्र रूप में उत्पन्न होने की विशेष आशा की जा सकेगी। किंतु पिता की अवस्था ३० से अधिक हो जाने पर पुंजनन का प्रमाण १००० से (अर्थात् समानता से) कम हो जाता है। माता की

अवस्था २५ वर्ष के भीतर की हो तो प्रथम सन्तान पुत्र रूप में उत्पन्न होने की ही विशेष सम्भावना रहती है, और यदि वह ;४५ से आगे बढ़ गई हो और तब यदि प्रथम सन्तान उत्पन्न हुई तो विशेषतः वह लड़की ही होगी।

(६) आगे की संतति का क्रमः—जिन दम्पतियों के योग से बहुत सन्तान पैदा होती है, उनमें पुंजनन का प्रमाण साधारण प्रमाण की अपेक्षा अधिक होता है। यदि समस्त दूसरी और तीसरी सन्तानों की संख्याएँ अलग २ निकाली जायँ तो जान पड़ेगा कि, उन में पुंजनन का प्रमाण साधारण प्रमाण की अपेक्षा कम है। चौथी और पांचवी सन्तति का प्रमाण अधिक होता है और छठी का कम, किन्तु सातवीं से दशवीं तक वह फिर बढ़ जाता है। इससे आगे के अंक विश्वसनीय नहीं समझे जा सकते।

(७) बहुप्रसव (जुड़ी हुई दो या तीन सन्तान एक साथ उत्पन्न होना).—ऐसा माना गया है कि, बहुधा ३० वर्ष से कम आयु वाली माता को तीन बालक एक एक साथ पैदा नहीं होते। तीन बालकों के एक साथ उत्पन्न होने पर उन में तीनों के तीन लड़के या लड़कियाँ होने की ही विशेष सम्भावना रहती है। फलतः इस प्रकार के जन्म में पुंजनन का प्रमाण सर्व साधारण प्रमाण की अपेक्षा अधिक होता है। जुड़ी हुई दो सन्तानों की उत्पत्ति में पुंजनन का प्रमाण समान ही रहता है। कभी दोनों ही लड़के तो कभी दोनों ही लड़कियाँ और कभी लड़का और लड़की भी होते हैं। एक स्थान पर इस बात का अनुभव भी मिला कि, माता की अवस्था २५ से कम रहने पर भी लड़कियाँ ही अधिक हुईं। किन्तु इस एक ही उदाहरण पर सब का अनुमान करना उचित नहीं कहा जासकता।

(८) नगर-ग्रामनिवास-(शहर या देहात का रहना):—इस विषय में निश्चित अनुमान कर सकना सम्भव सा है। देहाती गाँव जितनी ही कम जनसंख्या का होगा, उतना ही पुंजनन का प्रमाण बढ़ता जायगा। बड़े शहरों में जहां वह १०५० होगा वहां देहात में १०७० तक पहुँच जायगा।

(९) सामाजिक परिस्थिति—इस विषय के अंक अलग मिल सकना कठिन है। किंतु उद्योग धन्दे पर से अनुमान बाँधा जा सकता है। सर्दार एवं अमीर लोग, लेखक मुहर्रिर या गुमश्ते और व्यापारी तथा किसान-इस प्रकार विभाग करने से पुंजनन का प्रमाण उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ दिखाई देगा। धनाढ्यों में कई दम्पति सन्ततिहीन पाये जाते हैं, और जिन्हें सन्तान होती भी है तो अधिकांश लड़कियाँ ही। लड़के बहुत कम होते हैं। किसानों में पुंजनन का प्रमाण विशेष पाया जाता है, इसी प्रकार समुद्र यात्रा करनेवालों में भी यह प्रमाण बढ़ा हुआ रहता है। पहाड़ी प्रदेश में रहने वाली प्रजा में भी पुंजनन का प्रमाण अधिक देखा गया है। किंतु श्रमजीवी मजदूरों में यह प्रमाण घटा हुआ दिखाई पड़ता है।

(१०) ऋतुमान—भिन्न २ ऋतुओं में जन्म का प्रमाण न्यूनाधिक होता है। यह तो निर्विवाद है ही, किंतु यह देखना चाहिये कि पुंजनन का प्रमाण भी ऋतुमान पर अवलंबित रहता है या नहीं! केवल अंकों के देखने मात्र से इस प्रकार का कुछ भी अनुमान स्पष्टतयः नहीं निकाला जा सकता।

(११) माता पिता की अवस्थाः—उपरोक्त ग्यारह बातों में एक स्थान पर माता पिता की आयु का उल्लेख हो चुका है, किंतु वहां केवल प्रथम सन्तान के विषय में ही उसका विवेचन किया गया है। समग्र सन्तति के विषय में सम्यक् विचार कर लेने के बाद सैंडलर नामक एक सज्जनने यह प्रतिपादन किया गया है कि, पिता की अवस्था अधिक रहने पर लड़के होने की विशेष सम्भावना रहती है, और माता की उमर बड़ी रहने पर लड़कियों की। किंतु इसके बाद अलग ही विस्तृत प्रमाण में अंक मिल जाने से अनुमान इसके विरुद्ध निकलने लगा है। सारी बात का खुलासा यह है कि, माता-पिता की अवस्था पर से किसी प्रकार का अनुमान बांधना सब प्रकार उचित नहीं जान पड़ता। सैंडलर का प्रयत्न विशेषतः माता-पिता की अवस्था के अन्तर पर अवलंबित था। किंतु भी फिर यही जान पड़ता है कि, उपरोक्त बात का परिणाम होता भी होगा तो वह अन्य बातों के हिसाब से बिलकुल ही थोड़ा। अस्तु।

अब हमें और कुछ बातों पर विचार करना है, किन्तु उनके किसी प्रकार के अंक नहीं दिये जासकते। उनमें से एक मुद्दा मानुषिक प्रकृति है, अर्थात् जिसे कई बहिनें हों किन्तु भाई नहीं (हो भी तो एक-आध ही) उस स्त्री को लड़कियां ही अधिक होंगी इस प्रकार का एक लोकापवाद है। अर्थात् पुरुषों के लिये भी नियम लागू करना अनुचित नहीं जान पड़ता। क्योंकि जिस आदमी के भाई अधिक होते हैं, उसे लड़के भी अधिक होते होंगे! के अंक देखने के लिये जन्म का लेखा होते समय, बालक के माता पिता के (जीवित अथवा मृत) भाई बहनों के अंक नोट कर लेने चाहिये। किन्तु यह बात बड़े प्रमाण में व्यवस्थित रूप में नहीं की जाती। कई लोगों का यह मत है कि, जिस परिवार में मनुष्य अधिक होते हैं, उसमें लड़के ही अधिक जन्म लेते हैं।

शास्त्र को छोड़ कर यदि लोकमत की ओर विशेष ध्यान दिया जाय तो उसी के साथ २ पुस्तकों में भी यही उल्लेख पाया जाता है कि, पुत्र सम्भावना के विषय में माता के मन पर पड़नेवाले प्रभाव की महत्ता ही विशेष कारण होती है! गर्भस्थिति में पहले दो महीने तो इसी बात का निश्चय नहीं होता कि, उसमें लड़का है या लड़की। किंतु दूसरा महीना बड़े महत्व का है। पुंसवन संस्कार दूसरे महीने ही किया जाता है, और उस समय लड़के की धातु प्रतिमा बना कर उसे आग में तपाने के बाद दूध में डाल देते हैं, और तब वह दूध गर्भिणी को पिलाया जाता है। सिवाय में सफेद घोड़ा, वीरवृत्ति के दृश्य भी दूसरे ही महीने गर्भिणी को दिखाये जाते हैं। कई लोगों की यह भी धारणा है कि, माता पिता के मन में पुत्र प्राप्ति की अत्युत्कट इच्छा रहने पर पुत्र ही होता है। कई जगह का अनुभव यह प्रगट करता है कि, युद्ध होकर यदि किसी देश के बहुत से आदमी मारे गये, तो इसके बाद कुछ समय तक उस देश में उत्पन्न होनेवाली संतति में लड़के ही अधिक होंगे। अर्थात् वहां प्रकृति की समता का साधारण नियम लागू होता है।

हमारे वैद्यक-शास्त्रानुसार स्त्री को रजोदर्शन होने का दिन पहला गिन कर समरात्रियों (अर्थात्-४।६।८) और ग्यारहवें दिन गर्भ सम्भावना होने पर लड़का ही पैदा होता है।

रजोबाहुल्य अथवा वीर्यबाहुल्य पर भी कहीं २ कन्या अथवा पुत्रोत्पत्ति अवलम्बित मानी जाती है। कई लोगों का यह मत भी होता है कि, पुरुष की अपेक्षा स्त्री के अशक्त रहने से ही पुत्र होता है।

जो लोग (पुरुष या स्त्री) मस्तिष्क पर विशेष जोर देने २ का काम करते हैं। उनको प्राय: लड़के नहीं होते, और यदि होते भी हैं तो बहुत कम, इस प्रकार भी कई लोगों का अनुभव है। जो लोग अधिक विषयासक्त होते हैं, उन्हें भी प्रायः संतान से विमुख ही रहना पड़ता है। जो स्त्रियाँ शरीरमें विशेष स्थूल होती हैं, उन्हें भी प्रायः सन्तान नहीं होती, या बहुत कम होती है।

हमें एक आदमीने बतलाया कि, किसी गाँव में डेढ़ मील की दूरी से स्त्रियों को पानी लाना पड़ता था, और वहां पुत्रोत्पत्ति ही विशेष होती थी। दूसरे एक महाशय का अनुभव यह बतलाता है कि, पीसने या कूटने का काम करने वाली स्त्रियों को ही विशेष होते हैं।

हनुमान या भैरव के देवालय किंवा बड़पीपल के वृक्षों की परिक्रमा करने; और प्रत्येक परिक्रमा के समय जमीन से हाथ जाय इतना झुक कर नमस्कार करने से पुत्र होता है, यह जन्म तो एक प्रसिद्ध बात है। यदि कन्या उत्पन्न करने की इच्छा हो तो व्रत पुरुषों को करना पड़ता है, अथवा इस प्रकार का व्रत करने स्त्री का चरण स्पर्श करना पड़ता है! हमारे परिचित एक विद्वान सज्जन का कहना है कि, उनके गाँव से दिल्ली और अमृतसर कांग्रेस में गये हुए सब सब मनुष्यों के घर लड़के हुए और कान्फरेंस में जाने वालों के घर सब लड़कियाँ ही उत्पन्न हुई।

इन सब बातों का विचार कर हमें भी कुछ अनुमान निकालने की इच्छा हुई थी, किंतु यह जानकारी जो भी मनोरंजक और विचार प्रवर्तक होने से यहां दी गई है, तथापि यह अपूर्ण एवं अधिकांश अनिश्चित होने से हमें अपना विचार स्थगित कर देना पड़ा। इसी प्रकार यह विषय दुर्बोध एवं सर्वप्रिय होने से अनुमान निकालने का कार्य पाठकों का विचार पर हमने इसे यहीं समाप्त कर दिया है।

बाबू बल्देवप्रसादजी।

(लेखक—श्री० "नागरीदास" सागर।)

चरित्र चित्र अंकित करने के लिये यह आवश्यक है कि, उससे जनता कुछ लाभ उठा सके। जिस चरित्र से जनता को कुछ शिक्षा मिल सकती है—वह उससे कुछ सीख सकती है, उसे अंकित करना नितान्त आवश्यक है। फिर वह चरित्र चाहे किसी प्रसिद्ध महात्मा, नेता या विद्वान का हो या अप्रसिद्ध साधारण व्यक्ति का। हम लोगों में यह एक बड़ा दूषण है कि, हम असाधारण-व्यक्तियों के चरित्र पढ़ने की ही ओर विशेष झुकते हैं। परन्तु याद रखना चाहिये, आदर्श-चरित्र साधारण व्यक्तियों में भी बहुतायत से मिलते हैं। खेद है कि, हम उनसे कुछ सीखने की चेष्टा नहीं करते। किन्तु यथार्थ में ऐसा न होना चाहिये। जिस व्यक्ति के चरित्र से स्वार्थ-त्याग, परोपकार, दयालुता, निर्भीकता, तथा स्वदेशप्रेम आदि गुणों की उत्कृष्ट शिक्षा मिलती हो, क्या वह साधारण या अप्रसिद्ध होने के कारण उपेक्षणीय है? आज हम जिन महानुभाव का चरित्र-यहाँ संक्षिप्त परिचयरूप लिख रहे हैं, वे यद्यपि कोई प्रसिद्ध नेता, विद्वान्, महात्मा अथवा धनाढ्य नहीं हैं, परन्तु उनमें उपर्युक्त गुण कूट कूट कर भरे गये हैं। इसी लिये हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। अस्तु।

बाबू बल्देवप्रसादजी।

बाबू बल्देवप्रसाद जी का जन्म मध्य-प्रदेश के सागर नगर में एक साधारण स्वर्णकार के घर सम्वत् १९४७ के श्रावण मास में हुआ था। आप माता-पिता के प्रेम से वञ्चित ही रहे। आपको थोड़ी ही अवस्था में माता-पिता का देहान्त हो गया था। निराश्रय बल्देव को इनके फूफा ने आश्रय दिया। वे ही पुत्र के समान इनका लालन पालन करने लगे।

आप आरम्भ से ही चंचल थे। खेल-कूद में आप का मन अधिक लगता था। कौन जानता था कि, यही खिलाड़ी एवं साधारण बालक भविष्य में लुप्त एवं मृतप्राय सागर में सञ्जीवनी शक्ति का संचार करेगा! प्रायः महापुरुषों के सम्बन्ध में "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की कहावत आरम्भ से ही चरितार्थ होने लगती है। पर हमारे बाबू साहब इस कहावत के अपवाद ही रहे। बारह वर्ष की अवस्था तक आप का समय खेल कूद में ही व्यतीत हुआ। इसके बाद आप के फूफाने आप को पाठशाला भेजा, आपने घर कभी नहीं पढ़ा। पाठशाला में खेलते-कूदते जो सीख लिया सो सीख लिया, फिर खेल के मारे किसे फुरसत? पर धारण-शक्ति अच्छी थी। एक बार जो सीख लेते थे, कभी न भूलते थे। इसीलिये परीक्षा में बराबर पास हो जाते थे। कक्षा में ये सदैव प्रथम ही रहते थे। इस प्रकार इन्होंने १९ वर्ष की अवस्था में हिन्दी की शिक्षकीय परीक्षा पास कर ली, और स्थानीय शालाओं में शिक्षक का कार्य करने लगे।

आप कैसे शिक्षक रहे हैं यह बतलाने के लिये हम आँखों देखी एक घटना लिखते हैं। बात सन् १९१७ की है। वेष आप का आरंभ से ही अद्भुत रहा है। शिक्षा विभाग के असिस्टेंट सर्किल इन्सपेक्टर शाला देखने आये। वे बाबू साहिब का वेष देखते ही सख्त नाराज़ हुए और उन्होंने आप को अयोग्य समझ लिया। खैर। उसी दिन बाबू साहिब ने शिक्षकों की सभा में बच्चों को एक आदर्श पाठ पढ़ाया। जिसे देख इन्सपेक्टर साहिब का सारा क्रोध जाता रहा और आपने अपने श्रीमुख से फर्माया—"एक अंट्रेंड शिक्षक, ट्रेंड शिक्षक की अपेक्षा ऐसा अच्छा पाठ पढ़ा सकता है, यह मुझे आज ही ज्ञात हुआ। ऐसा अच्छा पाठ पढ़ाने के लिये मैं बल्देवप्रसादजी को बहुत धन्यवाद देता हूं।"

अखबार और पुस्तकें बहुतेरे लोग पढ़ा करते हैं। पर उनसे सीखते हैं विरले ही लोग। बल्देवप्रसादजी इन्हीं विरले लोगों में से हैं। सन् १९१८ में आपने 'प्रताप' पत्र में, कानपुर में सेवा-समिति स्थापित होने का समाचार पढ़ा। वह समय होली का था। समाचार पढ़ते ही आप भी यहां सेवा-समिति स्थापित करने के लिये अधीर हो उठे; और उसी दिन आपने यथाशक्ति समिति का सगठन कर दूसरे ही दिन उसकी ओर से होली का जुलूस निकाल दिया। यह दिन सागर के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। इसी दिन बाबू साहिब ने इस सुप्त सागर को जागृत करने के लिये एक मीठी थपकी का प्रयोग किया। धीरे २ सेवा-समिति का कार्य क्षेत्र विस्तृत होने लगा। आपने तथा आपकी सेवा समिति ने इसी वर्ष श्रावण मास में झूलों के उत्सव के समय नगर-निवासियों की अच्छी सेवा की। जनता आप के प्रबंध से बहुत ही संतुष्ट हुई। फिर क्या था, बड़े २ लोग भी सेवा-समिति को सहायता देने के इच्छुक होने लगे।

इसी साल कार्यवश प्रसिद्ध नेता दादा साहब खापर्डे और डा० मुंजे सागर में पधारे। खेद है कि, उनका स्वागत करने के लिये जनता आगे न बढ़ी। तब हमारे बल्देव ने ही पूजनीय नेताओं का जयजयकार किया। अधिकारियों को आप की यह कार्य-तत्परता अच्छी न लगी और आप की बदली अन्य स्थान को कर दी गई। मास्टर साहिब ने प्रण किया—"मैं अपनी जन्म-भूमि को कभी न छोड़ूंगा। मैं सागर का हूं और सागर मेरा है। मेरा सागर इस समय शान्त है। मैं उसमें जागृति की लहरें उत्पन्न करने की चेष्टा करूंगा। यद्यपि मेरे भाइयों को उसकी चिन्ता नहीं है; पर मैं उन्हें उसकी चिन्ता करने को बाध्य करूंगा। मैं उनसे प्रार्थना करूंगा, कि तुम भी अन्य प्रान्तीय भाइयों के समान जन्मभूमि की सेवा के लिये आगे बढ़ो।' मातृ-भूमि की सेवा का यह निश्चय करके आपने नौकरी को घृणा की नजर से देखा और घृणा की नजर से देखा उन अधिकारियों को, जो मातृ-भूमि की सेवा में अड़ंगा लगाने को प्रस्तुत थे। खेद है कि, आज हमारे भाई सरकार से अच्छी तनख्वाह पाने अथवा अन्य कारणों से इतने नीच हो गये हैं कि, वे अपने देश बन्धु को मातृ भूमि की सेवा करते भी नहीं देख सकते। इन नीचों को सहस्रश धिक्कार है।

अब सागर में कैसे सजीवनी शक्ति का संचार किया जाय, बल्देव को इसी की चिन्ता हुई। आप ने उपाय भी खोज निकाले। 'विजय' 'भारतमित्र', 'विश्वमित्र' आदि बहुतेरे पत्रों की आपने एजेंसियाँ ली। जिस सागर में लोग अखबार पढ़ने तथा खरीदने में डरते थे, वहीं रात भर हॉकर की वन्देमातरम् की प्रिय-ध्वनि सुन लोग उन्हें पढ़ने

इच्छुक होने लगे। भला; एक दो पैसे में खरीददार कौन पत्र न पढ़ना चाहेगा? आप का दूसरा उपाय था—व्याख्यान। यद्यपि आप व्याख्यान देना नहीं जानते थे, पर फिर भी आपने पीछे हटना ठीक न समझा। बात तो यह है कि, अब इस महात्मा को देश से सच्चा प्रेम हो गया था। सागर की शोचनीय दशा उसके हृदय को विदीर्ण कर रही थी। अतएव उसने अपनी टूटी फूटी भाषा में ही नगरस्थ जनों को देश का संदेश सुनाना प्रारंभ कर दिया। नित्य-प्रति जहां देखिये बल्देव के व्याख्यानों पर वार्तालाप होने लगा। जहां देखिये अखबार ही अखबार नज़र आने लगे।

नगरस्थ जनोंने बल्देव की बातों पर ध्यान दिया। वे अब देश-प्रेमी बनने लगे। परन्तु हाय! इसी समय १९१८ का नवम्बर महिना आ पहुंचा। इन्फ्लुएंजा के कारण मृत्यु-संख्या बढ़ चली। बल्देवने अखबारों और व्याख्यानों को छुट्टी दी। सेवा-समिति के स्वयंसेवक रास्ते रास्ते दवा बाँटने लगे। बल्देव नीच ऊंच का खयाल न कर रोगियों के यहां घर जाते, उन्हें दवा-पानी देते, हर प्रकार से उनकी सेवा करते। इस काम में आप को सेठ जैसराज (अब समिति के सभापति) से बड़ी सहायता मिली। स्मरण रहे कि; इस समय जनता लाभ के लिये सर्कार की ओर से कोई प्रबन्ध न हुआ था! आपने स्वयं ठेला खींच कर सैकड़ों आदमियों की मिट्टी को ठिकाने लगाया। आपको इस कार्य में बाबू देवेन्द्रनाथ मुकर्जी B.A.LL.B. (अब समिति के कैप्टेन) तथा विद्यार्थी प्रेमनारायण शर्मा से अच्छी सहायता मिली थी। पाठक, यही सच्ची देशसेवा है। प्लेटफार्म पर निरे व्याख्यान झाड़ देने अथवा कोरी बातों से कुछ नहीं होता। जिस व्यक्तिने सैंकड़ों प्राणियों की रक्षा की, तथा सैंकड़ों देश बन्धुओं की मिट्टी को बरबाद न होने दिया, क्या वह सच्चे सम्मान का भाजन नहीं? क्या उसकी चरित्र गाथा से आप कुछ भी सबक़ न सीखेंगे?

रौलट-एक्ट-आन्दोलन के समय आपने रास्ते रास्ते और गाँव गाँव घूम कर सत्याग्रह के सिद्धान्त का प्रचार किया था। सागर में पहिले पहिले इन्होंने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा की। आप की प्रतिज्ञा दिल्ली के 'विजय' में इस प्रकार छपी थी—

"तीर, तलवार, तबर, नेजा वा ख़ंजर बरसें,
जहर, खून, आग, मुसीबत के समुन्दर बरसें।
बिजलियां चर्ख से और कोह से पत्थर बरसें,
सारी दुनिया की बलाएं मेरे सर पर बरसें।
नाश हो जाय हर एक रंज वा मुसीबत मुझ पर,
मगर सत्याग्रह से विलग होऊं तो लानत मुझ पर॥"

६ अप्रैल को सागर में सत्याग्रह की जो विशाल सभा हुई उस में आप का बहुत कुछ भाग था। इसी सभा में सागर में आगामी प्रान्तीय परिषद् तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन को निमंत्रण देने का प्रस्ताव पास हुआ था।*

पंजाब-पीड़ितों के सहायतार्थ आपने भिक्षुक बन कुछ रुपया चन्दा कर पंजाब भेजा था। यद्यपि रुपये के साथ 'कुछ' विशेषण अखर रहा है, पर हम लोग उसकी पूरी महत्ता समझते हैं। कहिये तो यह आदर्श है कितना अच्छा? यदि हमारे नव युवक इस प्रकार के आदर्श को ग्रहण करें तो सचमुच उनकी देशसेवा की कामना बहुत कुछ पूर्ण हो सकती है। अस्तु।

इसी वर्ष आपने खुरई, बीना, इटावा, देहली आदि स्थानों में भी सेवा समितियाँ स्थापित की हैं। खुरई की जनताने आप का स्वागत एक सच्चे नेता के समान बड़ी धूमधाम से किया था। हर्ष की बात है कि, खुरई के शिक्षक श्रीयुत अब्दुलगनी ने बल्देव प्रसाद का पूर्ण तथा अनुकरण किया है। इस तेजस्वी नवयुवकने अपने आसपास की जनता को खूब जागृत किया है। अब्दुलगनी और बल्देवप्रसाद सचमुच ही भारत-माता के सच्चे लाल हैं। सच तो यह कि ये मातृभूमि की सच्ची सेवा कर अपने जीवन को सफल करते हुए नवयुवकों के लिये आदर्श बन रहे हैं। इन महोदयोंने स्पष्ट बतला दिया है कि १५) रुपये पाने वाले मास्टर क्या २ कर सकते हैं! नवयुवक किस प्रकार अपने पैरों खड़े हो सकते हैं, कैसी और किस प्रकार देश-सेवा कर सकते हैं। मातृभूमि के सेवक बल्देव और गनी तुम धन्य हो! आज हमारे देश को ऐसे ही तेजस्वी नवयुवकों की आवश्यकता है। क्या हम आशा करें कि नवयुवक-वर्ग इधर ध्यान देने की चेष्टा करेगा?

बाबू बल्देव प्रसाद की सादगी के सम्बन्ध में कुछ शब्द लिख कर हम इस परिचय को समाप्त करते हैं। अन्य लोग समिति के सभापति, कमान, सेक्रेटरी और इन्स्पेक्टर आदि हैं, पर उसके जन्मदाता बल्देव? एक साधारण स्वयंसेवक! धन्य यह सादगी!

* हर्ष की बात है कि इस वर्ष ता० १७, १८, १९ और २० मई को ये सम्मेलन सफलता पूर्वक समाप्त हो गये। इन्हें सफल बनाने में मास्टरसाहब ने भोजन तक को तिलांजलि दे दी थी। इन सम्मेलनों की सफलता का बहुत कुछ श्रेय आप ही को है। लेखक।

चिन्ते!

१

किस लिये, चिन्ता हृदय को दाहती!
तू चिता तन को बना क्या पायगी॥
याद रखना? तू जलाती है जिसे।
बस स्वयम् भी, जल उसी में जायगी॥

२

जो किसी का नाश करता है यहां।
फल उसी का वह यहीं पा जायगा॥
जो जलाता और को आकर यहां।
वह स्वयम् भी जल उसी में जायगा॥

३

तू रुलाती है हमें तो क्या हुआ।
एक दिन ऐसा तुझी पर आयगा॥
रोयगी तू दिल मसल कर, हाय कर।
जो किया उसका नफा मिल जायगा॥

४

जन्म लेती है, जहां पर तू उसे।
है जलाती, पाप कितना है बड़ा॥
सोचले चिन्ता जहां पैदा हुई।
दुःख देती कर हृदय कितना कड़ा॥

५

और तो सब मातृ से सेवा करें।
तू निगोडी बस उसी को दाहती॥
क्या कहूँ तेरी कठिन करतूत पर।
भक्ष्य; बस मानव हृदय तू चाहती॥

६

पापिनी! व्यवहार जैसा कर रही।
जान मेरी जानती, किससे कहूं॥
फट रहा है हृदय यह सहकर व्यथा।
रक्त भी तन में नहीं; कैसे रहूं॥

७

देखलो मुंह को कलेजा आ रहा।
प्राण भी प्रस्थान करना चाहता॥
विश्व के सब सौख्य दुखमय दीखते।
नेहियों का नेह विष बन दाहता॥

८

हठ किया जिसके लिये वह है कहां।
चल हठीली, वह कभी मिलती नहीं॥
किस लिये फिर तू, हमें है दाहती।
तू न पायगी कभी उसको कहीं॥

लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी।

एकान्तवासी तारा।

अलफर्द

(लेखक—श्री० वैकुण्ठराय।)

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने ज्ञानी मनुष्यों के जो अठारह लक्षण बतलाये हैं, उन्हीं में—

विविक्तदेशसेवित्वम् अरतिर्जनसंसदि।

अर्थात् एकान्तवास की अभिरुचि और बहुजन समाज से घिरे हुए स्थान के प्रति उदासीनता रखने की भी गणना होती है।

सघन बस्तीवाले किसी नगर की सीमा से बाहर के देवालय, गत-
[थ] का स्मरण करा देनेवाले जीर्ण
[ं], निबिड़ घनराजी के बीच अपने
[उ]च्च शिखरों द्वारा नभोमण्डल से
[बा]त करनेवाली टेकड़ियां, और स्वच्छ
[ए]वं शीतल पुनीत जल सम्पत्ति को
[ले]कर महासागर से भेट करने के लिये
[अ]विलम्बित गति से बहनेवाली सरि
[त]ओं के तट प्रदेश जैसे एकान्त स्थलों
[क]ा महत्व, पौर्वात्य साधु महात्माओं ने
"सुखमोम्न विरक्तस्य मुनेरेकान्त
[से]विनः" के रूप में स्थान २ पर
[व]र्णन किया है। किन्तु इसमें आश्चर्य
[ज]ैसी कोई बात नहीं है,—क्योंकि उन
सबको गुरु मन्त्र देनेवाले एक मात्र
"कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्" ही तो थे!

किंतु पाश्चात्य लोगों में भी एकान्त-
[व]ास की महत्ता जाननेवाले कई लोग
[प]ाये जाते हैं। एडिसन नामक विख्यात
[ग्र]न्थ प्रेमी ग्रन्थकार का कथन है कि
"एकान्त में भी मनुष्य अकेला नहीं
[र]हता, क्योंकि वहां उसे ईश्वर के
[नि]कट सान्निध्य सुख का आस्वादन
[क]रने के लिये अवसर मिल सकता
है।"

[आ]इज़ॅक वाल्टर नामक एक प्रसिद्ध आंग्ल
[ग्रन्थ]कार हैं स. १६५० के लगभग हो
[गये] हैं। उसने (Complete
[An]gler) मच्छीमार नामक एक बड़ी
लोकप्रिय छोटी सी पुस्तक लिखी
[है।] यद्यपि उक्त पुस्तक में बंसी द्वारा
मछलियां पकड़ने की कला विषयक बातें ही विशेष कर
[बड़]ी प्रचुर मात्रा में लिखी गई हैं, तथापि उसमें स्थान २ पर विच-
[र]ण करके भिन्न २ बातों का मनोरंजक वर्णन भी दिया गया है। इन
[से] पाठकों की उसके प्रति विरक्ति नहीं वरन् तीव्र अभिरुचि प्रगट
[हो]ती रहती है। उसमें एक स्थान पर ग्रन्थकार ने यह प्रश्न उपस्थित
[कि]या है कि, मनुष्य को एकान्त में ध्यानस्थ बैठने से विशेष सुख
[प्राप्]त होता है, या निरन्तर कार्यरत रहने से? ध्यानस्थ पुरुष अधिक
[सुख]ी है, अथवा कर्मरत? इन दोनों मत का समर्थन करनेवाले अने-
[क] विद्वान पाये जाते हैं। ग्रंथकार कहता है कि, शांतिपूर्वक विचार
[क]रने के लिये नदी-तट के समान दूसरा निर्विघ्न एवं योग्य स्थान ही नहीं
[हो] सकता।

ईश्वर की इच्छा जब मनुष्य-प्राणि को किसी प्रकार का दिव्य ज्ञान
एवा अद्भुत दर्शन प्राप्त करा देने की होती है, तब वह उसे जन संसर्ग
के कोलाहल एवं ऐहिक कर्मों को प्रपंच से मुक्त करके घोर एवं निर्जन आरण्य में चले जाने की प्रेरणा करता है। प्राचीन ऋषियों को आध्यात्मिक ज्ञान एवं सामर्थ्य इस प्रकार के एकान्तवास और तप एवं ध्यान बल से ही प्राप्त हुआ था।

एकान्त में आत्म निरीक्षण करने के लिये समय मिलता है, और स्फूर्ति भी सुगमता से हो सकती है। मन में जिन अनेक रज तम वृत्तियों के विचारों की गड़बड़ मची रहती है, वह शांत होकर उसमें नये सात्विक विचारों का उदय होने लगता है, जिससे कि एक अपूर्व सुख की प्राप्ति होती है। जिनकी यह धारणा हो कि, एकान्त में तामसी विचार उत्पन्न होते हैं, कहा जासकता है कि, या तो उन्हें एकान्तवास का अनुभव ही नहीं, अथवा तज्जातीय पूर्वाभ्यास की प्रब लता के कारण उनके हृदय प्रदेश से व्यक्त होनेवाली यह कोई विकार ज्वाला है। बड़े सवेरे अथवा विलम्ब से, संध्या समय जब हम बाहर घूमने के लिये जाते हैं, अथवा यों कहिये कि, रात को सोने से पूर्व या जाग उठने पर तत्काल ही बिस्तरे पर बैठ कर जब हम एकान्तसुख का अनुभव करते हैं, तभी हमें इसका परिचय मिल जाता है।

नक्शा (१).

गुरु, मघा के दक्षिण ओर की चन्द्रिका और शनि एक सरल रेखा में हैं। मघा की दोनों चंद्रिकाओं को संयुक्त करने वाली रेखा दक्षिण की ओर बढ़ाने पर वह अलफर्द तक आ पहुँचती है। मघा, पुनर्वसु से ठीक दक्षिण का तारा और एकान्तवासी तीनों एक रेखा में जोड़ देने पर विशाल त्रिकोण बन जायगा।

किन्तु आज हमें अपने पाठकों के सम्मुख ये बेतुकी बातें सुनाने की जिस कारण आवश्यकता हुई है, वह तो हम भूल ही चले, और भूमिका रचने में ही इतना हमने समय बिता दिया! क्षमा कीजिये पाठक, अब हम अपनी मूल बात पर आजाते हैं।

कल क्या हुआ कि, हमारे यहां एक मेहमान आये। बाहर के स्थानों से आनेवाले व्यक्ति काम पूरा हुए बिना वह घर आही कैसे सकते हैं? उन्हें रात को घर लौटने समय बहुत देर होगई! हमारे चाचा साहब के ब्यालू का समय श्याम को ठीक साढ़े सात बजे का था। किन्तु बिना मेहमान के आये वह कैसे खा सकते थे! अतः थोड़ा सा जलपान कर एक न जाने कौनसी पुरानी पुस्तक लिये हुए वे मन्दिर के आंगन की चांदनी पर आ बैठे। कुछ ही देर के बाद हमारे मेहमान घर आये। हमने चाचाजी को उनके आने और भोजन तय्यार हो जाने की सूचना दी, किन्तु चार पांच बार के कहने पर भी "आया, अभी आया, यह आया" आदि रूप में उत्तर ही देते रहे। किन्तु बड़ी देर हो जाने पर भी जब वे नीचे न उतरे, तब विवश हो हम अपने मेहमान को साथ लिये हुए उनके पास जा पहुँचे। वहां हमारे मेहमान और चाचाजी के बीच जो बातें हुईं, वह इस प्रकार हैं:—

चाचाजी—भोजन में कुछ देर होगी देख मैं यह पुस्तक लेकर यहां आ बैठा हूं, आशा है कि आप मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे! यह देखिये एक महाशय ने आकाश का मानचित्र बनाया है। अब मैं पाठ-

ही चली गई तो फिर इसके पहचानने में कठिनता पड़ेगी। इसलिये रात विराम उठ कर भी इसको देखते रहना चाहिये।

मेहमान--पश्चिम की ओर जाने पर ये सब पहचाने क्यों नहीं जा सकते? क्या इनका अन्तर बदल जाता है?

बाबा०--नहीं सो बात नहीं है, किन्तु पश्चिम की ओर जाने में मानों समग्र आकाशपट ही हमारे सम्मुख उलटा बन जाता है। जिस प्रकार हमारे सामने कोई पुस्तक उलटी करके रक्खी जाय और हम उसे नहीं पढ़ सकते, वही बात इसके विषय में भी है।

मेहमान:--अस्तु, अब रहे हुए नक्षत्र मुझे कल बतलाइये।

बाबा--अच्छी बात है। यदि आप को यह विषय विशेष रुचिकर हो तो आप "ज्योतिर्विलास" पुस्तक और एक दूरबीन खरीदिये और फिर देखिये क्या आनन्द आता है। अच्छा, चलिये भोजन करें।

जयमती !

(अनुवादकः—श्री० पं० हरदासजी व्यास)

आसाम के इतिहास में एक स्थान पर स्त्री चरित्र का जो उच्च आदर्श दृष्टिगोचर हुआ है, उसी को आज हम अपने पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं—

शिवसागर जिले की प्रातःस्मरणीया रानी जयमती सत्रहवीं शताब्दि में सहिष्णुता एवं पातिव्रत्य धर्म का एक उज्वल आदर्श प्रदर्शित कर गई है-जो जगत के इतिहास में अतुलनीय है। जयमती की अपूर्व-कथा पुरा कालीन सीता, दमयन्ती, राजीमती प्रभृति सती स्त्रियों के पतिप्रेम की कथाएँ स्मृति पटल पर जागृत करती है।

ईस्वी सन १६७१ में "सामगुरिया" वंश का "चुलिकाफा" नामक राजा आसाम का राज्याधिकारी हुआ। यह राजा अल्पवयस्क एवं क्षीणकाय था। इसी कारण जनता उसे "लरा" राजा के नाम से सम्बोधित करती थी। आसामी भाषा में 'लरा' शब्द का अर्थ "बालक या शिशु" होता है। अल्पवयस्क होते हुए भी लरा बुद्धिमान था। तत्कालीन राज्य की अव्यवस्थित एवं चिन्तनीय दशा और मंत्रियों की प्रबल शक्ति का विचार करके 'लरा' ने आसाम प्रांतान्तर्गत जितने भी राजकुमार राज्याधिकारी बनने योग्य थे, सबको गुप्त घातक द्वारा अंगहीन एवं निर्जीव बनवा देने का निश्चय किया। मंत्रियों से अनबन रहने के कारण उसे भय था कि, कहीं ये लोग मुझे राज्यच्युत करके किसी दूसरे राजकुमार को यहां का अधिकारी न बनादें! बस, इसी आशंका से उसने यहां के अधिकांश राजकुमारों को विकलांग एवं निर्जीव करा दिया। कहा भी है कि, "दुर्बल राजा स्वभावतः भीरु एवं अत्याचारी होता है।" लरा राजा ने भी यदि अपनी दुर्बलता के कारण इस प्रकार कायर बन कर निर्दयता पूर्वक राज्यभोग की तृष्णा को शांत किया तो उसमें आश्चर्य जैसी बात ही कौनसी है!

तुंग खुंगी वंश के गोबर राजा के गदापाणि नामक पुत्र ने-जो कि, देवतुल्य तेजस्वी, असाधारण बलवान और अद्वितीय साहसी था—एक दिन अपने बल का परिचय कराने के लिये लरा के सम्मुख तीन मतवाले हाथियों के दांत पकड़ कर, (उन्हें) इस प्रकार रोक दिया कि, वे अपने स्थान पर से तिल भर भी न हिल सके। लरा राजा उसका बल-प्रताप देख कर बड़ा भयभीत हुआ, और तब उसने दो चार घातकों द्वारा गदापाणि को विकलांग बना सकना असंभव समझ, अन्य प्रकार की गुप्त योजनाएँ कीं। गदापाणि को उन सबका पता लगगया, किन्तु वह नाम को भी विचलित न हुआ।

गदापाणि की स्त्री जयमती (चरित्र नायिका) परम सच्चरित्र एवं पतिव्रता महिला थी। वह अपने स्त्री सुलभ स्वभावानुसार पति की रक्षा के लिये बड़ी चिन्ता करने लगी। उसने कातर बन कर गदापाणि को दूसरे स्थान में चले जाने के लिये निवेदन किया, किन्तु उसने एक भी न सुनी, और धीरता पूर्वक उत्तर दिया कि "मैं मृत्यु से डरने वाला मनुष्य नहीं हूं। तुम सी पतिप्राणा स्त्री और इन दुध मुंहे बच्चों को-जोकि मेरे जीवन प्राण हैं—छोड़ कर मैं कहीं नहीं जासकता।"

जयमती ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा "नाथ! यह दासी भली प्रकार जानती है कि, आप का धीर हृदय मृत्यु भय से कम्पायमान नहीं होता। किन्तु विचार कीजिये कि, ईश्वर न करे और कदाचित आप को राज-सेवक पकड़ ले जावें, और आप का वध कर डालें तो फिर हमारी क्या दशा होगी? अतः आपसे पुनः मेरी नम्र प्रार्थना है कि, कुछ काल के लिये आप इस पाप-राज्य को छोड़ कर गुप्त रूप में अन्यत्र चले जायँ! यदि किसी काल में प्रणय ज्योति विभूति के अनुग्रह से शुभ दिन प्राप्त हुआ, और भाग्य चक्र ने पलटा खाया तो पुनः आप लौट आवेंगे। आप का जीवन अमूल्य है, अतः उसकी रक्षा के लिये अवश्य ही कोई उपाय करना उचित है।"

पत्नी की करुणामयी मूर्ति को देख गदापाणि का हृदय द्रवित हो उठा और तुरन्त ही वह गुप्तवेश धारण कर नागा पर्वत की ओर पलायन कर गया।

इधर गदापाणि को पकड़ने के लिये लरा राजा ने प्रबल सेना भेजी। किन्तु वह तो इसके पूर्व ही पलायन कर चुका था। फलतः निराश हो सेनापति ने लरा को यह सब संवाद सुना दिया। दुर्बल एवं भीरु राजा गदापाणि के भाग जाने से विशेष शंकित होकर उसका अनुसंधान कराने के लिये आतुर बन गया। तत्काल उसने जयमती के पास राज दूत को भेज कर गदापाणि का पता पुछवाया! उसने निर्भीक होकर उत्तर दे दिया कि, "स्वामी का पता उसकी स्त्री द्वारा कदापि नहीं जाना जासकता!"

दूत के द्वारा यह उत्तर पाकर लरा क्रोधान्ध बनगया, और उसी क्षण-जयमती को कैद कर लाने के लिये उसने कोतवाल को आज्ञादी। राजाज्ञा को पाकर सेवकगण दौड़ पड़े, और तत्काल उन्होंने जयमती को कैद करके लरा राजा के सम्मुख उपस्थित कर दिया। राजा ने गर्ज कर कहा "दुष्टे! तू अपने पति का पूरा २ हाल इसी क्षण बतला दे, अन्यथा, बेतों की मार से अभी तुझे यमलोक का मार्ग दिखा दिया जायगा!" किन्तु जयमती ने इस धमकी की नाम मात्र को पर्वाह न करके निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया कि "मैं प्रथम ही दूत द्वारा कहलवा चुकी हूं कि, अपने स्वामी का पता मैं कदापि नहीं बतला सकती! तब फिर क्यों बारम्बार मुझ से यही प्रश्न किया जारहा है? मेरी प्रतिज्ञा अचल और अटल है। शरीर पर किये हुए अत्याचारों का प्रभाव आत्मा पर नहीं पड़ सकता। मेरे शरीर पर जो चाहे यथेच्छ अत्याचार कर सकेगा, किन्तु अपनी आत्मा पर सम्पूर्ण अधिकार मेरा ही है! यह भी मैं भली भांति समझे हुए हूं, कि शरीर नश्वर है, इसीलिये मैं फिर कहती हूं, कि उनका पता पाने की आशा छोड़ दो!"

जयमती के इस उत्तर को सुन राजा ने हिताहित ज्ञान से शून्य हठकर आज्ञा दी कि, इस अधम स्त्री को राज महल के सम्मुख खड़ी कर खम्भे से बांध दो, और अविराम बेतों की मार द्वारा इसकी ताड़ना करो! किन्तु ध्यान रहे कि, यह बेतों की मार से मर ही न जाय! हमारा उद्देश्य केवल इसके शरीर को यंत्रणा पहुंचाना है। जब तक यह अपने पति का पता न बतलादे बराबर इसे मारते रहो। जिस तरह हो—गदापाणि का पता पूछ लेना ही अभिष्ट है।

क्रूर राजा ने अपने इस दुर्दम एवं पाशविक अस्त्र बाण को आरंभ मान कर संसार के समस्त मानव हृदयों का अंदाज किया था। उसकी धारणा थी कि, जयमती मार के भय से अवश्य पता बतला देगी। किन्तु दिन पर दिन व्यतीत होने लगे, जयमती ने उन सब भयंकर अत्याचारों को सहन कर लिया, पर गदापाणि के विषय में एक अक्षर तक मुंह से न निकाला। देश की समग्र प्रजा राजा के इस प्रकार दैहाहिक अत्याचार को देख जयमती के लिये दिन आंसू बहाने लगी। उस समय देश में दुर्भिक्षग्रस्त दुखी का अभाव था। यद्यपि

भी अन्तर्कलह के कारण अस्थिर बन रहे थे। फलतः राजा के अत्याचार का प्रतिरोध कोई न कर सका!

जयमती पर क्रमशः जो २ अत्याचार होते रहे-उन सबका वृत्तान्त नागा पर्वत पर गदापाणि के कानों तक पहुँचा गया। वह उसी क्षण लरा राजा को उसके पाप का प्रायश्चित करा देने के लिये कटिबद्ध हो गया। नागा से प्रस्थान कर वह जयमती के निकट आ पहुँचा, और कहने लगा "राजकुमारी! तू अपने स्वामी का पता बतला कर इस यातना से मुक्ति पाने की चेष्टा क्यों नहीं करती!"

जयमती उस समय प्रणय ज्योति परमात्मा एवं पतिदेव के चरण कमलों का ध्यान करती हुई चुपचाप बेंतों की मार सह रही थी, अतः वह गदापाणि की बात को न सुन सकी! कुछ ही देर के बाद वह जयमती के और भी पास आकर बोला "देवि! व्यर्थ कष्ट सहन करने में क्या लाभ है! अपने पति का पता बतलाकर इस यातना से छूट क्यों नहीं जाती?" अब की बार जयमती अपने प्राणेश्वर को पहचान गई। किन्तु उस समय वह हर्षित न होकर इस बात की चिन्ता में पड़ गई कि, जिसके लिये मैं इतनी यातना और अप्रतिष्ठा सहन कर रही हूं, वे ही यदि इस समय यहां पकड़े गये तो मेरा सब प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा। क्या इसीलिये मैंने ये प्राणान्तक वेदनाएं सही हैं? व्यर्थ, सब व्यर्थ! उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। असहनीय अत्याचार और पीड़ा से जिसकी शांति भंग न हुई थी, जो घोरतर वेत्राघात से जर्जरित होकर भी गंभीर बनकर अपने स्वामी के पवित्र चरणों का ध्यान धर दिन व्यतीत कर रही थी-वही इस समय धैर्यच्युत हो गई! और अपना सम्पूर्ण उद्देश्य असफल होता देख व्यग्र हो कर बोली "क्योंकि मैं बारम्बार कह चुकी हूं, कि: 'मैं कदापि अपने स्वामी का पता नहीं बतला सकती, तो फिर यह दुष्ट मुझ से बार २ यही प्रश्न कर के क्यों जले पर निमक लगाता है? सती स्त्री अपने स्वामी के लिये सब कुछ सहन कर सकती है। स्वामी के कल्याण कार्य में आवश्यकता पड़ने पर सती स्त्री को अपना प्राणदान तक कर देना उचित कहा गया है।" यह उत्तर देते समय जयमती गदापाणि की ओर अत्यन्त वक्र दृष्टि से देख रही थी। साथ ही उसे पुनः नागा पर्वत की ओर चले जाने का संकेत भी कर रही थी।

गदापाणि इस बार भी सती के अनुरोध की उपेक्षा न कर सका और तत्काल वहां से चल दिया। जयमती पर अविराम बेंतों की मार पड़ती रही। लरा के निर्दय अनुचर बीस दिन तक उस पर अत्याचार करते रहे। अन्त को इक्कीसवें दिन उस दुसह यंत्रणा को सहते हुए-नाममात्र के लिये भी किसी को दोष न देकर वह परम साध्वी इस पापमय संसार को छोड़ सदैव के लिये अमर लोक को प्रस्थान कर गई! जगत् के इतिहास में अतुलनीय सहिष्णुता एवं पातिव्रत्य का एक ज्वाजल्यमान दृष्टान्त अंकित हो गया।

अपनी परम साध्वी भार्या का स्वर्गवास हो जाने के समाचार पा कर गदापाणि स्वस्थ न रह सका। तत्काल ही वह लरा राजा के दुष्कर्मों का प्रतिफल देने को सन्नद्ध हो गया, और एक बलवती सेना इकत्रित कर उसने लरा राजा पर आक्रमण कर दिया। युद्ध के अन्त में लरा का पराभव हुआ, गदापाणि ने वहां राज्य भार ग्रहण कर लरा का वध किया। प्रजा में शांति स्थापित हो गई, और लरा को अपने पाप का प्रायश्चित देकर उसने सती-वध का बदला चुकाया।

गदापाणि ने गदाधर सिंह नाम धारण कर ई० सन १६८१ से ११६५ तक राज्य किया। पिता का स्वर्गवास हो जाने के बाद उसका पुत्र रुद्रसिंह राज्याधिकारी हुआ, और उसने भी उत्तमता से राजकाज चलाया।

रुद्र सिंह आसाम का एक सुप्रसिद्ध राजा हुआ है। उसने अपनी माता की कीर्ति को चिरस्मरणीय बनाने के लिये जिस स्थान में जयमती पर अत्याचार किये गये थे-उसी जगह 'जयसागर' नामक, एक विस्तृत सरोवर खुदवा कर पास ही "जयदोल" नामक एक देवमंदिर भी बँधवाया। यही दो स्मारक महासाध्वी जयमती की स्मृति को आज तक स्थायी बनाये हुए हैं। शिवसागर जिले के 'जयसागर" ताल का स्वच्छ निर्मल जल आज भी समीर लहरी के साथ नृत्य करता हुआ जयमती की कीर्ति-कहानी और रुद्रसिंह की मातृभक्ति तथा आसाम के गतकालीन वैभव का प्रत्यक्ष परिचय दे रहा है!

धन्य वह आसाम, जहां ऐसे पिता माता और आदर्श पुत्र उत्पन्न हुए। *

* एक बंगला कहानी का गुजराती पर से हिन्दी अनुवाद।

अनाथ विद्यार्थी-गृह, नाशिक।

[illegible]
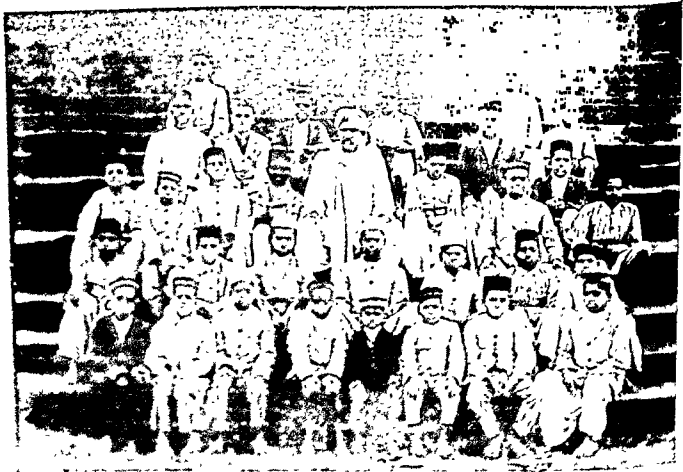
उद्योगवृद्धि और मजदूर समस्या।

पाश्चात्य ढंग से देश में उद्योग धन्धों की वृद्धी करने पर समाज की दशा में किस २ प्रकार परिवर्तन होने लगता है, और कौन २ सी कठिन समस्यायें उठ खड़ी होती हैं, इन बातों को जानने की यदि किसी को इच्छा हो तो उसे वेल्स के इतिहास का सूक्ष्मावलोकन करना चाहिये। महारानी एलिजाबेथ के कार्यकाल में इस प्रान्त की प्रजा केवल कृषिकर्म पर ही निर्वाह करती थी। उद्योगधन्धे और कल कारखाने का नाम तक उन लोगों को मालूम न था। जिमींदारों से लगान पर भूमि लेकर खेत जोतने और बोने, तथा मेघराज की कृपा दृष्टि हो जाने पर पेट भर रोटी कपड़ा पैदा कर लेने, अन्यथा भाग्य को दोष देते हुए आधा पेट रह कर दिन काटने, अथवा ग्रामाधिकारी की दया दृष्टि हो जाने पर ऋण लेकर निर्वाह करने के सिवाय वे लोग दूसरा कोई प्रपंच न जानते थे! किंतु फिर भी पेट भरे या भूखों मरना पड़े—इसका दोष वे जिमींदार को कभी न देते थे। उन भोलेभाले लोगों की धारणा थी कि, जिमींदार को दोष देना कृतघ्नता का लक्षण है, और कृतघ्न मनुष्य को ईश्वर कभी सफलता प्रदान नहीं करता। अतः अपने स्वामी का हितचिंतन करना ही अपना परम धर्म है। किन्तु जैसे ही एक बार इस प्रान्त में कोयले की खदान का पता लगा कि, एकदम ही सारी स्थिति पलट गई! पत्थर के कोयले की खानों का काम शुरू होते ही लोग कृषि की ओर से दुर्लक्ष करने लगे। और आज यह हालत हो गई है कि, वेल्स का कोयला ही संसार में सर्वोत्तम समझा जाकर चारों ओर से उसी की मांग हो रही है! किंतु यह बात याद रखनी चाहिये कि अब वहां कि खेती समूल नष्ट हो गई है। खेती नष्ट कर खान में पूंजी लगाने वाला धनाढ्य केवल द्रव्य लोभ के वशीभूत हो कर ही ऐसा कर रहा है। खेती में सैंकड़ा पांच का सूद नहीं मिलता और कारखानों में सुगमता से दस दस सैंकड़ा का सूद मिल सकता है, तब खेती की ओर से मुंह मोड़ लेने में क्या हानि है! इसी विचार को पक्का कर के वह द्रव्य लोभ में फंस गया है! किंतु खेतों में श्रम करने वाला किसान और कारखाने में काम करने वाला मजदूर; दोनों के स्वभाव की विभिन्नता उस समय तक जिमींदार के ध्यान में न आसकी थी। कष्ट-सहिष्णु एवं स्वामिभक्ति कृषक जिमींदार से झगड़ा करने को कभी तय्यार न होगा, किन्तु खानों में काम करने वाला मजदूर आज पग २ पर अपने स्वामी को लाचार कर रहा है। मालिक को सलाम करने की उत्सुकता रखने वाला मजदूर आज वहां दुष्प्राप्य हो गया है, और इसके बदले अपने मालिक से समानता का व्यवहार करके 'हड़ताल एवं संघशक्ति के बल पर पूंजीदारों को अकल ठिकाने ला देने, यही नहीं वरन् उसका समूल उच्छेद भी कर सकने' की जोरदार धमकी वहां का मजदूर दल दे रहा है! और खानों के स्वामी केवल नफे की ओर दृष्टि रख कर मनमाने ढंग से बरत रहे हैं। इस प्रकार मजदूर दल की और पर्याय से उस राष्ट्र की भारी हानि हो रही है। फलतः अब मजदूर दल के नेता सर्कार से प्रार्थना कर रहे हैं कि, वह उन सब खदानों को उनके स्वामी से छीन कर राष्ट्रीय सम्पत्ति बनादे!

श्रमजीवियों के विचार में इतनी भयंकर क्रान्ति हो जाने का कारण जानने के लिये बड़े २ योरोपियन तत्ववेत्ता लोग श्रम उठा रहे हैं। जान पड़ता है कि, पत्थर का कोयला जब तक प्रगट नहीं हुआ तब तक, अथवा यों कहिये कि खदानों के आरम्भ काल तक मालिक और मजदूर में उत्तम प्रकार का प्रेम भाव था। उस समय तक मजदूरों की भावना यही थी कि मालिक की उन्नति होने से उस में हमारा भी कल्याण हो सकता है! इसी प्रकार कारखानों के मालिक लोग भी यही मानते थे कि, 'काम करने वालों की सहानुभूति रखने पर ही हमारा उद्योग उन्नतावस्था को पहुंच सकेगा!' इस कारण उनके मन में मजदूरों के विषय में दया और प्रेम का भाव बना हुआ था। किन्तु सन १८७० से मजदूर और पूंजीवालों के हितसम्बन्ध में परस्पर विरोध होने की कल्पना रूढ़ बनने लगी, और तभी से हड़तालें आरम्भ हो गईं! उस समय तक श्रमजीवियों के संघ न थे, किन्तु हड़तालें शुरू होते ही संघ की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। बस, फिर जब से मजदूर दल के संघों का अस्तित्व हुआ, तभी से वे बराबर उन्नतावस्था को पहुंचते जाते हैं, और अब यहां तक कि प्रधान मंडल का टिकाव भी इसी समाज के अनुमोदन पर अवलंबित रहने लगा है! मजदूर दल को प्रभावशाली बनाने के लिये सोशियालिजम अर्थात् समाजसत्तावाद ही मुख्य कारण बन बैठा है! सामाजिकपंथी तत्ववेत्ताओं की विचारसरणी का परिणाम मजदूर दल के अन्तःकरण पर ही विशेष रूप से हुआ है। हठ धारण कर बैठने पर पूंजीदारों से मनचाही सुविधायें करवा लेने का सामर्थ्य मजदूरों में है। किंतु फिर भी उनके नेता लोग कह रहे हैं कि, तुम लोगों को मिलजुल कर रहना चाहिये। और सामूहिक बल की आवश्यकता इतनी अधिक जोर देकर प्रतिपादन की जा रही है कि, किसी कारखाने के मजदूरों की ओर से हड़ताल कर दी जाने पर, यदि व्यक्तिशः कुछ मजदूर उस में सम्मिलित होने से इन्कार कर दें तो नेता लोग उनके सामने यह आग्रह कर बैठते हैं कि "इस प्रकार कह देने का व्यक्तिगत स्वातंत्र्य मान्य नहीं किया जा सकता, क्योंकि, इस में मजदूर दल की हानि होती है। अतः तुम्हें उसमें शामिल होना ही पड़ेगा।" फलतः सर्कारी बन्धन में से छूटा हुआ मजदूर-दल नेताओं के आज्ञा स्वरूप प्रस्तावों की जंजीर में बँधा जा रहा है। पहले तो उसे केवल सर्कारी गजट में छपे हुए हुक्मों की ही पाबन्दी करनी पड़ती थी, किन्तु अब तो संघ की सभा में चार पांच नेताओं के पास किये हुए प्रस्ताव को भी मजदूर दल सम्मति देने के लिये बाध्य हो रहा है! और फिर भी यह समाज पूर्ववत् ही व्यक्तिस्वातंत्र्य से पराङ्मुख बना हुआ है। तथापि गत सौ वर्षों से स्वामित्व की ठसक दिखलाने वाले पूंजीदारों के प्रति अब मजदूर दल को बड़ी चिढ़ उत्पन्न हो गई है, इसी कारण जैसे भी हो सके उनका अधःपात करने में उसे ही संतोष मिल रहा है। किन्तु इस प्रकार का प्रयत्न होता रहने पर भी पूंजीदार यही कह रहे हैं कि, "हिरन का शिकार मिल जाने पर भी अपने मुंह में सदा के लिये लगाम लगाकर आकर पीठ पर लोग सवारी करने लग जायेंगे।" इस बात की चिन्ता न करने वाले मूर्ख जंगली घोड़े की तरह मजदूर दल सदैव के लिये अपना अहित कर रहा है! किंतु मजदूर दल को आज यह युक्तिवाद पट नहीं सकता!

मजदूर दल की इस ऐक्य भावना ने वेल्स प्रान्त के समस्त उद्योग धन्धों पर विचित्र प्रभाव डाला है। प्रति हफ्ते कहीं न कहीं हड़ताल हो ही जाती है, और ज्यों ही एक गांव में हड़ताल हुई कि आसपास गांवों में प्रत्येक कारखाने के मजदूर भी अपने स्वामी को यह धमकी देने लग जाते हैं कि "हमारे व्यवसाय बन्धुओं की शिकायत दूर करने के लिये तुम्हें हरएक प्रकार का प्रयत्न करना चाहिये, अन्यथा हम भी हड़ताल करेंगे!" इसका भावार्थ यह है कि, यदि कोई मालिक दुराग्रही हुआ तो उसका प्रायश्चित्त समस्त कारखाने के मालिकों को भोगना चाहिये! देश बन्धुत्व के नाते पर ध्यान देकर इंग्लैंड वासी किसी समय साम्राज्य प्राप्त कर सके हैं, किन्तु व्यवसाय बन्धुत्व अथवा वर्ग बन्धुत्व के प्रसार से इंग्लैंड और वेल्स में हड़तालें और झगड़े पराकाष्ठा को पहुंच गये हैं। सामाजिक पंथी तत्ववेत्ताओं ने सामाजिक वैषम्य को मिटा देने के सदुद्देश्य से ही कदाचित अपने मत का प्रसार किया हो, किन्तु उस में के द्वेष भावना रूपी बीज से फूट कर अब विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लिया है। और उसकी छाया में इंग्लैंड की समाज-घटना बिलकुल ही बदली जा रही है।

मजदूर दल (अर्थात् इंग्लैंड के पिछड़े हुए समाज) की महत्ता बेहद बढ़ जाने के कारण अध्यापकी के धंदे की अवहेलना सी होने लगी है। इसी प्रकार मजदूर दल को नीत्युपदेश करने वाले पादरियों ने भी धीरे २ अपना धन्दा छोड़ कर मजदूरी करने का निश्चय कर लिया है। अध्यापक और पादरी बनने के लिये खून का पसीना बना कर पानी की तरह धन खरचना पड़ता है। रात दिन जाग कर श्रम उठाना पड़ता है। किन्तु इतनी श्रमसाध्य शिक्षा प्राप्त कर लेने पर अंत को जब कहीं नौकरी मिलती है; तो मजदूरों के हिसाब से आधे वेतन की! सिवाय में हड़ताल की धमकी देकर मजदूर लोग मालिक से अपनी मजदूरी मुँह मांगी बढ़ा रहे हैं, इस कारण सब चीज़े भी महँगी हो गई है, जिसका सारा भार गरीब अध्यापक और धर्मोप जीवियों पर ही पड़ रहा है। किन्तु वे भी इस भार को कहांतक सहन करते रहेंगे? क्योंकि वे लोक सुशिक्षित हैं, अत; देशहित और नीति की उन्हें यथार्थ कल्पना हो सकती हैं, और इन्हीं दो बातों पर ध्यान देकर वे ज्यों त्यों अपना धन्दा निभा रहे हैं। किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता हैं कि, कुछ ही दिनों में लोग इन (अध्यापक और पादरी) उद्योगों की ओर आँख उठा कर भी न देखेंगे! वेल्स के एक छोटे से परगने में ही पचास पादरियोंने गत तीन वर्षों में अपना धन्दा छोड़ कर पेट के लिये मजदूरी करना आरम्भ कर दिया है। जब पेट की फिकर मनुष्य को लाचार कर देती है, तब देशाभिमान और नीति के उपदेश व्यर्थ से प्रतीत होने लगते हैं।

अध्यापकों की भी वेल्स में यही दुर्दशा हो रही है। वे लोग चिढ़ कर कहने लगते हैं कि, मास्टरी का सार्टीफिकेट पाने के लिये हमने पूरे चौबीस वर्ष बिता दिये, और माता पिता को सब प्रकार निर्धन बना कर, उनका सब द्रव्य पढ़ाई में खर्च कर दिया। किन्तु फिर भी जब खुद हमें ही सूखी रोटी मिलने की मारामार पड़ रही है, तब कौटुम्बिक जनों की तो कथा ही क्या! बस, अब से हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अपनी संतान को कभी इस व्यवसाय में न लगावेंगे।

अध्यापक और उपदेशक समाज के इस प्रकार नष्टप्राय बन जाने पर कालान्तर में देश के लिये बड़ी भारी हानि पहुंचाने की संभावना है! दूरदर्शिता, शिक्षा और उच्च कल्पनाओं का ज्यों २ उच्चाटन होता जायगा, त्यों २ समाज पर कुत्सापूर्ण विचारों का अधिकाधिक प्रभाव पड़ने लगेगा, और तब बुद्धिमानों की कहीं पूछ भी न रहेगी। आज भी यही लक्षण दिखाई पड़ते हैं। पुंजीदार को हानि पहुंचाने में ही मजदूर दल का लाभ है? इस प्रकार की विचित्र भावना अनेकशः मजदूरों के अंतःकरण में दृढ़ हो जाने से, वे यन्त्रों में राख मिट्टी या बालू डाल कर, अथवा अन्य प्रकार की ऐसी युक्तियों से-जिन के द्वारा मालिक को हानि पहुंचे-काम लेने लगे हैं। वे लोग दिन रात इसी का विचार करने और तदनुसार कार्य कर दिखाने में निमग्न हो रहे हैं। शास्त्र-सम्मत विचारसरणी का बहिष्कार कर के असभ्यता के सिद्धान्तों का वे जोर शोर से प्रचार कर रहे हैं। कृषि सुधारने के लिये वेल्स के एक जिमींदारने अमेरिका से कुछ उपयुक्त मशीनें मँगवाईं, किन्तु वहां का मजदूर दल इतने अधिक संकीर्ण विचार का था कि-तत्काल ही उसने यह यह सोच कर कि, यदि इन यंत्रों द्वारा एक मजदूर के हाथ से दस का काम लिया जा सका तो इससे हमारी गर्दन पर छुरी फिर जायगी!-बस, उन्होंने रात में जाकर उस जिमींदार के खेत में सब ओर कीले ठोक दिये! अर्थात् नया यन्त्र चलाना आरम्भ करते ही वह उससे घिस कर बेकाम हो जाय! सारांश यह है कि, अब वेल्स के समस्त विद्वानों को वैज्ञानिक प्रगति, शिक्षा प्रसार और दूरदर्शिता का सर्वथैव बहिष्कार हो जाने का भय प्रतीत होने लगा है! किसी देश के लिये ऐसी समस्या खड़ी हो जाना कम चिन्ता की बात नहीं है।

× × × × ×

जापान के मजदूर दल का इतिहास भी इसी ढंग का है। जापान में पाश्चात्य प्रथानुसार कारखाने खुले; पूरे पचास वर्ष भी नहीं हुए हैं। पहले तो यहां का मजदूर दल छोटे बच्चे की तरह निरा भोला था। सवेरे से [illegible] तक भी यदि श्रम उठाना पड़ता, तो भी वह मुँह मांगी मजदूरी के [illegible] हड़ताल कर देने की धमकी द्वारा कभी अपने [illegible] को तंग न करता था। अर्थात् आधुनिक विचार-सरणी तत्कालीन जापानी मजदूरों में न थी। मालिक की दी हुई मजदूरी पर ही संतुष्ट रह कर वे श्रम करते थे। किन्तु अब जापान में भी वही पहले का सा समय नहीं रहा है। यूरोपीय मजदूरों के विचार और उनकी विचार सरणी का अनुकरण जापानी मजदूर भी करने लगे हैं। मुनाफे का अधिकारी केवल पूंजी वाला ही नहीं हो सकता, वरन् श्रम जीवियों को भी उसमें से हिस्सा लेने का अधिकार है, इस प्रकार का सिद्धान्त जापानी मजदूर दल में फैल रहा है। पहले तो जापानी मजदूर कारखाने के मालिकों को अन्नदाता कह कर मानते थे, और आज्ञाधारक पुत्र की तरह बर्ताव भी करते थे। किन्तु अब वे मालिक का स्वामित्व अस्वीकार कर भाईबंदी का झगड़ा मचाने लगे हैं। उसमें भी फि[र] जापान के बहुजन-समाज का रहन सहन गरीबी और किफायतशारी का है। किन्तु कुछ पुंजीदार थोड़ा सा नफा मिलते ही मोटरें रख कर अपनी धनाढ्यता का ढोंग दिखलाने और चैन उड़ाने में पैसा खर्च करने लगे हैं। इसी कारण उनके द्रव्य पर सब लोगों को ईर्ष्या होना स्वाभाविक है। मत्सर की प्रबलता मच जाने के कारण ही जापान में जहां तहां यह ध्वनि सुनाई देती है कि, "यह चैन तुम किसके के जी पर उड़ा रहे हो?" जापानी मजदूर अब यह उद्गार निकालने लगे हैं कि, "गरीबी से समय बिताने का यह जमाना नहीं है। संघश प्रयत्न करके मगरूर लोगों की अक्ल ठिकाने पर लाये बिना हमारी गुज़र नहीं।" किन्तु इन विचारों के फैलने से जापान की अवनति होगी, इस आशंका से भयभीत होकर मार्किस ओकुमा नामक प्रसिद्ध जापानी नेताने गत मास में पूंजीदारों को बुद्धिमत्ता से काम लेने का प्रभावशाली उपदेश किया है। उनके कहने का भावार्थ यह है कि, "आज कल का व्यवसाय तिपाही के समान अस्थिर दशा में खड़ा हुआ है। इस तिपाही के पूंजी, मजदूर और यंत्र यही तीन पाये हैं। इनमें से किसी एक के टूट जाने या अलग हो जाने पर सारा उद्योग नष्ट हो जाने की संभावना है। बुद्धिमत्ता का बर्ताव करनेवाले मजदूर और मालिक परस्पर शत्रु नहीं, वरन् परमप्रिय मित्र के समान हैं। यदि दोनों ही एक दूसरे का हाथ बँटा कर काम न करें तो कारखाना बंद हो जायगा, और उन दो की भूल से सारे समाज के व्यवहार में गड़बड़ मच जायगी! अतः समाज का हित-सम्बन्ध जाननेवाले लोगों को पूंजीदार और मजदूरों के बीच मेल करा देनेवाले विचार ही जन समाज में फैलाने चाहिये।"

महँगाई के विषय में ओकुमा का कथन है कि:—सिक्के की वृद्धि में रुकावट डाले बिना महँगाई कभी दूर नहीं हो सकती। और यहां के सिक्कों की बिना बाहर निकासी हुए जापान में उनकी वृद्धि न रुक सकेगी। परराष्ट्रीय व्यवहार में अभी तक नैतिक महत्ता न बढ़ने के कारण 'जबरदस्त की लाठी' का नियम ही सर्वत्र पाया जाता है किन्तु फिर भी प्रत्येक उपाय द्वारा अनावश्यक पूंजी को विदेश के कारखानों में लगाये बिना जापान में महँगाई दूर होने और मालिक-मजदूर के बीच का असंतोष मिटने की आशा नहीं नहीं की जा सकती।"

चेतावनी!

१

होकर प्यारे सावधान तू जग में रहना।
बिना विचारे बात हृदय की कभी न कहना॥
पूरे परिचय बिना कभी विश्वास न लाना।
देख बाहरी ठाठ भूल मत उस पर जाना॥
कभी धूर्त मक्कार के पाले मे पड़ना नहीं।
स्वार्थ लोभ के मार्ग में कहीं कभी अड़ना नहीं।

२

जिसने तेरे स्वर्ग सदन को धूल मिलाया।
प्राणाधिक प्रिय बन्धु जनों का काल बनाया॥
सुख स्वतंत्रता छीन घरों घर भीख मंगाया।
दास वृत्ति का रक्त रगों खूब बहाया॥
कभी 'विमल' उस फूट का मेवा तू चखना नहीं।
कायर होकर विश्व में जीवन तू रखना नहीं॥

३

अपने बलसे कार्य जगत् में अपना करना।
हर्षित होकर स्वावलम्ब से जीना मरना॥
भले कार्य के लिये नहीं विघ्नों से डरना।
कभी भूल कर बुरे मार्ग में पाँव न धरना॥
दुर्गुण दोष प्रमाद से रहना दूर सदैव ही।
उद्यम ऊँचा भाव ले आगे तू बढ़ना सही॥

"विमल।"

"स्वदेशी से ही स्वराज्य मिलेगा!"

(यह भाषण ता० १५ जून को पूना के किर्लोस्कर नाटकगृह में श्रीमती सरलादेवी चौधुरानी ने पूजनीय तिलक महाराज के सभापतित्व में दिया था।)

पूज्य सभापति महोदय; भाइयों और बहिनो !
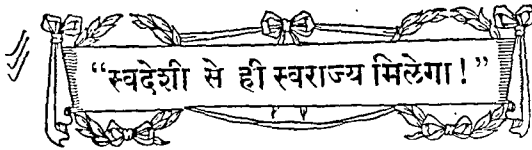
देवताओं के सेनापति स्कन्द (कार्तिकेय) जब भूमिष्ठ हुए तो उनकी पुष्टि के लिये केवल उनकी मां का दूध ही काफी (पर्याप्त) हुआ। तब कृत्तिका, अश्विनी, रोहिणी आदि षोडश माताओं ने बारी २ से अपने स्तन्य दुग्ध के द्वारा उनका पालन किया था। इसीलिये स्कन्द को षोडश मातृक भी कहते हैं। आज कल की प्रत्येक भारत सन्तान को भी इसी तरह कम से कम सप्त मातृक बनाना चाहिये। क्योंकि आधुनिक भारत वर्ष सप्त प्रधान प्रान्तों में विभक्त है। जब तक न प्रत्येक प्रांतों से कुछ न कुछ पुष्टि न ली जायगी, तब तक किसी भारत संतान का जातीय जीवन पूर्णता को प्राप्त न हो सकेगा, और न राष्ट्रीय जीवन में ही किसी को सिद्धी प्राप्त हो सकेगी। मैं अपने अनुभव की ही बातकहती हूं कि, बंग जननी के दुग्ध से ही प्रधानतः पालिता होते हुए भी, यदि अन्य प्रान्तीय लक्ष्मी के स्नेहामृत पान करने का सुयोग मुझे न मिलता तो, मेरी भारत-भक्ति उस शिखर तक न पहुँच सकती, जहां कि आज पहुँची हुई है।

मुझ को बनाने में बंग माता के बाद महाराष्ट्र लक्ष्मी का पुण्य-हाथ है। वह दिन स्मरण आता है, जब अपने पूज्य मातुल श्री० सत्येन्द्रनाथ

[illegible]

शक्तिसंघ खुलवा दिये। बंगाली युवाओं की निर्बलता का अपवाद दूर करा कर उनके फौज में भर्ती होने का अधिकार उसीने सिद्ध कर दिखाया है। उसी महाराष्ट्र-प्रदेश के उसी पूना शहर में; जहां कि पेशवाओं की स्मृति से चित्त आन्दोलित हुआ करता था, आज फिर से मैं आई हूं। लेकिन बहुत साल के बाद।

पंजाब से इधर आते हुए, जब तीसरे प्रात काल ट्रेन में महाराष्ट्रीय पुरुषों और नारियों का प्रथम साक्षात्कार होता है, जब धरती का रूप भी बदल जाता है, जब वृक्ष लतादि भी नए नए दिखाई देने लगते हैं, उस समय हृदय में एक अव्यक्त आशा का पुनरुद्दीपन हो उठता है; मानों भारत वर्ष जिस वस्तु की आकांक्षा करता है, उसका प्राप्ति स्थान निकट आ रहा है।

इस तरह नाना प्रकार के भावों को लेकर मैं पूने में आई हूं। आधुनिक पूना पेशवाओं का पूना नहीं है, नाना फड़नवीस का पूना भी नहीं है। यह पूना है "पूना (पुण्यात्मा) ब्राह्मणों का और उन ब्राह्मणों में भी जो सबसे अति निन्दित ब्राह्मण है, उस तपोनिष्ठ तिलक नामधारी ब्राह्मण का पूना है। (तालियां) बीस पचीस वर्ष पूर्व उनपर सर्कारी मुकद्दमे की जो मुसीबत आ पड़ी थी, उसीके द्वारा बंगमाता की गोदी में बैठे २ मैंने राष्ट्रीय प्रीति की प्रथम दीक्षा प्राप्त की थी। कपाल में एक रक्त तिलक का चिन्ह धारण कर द्वार २ पर जा उनके लिये चंदा मांगा था। इसी कारण पूने में आते ही सबसे पहले चित्त उन्हीं के दर्शनों का अभिलाषी हुआ। मैं तिलक महाराज के घर गई। वहां मैंने देखा कि, यह घर मानो एक छोटा सा स्वराज्य ही है। उसी एक अहाते के अन्दर उनके सम्पूर्ण राष्ट्रीय उद्योगों का आयोजन हो रहा है। केसरी और मराठा का दफ्तर, केसरी प्रेस और लायब्रेरी, अतिथि शाला और चार पांच हज़ार मनुष्यों के बैठने योग्य सभा स्थान आदि सब कुछ मौजूद है। एक कमरे के द्वार पर लटकता हुआ 'होमरूल' का साइन बोर्ड भी नज़र आया। मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि तिलक मत का होमरूल क्या चीज़ है!

आज बीस पचीस वर्ष हुए बंगाल में "हिंदूमत" नाम का एक शब्द विशेष प्रयोग में लाया गया था, और उस पर बड़ी हँसी हुई थी। किन्तु मेरे मत से उसमें भी किसी जातीय आत्म सम्मान का बीज गुप्त रूप से गर्भित था। क्योंकि उस हिन्दूमतानुसार मुर्गी खाने, विलायत जाने, असवर्ण विवाह करने, अहिन्दू को हिन्दू बनाने, और गतानुगतिक होकर विदेशियों का अंधानुसरण करने में जो हीनता है, वह हमारे शास्त्र अथवा विचार पूर्ण सम्मति के अनुसरण में नहीं है।— यह है उस हिन्दू मत की परिभाषा का भावार्थ। इसीलिये मेरे दिल में प्रश्न उठा कि तिलक मत का होमरूल हिन्दूमत का होमरूल होगा या नहीं? अर्थात् इस नियम के अनुसार कि-गृह शासन का भार उठाने वाले के लिये, जिस प्रकार प्रथम गृह-पालन का उद्योग आवश्यक कर्तव्य है-उसका अनुसरण पूना के होमरूलर करेंगे या नहीं? वे उस पर ध्यान देते हैं या नहीं?

एक नवयुवक जब हिंदूगृह में नव विवाहिता पत्नी को लाकर गृह-पालक अथवा गृह शासक जीवन आरंभ करता है, तब सबसे प्रथम वह नव वधू के सन्मुख अन्न-वस्त्र लाकर रख देता है। यह ऋषियों का इंगित है कि, शासन की प्रथम सीढ़ी "पालन" है। राष्ट्रीय होमरूलर्स को भी उनके होम (घर) या राष्ट्र के पालन की ओर सबसे पहले ध्यान देना होगा। देश के लिये अन्न-वस्त्र की चिन्ता सबसे पहले करनी पड़ेगी। अगर तुम देखो कि, तुम्हारा कोई अन्यायी अभिभावक तुम्हें और तुम्हारे पोष्यवर्ग को खाने कपड़े से वंचित रखता है, तो तुम को दूने उद्योगों द्वारा उनके खाने और कपड़े का इंतिज़ाम करना पड़ेगा। बारीक न हो न सही। नाजुक न हो, न सही। मोटा खाना और पहनने के लिये मोटे कपड़े का प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा। और बस, तभी तुम्हारी होमरूलर की पदवी सार्थक होगी।

भारतवासियों के घर में आज कल अन्न-वस्त्र की मारामार हो रही है। अन्न तो पैदा होता है, लेकिन घरवालों का पेट नहीं भरने पाता और बाहर चला जाता है। उसे घर की ज़ुरूरत के मुआफिक घर में रखने का बन्दोबस्त करो, और बाद में जो फालतू बचे उसे बाहर भेजने दो। हिन्दूमत के होमरूल का यह पहला सबक है। दूसरा सबक यह है कि, घर के उपयोग का वस्त्र घर में पैदा करो। मैन्चेस्टर, लंकाशायर के मुखापेक्षी न रहो। घर घर स्त्रियों के लिये चर्खे का पुनः प्रवर्तन करो। कपड़ा बुननेवालों को अंग्रेज़ों की गुलामी और बहरागिरी से मुक्त करो, और उन्हें फिर अपने बाप दादों के पेशे में लगाओ। खड्डी अर्थात् हैण्डलूम्स बनवादो, और इन उपायों द्वारा देश का उद्योग उसका साहस और उसके मान की रक्षा करो।

मयूर पुच्छ से अंग सुशोभित करना तभी तक प्रीतिकर प्रतीत होता है, जब तक इस बात का पता नहीं लग जाता कि, यथार्थ में यह पुच्छ हमारे शरीर का कोई अंश है या नहीं। जिस दिन पता लग जाता है कि, यह वस्तु बाहर से लगाई गई है और शरीर से उसका कोई खास सम्बन्ध नहीं है, उसी दिन से उसके प्रति मानवी अंतःकरण में घृणा उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार विलायती वस्त्रों से शरीर ढँकने में तभी तक प्रीति मालूम होती है, जब तक इस बात का पता नहीं लग जाता कि, हम पराधीनता के पत्थर के नीचे किस प्रकार दबे जाते हैं। और किस प्रकार हमारी यह विद्या, हमारे उद्योग और स्वातंत्र्य एवं मनुष्यत्व का गला घोंट कर हमें निर्जीव बनाया जाता है।

स्व० रमेशचंद्रदत्त की Economic History of India (भारत का आर्थिक इतिहास) नामक पुस्तक को यदि कोई भारतीय नारी पढ़ेगी, और खास करके यदि वह बंग-दुहिता होगी, तो आधुनिक ढाका मलमल की साड़ी को स्वेच्छा से धारण करना कभी उसका दिल मंज़ूर न करेगा। वह आंसू ढालेगी, और उस पर ढाका मलमल भारत

वर्ष के कते हुए सूत से नहीं बनेगा, तब तक आधुनिक मलमल से नफरत रक्खेगी। तब तक उसे अपने शरीर स्पर्श कराने से मैं भी घृणा मालूम होगी। जिस मलमल का बीस गज़ का थान एक अंगूठी के बीच से निकल जाता था, उस महीन कपड़े के योग्य बारीक सूत कातने वाला वह दीन मनुष्य याद आवेगा, जिसके होनहार अंगूठे ईस्ट इंडिया कंपनी के जुल्मी हाथों से काटे जाकर भारत की वह कला नष्ट कर दीगई है।

भारत का शरीर तब से आज तक अंगुष्ठ हीन ही बना हुआ है। भारत की मिलें क्यों साठ या अस्सी नंबर से बारीक सूत नहीं कात सकतीं? इसलिये कि मैंचेस्टर-लंका शायरवालों की लूट में विघ्न न पड़े, उनकी जेबों में भारत का रुपया पहुँचना बंद न हो!

जब तक यह अंकुश उठा न लिया जाय, जब तक भारत का कला कौशल्य उसे वापस न मिल जाय, तब तक के लिये भारत के रथी, महारथियों, नेताओं और लीडरों को यह प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि, हम विदेशी बारीक सूत का बना हुआ कपड़ा भूल कर भी न पहनेंगे। जिनकी सहनशक्ति और भी अधिक मात्रा तक पहुँच सके उन्हें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि, हम भारत के चर्खे से कते हुए सूत का ही कपड़ा पहनेंगे। खादी (गज़ी) या गाढ़ा पहना करेंगे, किन्तु मिल का कपड़ा कभी न पहनेंगे, भले ही वह भारत में ही क्यों न तैय्यार किया गया हो।

बंगाल पार्टिशन के बहुत पहले से ही मेरा ध्यान स्वदेशी की ओर था। मैं अपने विचारानुसार स्वदेशी कपड़ा ही पहना करती थी। और जहां तक हो सका स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यवहार करती रही हूं। यही नहीं बल्कि औरों से भी वैसा करने के लिये जोर देती रही हूं। (तालियां)

एक दिन माननीय गोखले ने मुझ से कहा था कि, "आप का स्वदेशी पन अभी पूरा नहीं: अधूरा है। क्योंकि आप को ख्याल करना चाहिये कि, जिस कपड़े को आप स्वदेशी समझती हैं, उसका सूत विलायती है। बुनावट ही सिर्फ हिन्दुस्तान की है। जिस वस्तु को आप स्वदेशी मान कर व्यवहार कर सकती हैं, वह अंग्रेज कंपनी के कैपिटल (Capital पूंजी) से बनती है। जब तक भारत वासियों के रुपये से देशी माल नहीं बनेगा, जब तक उसका पूरा २ लाभ भारतीयों को न मिलेगा, तब तक आप का यह स्वदेशी व्रत और स्वदेशी प्रचार पूरा न कहा जा सकेगा।"

भाइयों! प्रात स्मरणीय गोखले के इस कथन का एक एक अक्षर सत्य है। इसलिये कि सिर्फ स्वदेशी दुकानें बढ़ाने से ही देश का लाभ न बढ़ सकेगा, स्वदेशी Productions (उत्पत्ति) बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिये। हिंदुस्थान का शरीर ढँकने के लिये जितना कपड़ा चाहिये, उतना सब तय्यार कर देने वाली मिलें भी यहां मौजूद नहीं हैं। लेकिन यदि जापान की तरह घर घर और गावँ गावँ में, शहर शहर और ज़िले २ तथा प्रान्तों में सैकड़ों, हजारों ही नहीं, लाखों चर्खे और हेण्डलूम्स (करघे) चला दिये जायँ तो अवश्य ही भारत का धनमान और अन्नवस्त्र एवं सुख संतोष उसके हाथ में रह सकेगा। स्वराज्य यही है। स्वराज्य और स्वदेशी पर्यायवाची शब्द हैं। स्वदेशी का व्यापक अर्थ सब तरह के हुनर; नाना प्रकार की स्वदेशी वस्तुएँ पैदा करना और उन को व्यवहार में लाना ही है। लेकिन स्वदेशी शब्द को सिर्फ स्वदेशी वस्त्रों के ही अर्थ में संकुचित कर देने से मतलब यह है कि, देश के लिये सब से जरूरी वस्तु पर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट रक्खा जाय। जिस द्वार से सम्पत्ति विदेश को जा रही है, उसको बंद कर दिया जाय। हिसाब से स्वदेशी का अर्थ स्वदेशी वस्त्र से लिया गया है। एक स्वदेशी की समस्या के हल होते ही और बातें आसानी दुरुस्त की जा सकेंगी। इसलिये कपास की उन्नति, वृद्धि और ... की ओर हमें सब से पहले ध्यान देना चाहिये।

कुछ लोगों का कहना है कि, हिन्दुस्तानी कपास में ... कपास मिलाये बिना विलायत में भी बारीक सूत नहीं बन सकता। अत. सिर्फ भारत वर्ष के कपास से ही बारीक वस्त्र की आशा रखनी चाहिये। किन्तु हमें जांच कर लेना चाहिये कि, यह कहां तक ठीक है। यदि बात सच निकले तो यह दर्याफ्त आवश्यक है कि भारत वर्ष की वह कपास कहां गई, ... मलमल का सूत बनता था। यदि यथार्थ में ही भारत की उसी कपास उत्पन्न करने सम्बन्धी शक्ति नष्ट हो गई हो तो उसके पुनरुत्थान के के लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये; ताकि ब्रिटिश कम्पनियों का लूट का माल न बनने पाये। और भी आवश्यक एक बात यह है कि, उस कपास का सूत हिंदुस्तान में ही बनना चाहिये, कि जिससे शुद्ध स्वदेशी वस्त्र यहीं तैय्यार हो सके।

देश कालानुसार प्रबन्ध की जरूरत हुआ करती है। विलायत में घर घर अंगीठियां रखी जाती हैं, यदि देखादेखी कोई भारतवासी भी चैत बैसाख में अंगीठी जला कर घर में विराजमान रहे तो क्या वह बेवकूफी का खिताब पाने से कभी बच सकता है? अगर अमेरिका की देखा देखी जापान भी अपने हल्के कागज़ी मकान तोड़ कर ईंट और पत्थर की बड़ी२ इमारतें बनाने लगे, तो जापानी धरती के एक ही बार के प्रकम्पन से धँसे हुए मकान के ईंट पत्थर के नीचे दबजाने वालों को कौन बचा सकता है? योरोप मशीनरी के बल से कपड़े का व्यापार चला रहा है, इस बहाने यदि हम भी चर्खे और करघे बन्द कर दें; तथा गरीब एवं कम पूंजी वाले छोटे २ घर में रहते हुए भारतीयों के अनुकूल काम न करें, तो हमारे अस्तित्व के नाश को देवता भी न रोक सकेंगे।

देश माताओं से हमारी यह खास प्रार्थना है कि-पति और पुत्र जब मार्गच्युत होते हैं, तब घर एवं कुल की पवित्रता उन्हीं के हाथ में रहती है। अतः यदि हमारी माताएँ, बहनें और पुत्रियाँ स्वदेशी वस्त्र से ही अपना और अपने पतिपुत्रादि का अंग ढँकने की प्रतिज्ञा धारण कर लें, तो लक्ष्य स्थान तक पहुंचने में कुछ भी देर न लगेगी। भारत के पुरुष और स्त्री दोनों को मिलकर इस कठिन मार्ग की यात्रा आरम्भ करनी पड़ेगी। मैं यह जानना चाहती हूं कि इस सभा में कितने स्त्री पुरुष ऐसे हैं जो इस प्रकार के यात्रियों में अपना नाम लिखाना चाहते हैं? आज कितने श्रोता स्वदेशी कपड़ा और स्वदेशी सूत का कपड़ा पहनने की प्रतिज्ञा करते हैं? लंकाशायर और मांचेस्टर के साथ भारत के कपासी युद्ध में कितने योद्धा आगे बढ़ते हैं? ...

प्रिय भाइयों! आप सत मातृक-हों या एक मातृक किंतु सब ... कर भारत के लिये लड़ो। भले ही आप सिर्फ प्रान्त या सूबे की रक्षा अभिलाषी हों, किन्तु स्वदेशी व्रत अवश्य लो। स्वदेशी कपड़े के ... और देश देश के कपड़े से घृणा करो, शुद्ध हिंदुस्थानी बनो, ... पुच्छ धारी न रहो। यदि रक्खो कि इस स्वदेशी से ही स्वरा... मिलेगा। स्वराज्य प्राप्ति के लिये अब 'नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय' के अनुसार न कौन्सिल मार्ग है, और न रिफार्म, वरन् एक मात्र स्वदेशी ही सरल मार्ग है।

एक अजीब लड़की।

मेरीका में एक अजीब व गरीब लड़की है। जब उसकी उम्र ४ साल की थी, उस ज़माने में उसने अर्जाल का कसीदों में तर्जुमा किया था। ६ साल की उमर में उसको लोलेंड स्टामफोर्ड की यूनीवर्सिटी में दाखिल किया गया था। आज कल उस की उम्र १७ साल का है। इसी उम्र में उसने १७ किताबें लिखी हैं। १०००० पद लिखे हैं। अब उसने अपनी डायरी छपवाई है, जो जो दो वर्ष की उम्र से लिखी गई है। वह १० भाषायें जानती है। उसके लेख बहुत से पत्रों में छपते हैं। वक्तृ करने और व्याख्यान देने में उसको बहुत अभ्यास है। एक साल की उम्र से पहले ही उसने बोलना आरम्भ कर दिया था। दो साल की उम्र में उसने पढ़ना लिखना आरम्भ किया, और ३ ४ साल की उम्र में अपने माता पिता के साथ उसने भिन्न देशों की सैर की। इसी जमाने में लेटिन जबान की एक किताब अनुवाद करने के अतिरिक्त उसने कई स्थानों की यात्रा का भी हाल लिखा। ४ साल की उम्र में वह बर्लिन (जर्मनी) में शिक्षा पाती रही वह लड़की कसरत करती है, स्वास्थ्य भी अच्छा है। इतनी निपुण है कि, प्रति सप्ताह २४०) रु० लेखों से कमाती है, जिसको वह गरीब और बीमार विद्यार्थियों की सहायता में व्यय करती है।

(स्वदेश)

स्वराज्य-समस्या।

(लेखकः—श्रीयुत दामोदर विश्वनाथ गोखले बी. ए, एल-एल. बी.)

कितने ही लोगों का कथन है कि, "भारत के लिये अंग्रेज मुत्सद्दियों ने नये अधिकार का कानून बनाकर स्वराज्य का केवल आश्वासन मात्र ही दिया है, क्योंकि वे नहीं चाहते कि, भारतीयों के पल्ले में कुछ अधिकार पड़ सकें।" यहां इस विचार का विवेचन करते बैठने की हमें आवश्यकता नहीं है। हां; इतना अवश्य है कि, ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में से जिनके हाथ में मिश्र देश का कारोबार है, अथवा आयर्लैंड का दायित्व जिनके ज़िम्मे है, उन दोनों मन्त्रियों की अपेक्षा इस कार्य में भारतवासियों के भोलेपन के कारण कहिये, अथवा उनके बुद्धिमांद्य या अन्य किसी कारण से समझिये किन्तु इतना अवश्य है कि, मि० माण्टेग ने हम पर सुधार-योजना रूपी मोहिनी मन्त्र का ऐसा कुछ प्रयोग किया है कि, जिसके कारण दूसरों की बात कुछ भी हो, किन्तु यहां के नर्मदली नेता तो सोलह आने ही उस पर मन्त्र-मुग्ध बन गये हैं। राजनीति में भारत कई दिनों से आयर्लैण्ड को अपना गुरु बना चुका है, और अनेकों बार "अगले की ठोकर से पीछेवाला सावधान" की नीति के अनुसार भारत ने उससे नैतिक शिक्षा भी प्राप्त की है। किन्तु आज यदि आयर्लैण्ड की ओर देखा जाय अथवा मिश्र की ओर दृष्टिपात किया जाय, और साथ ही उनकी राजकीय आकांक्षा का चित्र अपने दृष्टि-पथ में रखा जाय, तो यह निश्चय नहीं कर सकते कि, माण्टेग्यूसाहब की बुद्धिमत्ता पर हम आश्चर्य करें, या भारत की अदूरदर्शिता पर शोक! कहां वह आयर्लैण्ड की स्वतन्त्र लोकशाही स्थापित करने विषयक भयंकर महत्वाकांक्षा, और कहां भारत के प्रान्तिक कारोबार में से दो चार विभागों को तोड़ कर स्थानिक स्वराज्य के नाम पर दी जाने वाली मर्यादित राजनैतिक सत्ता! कहां मिश्र के स्वाभिमानयुक्त उत्तर और कहां हमारे आभार प्रदर्शक प्रस्ताव! उपरोक्त तीनों देश की राजनैतिक परिस्थिति में अधिकांश समता है, और कम से कम यह तो निस्सन्देह ही कहा जा सकता है कि, ब्रिटिश साम्राज्य के राजकीय सत्ता के कड़ाव में पड़कर आज ये तीनों देश बुरी तरह भुन जा रहे हैं। किन्तु यदि आज भी तीनों राष्ट्र की परिस्थिति देखी जाय तो माण्टेग्यूसाहब की स्पर्धा विद्वत्ता पर किसी को शंका न रह सकेगी! जिस प्रकार अश्वत्थामा की माता ने उसके हठ करने पर दूध के बदले आटे का पानी दे दिया, और वह उसे दूध समझ कर पी गया, उसी प्रकार की स्थिति आज भारतवासियों की भी है। किन्तु जब हम अपनी ही तरह लोकशाही के लिये झगड़ने वाले अन्य राष्ट्रों की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो हमें अच्छी तरह समझ में आजाता है कि, माण्टेग्यूसाहब के दिये हुये अधिकार

दूध है या छाछ, अथवा आटे का पानी!

यथार्थ में ये शासनाधिकार दूध तो कहे ही नहीं जा सकते, किन्तु छाछ और आटे का पानी भी नहीं, वरन् इन्हें हम इन तीनों का आभास मात्र कराने वाला [illegible] कह सकते हैं! यह विचारसरणी भारतवासियों की नहीं, वरन् यहां से बाहर के और [illegible] हैं स्वतन्त्र, किन्तु [illegible] ही लोकशाही की स्वतंत्र राज्यव्यवस्था को अमल में लाने का [illegible] देखने वाले देशों की है। प्रचलित राजनैतिक [illegible] यद्यपि इन विचारों का [illegible] भी कोई नहीं पड़ता, किन्तु फिर भी इतना कहा जा सकता है कि, [illegible] को देख कर जिस प्रकार किसी [illegible] की [illegible] भी उसी के जैसा बनने की हो जाती है, उसी प्रकार की महत्वाकांक्षा उन देशों की भी हो रही है। यह बात आवश्यक है कि, [illegible] जैसे [illegible] स्वराज्याकांक्षी राष्ट्र को इस बात पर पूरी तरह [illegible] रखना चाहिये कि अन्य देशों में [illegible] कहां २ हो रहा है, और वे

किस प्रकार राजनैतिक चालें चल रहे हैं। साथ ही उसे इस बात को भी ठीक कर लेना चाहिये कि, अपना राजनैतिक गाड़ा रास्ते [illegible] जा रहा है या नहीं।

ऊपरी बातों पर से यदि परीक्षा की जाय तो आज माण्टेग्यूसाहब बड़े ही मुत्सद्दी प्रतीत होते हैं। इजिप्त (मिश्र)-वासियों को हमारी ही तरह स्वराज्य का अधिकार देने के लिये, जैसे भारत की चौकसी के लिये मि० माण्टेग्यूसाहब यहां आये थे, उसी प्रकार मिसर देश की ओर भी लार्ड मिलनर ने एक कमीशन भेजा। किन्तु भारत की तरह सैकड़ों भिन्न २ समितियों ने वहां अपने अलग मत प्रदर्शित करने के लिये साक्षी पुराने लेकर दौड़धूप नहीं मचाई, वरन् कमीशन से प्रश्न किया कि, "हमारी चौकसी कर के हमें अधिकार देने वाले तुम कौन होते हो?" अर्थात् उन्होंने उस कमीशन का एकदम बहिष्कार ही कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि, "यदि देना ही है तो पूर्ण स्वतन्त्रता दो। हम मिश्र देशवासी, आप इस बात का निर्णय करेंगे कि, स्वयं निर्णय के तत्वानुसार अपना राज्य कारोबार हमें किस ढंग से चलाना चाहिये!" यह भी कहा जा रहा है कि, यदि स्वेज नहर की चिन्ता प्रतीत होती हो तो, वह [illegible] और उसके आसपास का प्रदेश अपने अधिकार में रक्खो। संक्षेप यह कि, परराष्ट्रीय राज्य कारोबार के उत्तरदायी अंग्रेज मन्त्रियों को आजकल मिश्र के विषय में बेफिक्री नहीं मिल रही है और खास आयर्लैण्ड की दशा का तो पूछना ही क्या है। उसे यथासमय आयरिश लोगों की मांग के अनुसार स्वराज्य के अधिकार न दिये जाने से अंग्रेज मन्त्रियों को आज क्या २ कठिनाइयां उठानी पड़ रही हैं, यह किसी से छुपी नहीं है। महायुद्ध के समाप्त होते ही आत्म-निर्णय और स्वातन्त्र्य के तत्वों का अनुसरण करने से आयरिश लोगों को आशा हुई थी कि, हम को पूर्ण स्वराज्य अवश्य ही मिल जायगा! किन्तु जब आशा केवल निराशा मात्र ही बना दी गई, तब कालान्तर से धुँधवाती हुई असंतोष की आग एकदम भड़क उठी, और [illegible] लोगोंने शीघ्रता से पार्लमेन्ट के सन्मुख अपना यह प्रश्न उपस्थित कर दिया कि, 'पार्लमेन्ट में आयर्लैण्ड की ओर से जो सभासद रहते हैं, वे आयरिश जनता के विरुद्ध मनमाने मत दे डालते हैं, और संसार उन्हीं को आयर्लैण्ड का मत मान लेता है। यह गड़बड़ बन्द होनी चाहिये।' इस परिस्थिति को बदलने के लिये प्रथमतः सिन फीन अर्थात् स्वतंत्र आयरिश लोकसत्तावादियों ने यह व्यवस्था की कि, जिस तरह भी हो पार्लमेन्ट में अपने पक्ष के ही लोग चुने जाने चाहिये। सिर्फ तीन को छोड़ कर शेष समस्त स्थान उनके पक्ष के चुने भी गये, और तब उन सब सभासदों ने एक मत होकर

पार्लमेन्ट का बहिष्कार

कर दिया। इसके पहले पार्लमेन्ट में जो कुछ आयरिश सभासद थे भी इस नये आन्दोलन के कारण उससे किनारा करने लगे। [illegible] उन्होंने स्पष्ट सिद्ध कर दिखाया है कि, आज पार्लमेन्ट में आयर्लैण्ड [illegible] जो २ विधान बने हुए हैं, उन में से किसी एक को भी [illegible] आयर्लैण्ड में का कोई भी व्यक्ति [illegible] मत में नहीं मानता अपने पक्ष के सिवा दूसरों का निर्वाचन भी न होने दिया जाय, और अपना बहुमत होने पर पार्लमेन्ट का बहिष्कार किया जाय! [illegible] इस बात पर पूरी तरह [illegible] नहीं [illegible] सकते हैं। पार्लमेन्ट का बहिष्कार कर दिया जाने के बाद [illegible] की आयर्लैण्ड की ओर से [illegible] के मत [illegible] [illegible] हो गया है। इस [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] दिया। इस विषय में भी [illegible] [illegible] के

आन्दोलन के मार्ग अर्थात् बहिष्कार एवं असहकारिता आदि का उपयोग कर देखा, किन्तु उसमें भी जब कृतकार्यता के चिन्ह न दिखाई पड़े, तब उन्होंने वैधमार्ग की मर्यादा तोड़दी और स्वतंत्र लोकशाही का घोषणापत्र प्रगट कर अब वे स्वतंत्र राज्यपद्धति के अनुसार कारोबार चला रहे हैं। उन्होंने अपने नये राज्य का एक अध्यक्ष चुन कर, स्वतन्त्र न्यायालय भी स्थापित कर दिये हैं। इसी प्रकार अन्यान्य विभाग भी नये ढंग से स्थापित कर सब प्रकार से स्वतन्त्र राज्य का ठाटपाट जमा लिया है। अर्थात् उन्होंने इन सब बातों के साथ ही नई सेना तैय्यार कर युद्ध भी आरम्भ कर दिया है। सैनिक और पुलिस वालों को जान से मार डालने और उनके वासस्थानों को नष्ट भ्रष्ट कर देने आदि की बातें नित्यव्यवहार में ही आपड़ी हैं। दिनोंदिन उनकी शक्ति बढ़ती जाती है। सिनफीन दल की सेना ने अंग्रेजी फौज के कई बड़े २ अधिकारियों को भी पकड़ लिया है। साथ ही वे यह भी प्रगट कर रहे हैं कि हम उनके साथ युद्ध काल के कैदियों का सा बर्ताव करेंगे। आयर्लैंड के स्वराज्य का प्रश्न इस प्रकार हल हो चुका है, और इस बाढ़ का पानी सारे आयर्लैण्ड में फैल गया है। भास होता है कि, अब आयर्लैण्ड में अंग्रेजी सत्ता नाम मात्र की ही रह गई है। अंग्रेजों को किसी भी प्रकार की सहायता न देने के विषयक सामान्य जनसमूह का मन्तव्य भी प्रगट हो गया जान पड़ता है। इस असहकारिता का परिणाम यहां तक हुआ है कि, आयर्लैंड की रेलवे वालों ने भी इस बात का दृढ़ धारण कर लिया है कि, अब हम रेल द्वारा फौज का किसी प्रकार का सामान लाने ले जाने को तैय्यार न होंगे। इसी प्रकार बन्दरस्थान के मजदूरों ने भी शपथ लेली है कि, हम जहाज पर से गोली बारूद नीचे न उतारेंगे। आयर्लैंड के मजदूर एवं रेलवे वालों के संघ को प्रत्यक्ष रूप में सहायता पहुंचाने के लिये, इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड प्रभृति देशों के मजदूर संघ को क्या करना चाहिये, इस बात का निर्णय करने के लिये शीघ्र ही उनकी एक महासभा होने वाली है। ऐसी दशा में योरोपीय महायुद्ध में रणशूरता के नाते ख्याति लाभ करने वाले लार्ड फ्रेन्च को विवश होकर घोषणापत्र निकालना पड़ा है कि, "आयरिश लोगों को जो कुछ चाहिये, उसे वे स्पष्टतयः प्रगट करें; और निरर्थक प्राणि-हानि करने के लिये खड़े किये हुए दंगे फसाद बन्द कर दें।" आयर्लैंड का इतिहास इस बात की एक उत्तम शिक्षा देता है कि, समय पर स्वराज्य के अधिकार न देने से क्या २ अनर्थ उठ बैठते हैं। किंतु इससे इंग्लैंड कुछ सीखेगा या नहीं, इस बातकी अभी शंका ही बनी हुई है।

साम्राज्य पर आई हुई इस आपत्ति को टालने के लिये सुप्रसिद्ध साम्राज्य धुरंधर जनरल स्मट्स ने एक नई योजना तय्यार की है।

जनरल स्मट्स की योजना

विशेष विचारणीय एवं व्यवहार्य प्रतीत होती है। उनके मतानुसार ब्रिटिश साम्राज्य के भिन्न २ देशों को ही अपना एक राष्ट्रसंघ तैय्यार करना चाहिये, जिस में इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड, आयर्लैंड तथा अन्य उपनिवेशों के साथ ही मिश्र एवं भारतवर्ष का भी समावेश होना चाहिये। इन सब को मिलाकर एक साम्राज्य मण्डल स्थापित हो, जो एकत्र होकर सर्व साम्राज्य विषयक प्रश्नों की चर्चा कर निश्चित ध्येय की योजना करे। अर्थात् साम्राज्य मण्डल के समस्त घटकावयवों की योग्यता समान होनी चाहिये। यही नहीं वरन् प्रत्येक देश स्वतन्त्र, स्वतंत्र एवं स्वराज्योपभोगी हो—इस प्रकार की भी एक शर्त है। [illegible] पार्लमेंट केवल इंग्लैंड का कारोबार यहां की जनता के [illegible] पूर्वक चलाते रहने के लिये सिर्फ अंग्रेजी मतदारों के ही [illegible] होने पर भी उसके द्वारा साम्राज्य भर का कारोबार चलाया जा रहा है। पार्लमेंट में यदि हमारा प्रतिनिधि न हो तो हमें [illegible] हमारे लिये कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं। [illegible] जान पड़ता है कि, इस [illegible] हुए भी लाभ न उठा सके हैं। [illegible] के अनुसार एक कदम आगे बढ़ने में [illegible] पार्लमेंट को, [illegible] के लिये कानून बनाने का जिस प्रकार अधिकार नहीं, [illegible] के लिये [illegible] में [illegible] नहीं रह सकता। [illegible] स्मट्स [illegible] और [illegible]

बात पर जोर दे रहे हैं कि, आगे के लिये हम इस अन्धाधुन्दी और एकतंत्री प्रथा को प्रचलित न रहने देंगे। ब्रिटिश साम्राज्य; केवल इंग्लैंड मालिक और दूसरे सब नौकर के जैसा स्वामि-सेवक का साम्राज्य नहीं है। इस साम्राज्य में के सभी अवयव एक दूसरे के समान हैं। यही नहीं वरन् खास इंग्लैंड के बराबर ही उनका भी मान है। और परस्पर सहायता पहुंचाने के न्यायानुसार संसार भर में शान्ति बनाये रखने के लिये यदि किसी एक ही साम्राज्य को अधिकार दिया जा सकता हो तो वह एक मात्र ब्रिटिश साम्राज्य को ही मिलेगा। महायुद्ध में दिखलाया हुआ पराक्रम अकेले इंग्लैंड के द्वारा ही नहीं दिखाया जा सकता था। फलतः जब वस्तुस्थिति ऐसी है, तो फिर जितनी भी शीघ्रता से होसके सभी पुरानी कल्पनाओं को त्यागकर कम से कम ब्रिटिश साम्राज्य के लिये ही आवश्यक राष्ट्रसंघ स्थापित किया जाकर उस में भारत को अन्य राष्ट्रों की भांति समानता के अधिकार दिये जायँ, और उनके एकमत के बिना साम्राज्य-विषयक किसी भी बात का निर्णय न होने पावे। इस बात पर जनरल स्मट्स जोर दे रहे हैं। सन १९२१ में इंग्लैंड में जुड़ने वाली

साम्राज्य-परिषद्

इसी प्रश्न का निर्णय करने वाली है। इस में अन्य उपनिवेशों की ही भांति भारत को भी समानता के अधिकार दिये गये हैं। यदि इस सभा में जनरल स्मट्स की योजना स्वीकृत हो गई तो उसका प्रभाव भारत के कारोबार पर भी अवश्य पड़ेगा। भारत के नेताओं का इस प्रश्न की ओर पूर्णतयः ध्यान लगा हुआ देख कर हमें आनन्द होता है। लोकशाही पक्ष के घोषणापत्र में साम्राज्य का उपरोक्त ध्येय अंकित किया गया है। अतः इस बात का अंदाज बांधने में हानि नहीं जान पड़ती कि, साम्राज्य के उपनिवेशों में भी इसके लिये समयानुसार आन्दोलन अवश्यही किया जायगा!

समानता के नाते इस प्रकार साम्राज्य के राजकीय दर्बार में भारत का प्रवेश होने, और अन्य स्वायत्त एवं स्वतंत्र उपनिवेशों की ओर में बैठने तथा साम्राज्य का राज्य कारोबार चलाने की कल्पनाएं प्रत्यक्ष व्यवहार में लाई जाने के लिये, उसे (भारत को) स्वायत्त, स्वतंत्र और स्वराज्योपभोगी बनाये बिना काम नहीं चल सकता! साथ ही इस बात को भी अलग बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि, वर्तमान में उसे जो राजनैतिक अधिकार दिये गये हैं, उनमें उपरोक्त ध्येय तक पहुँचा सकने का सामर्थ्य नाम को भी नहीं है! इन अधिकारों को अमृत-वर्षा के समान माननेवालों का भ्रम भी अब क्रमशः दूर होता चला है। पंजाबी दुर्घटनाओं से सब की आंख में तेज अंजन लग गया है, और समय असमय सुधारों की ही तूती बजानेवालों के मुख से अब धिक्कार की ध्वनि निकलने लगी है। खिलाफत और पंजाब प्रकरणों के विषय में भारत का जो अपमान हुआ है, उसकी क्षति पूर्ति करलेने के लिये नये सुधारों को एक ओर रख कर सर्कार के साथ असहकारिता किये बिना काम नहीं चल सकता, इस प्रकार महात्मा गांधी ने घोषणा की है।" डायर और उसीके साथ फौजी अमलदारी कायम करनेवाले अन्य सेनाधिकारियों को पंजाबी दुर्घटनाओं के लिये सजा दो, पार्लमेंट के सन्मुख ओडायर का बयान लिया जाकर उसे भी दंड दो, लार्ड चेम्सफोर्ड को वापस बुलवालो, और पंजाब में जो कुछ हानि हुई है, उसकी पूर्ति कर दो। जिन अधिकारियों ने गत वर्ष पंजाब में गड़बड़ मचाई थी, उनको एकदम यहां से हटा कर—उन घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने देने के लिये भारत को पूर्ण लोकसत्ताक स्वराज्य दे दो।" इस प्रकार भारत की मांग है। इनमें से भी—पंजाब में जिन अधिकारियों ने भयंकर अत्याचार करके भारतीयों के कलेजे छेद दिये हैं, उन्हें एकदम यहां से हटा देने के लिये जो अनुरोध किया जाता है वह अत्यन्त आवश्यक और प्रयोग में लाने योग्य है। किन्तु इस प्रकार की साधारण सी बात के लिये भी भारत की सर्कार तैयार नहीं है! इधर वह इस साधारण बात के लिये भी टालाटूली करती है, तो फिर उसकी मुरव्वत भी कोई क्यों, और कहां तक करता रहेगा! [illegible] ने स्पष्ट रूप से प्रगट कर दिया है कि, 'भारत सर्कार [illegible] विलायत सर्कार की न्याय बुद्धि पर मेरा जरा भी विश्वास नहीं रहा है।' [illegible] अधिकारियों के [illegible] किसी अंश में [illegible] हुआ था, किन्तु पंजाबी घटनाओं ने उस पर भी पानी फेर दिया है। जिन अधिकारियों ने पंजाब में भयंकर अत्याचार किये [illegible] करवाये, उनके [illegible] में [illegible] बने हुए [illegible] की [illegible] भारत [illegible] होती है, और उनके [illegible]

का स्पर्श करना हमें अतिशय अपमानकारक जान पड़ता है। कारण लालाजी ने कौन्सिल का

एकदम बहिष्कार

कर देने की सम्मति दी है। किन्तु महात्मा गांधी ने असहकारिता की घोषणा इसके पूर्व ही प्रगट कर दी थी, इस कारण बहिष्कार का प्रश्न पूरे २ जोश में आ रहा है। केवल पंजाब का ही प्रश्न नेत्रों के सन्मुख रखने से लालाजी की विचार सरणी के प्रति आदर भाव व्यक्त हो पड़ता है। जिस ओडवायर मिश्र ने भारतीय रमणियों की इज्जत लेने में कमी नहीं की, उसका पंजाब में अधिकारारूढ़ बना रहना राष्ट्र के लिये भयंकर अपमान की बात है। गुलामी में इससे बढ़ कर और क्या बात हो सकती है! मालिक को गुलाम और उसके स्त्री पुत्रादि पर अन्याय करने दिया जाय, और उन जुल्मियों को गुलाम लोग चुपचाप देखा करें, इससे बढ़ कर गुलामी का भीषण दृश्य और क्या होसकता है! जिस ओडवायर ने भारतीय देवियों को लकड़ियों के ठूंसे मार २ कर बाहर निकाला, उन्हें मनमानी गालियां दीं, और अवर्णनीय [बल]ात्कार किये, उसी को-लोकमत की अवहेलना कर सर्कार, राजभक्ति [की] विशिष्टता के रूप में सम्मान भाजन बनाकर लोगों की छाती पर [मूंग] दे मला! ऐसा होता देख कर किस स्वाभिमानी नागरिक का हृदय [दुःखित] न हो जाता होगा? जिस किसी में भी आत्माभिमान होगा, [वह इ]स दशा में जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही उचित सम[झेगा,] किन्तु इस अपमान को सहन न करेगा। और ओडवायर जैसा [अधिकारी] जिस सर्कार के आश्रय से पंजाब में रह सकता है, और [उस]की कौन्सिल में टामसन जैसे अधिकारी बैठ सकते हैं, उस [कौन्सि]ल का बहिष्कार कर देना ही उसे सब प्रकार उचित जँचेगा। [ला]ला लाजपतराय और महात्मा गांधी के कथित बहिष्कार की [आव]श्यकता के विषय में देश में मतभेद नहीं है। प्रश्न मात्र यह है कि, [इसक]ा आरंभ कब से और कैसे किया जाय? बहिष्कार और पूर्ण [असह]कारिता यही दो वैध आन्दोलन के ब्रह्मास्त्र हैं, और इनका उप[योग] करने के लिये यही समय योग्य है। बंगभंग वाले आन्दोलन के [समय] भी इन्हीं दो शस्त्रों का उपयोग किया गया था। उस समय जिस [प्रका]र ब्रिटिश माल का बहिष्कार किया गया था, उसी प्रकार स्वतंत्र [पाठ]शालाएँ, पंचायत बोर्ड आदि स्थापित कर सर्कारी कारोबार का बहिष्कार कर दिया गया था। महात्मा गांधी उन्हीं बातों को बहि[ष्का]र के नाम से सम्बोधित न कर असहकारिता के नाते उल्लेख करते [हैं,] यही मात्र अन्तर है। पंद्रह वर्ष पूर्व राष्ट्र ने जो सबक सीखा था, [उसी] की आज पुनरावृत्ति की जारही है। किन्तु प्रश्न यह उपस्थित [होत]ा है कि, पिछले अनुभव की सहायता लेकर हमें उससे कुछ अधिक [सीख]ने की आवश्यकता है या नहीं? जान पड़ता है कि, कलम को [द]स्त करके लिखने का ढंग भी कुछ बदल दिया जाय तो ठीक होगा। [पिछ]ली बार इन असहकारिता और बहिष्कार जैसी अन्यान्य सीधी [साद]ी हलचलों से प्रत्यक्ष रूप में सर्कार का कोई सा भी कारोबार [बन्द] न हुआ नहीं रहा। किंबहुना सर्कार और उसकी हां में हां मिलाने[वा]लों को अपना कार्य-क्रम विशेष व्यवस्थापूर्वक चलाने का ही मौका [मि]ला था। अतः आज हमें उस अनुभव द्वारा होशियार बन जाना [चा]हिये।

नाक दाबने पर ही मुँह खुलसकता है,

इस नीति का हमें आज अवलंबन करना चाहिये। सर्कार का राज्य [का]रोबार और उसकी कौन्सिलें यदि सब तरह उचित रूप में चलने लगीं, तो फिर वह हमारे बहिष्कार की भी क्यों पर्वाह करने लगेगी? कौन्सिल के बहिष्कार और असहकारिता के आन्दोलन की सफलता के लिये उनकी पूरी २ अमल बजावरी होनी चाहिये। और प्रत्यक्ष रूप में सर्कार तक को इन दोनों की आंच लगनी चाहिये। किन्तु आज की परिस्थिति से इस बात की आशा नहीं की जासकती! आज यदि देश वासियों ने कौन्सिल का बहिष्कार कर दिया तो सर्कार और उनके पिछलगुओं का बन पड़ेगा! आज वह "जी हुजूर" करनेवाली एवं स्वदेशवासियों की अपेक्षा नौकरशाही से भी अधिक उत्सुकता के साथ सर्कार से सहकारिता करनेवाली चौकड़ी यदि कौन्सिल में जा बिराजी, तो फिर उनके नित नये खेलों में कोई भी रुकावट न डाल सकेगा। और कम से कम उनका कोई कार्य तो अड़ा रह ही न सकेगा! आयर्लैण्ड के नेताओं के सन्मुख दो वर्ष पूर्व यही प्रश्न उपस्थित था, और उन्होंने उसे बिना निर्वाचन का बहिष्कार किये ही हल कर लिया, तथा यही मार्ग सफलतायुक्त भी समझा गया! ब्रिटिश पार्लमेंट में आयर्लैण्ड की ओर से जो आयरिश सभासद मत देते थे, उनके द्वारा उस देश की हार्दिक आकांक्षाओं का जगत को पता न लग सकता था। इस आपत्ति को टालने और असहकारिता एवं बहिष्कार का योग साधने के लिये आयरिश सीनफीन दलने प्रथमतः पार्लमेंट में अपने ही समस्त सभासदों का निर्वाचन कर लिया और फिर एकदम उसका बहिष्कार कर दिया। इस युक्ति से आयर्लैण्ड के नाम पर पार्लमेंट में तद्देशीय सभासदों को मनमाने मत प्रगट करने का मौका न मिल सका। तब कहीं जाकर सारे जगत को आयर्लैण्ड की यथार्थ दशा का ज्ञान हुआ, और इस प्रकार नाक दाब दिया जाने से मुँह खुल गया! क्या भारत इस युक्ति से लाभ नहीं उठा सकता? आज यदि राष्ट्रीय नेताओं ने कौन्सिल का बहिष्कार कर दिया, तो कौन्सिलों में नर्मदलियों की पैठ हो जायगी, और तब सर्कार का कार्य भी मनमाने ढंग से चलने लगेगा। फलतः भारत की हार्दिक आशाएँ संसार के सन्मुख प्रगट न हो सकेंगी! इसका परिणाम भी कदाचित बहिष्कार एवं असहकारिता द्वारा होनेवाले लाभ के विरुद्ध हो! अपने लिये खुला मैदान पाने और बहिष्कार के रूप में राष्ट्रीय पुरुषों की व्याधि टल जाने के उद्देश्य से भी नौकरशाही के पुरस्कर्ता लोग हमारे मतभेद से लाभ उठा कर इन्हीं में से कइयों को अपनी मिथ्या प्रशंसा से बहकाने और निर्वाचन का बहिष्कार करा देने की दमपट्टी दे रहे हैं। किन्तु स्मरण [illegible]

और इसीलिये वे लोगों से कह रहे हैं कि, कोई भी मतदाता अपने किसी प्रतिनिधि को कौन्सिल में न भेजे! यदि यह बात बन आवे, तब तो पूछनाही क्या है, किन्तु वर्तमान परिस्थिति में यह असंभव सी प्रतीत होती है। बिलकुल सभी व्यक्तियों की ओर बहिष्कार करने की तैयारी रहने पर भी, कुछ मतदाता तो सर्कारी नौकर होने अथवा अन्य किसी कारण से प्रवृत्त होकर मत देंगेही, और उस मतदान के द्वारा सर्कार के मुँहलगे जीवों का अवश्य ही चुनाव हो जायगा! अतः इस विकट परिस्थिति में असहकारिता और बहिष्कार का व्रत कैसे पालन किया जाय यही एक मुख्य प्रश्न इस समय देश के सन्मुख उपस्थित है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के विशेष अधिवेशन में मुख्यतः इसी प्रश्न पर विचार होनेवाला है। जान पड़ता है कि, उस अधिवेशन के निश्चयानुसार वर्तमान आन्दोलन में विशेष तेजस्विता का संचार होगा।

[पृष्ठ १६४ की पूर्ति]

[क]ा विस्तृत चरित्र जो कि भारतीय हृदयजी लिख रहे हैं, इसी प्रकार [अ]पूर्व होगा। संपादक महोदय के पास आप के जीवन से सम्बन्ध [रख]ने वाली सामग्री के दो संदूक भरे पड़े हैं। हमें आशा है कि [आ]पको उसकी सहायता से जीवन चरित्र लिखने में बड़ी सुग[म]ता होगी।

[इस] परिचय में हमें एक बात पढ़ कर मर्मान्त दुःख हुआ है। वह है पढ़े [लि]खे लोगों की-और खास कर कविरत्नजी के मित्रों की-कृतघ्नता! भार[ती]य हृदय जी ने लिखा है कि, कविरत्नजी की मूल पुस्तक "हृदय-[त]रंग" को उनके मित्रों ने न जाने कहां चम्पत कर दी है। इस [घ]टना से कविरत्नजी की आत्मा को बहुत भारी धक्का पहुँचा, [कि]म्बहुना अपनी अमूल्य कविताओं का वह संग्रह लुप्त होजाने ही की [उ]दासी के कारण ही फिर उन्होंने अधिक कविताएँ बनाना छोड़ दिया [था]! कहा जाता है कि "हृदय तरंग" की हस्तलिखित प्रति उनके [मित्र]वर्ग ने देखने के लिये मांग ली, और लौटाने के समय इधर उधर की बहानेबाजी कर दिखाई। एक से पूछा गया तो उसने दूसरे का नाम बतला दिया और दूसरे ने तीसरे का। हमें सब से अधिक दुःख इस बात पर हुआ कि, उस प्रपंच में "जगत्" के तत्कालीन संपादक श्री० भास्कर रामचन्द्र भालेराव का भी हाथ था! यथार्थ में इससे बढ़कर लज्जा की कोई बात ही नहीं हो सकती कि, किसी एक व्यक्ति से मांगी हुई वस्तु को हजम करली जाय! हमारा विश्वास है कि, उस संग्रह में ही कविरत्न जी के हार्दिक भाव भरे हुए होंगे। भला, इस कर्म से क्या लाभ होगा कि, किसी व्यक्ति के हृदय को अपने पास ही रख कर प्रकाश में न आने दिया जाय! हमें याद है कि, अधिकारी जगन्नाथप्रसादजी की निबंधमाला में उसके छपने का विज्ञापन था। अस्तु, जो हो लेकिन इस रहस्य को पढ़ कर हमें मर्मान्तिक दुःख और पुस्तक को दबा रखनेवाले के प्रति हार्दिक घृणा उत्पन्न हुई है। हम नहीं समझ सकते, उन महाशय के बाबा का उसमें क्या था! अस्तु। पुस्तक की छपाई कागज साधारण तथा जिल्दबंदी अच्छी है। और [illegible]

हृदय तरंग।

गत वर्ष हम "जगत" के सप्तमांक में प्रकाशित हुई "प्रेमकली" नामक कविता के साथ इस पुस्तक के छप जाने की सूचना दे चुके हैं। स्वर्गीय सत्यनारायणजी कविरत्न का हिन्दी साहित्य में कौनसा स्थान रहा है, और उन्होंने ब्रजभाषा की कविता द्वारा हिन्दी साहित्य के वर्तमान कालिक काव्य-विभाग की कहां तक पूर्ति की है, यह बात साहित्य मर्मज्ञों से छिपी हुई नहीं है। कविरत्नजी के असामयिक स्वर्गवास से काव्य जगत को बहुत बड़ा धक्का पहुंचा है। अस्तु प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी भाषा के अनन्य एवं निस्पृहसेवक श्री० "एक भारतीय हृदय" के सतत परिश्रम का फल स्वरूप है। भारतीय हृदयजी की स्व० कविरत्न महोदय से अनन्य मित्रता थी, और यही कारण है कि वे सत्यनारायणजी की साहित्य सेवा को अमर बनाने के लिये अविराम यत्न कर रहे हैं, प्रस्तुत ग्रंथ उसी यत्न का एक उत्कृष्ट प्रमाण है। इस में कविरत्नजी की अधिकांश प्रकाशित अप्रकाशित सभी कविताएँ संग्रह कर दी गई हैं। कविताओं का संपादन बड़े ही अच्छे ढंग से हुआ है। हमारी तो यह धारणा है कि, निकट परिचय के कारण ही यह कार्य इतनी उत्तमता से हो सका है। क्योंकि कवि के हार्दिक भाव और रुचि वैचित्र्य का यथार्थ ज्ञान रखे बिना ऐसा हो सकना कठिन है। अस्तु, कविरत्नजी की कविताएँ कैसी हैं, इसके लिये पृथक विवेचन करने की आवश्यकता नहीं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि, वे वर्तमान काव्य-साहित्य में उज्वल रत्न सदृश प्रकाशपूर्ण एवं भाव भरी हैं। 'जगत' के पाठकों को हम गत वर्ष आपकी दो कविताएँ "भ्रमरदूत" और 'प्रेमकली" आपके चित्र सहित अर्पण कर चुके हैं, और विगत अप्रैल मई के अंक में भी प्रथम पृष्ठ पर आप की एक कविता "दया कीजिये" शीर्षक दी गई है। यद्यपि आप की अधिकतर कविताएँ हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में निकल चुकी हैं, किंतु फिर भी आज वे उसी उदात्त रूप में विद्यमान हैं। उनकी प्रतिभा में किञ्चित् मात्र भी न्यूनता न आने पाई है, और यही इच्छा होती है कि, हम उन्हें एक २ कर के "जगत" में निकालते रहें। हमें तो कविरत्नजी की कविताएं इतनी प्रिय हैं कि, ऐसा कोई दिन खाली नहीं जाता कि जिस दिन "हृदय तरंग" उठा कर उसकी एक दो कविताएँ पढ़ हम अपने चित्त को शान्ति न करते हों। हृदय तरंग द्वारा उन सब अभिलाषों को सर्व साधारण के लिये इस प्रकार सुलभ कर देने के निमित्त हम श्री० भारतीय हृदयजी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं। हमें अच्छी तरह स्मरण है कि सन १९१५ के प्रताप के वार्षिकांक में प्रकाशित आप की "मधुर वीणा" नामक कविता को उस समय सैकड़ों आबालवृद्ध कंठस्थ कर गली २ में गाते फिरते थे। और आज भी कई लोग उसे बड़े प्रेम से गाते हैं। इसी प्रकार प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन इन्दौर में स्वयं कविरत्नजीने जब अपनी कोकिल लजावनि मधुर-रस भरी वाणी से "गांधीस्तव" का पाठ किया था, उस समय सहस्त्रों श्रोताओं के नेत्रों से आनन्दाश्रु टपक पड़े थे। अधिक तो क्या स्वतः म० गांधीजी के नेत्रों में भी मौक्तिक बिन्दु चमकने लगे थे। यह सब प्रभाव एक मात्र कविरत्नजी की सहृदयता और उनके कोमल कंठ से निकलती हुई प्रभाव शालिनी वाणी का था। कविरत्नजी केवल कवि ही नहीं वरन् एक बढ़िया गवैये भी थे। इसका पता उन लोगों को अच्छी तरह लग चुका होगा, जिन्होंने कभी किसी प्रसंग पर उनके मुख से गाई हुई कविताएँ सुनी होंगी। कहा जाता है कि, जब तक कविरत्नजी जीवित रहे, आगरे की ऐसी कोई सभा नहीं होती थी, जिस में कि श्रोताओं को वे अपना मधुर वाङ्मयामृत पान न कराते हों। इस प्रकार उनकी कविताओं के विषय में बहुत सी बातें कही जा सकती हैं। फलतः "हृदय तरंग" को सम्पादित करने में श्री० भारतीय हृदयजीने अतुल श्रम उठा कर हिन्दी संसार को चिर कृतज्ञ बना लिया है।

स्वर्गीय पं० सत्यनारायजी कविरत्न।

वह कोमल काकली कलित सी सीखी वृन्दा विपिन निवेश।
मस्त कान्ह. को कर कर देती हर हर लेती हृदय प्रदेश॥
राष्ट्र भारती के उपवन मे होती रहती थी वह कूक।
कर कर दिये क्रूरताओं के उसने सदा करोड़ों टूक॥
वह कोकिल उड़गया-गया-वह गया-कृष्ण दौड़ो लाओ।
वन देवी का धन लौटा दो सच्चे नारायण आओ॥

—"एक भारतीय आत्मा"

आरम्भ में संपादक महाशयने कविरत्नजी का परिचय और छाया चित्र दिया है। परिचय इतनी उत्तमता पूर्वक लिखा गया है कि, उसे पढ़ना आरम्भ करते ही लोग आश्चर्यमग्न बन कर कहने लगते हैं कि, यह कोई गल्प या उपन्यास तो नहीं है? यथार्थ में वह लिखा ही इस ढंग से गया है कि; लोग चक्कर में पड़ जायँ। किन्तु फिर भी उस में कविरत्नजी के जीवन की प्रायः सभी मुख्य २ घटनाओं का समावेश कर दिया गया है। आप की आरम्भिक कविताएँ और गवारों के साथ बैठ कर उनके स्वर में स्वर मिला, स्वरचित होली और रसिया आदि गाने, फिर किसी देहाती लड़की के रूप रंग पर कविता बनाने, और इस काम पर मास्टरों के द्वारा फटकार मिलने, तथा परीक्षा के समय एकदम प्रश्न पत्र लिखना छोड़ कर कविता बनाने में निमग्न हो जाने, एकाध् चरण की कमी रहने पर बिना पद्य को पूरा किये खानेपीने की बात भूल जाने आदि की घटनाओं को पढ़कर यही कहना पड़ता है कि आप कविता देवी के अनन्य उपासक थे। सादगी के तो मानों आप अवतार ही थे। यह बात आप के चित्र पर से सहज ही समझ में आसकती है, अथवा जिसने कभी आप को देखा है वह जान सकता है। इन्दौर सम्मेलन के समय एक स्वयंसेवक द्वारा इसी सादी पोशाक के कारण स्टेज पर से उठा दिया जाने, और उसके प्रति आप के दीनतापूर्वक ब्रजभाषा में उत्तर देने वाली घटना को पढ़ कर आप के सरल स्वभाव और विनोद-प्रियता का अच्छा परिचय मिल जाता है। सम्पादकजीने बहुत मनन कर के उन सब घटनाओं को इस बद्ध रूप में प्रकाशित कर दिया है। यथार्थ में ही आप के चरित्र की वे घटनाएं उपन्यास से कम रोचक नहीं है। हमें आशा है कि कविरत्नजी

[देखो पेज

महायुद्ध के छठे वर्ष का जून मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी ए ।)

जून महीने में योरोप में तुर्क सन्धी से भी बढ़कर एक महत्व-पूर्ण घटना होगई । वह यह कि, पौलेण्ड की सेना पर रशियन बालशेविकों ने भारी विजय सम्पादन कर लिया! पौलेण्ड और रशिया के बीच युद्ध का आरंभ अप्रैल में हुआ, मई का महीना पौलेण्ड के लिये उन्नतिकारक रहा, और जून में रणभूमि पर उसका पतन हो गया। जर्मन-सन्धी में पौलेण्ड, झेकोस्लाव और आस्ट्रिया हंगरी आदि देशों की सीमा किस प्रकार निश्चित कीगई है, उसका नक्शा इस लेख के साथ दिया जा रहा है। इस सन्धि द्वारा प्राप्त प्रदेशों पर ही प्रसन्न रहने में पौलेण्ड को किसी प्रकार हानि न थी। किन्तु जब यह दृष्टिगोचर हुआ कि-रशिया में बाल्शेविकों का राज्य स्थापित होकर चारों ओर अंधाधुंदी मच गई है-तो पौलेण्ड के राज पुरुषों की हवस बढ़ चली। सेनापति डेनिकन की सेना के विजयी बनकर मास्को पर आक्रमण करने के लिये जाते समय, वहां के बाल्शेविकों को मार भगाने के लिये पौलेण्ड सेना द्वारा सहायता पहुँचाने को तैय्यार था। किन्तु पौलेण्ड के मुसद्दी और से० डेनिकन के बीच उस समय का सौदा न पट सका। जर्मन सन्धी के अनुसार दिये हुए प्रदेश की अपेक्षा अधिक पाने की उसे इच्छा थी, किन्तु ज़ार-काल के रशियन प्रदेश पर संकल्प जल छोड़ने को से० डेनिकन तैय्यार न हुए। खास युक्रेन की स्वतंत्रता भी से० डेनिकन को मंजूर न हुई। क्योंकि उनके हृदय में यह धारणा दृढ़ बन चुकी थी कि, जहां तक होसके पहलेवाला रशियन साम्राज्य ही कायम रखा जाय! और इसी कारण समय पर युक्रेन उनके विरुद्ध बाल्शेविकों से जा मिला! बस तभी से डेनिकन की दशा बिगड़ने लगी। उनका पूरा तरह पराभव होजाने पर युक्रेन को भास हुआ कि, ऐसा करके तो मैं चूल्हे से निकल कर भाड़ में आगिरा हूं। जब युक्रेन इस गतेशोचं में लगा हुआ था कि, बालशेविकों के पंजे से किस प्रकार छुटकारा हो, उसी समय पौलेण्ड की डेनिकन के समय की युद्ध की तय्यारी युक्रेन के नेत्रों के सन्मुख उपस्थित हुई, और तब युक्रेन तथा पौलेण्ड के बीच सन्धी हो गई। सदा के लिये बाल्शेविकों के अधिकार में रहने की अपेक्षा पौलेंड को सहायता देकर अथवा अपने प्रदेश का ही कुछ भाग उसे अर्पण करके बाल्शेविकों के पंजे से मुक्त होना युक्रेन को उचित जान पड़ा। उसके मन में यही बात घुम रही थी कि, ज़ार साम्राज्य की विशाल इमारत के गिर पड़ने पर जब फिनलेंड और पौलेण्ड को स्वतंत्रता मिल गई, तो अकेला युक्रेन ही क्यों परतंत्र रखा जा रहा है! बाल्शेविक और जर्मनी के बीच की पहले वाली ब्रेस्टलिटोव्हस्क की सन्धी के अनुसार युक्रेन की स्वतंत्रता के लिये इन दोनों ने सम्मति दे डाली थी, किन्तु इसके बाद जर्मनी का भी पतन हो जाने पर तो वह सन्धी ही निरर्थक हो गई, और मित्रसर्कार एवं जर्मनी के बीच की सन्धी में पौलेण्ड की स्वतंत्रता के साथ ही युक्रेन का कहीं उल्लेख तक न हुआ। बाल्शेविक युक्रेन को स्वराज्य देने के लिये तैयार थे, किन्तु स्वतंत्रता नहीं, और से० डेनिकन तो दोनों ही नहीं देना चाहते थे। तब प्रथमतः डेनिकन के विरुद्ध बाल्शेविकों से मिल कर युक्रेन के राजनीतिज्ञों ने स्वराज्य प्राप्त कर लिया और इसके बाद स्वतंत्रता के लिये पौलेण्ड से कार्रवाई शुरू की। डेनिकन की चढ़ाई के समय ड्विना की ओर पौलेण्ड की सेना आगे बढ़ गई थी, किन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि, से० डेनिकन सहायता के बदले योग्य पुरस्कार देने को तैयार नहीं हैं,

तब उसने वहीं धरना देकर आगे बढ़ना रोक दिया। रणभूमि छोड़ कर भाग्य की दुहाई देते हुए सेनापति डेनिकन के इंग्लैण्ड में बैठ रहने पर पौलेण्ड के सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि, ड्विना नदी तक का बालशेविकों का अधिकृत भाग चुपचाप छोड़ दिया जाय या नहीं? पौलेण्ड के मुसद्दी जर्मन-सन्धी के प्राप्त प्रदेश पर संतुष्ट न थे। क्योंकि उन्हें जान पड़ता था कि, जब ज़ारशाही ही नष्ट हो चुकी है तो अपनी महत्वकांक्षा को यथेच्छ पूरा कर लेने में बाधा क्या है? मनुष्य में महत्वाकांक्षा होना अलग बात है, और वह अपने पराक्रम की सीमा के भीतर ही है, ऐसा जान पड़ना दूसरी बात है पौलेण्ड के राजनीतिज्ञों को स्वतंत्र जीवन जर्मन-सन्धी से मिला था। किंतु शूरता की अपेक्षा कागजपत्रों के जोरपर प्राप्त की हुई स्वतंत्रता का उपभोग वह वर्ष भर भी न कर पाया कि, इसी बीच इंग्लैंड के राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षा कुछ शताब्दि पूर्व के पौलेंड के वैभव के बराबर बढ़ गई,

यह जान आश्चर्य जैसी बात है! यदि गत दो वर्षों के इतिहास को देखा जाय तो यही जान पड़ेगा कि परिस्थिति के एक एक कदम आगे बढ़ाने के कारण ही पौलेंड को अपनी महत्वाकांक्षा व्यवहार्य प्रतीत हुई थी। सेनापति डेनिकन की चढ़ाई में सहायता देने के लिये प्रिपेट और ड्विना इन दो नदियों के बीच वाले रशियन प्रान्त पर पौलेंडने जो चढ़ाई की, वह महत्वाकांक्षा के कारण नहीं थी। वरन् जिन्होंने पौलेंड की स्वतंत्रता को जन्म दिया उस मित्र सर्कार और खास कर एंग्लो फ्रेंचों के सन्तोष के लिये ही उसे ऐसा करना पड़ा था! बस, तभी से उसे एंग्लो फ्रेंचोंने युद्ध सामग्री की भरपूर सहायता देना आरम्भ कर दिया। पौलेंड ड्विना नदी तक बढ़ा और इस आक्रमण में बाल्शेविकों से जो दो दो हाथ हुए, उन में उसे सफलता भी मिली। बस, फिर क्या था! पौलेंड समझने लगा कि मैं भी बाल्शेविकों से बढ़ कर उच्चश्रेणि का लड़वैय्या हूं। चढ़ाई द्वारा ड्विना तक का प्रदेश सर करने और युद्ध में सफलता मिलने के साथ ही अपनी वीरता का गर्व आजाने की दशा में एकाएक पौलेंड को भास हुआ कि, अब शीघ्र ही पुन अपने पूर्व वैभव को प्राप्त होने का समय निकट आगया है! किन्तु इस में आश्चर्य करने जैसी बात नहीं है। इसी महत्वाकांक्षा के कारण उसने सेनापति डेनिकन से यह कहना आरम्भ किया कि, अब आप मुझे और कितना प्रदेश देते हैं! जर्मन-सन्धी से प्राप्त प्रदेश के सिवाय युक्रेन और खास रशिया में से कितने भाग को अधिकृत करने के लिये पौलेण्ड इच्छुक है, उसे बतलाने वाला दूसरा एक नक्शा भी इस लेख के साथ दिया जा रहा है। उस नक्शे की ओर देखने से ज्ञात पड़ता है कि, निपर और ड्विना के बीच का सारा प्रदेश हस्तगत कर मास्को और पौलेण्ड के मार्ग की आधी से अधिक मंजिल तैर कर लेने जितनी उसकी महत्वाकांक्षा बढ़ गई है। पौलेंड की हवस के अनुसार आवश्यक प्रान्त रेखाओं द्वारा दिखलाया गया है, और उसके मध्य भाग में जहां बिन्दुओं के रूप में कुछ भाग दिखलाया गया है, वह प्रिपेट के किनारे पर का दलदल युक्त प्रदेश है। यह प्रान्त सेना की हलचल के लिये बिलकुल ही निरुपयोगी होने के कारण पौलेंड के मांगे हुए प्रदेश के इसके द्वारा उत्तर-दक्षिण के रूप में दो भाग सहज आपही हो जाते हैं। उत्तर की ओर के भाग में तीन चतुर्थांश से अधिक तो से० डेनिकन की चढ़ाई के समय ही इसने हथिया लिया था। इस प्रकार पौलेंड की महत्वाकांक्षा

को व्यवहार्य स्वरूप प्राप्त हो जाने पर से० डेनिकन की सेना का पूर्ण पराभव हो गया। डेनिकन के काले सागर से निकल जाने पर मास्को के बाल्शेविकों के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि, आगे बढ़े हुए पौलैंड का क्या किया जाय? जर्मन सन्धी के द्वारा जो प्रदेश तुम्हारे लिये निश्चित हो चुका है, आज ही तुम उसकी सीमा में चले जाओ, इस प्रकार बाल्शेविक और पौलैंड के बीच का कथोपकथन गत दिसम्बर में ही न्याय्य समझ लिया गया था। किन्तु पौलैंड के साथ ही उससे दक्षिण ओर के युक्रेनिया और उत्तर के लिटोव्हिया–इन दो प्रान्तों का प्रश्न भी बाल्शेविक सर्कार के सम्मुख उपस्थित हुआ। लिटोव्हिया जर्मनी के पूर्व प्रशिया और रशियन बाल्शेविकों के बीच में एक दीवार के सदृश है। पौलैंड और रशिया मिलाकर जर्मनी और रशिया के बीच का बांध पूरा होता है। इन में से पौलैंड रशिया और जर्मनी दोनों को ही जुल्मी समझता है, इस कारण इनमें से किसी के साथ वह स्वेच्छा से सन्धि नहीं कर

[illegible]

सकता! ये सब जिस प्रकार रशिया का स्वभाव सिद्ध शत्रु है, उसी प्रकार यह जर्मनी का भी है। किन्तु लिटोव्हिया की दशा ऐसी नहीं [illegible]

पराभव हो जाने पर भी पौलैंड के फैलाये हुए हाथपावों [illegible] उस रूप में अच्छा हुआ। डेनिकन के पराभव के बाद जर्मनी [illegible] रशिया के बीच स्वभावतः जिस सम्बन्ध के दृढ़ होने की आशा [illegible] वह नष्ट हो गई। इस में पौलैंड का पैर ही अड़ा रहा। रशिया-जर्मनी के बीच मित्र सर्कार अथवा अंग्रेजों की देखरेख के सिवा सम्बन्ध जुड़ जाना, एक प्रकार से जर्मन सान्धि को निरर्थक ही कर देने वाला हो सकता है। यूरोप की राजकीय शक्ति को स्थान २ पर संकुचित करके अथवा उसे समेट कर एँग्लो-फ्रेंचों की शक्ति ही सर्व श्रेष्ठ समझी जावे, और उस एक शक्ति को ही सब प्रकार के राजनैतिक प्रश्नों की चर्चा में अग्रस्थान प्राप्त हो, यही एक मूल तत्व जर्मन-सन्धि के अंतर्गत गर्भित है। जर्मनी की चालीस या पचास लाख सेना इकत्रित करने विषयक शक्ति आज कितनी ही संकुचित हो गई हो, तथापि वह आठ दस लाख से कम नहीं हो पाई है। ज़ार की लोकशाही भंग कर बाल्शेविकों की स्थापित की हुई, नवीन लश्करशाही रशिया के पूर्व के सामर्थ्य की तुलना से कितनीही निस्तेज हो गई हो, तथापि उसका प्रयोग करने पर मध्य योरोप में जर्मनी की सहायता के लिये दस बारह लाख सेना भेजने की शक्ति उसमें मौजूद है। अर्थात् कर्म धर्म संयोग से यदि रशिया और जर्मनी एक होकर एँग्लो-फ्रेंचों से युद्ध शुरू करदें तो रणभूमि पर रूसो-जर्मनी एँग्लो-फ्रेंचों के साथ समबल ही समझे जावेंगे। यह स्थिति उत्पन्न हो जाने पर एँग्लो-फ्रेंचों का बल रह ही कहां जाता है? इसी प्रकार जर्मन व्यूह का एक मुख्य भाग यह भी है कि, आज एँग्लो-फ्रेंचों का तुल्य बलशाली कोई न रहने पावे, अथवा बीस पचीस वर्ष की अवधी में भी तैय्यार न होने पावे। इस व्यूह को नष्ट कर देने के लिये रशिया जर्मनी की शृंखला भूभाग पर कहीं भी सम्बद्ध न होने पावे और दोनों के बीच एँग्लो-फ्रेंचों के अधिकार में की पत्थर की दीवार हमेशा के लिये खड़ी रहनी चाहिये। इस दीवार के गिरते ही व्यूह भी नष्ट हो जायगा। अर्थात् जर्मन-सन्धी निरर्थक बन जायगी। ऐसी दशा में जिस प्रकार युक्रेन को निरा स्वराज्य देकर स्वतंत्रता न दें [illegible] बाल्शेविकों ने निश्चय किया है, वही लिटोव्हि[illegible] लिये भी वे तय्यार किये बैठे हैं। फिनलैण्ड और पो[illegible] को स्वतंत्रता देने के लिये बाल्शेविक पहले से तय्यार थे, और आज भी हैं। किन्तु रशिया [illegible] पश्चिम सीमा पर के अन्य प्रदेशों अर्थात् इस्थो[illegible] लिटोव्हिया और युक्रेन आदि को पूर्ण स्वतंत्रता [illegible] एँग्लो-फ्रेंचों के आश्रय में जाने देने के लिये ब[illegible]विक भी आज तैय्यार नहीं हैं। ज़ारशाही [illegible] वैभव काल में भी रशिया की प[illegible] सीमा पर के उत्तर से दक्षिण तक के पांचों [illegible] अर्थात् फिनलैंड, इस्थोनिया, लिटोव्हिया, पोलैण्ड और युक्रेन राष्ट्र [illegible] से अलग हो जाने के लिये न्यूनाधिक प्रमाण में श्रम उठा रहे थे, [illegible] उस समय रशियन साम्राज्यवालों में भी फिनलैण्ड और पोलैण्ड [illegible] स्वराज्य देने की आवश्यकता बतलानेवाला एक दल था, और [illegible] [illegible]
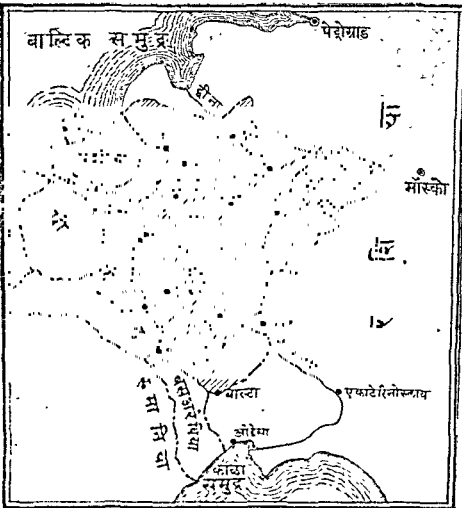
[illegible]

यता लेने और विदेशी शत्रु को उसीके प्रदेश में सताते रहने की शक्ति की आवश्यकता बालशेविकों के नेताओं को प्रतीत हुई। इस प्रकार की मानसिक स्थिति को ही साम्राज्य प्रियता कहते हैं। कोलचाक, युडेनिच और डेनिकन इन तीन मृत्युओं को प्रत्यक्ष देख कर स्वातंत्र्य-प्रिय बालशेविक साम्राज्यप्रिय बन गये। और रशिया की राज्यक्रांति का प्रवाह भिन्न ही दिशा में बहने लगा। डेनिकन के पराभव के पश्चात् बालशेविक सर्कार के साम्राज्यप्रिय बन जाने के कारण, अफ़ग़ानिस्तान, ईरान और तुर्किस्तान की ओर की लपट धौं-धौं में मन लगाकर वह मुसलमानों को उत्तेजित बनाते हुए अंग्रेजी साम्राज्य से एशिया खण्ड में छेड़ छाड़ करने लगी। किन्तु उसकी छेड़ छाड़ की ओर ध्यान न देकर शांत चित्त से रह सकना अंग्रेजी साम्राज्य जैसे प्रचंड शरीर-धारी के लिये एक साधारण सी बात थी। उसने उसकी कुछ भी पर्वाह न की। अफ़गानिस्तान, ईरान और तुर्किस्तान की ओर बालशेविकों ने अपनी चालें चलनी आरंभ की, किन्तु दोस्तों की सहायता लेकर मित्रसर्कार को गुट बनाने विषयक साम्राज्य-प्रियता का काम उन्हें मध्य यूरोप की ओर ही प्रचलित रखना पड़ा। बालकन प्रदेश और तुर्क सत्ता युरोप खण्ड की एक छोटी सी किन्तु कुछ उपलक्षण की शक्ति है। इस शक्ति को प्रसंग विशेष के अनुसार नचाने के लिये रोमानिया और रशिया के बीच युक्रेन रूपी कठपुतली रखने के हेतु, बालशेविकों की साम्राज्य प्रियता राज़ी न हुई। अर्थात् युक्रेन की स्वतंत्रता के विरुद्ध मास्को सर्कार ने प्रस्ताव पास किया। बालकन प्रदेश की शक्ति ही की तरह यूरोप में जर्मनी की विघ्नतापूर्वक लड़ने और दीर्घकालपर्यंत वैर अथवा मित्रता बनाये रखने की धीमी शक्ति भी एक विशेष बात है। इटली और ग्रीस आदि देशों की गणना अभीतक इस प्रकार के शक्ति शालियों में नहीं हो पाई है! ऐंग्लो-फ्रेंचों की शक्ति जर्मनी से अधिक गंभीर समझी जा चुकी है। बालशेविकों की साम्राज्य प्रियता को इस तीव्रतर ऐंग्लो फ्रेंचों की शक्ति के साथ पृथ्वी तलपर हर समय और हर जगह अथवा उग्र रूप में झगड़ा किये बिना न मिलने के कारण, जर्मनी की धीमी शक्ति [illegible] रोक सकने की पहली ही तय्यारी

गया। जून के तीसरे और चौथे सप्ताह में कीव्ह शहर और उसका सारा प्रान्त पोलैंड को छोड़ देना पड़ा, और जुलाई के आरम्भ में युक्रेन से अपनी सेना हटाते २ उसके नाकों दम आगया। उस समय उत्तर में ड्विन्स्क की ओर पोलैंड की सेना को सेनापति ब्रुसेलाफ ने इस तरह घेर लिया कि बग नदी तक फिर से पहुंच सकने और पोलैंड की पूर्वी सीमा में उसका सुरक्षित रूप से पहुँच सकना असंभव हो गया। जुलाई के दूसरे सप्ताह वाली स्पा परिषद् में जब मित्र सर्कार को विदित हुआ कि रणभूमि पर रशिया ने पोलैंड की बड़ी दुर्गत बना दी है, तब मित्र सर्कार के समस्त राजनीतिज्ञों की सम्मति से मि० लाइड जार्जने मास्को वाली बालशेविक सर्कार के पास तार भेज कर पोलैंड का युद्ध रोक देने के लिये निवेदन किया। जिसे सर्कार कहने में ऐंग्लो-फ्रेंचों को कमतरता प्रतीत होती थी, उसी बालशेविक सर्कार से उन्हें इस बात का निवेदन करने को विवश होना पड़ा कि, हमारे मित्र (पोलैंड) को बिलकुल ही नागोंगाने चिन्न न कर दीजिये। से० डेनिकन के पराभव के कारण ऐंग्लो-फ्रेंचों के विरुद्ध जो लष्करशाही उत्पन्न हुई, उसे पोलैंडने ही खूंटी ठोक कर मज़बूत किया। पोलैंड की फज़ीहत से सारे संसार को ज्ञात हो गया कि, ऐंग्लो-फ्रेंचों के विरुद्ध उत्पन्न होने वाली रशिया की नई लष्करशाही की शक्ति से

सन्मान को क्यों स्वीकार न करने लगे! किन्तु लिटोहिया और इस्थोनिया को पूर्ण स्वतन्त्रता देकर जर्मनी से अलग रहना बालशेविकों की साम्राज्य-प्रियता के लिये विघातक सा है। पौलैंड और फिनलैंड की स्वतन्त्रता का वाद भले ही टिक न सके, किन्तु युद्ध कर देने के लिये जुलाई के तीसरे सप्ताह के अन्त तक की जो मुद्दत दी गई है, उस में ही यदि पौलैंड की सेना को बालशेविक ठिकाने लगा सके, और पौलैंड को सहायता देने विषयक मित्र सर्कार का आश्वासन भी यदि बालशेविकों ने पौलैंड की फौजी-मृत्यु द्वारा जुलाई के दूसरे पखवाड़े में निरर्थक बना दिया तो जर्मनी और रशिया के बीच खड़ी की हुई दीवार का साबित रहना असंभव सा ही है। स्पा परिषद् के समय जर्मनी से युद्धदंड (हर्जाना) वसूल करने और उसकी सेना को घटाने के उपायों पर जर्मन राजनीतिज्ञों की उपस्थिति में ही उनसे वाद-विवाद कर विचार किया गया। उस समय स्पा-परिषद् में स्पष्ट रूप से दिखाई दिया कि, जर्मनी के साथ रिआयत करने को ऍंग्लो फ्रेंच सब तरह तैय्यार हैं, किन्तु जर्मनी टालाटूली की नई २ युक्तियां उनके सामने उपस्थित करता ही जाता है। जुलाई के अन्त और अगस्त के आरंभ में भुन कर निकले हुए पोलेण्ड रूपी बैंगन का भर्ता बालशेविक किस प्रकार बनाते हैं, इस बात को पूरी तरह जाने बिना जर्मनी भी क्यों कर आज ही अपना ध्येय निश्चित कर सकता है? तुर्क सन्धि की मर्यादा भी अगस्त के अन्त तक बढ़ा दी गई है। पौलेण्ड के झगड़े से मित्रसर्कार के मुक्त होने तक तुर्क सन्धि पर सुलतान के हस्ताक्षर करा सकना किसी को भी सुविधा जनक नहीं जान पड़ता है। इस सन्धि के अनुसार ग्रीस की सेना को यथावश्यक प्रदेश हथियाने की मित्रसर्कार ने आज्ञा दे दी है, और ग्रीस ने जून महीने में स्मर्ना का प्रदेश स्मर्ना-सोमा-आलूशेक इन तीन शहरों सहित अधिकृत भी कर लिया है। जुल... सप्ताह में ग्रीस ने ब्रूस का प्रांत हथिया कर प्रगट किया है कि... शहर और अफयूम, कराहिस्सर नामक तुर्क रेल्वे के मुख्य स्टेशनों... अधिकार जमाने को भी सेना शीघ्र ही आगे बढ़नेवाली है। स्टेशनों को बचाने के लिये कमाल पाशा की सेना ग्रीस से जोर के साथ लड़ेगी। कहा जाता है कि, इस युद्ध पर ही तुर्की ... निर्माण अवलंबित रहेगा। आर्मीनिया से बालशेविकों ने सन्धि... है, और दक्षिण काकेशस प्रांत में पहुँचे हुए बालशेविकों की... *तार्थ कमाल पाशा के जाने में अब कोई रुकावट नहीं रही है।* ईरान में तेहरान के पास की पहाड़ियों को बालशेविकों ने ... है, और तेहरान को वे जब चाहेंगे ले सकेंगे, इस प्रकार प्रगट ... गया है। तुर्कों की गड़बड़ के कारण मेसोपोटामिया में भी दो ... जगह विद्रोह उठ खड़े हुए हैं, और बसरा बगदाद रेल्वे को दो जगह तोड़कर उस स्थान में की अंग्रेजी सेना को क्रांतिकारियों ने ... लिया है। बालशेविकों ने अफ़गानिस्तान के अमीर साहब के ... भी कुस्तुन्तुनिया के खलीफा की स्वतंत्रता के लिये अपने प्रदेश तक ... लगा देने के उद्गार निकलवा कर छोड़े हैं। पोलैण्ड की सन्धि वि... यक मध्यस्थता में यदि इंग्लैण्ड को सफलता मिली, और मि० लायड जार्ज एवं मास्को के बालशेविकों में यदि इस सन्धिद्वारा मित्रता ... होगई, तो मुसल्मानों द्वारा की जानेवाली छेड़छाड़ को विशेष महत्व न दिया जासकेगा। किन्तु यदि पौलेण्ड का युद्ध बंद न हुआ और मित्रसर्कार को भी प्रत्यक्ष रूप में पौलेण्ड की ओर से खड़े रहने को विवश होना पड़ा तो अवश्य ही इस छेड़छाड़ का रूप भयंकर हो जायगा!

सर शापुरजी भरूचा।

बंबई के प्रसिद्ध ...

जाने के कारण आप अपनी आयु के १८।१९ वें वर्ष माता और भाई को साथ लेकर बंबई चले आये, और यहां के एशियाटिक बैंकिंग कारपोरेशन में आपने नौकरी करली। यहां के बैंक सम्बन्धी काम से आपने जो अनुभव प्राप्त किया वह अन्त समय तक काम देता रहा। इसी संयोग में आप का परिचय बंबई के दलालों के नेता प्रेमचंद रायचंद से हो गया। इस परिचय से भी सर शापुरजी ने बड़ा लाभ उठाया। कुछ दिन के बाद नौकरी छोड़ कर आप दलाली करने लगे। तब आप की होशियारी पर मुग्ध होकर सेठ प्रेमचंद रायचंद ने आप को अपने साथ कर लिया। कुछ समय के बाद प्रेमचंद और शापुरजी में उद्योग विषयक स्पर्धा होने लगी थी। किन्तु सेठ प्रेमचंद के मरते ही सर *शापुरजी सहज ही में बंबई के दलालों के नेता* बन बैठे। उस समय बंबई के दलाल लोग एक-मत होकर काम नहीं करते थे। प्रत्येक मनुष्य अपना २ उद्योग स्वेच्छानुसार चलाता था। एक का दूसरे से कभी मेल न खाता था। इस कारण एक बार बंबई के बैंक और दलालों का विवाद यहां तक बढ़ गया कि, बैंकवालों ने दलालों से सब प्रकार का सम्बन्ध ही तोड़ दिया। इस गड़बड़ से सारा उद्योग बंद होगया। किन्तु उस झगड़े को सर शापुरजी ने ...

किन्तु ...

आपने बंबई की कपड़े की मिलें सुधारने की ओर ध्यान दिया और अन्त समय तक आप इसी कार्य में लगे रहे। बंबई के ... विख्यात व्यापारी मि० ताता की ... कल्पनाओं को सफल बनाने में सर शापुरजी का ही परिश्रम कारणीभूत हुआ है। इसके सिवाय अनेक राजा महाराजाओं को आर्थिक विषयों में सम्मति भी आप ही दिया करते थे। खास बंबई गवर्नमेंट भी इस काम में आप को सम्मान की दृष्टि से देखती थी, और इसी कारण एक बार आप का रॉयल कमीशन में भी चुनाव हुआ था।

किन्तु इतना सब होकर भी आत्माभिमान ... ठसक आप को छूकर भी न गई थी! ... की 'गुलदान' या 'अमगट उपकार' ... लाघवता अद्वितीय ही कही जा सकती है। और खुदपसंदीपन से तो आप को ... घृणा थी कि, मरने तक आप ... अभ्यागण ही गवर्नर के बंगले तक ... और न सर्कार से सम्मान पाने की ... आपने कोई प्रयत्न ही किया। ... ... सर्कारी लोगों में सम्मिलित होने ... इसी कारण उन अधिकारियों ... का परिचय भी मिला, कि जिससे ... के समय आप बंबई के ... सेठ ...

...

स्वर्गीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक।

(लेखक—श्रीयुत दामोदर विश्वनाथ गोखले बी. ए. एल-एल. बी.)

जिस प्रमुख सेनापति के आधिपत्य में आज चालीस वर्षों से भारत ने स्वराज्य की मुहिम को बड़ी धीरता से प्रज्वलित रक्खा था, उसीको निर्दय काल ने तारीख एक अगस्त को हम से जुदा कर दिया! नौकरशाही के विस्तीर्ण एवं अभेद्य समझे जाने वाले दुर्ग को अपनी बुद्धिमता के बल पर जिस वीरश्रेष्ठ ने शतशः आक्रमण करके अस्त-व्यस्त बना दिया था, उसी नर-शार्दूल को इतनी शीघ्रता से इहलोक यात्रा समाप्त कर देनी पड़ी, इससे बढ कर इस अभागे राष्ट्र के लिये दुर्भाग्य की बात और क्या होसकती है! दैववशात् कालचक्र के फेरे में पड़ कर पराधीनता के गंभीर गर्त में गिरी हुई इस असहाय आर्यभूमि को बाहर निकालने की पराकाष्ठा दिखलाने वाले सुपुत्र का एकदम ही अदृश्य होजाना, केवल ईश्वरीय लीला की विचित्रता ही कही जा सकता है! लोकमान्य तिलक अब नहीं रहे, वे स्वर्गवासी होगये, उन्होंने अपनी इहलोक यात्रा समाप्त कर दी, ये बातें तक सच्ची नहीं जान पड़तीं। उस घृणित सत्य की निरी कल्पना का ही उद्भव होने से हृदय विदीर्ण होने लगता है, मन एवं बुद्धि बधिर बन कर संसार को शून्यवत् भास कराने लगते हैं। अन्तर्मेघों का परिस्फोट होकर नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है। अन्तःकरण उस कल्पना को स्वप्न में भी सुना नहीं चाहता। किन्तु क्या ये बातें सम्भव हैं? नहीं, केवल प्रलाप मात्र ही। देखिये न! भारत माता अपनी गोद से उस प्राणाधिक 'बाल' का निर्दय काल द्वारा अपहरण होता देख किस प्रकार भीषण नाद में रुदन कर रही है! प्रत्येक टूटी कुटिया से लगाकर गगनचुम्बी अट्टालिकाओं तक में काल क्रमण करनेवाली आर्य सन्तान अपने अग्रज-अग्रज ही क्या! प्रत्यक्ष परमेश्वर—के लिये किस प्रकार शोक मग्न हो रही है। अखिल भारत में आज हाहाःकार मच गया है। प्रत्येक जीवधारी के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है। हाय! उस अमर्याद दुःख सागर में छट पटाती हुई मां भारती को छोड़ कर उस का 'बाल' चला गया! कर्मयोगिन्! आपने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। मां भारती के लिये आपने सब प्रकार की आपदाओं का समुचित स्वागत करते हुए, चालीस वर्षों की सार्वजनिक आयु का पंचमांश कारागार में बिता दिया! यहां तक कि अन्त समय भी आपने उसी का चिन्तन करते हुए स्वर्ग को प्रयाण किया! किन्तु भगवन्! अपने इन दुष्कर उपकारों के ऋण-भार से हम अभागे भारतीयों के मुक्त होने का भी कोई मार्ग आप बतला गये हैं? यदि यह अभागा देश अपने शरीर की खाल का जूता बनाकर भी आप को पहिनादे, तो भी उस ऋण भार से स्वप्नांश तक मुक्त नहीं हो सकता! यदि जगदीश्वर ने एक का जीवन काल दूसरे से बदल लेने का नियम रक्खा होता, तो निश्चय जानिये कि लाखों युवक आज आप को अपना जीवन दे डालने के लिये तैयार होजाते! देखिये-भगवन्! देखिये!! आज भी ये करोड़ों [illegible] काम हैं—

लो० तिलक, सन १९१० ।

आप का पुण्य-स्मरण

देश सेवा की प्रतिज्ञा कर रहा है! आप के आरंभ किये हुए कार्य को आगे चलाने के लिये, आपके व्रत का आजन्म करने के लिये, आपकी दीक्षा को अंगीकार करने के लिये इनमें सी हो रही है। संभव है, आप स्वर्गलोक में इनकी कर्तव्य[illegible] को देख आनंदित होरहे हों! पराधीनता पर, परावलंबन, गुलामी पर आप के आरंभ किये हुए आक्रमण को चारों ओर से संगठित रूप में दृढता पूर्वक प्रचलित रखने के लिये; ये युवा सैनिक कटिबद्ध होकर खड़े हैं। किन्तु आप जैसा धीरोदात्त, पराक्रमी और दृढ-प्रतिज्ञ सेनापति कहां मिल सकेगा? आप का ध्येय, आप का चरित्र, और आपका चारित्र्य दृष्टिपथ में रख कर अखिल भारत राष्ट्रीय तपश्चर्या में लग चुका है, और इस तपोबल एवं आपके शुभाशीर्वाद के द्वारा प्रचलित स्वातंत्र्य-प्राप्ति के संग्राम में विजय प्राप्त करनेवाला स्वामी कार्तिकेय कहीं अवश्य ही उत्पन्न होगा, इस प्रकार हृदय साक्षी देता है। आप तो चले गये, किन्तु फिर भी आप के पुण्य-स्मरण द्वारा इस जिह्वा को पवित्र बनाने, जड़ लेखनी को पुनीत कराने और चंचल मन को पावनपद पर पहुँचाने तथा देश में जागृति फैला कर अभागे राष्ट्र का उद्धार करने की आशा से भारत के युवा आप का पुण्य-चरित्र गौरव के साथ गान करते रहेंगे! वर्तमान युवा—समाज को एकमात्र आप के ही कार्यों से तो परिचय था! सहस्त्रों युवाओं के मानस क्षेत्रों में आप ही ने तो राष्ट्र-कार्य का बीजारोपण किया और आप ही के अपरिमित स्वार्थ त्याग, धैर्य एवं कर्तव्यनिष्ठा को आदर्श मानकर अनेक युवकों ने राष्ट्रीय संग्राम में अपने को बलिदान कर दिया! भगवन्! यह आप ही का तो उपदेश है! स्वराज्य एवं स्वतंत्रता से [illegible] राष्ट्र में जीवित रहने की अपेक्षा [illegible] जाना भला है। मां भारती को स्वतंत्रता की ओर निधड़क [illegible] जाने के आशय से मार्गस्थ [illegible] खाइयों को प्राणों का [illegible] डालकर समतोल बनादेने का [illegible] [illegible] निश्चय आपके ही आदेश से तो भारत में उत्पन्न हुआ है! [illegible] आप की उपकार गाथा का कहां तक वर्णन किया जाय! [illegible] हाथ लगाते ही चित्तवृत्ति स्तम्भित हो जाती है, [illegible] दुःखाश्रुओं के कारण अन्धकार सा छा जाता है! हाय [illegible] बदला! नाथ! हमारी इस निर्जीव लेखनी द्वारा लिखे हुए [illegible] से क्या होसकता है? केवल आप के पुण्य-चरित्र के [illegible] जो पुण्यांश प्राप्त होगा, उसी को हम मां भारती के चरणों पर [illegible] कर आप जैसे पुण्य पुरुष के अवतार लेने और इसका उद्धार [illegible] आशा करते हैं।

महाराष्ट्र के इतिहास को दृष्टि पथ में रखकर उसकी पूर्व [illegible] का अवलोकन करने पर जो अपूर्व काल का परिचय में आती है, [illegible] पर से इस देश को जगदीश्वर की पूर्ण अनुकम्पा का [illegible] अनुचित नहीं जान पड़ता। प्राचीन दिनों से ही यहां की जनता [illegible] स्वतंत्रता की घुटी दिलाई है। महाराष्ट्र की ये उच्च पर्वत [illegible] विस्तीर्ण सरिताएं, पाषाणमय कठोर भूमि, [illegible] देह एवं तेजस्वी बुद्धि उत्पन्न करनेवाला जल-वायु सभी [illegible]

स्वातंत्र्य पोषक है। पराधीनता का बीज इस महाराष्ट्र देश और महा राष्ट्रीय वायु में ऊग ही नहीं सकता। यदि अंकुर निकल भी आया तो वह चिरकाल टिक नहीं सकता। और कम से कम उसमें परा धीनता का वृक्ष तो कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकता। भारत पर अब तक अनेकों बार विदेशियों के आक्रमण हुए, किन्तु फिरभी महाराष्ट्र पर- तन्त्रता के अस्थायी साम्राज्य में इने गिने दिन ही रहा। और इसीलिये महासाधु समर्थ श्रीरामदास महाराज इसे 'आनंदवन भुवन' जैसे योग्य एवं सार्थक नाम से, संबोधन करते थे।

महाराष्ट्र की पुण्य-भूमि

पुण्य-पुरुषों को प्रसव करनेवाली माता है। वह वीर भूमि है, स्वातंत्र्य भूमि है, और इसीलिये समर्थ रामदास का 'महाराष्ट्र-धर्म' उस भूमि पर उदीयमान हुआ है! प्राचीन काल के उदाहरणों को तो छोड़ दीजिये, किन्तु अभी २ में ही प्रज्वलित पुण्यराशि, स्वातंत्र्य-प्रणेता छत्रपति श्री शिवाजी महाराज से लगा कर अन्तिम पेशवा के सेनापति बापू गोखले तक अनेक वीर पुरुषों को इस महाराष्ट्र जननी ने जन्म दिया है। स्वतंत्रता ही महाराष्ट्र का प्राण है, और इसीलिये यहां धर्म संस्थापक पुण्य पुरुषों का अवतार होता रहा है, तथा यह नियम अबाध रूप में प्रच- लित रहेगा। भग- वान तिलक इन्हीं पुरुषों में से समय चक्र से सवीं शताब्दि ारंभ में महाराष्ट्र स्वातंत्र्य नष्ट ा, और मध्य ाब्दि में अखिल ा की स्वतंत्रता लुप्त प्राय बनने ा। किन्तु सदा धार न रहने से अवस्था अपना ोष प्रभाव न दि ा सकी। राष्ट्री पारस्परिक सं- ्ध दृढ़ करनेवाले ता ने जो अंग्रेजी ू के साथ भारत । सम्बद्ध किया है; ; सर्व साधारण कल्याणार्थ ही है, इस प्रकार की भावना महाराष्ट्र में आरंभ ही थी। और देश काल एवं प्रसंग को देख कर, महा- ष्ट्र ने परिस्थिति के सम्मुख गर्दन भी झुकाई। किन्तु उन्नीसवीं ताब्दि की तीसरी पचीसी में उस मनोवृत्ति को प्रतिकूल पथ की ही. ार प्रेरणा होने लगी। अंग्रेजी शिक्षा के कारण चौंधिया जानेवाली नता पागल की भांति न जाने क्या २ बड़बड़ाने लगी। पूर्वेतिहास एवं ्व परम्परा में पली हुई जनता ने स्वाभिमान के वशीभूत होकर नई ाज्य व्यवस्था का लगभग बहिष्कार ही कर दिया, और तब निरे हानुल्लू लोगों के ही हाथ में राष्ट्रीय विचारों का धुरीणत्व जाने ागा। अपने राज्य शकट को सुगमता पूर्वक चलाये जाने में सहायता मलने की आशा से अंग्रेजों ने आंग्ल भाषा की शिक्षा पाया हुआ, ेखक (क्लार्क) वर्ग तैयार किया, और उन्हें बड़े २ अधिकारियों के थान दिये जाने लगे। फलतः राष्ट्रीय नेतृत्व भी उन्हीं को मिलने लगा। पर्यात् समय असमय यह समाज अंग्रेजी राज्य, अंग्रेजी धर्म और अंग्रेजी विद्या एवं अंग्रेजी संस्कृति की अनुचित स्तुति करने लगा। साथ ी उसे खुद अपने, अपने राष्ट्र, धर्म, विद्या और अपनी संस्कृति के षिषय में भी तिरस्कार प्रतीत होने लगा। अपने इतिहास एवं नियमों की परम्परा को बनाये रखने का स्वाभिमान और स्वार्थत्याग ही राष्ट्री- यत्व का जीवन माना जाता है। किन्तु नई शिक्षा के कारण कुछ ही समय में इस राष्ट्रीय-जीवन की धारा सङ्कुचित बनने लगी, और देश को स्वातंत्र्य वृत्ति पर भी आघात पहुँचने का भय प्रतीत होनेलगा। फिर भी यह दशा चिरकाल तक टिक न सकी। यदि अन्तिम युद्ध में पराभव भी होजाय, तो केवल उसी पर से किसी राष्ट्र के इतिहास की निरर्थकता सिद्ध नहीं हो सकती। युद्ध में एक प्रकार की दैवी आपत्ति है। यद्यपि शरीर पर भले का अधिकार होजाय किन्तु मन पर तो किसी की भी सत्ता सकती यह साहजिक प्रवृत्ति महाराष्ट्र में जागृत होने लगी, विचार सरणी को उत्पन्न कर महाराष्ट्र में जागृति की ज्योति शित करनेवाली मण्डली के अगुआ स्व० विष्णुशास्त्री चिपलूण और लोकमान्य बालगंगाधर तिलक यही दो महापुरुष थे। मानो महाराष्ट्र एक बार के लिये किसी के अधिकार में चला जाने से, वह सदासर्वदा ही पराधीन रहे और उसकी सब बातें हेय समझी जाती रहें, इस बात को लो० तिलक सहन नहीं कर सकते थे। क्योंकि वे

एक सच्चे राष्ट्रीय पुरुष

थे। वे हमेशा इस बात का विरोध करते रहे कि, यदि दैवयोग से कोई बात होगई, तो वह हमेशाही उस दशा में क्यों कर रह सकती है! महाराष्ट्र एक बार स्वतंत्र था, तब क्यों न वह पुन स्वतंत्र बनाया जाय! इसी स्वतंत्र विचार-सरणी का अनुसरण उन्होंने सब काम किये। अपनी राष्ट्रीयता को कायम रख कर स्वतंत्रता प्राप्त करना ही उनके जीवन का मूलमन्त्र था। अम- र्याद स्वदेश प्रेम से उनका अन्तः करण परिपूर्ण था। तत्का- लीन राष्ट्रीय अ- स्तित्व को जीवित रखने के लिये इसी प्रकार के पुरुष की आवश्यकता भी थी। कॉलेज में रहने की दशा में ही जिस बालवीर के अन्तः- करण में बुद्धिजन्य गुलामी का शल्य चुभ रहा था, उसने समझ लिया कि, यह सब परिणाम एकमात्र विवक्षित रूप में प्राप्त होने- वाली अंग्रेजी शिक्षा का ही है। अतः उस शिक्षा सूत्र को परकीयों के हाथ में से छीन कर अपने हाथ में लेने और अपने विचार एव कार्यों को उत्साह पूर्वक करनेवाले हजारों युवक महाराष्ट्र में उत्पन्न करके, पुन एक बार उसे राष्ट्रोद्धार के कार्य में लगाने के उद्देश्य से उन्होंने अपरिमितस्वार्थ त्याग कर केवल तीस रुपये मासिक पर निर्वाह करते हुए इस कार्य के लिये कमर कसी। इस कार्य के लिये उन्होंने ऐहिक एवं कई पारलौकिक सुखों को भी तिलांजलि देदी। और एक मात्र देश-सेवा और राष्ट्रोद्धार को ही मूलतंत्र मान लिया। यदि वे चाहते तो किसी सम्माननीय पद अथवा अधिकार वैभव को प्राप्त करना कोई कठिन बात न थी; किंबहुना उनके समान- बुद्धिमान मनुष्य के लिये अधिकारश्री और राज्यश्री भी दौड़ी फिरती, किन्तु उन्होंने उससे मुँह मोड़ कर स्वराज्य संग्राम का वीर कंकण ही अपने हाथों में धारण किया। धन्य वह माता की कोख, कि जिस से ऐसे नररत्न ने जन्म लिया! धन्य वह महाराष्ट्र कि, जहां ऐसे प्रज्वलमान देशभक्त उत्पन्न होते हैं।

लो० तिलक की दो पुत्रियाँ, दो पुत्र, लो० तिलक, दो पुत्र, धर्मपत्नी और बड़ी पुत्री।

तिलक महाराज का जन्म आषाढ़ कृ० ६ सं० १९१६ वि० (२३ जुलाई सन १८५६ ई.) में रत्नागिरि के मराठी शिक्षक पं. गंगाधर रामचन्द्र तिलक के घर हुआ था। बाल्यावस्था में ही उन्हें पितृसुख से वंचित होजाना पड़ा। क्योंकि दस वर्ष तक तो तिलक अपने पिता जी के पासही पढ़ते रहे, पश्चात अंग्रेजी पढ़ने के निमित्त वे पूना आये, और १६ वर्ष की अवस्था मॉट्रिकुलेट हुए। इसी वर्ष आप के पिताजी का भी देहांत हो गया। विधवा माता की देखरेख में आपकी पर्व होती रही। सन १८७६ में आप बी. ए. हुए और सन १८७९ में ...

थी। कॉलेज में रहते हुए गणितशास्त्र में आप सर्वोच्च रहे। १८७० [illegible] कि प्रोफेसर वार्डस्वर्थ ने इन्हें [illegible] ही बना [दिया] था। सन् १८७९ में डॉ० स्व० विष्णुशास्त्री चिपलूनकर ने अपनी शिक्षा [illegible] की ओर तब वे लो० तिलक के साथ आ मिले। दोनों ने मिल कर सन् १८८० में न्यू इंग्लिश स्कूल स्थापित किया। इसके बाद आगरकर आदि और भी दो चार व्यक्तियों ने आप से सहयोग किया और यह कार्य बड़े ही जोश ख़रोश के साथ चल निकला। आरंभ से ही उन सब लोगों की प्रतिज्ञा थी कि, यह स्कूल बिना सरकारी सहायता लिये ही चलाया जाय। उसी समय 'राष्ट्रीय-शिक्षा' की ध्वनि चारों ओर उठने लगी। किन्तु दुर्भाग्यवश विष्णुशास्त्री युवावस्था में ही स्वर्गवासी होगये। फिर भी मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपने सहकारियों की सहायता से विस्तृत लोकशिक्षा देने के निमित्त 'केसरी' और 'मराठा' ये दो मराठी एवं अंग्रेजी समाचार पत्र निकाल दिये थे। केसरी शुरू दिन से ही केसरी की भांति गर्जना करता रहा है। कहीं भी अन्याय या ज़ोर ज़ुल्म होता सुनाई पड़ा कि, वहां केसरी मौजूद ही समझिये। यह गरीबों का पक्षपाती, दुखियों का सहायक और परतंत्रता एवं अन्याय का कट्टर शत्रु है। कोल्हापुर की राज्यगद्दी को श्रीशिव छत्रपति के साक्षात् वंशजों की गादी समझ कर लो० तिलक उसे अभिमान का चिन्ह समझते रहे। और वे बारम्बार कहते रहे कि, परतंत्रता के साम्राज्य में यदि किसी रूप में स्वतंत्रता पूर्वक सिर उठाये रखनेवाला कोई राज्य है, तो वह एक मात्र कोल्हापुर ही। उस अभिमान करने योग्य राज्यधानी में पराये लोगों के सिखाने से वहां के दीवान के किये हुए बुरे कार्यों की आपको आलोचना करनी पड़ी, और कोल्हापुर के स्वर्गीय महाराज के लिये लो० तिलक को प्रथम बार

एक सौ एक दिन तक कारावास

भोगना पड़ा। आप के साथ आगरकर भी थे। जिस कोल्हापुर के लिये लो० तिलक को इतने कष्ट उठाने पड़े, उसी की ओर से उनकी उत्तरावस्था में महाराजा एवं उनके मन्त्रिमण्डल ने क्या २ गज़ब ढाया है! यह सब पर प्रगट ही है। सच है, कलियुग के नियमानुसार नेकी का बदला बदी से ही चुकाया जाता है। कोल्हापुर के [लिये] भोगा हुआ कारावास ही वास्तव में लो० तिलक का आरं[भि]क [illegible] जीवन था। कारागृह से मुक्त होते ही लो० तिलक ने [पु]नः अध्यापनकार्य शुरू किया। शीघ्र ही आप की पाठशाला फर्ग्यूसन [कॉले]ज के रूप में बदल गई, किन्तु सन् १८९० में आपको अपने [प्रोफे]सरी के पद से त्याग पत्र दे देना पड़ा। और उसी समय डेक्कन एजुकेशन सोसायटी की स्थापना भी हुई। किसी भी संस्था के स्थापन[कर्ता]ओं का तेज, और जिस विशिष्ट ध्येय के लिये वह संस्था [स्था]पित की जाती है, उसकी जानकारी एवं तदनुरूप सर्वस्व [अर्पण] कर देने की वृत्ति, यदि भावी संचालकों में न हो तो वह [संस्था] नाममात्र की ही रह जाती है। उसके प्राण पखेरू [उड़ जाते] हैं। स्व० विष्णुशास्त्री और लो० तिलक ने [जिस भा]वना, स्वार्थत्याग और स्वाभिमान का बीज बोने के लिये जो [फर्ग्यू]सन [illegible] तैयार किया था, वह यद्यपि कायम है और [illegible] शिक्षा का पवित्र कार्य स्वार्थत्याग पूर्वक [illegible] भी चला रही है, यह बात देश के लिये आशाजनक [illegible] है।

लो० तिलक ने कॉलेज छोड़ कर केवल 'केसरी' और 'मराठा' को [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

मिशनरियों ने राजकीय सत्ताधारियों के प्रोत्साहन से [illegible] संस्कृति और उसके धर्म एवं इतिहासादि पर मनमाने [illegible] प्रगट कर, परकीयों के अनुयायी होने के कारण स्वराज्य के [लिये] उसे अनधिकारी बतलाने की गड़बड़ मचाई, और [illegible] सुधारकों ने अपनी अल्पज्ञता के कारण उस पर विश्वास [कर] लिया। यह प्रश्न केवल महाराष्ट्र से ही नहीं वरन् अखिल [भारत] से सम्बन्ध रखता था। लो० तिलक ने उसका कठोर [विरोध] किया, क्योंकि वे उपरोक्त परावलम्बी विचारसरणी को [illegible] देना चाहते थे। वे इस बात को स्वीकार करते थे कि, हमारे [समाज] में कई प्रकार की त्रुटियाँ अवश्य हैं, किन्तु केवल इसी एक [कारण] से कोई हमें राजकीय बातों का अनधिकारी सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि उन त्रुटियों के रहते हुए भी पहले हम स्वतंत्र थे, अतः [अब] ही हम फिर भी स्वतंत्र हो सकते हैं। वे कहते थे कि, यदि हमें अपनी सामाजिक त्रुटियों को दूर करना है तो उन्हें हम ही करें उसमें दूसरों के हाथ डालने की आवश्यकता नहीं है! जो लोग यह समझते हैं कि, तिलक जैसे असामान्य पुरुष को अपने (समाज के) दोष दिखाई नहीं देते थे! तो यह केवल उस कहने वाले की ही मूर्खता है। लो० तिलक चाहते थे कि सम्पूर्ण जन समाज धीरे [धीरे] सामर्थ्य पथ की ओर अग्रसर हो, किन्तु वह परकीयों के [illegible] नियमों की सहायता न ले। अपने राष्ट्रीय दुर्ग के किसी एक बुर्ज की कमज़ोरी का ज्ञान रखते हुए जिस प्रकार कोई प्रवीण किलेदार उसकी रक्षा के लिये जीतोड़ यत्न करता है, उसी प्रकार लो० तिलक ने भी किया। उन्हें यह राजनैतिक दाव अच्छी तरह ज्ञात हो गया था कि, यदि यह बुर्ज कच्चा होने के कारण परकीयों के हाथ में चला गया तो संभवतः सारा दुर्ग ही उनके अधिकार में चला जायगा। लो० तिलक ने इस समस्या को जिस चतुराई से हल किया, वह अतिशय प्रशंसनीय है। लो० तिलक सदैव कहा करते थे कि, भारत की राष्ट्रीय संस्कृति एवं धर्म परम्परा और राष्ट्रीयता नष्ट होकर यदि सारे भारतवासी अंग्रेजी संस्कृति के शुद्ध [illegible] अर्थात् अन्तर्बाह्य सब प्रकार से नकली साहब बन जाने के बाद ही स्वतन्त्र हुए, इसकी अपेक्षा यह भी क्या बुरा है कि सारा भारत ही हिन्द महासागर में डूब जाय? उनकी ओर से सुधारणा के विरुद्ध किये जाने वाले आन्दोलन का यही रहस्य था। आज उन्हें भले ही कोई कुछ कहता रहे, किन्तु भावी स्वतन्त्रता के इतिहासज्ञ राष्ट्रीय भावना को जीवित रखने के लिये उनका गुणगान करके ही कृतज्ञता प्रगट करेंगे। उन्होंने प्रायः उन सब नये किन्तु पोच विचारों का दृढ़तापूर्वक खंडन किया। उनके विरोध का सच्चा मर्म उपरोक्त बातों में ही है, और उसे पहचानने के लिये उस समय के [illegible] वेदादि का विधिनिषेध न मानते हुए भारत के प्राणों पर संकट [खड़ा] करने वाले [illegible] सुधारकों की लीला को दृष्टि में रखना पड़ेगा। सच्ची सुधारणाओं के लिये लो० तिलक विरोधी न थे किन्तु राष्ट्रीयता को समूल नष्ट कर देने वाली सुधारणाओं की [illegible] को ही कुछ काल के लिये आपद्धर्म समझ कर [illegible] कर लेने में वे कोई हानि न समझते थे। प्रायः प्रत्येक राष्ट्रीय पुरुष के मस्तिष्क में यही विचारसरणी होना चाहिये, और यह है भी। [illegible] सामान्य जनता का विश्वास और अटल श्रद्धा उनके अनेक गुणों के साथ २ इस मुख्य गुण से ही विशेष प्रमाण में उत्पन्न की थी।

राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की स्थापना होते ही तिलक उसके भक्त बन गये, और अनेक महत्व के प्रश्नों पर उनके भाषण भी होने लगे। सन् १८९५ में जब पूने में कांग्रेस की बैठक हुई, तब [illegible] तिलक उसके मुख्य विभाग के मंत्री चुने गये थे। [illegible]

[illegible]

[illegible]

कर उन्हीं ने उसे पवित्र बनादिया। कारागार से मुक्त होते ही लो० तिलक ने पुनः "हरिः ॐ" कर के राष्ट्रीय कार्य में हाथ लगाया। यह तो एक साधारण सी बात थी कि अखिल भारत का ध्यान उनके विचारों की ओर आकर्षित हो गया, और राष्ट्रीय संजीवनी की मात्रा से भारत जागृत होने लगा। लो० तिलक का बढ़ता हुआ प्रभुत्व नौकरशाही को कैसे सहन हो सकता था! लो० तिलक उसकी एक २ भूल पर कड़ी आलोचना करने लगे। भोगी हुई सजा से यह और निरुत्साह न बनकर भीम की तरह दस सहस्त्र हाथी के जैसा बलपूर्वक कार्य करने लगा। राष्ट्रीय कार्य के लिये भी व्यक्तिनिष्ठ नैतिक आचरण के आश्रय की आवश्यकता रहा करती है। पर लो० तिलक के नैतिक आचार के विषय में उनके शत्रु को भी शंका न हो सकती थी। जब कोई बात सिर पर आने लगती है तो मनुष्य न जाने क्या २ प्रयत्न न करने को तैयार हो जाता है। यही दशा तिलक के शत्रुओं की भी हुई। ताईमहाराज के मामले में उन्होंने लो० तिलक पर घृणित दोषारोपण करना आरम्भ किया, किन्तु यह

दूसरा दिव्य

भी लो० तिलक के लिये यशप्रद ही हुआ। हां इसमें मुक्त होने में उन्हें कष्ट बहुत उठाने पड़े। एक ओर सर्कार अपनी अनुकूल सामग्रियों से सजी हुई खड़ी थी, और दूसरी ओर एक असहाय व्यक्ति तिलक था। उस में भी फिर यह मुकदमा कौटुम्बिक था, और आरोप अतिशय घृणित थे। किन्तु उन सब से इस वज्र-हृदय के वीर ने मुक्ति प्राप्त की। ताई महाराज के मामले में फौजदारी अभियोग में ही नहीं, वरन् दीवानी अभियोग में भी पंद्रह वर्ष लड़कर अन्तको उन्होंने विजय प्राप्त की। लो० तिलक की दृढ़ता, कार्यतत्परता, और साहसिकता आदि अपूर्व ही थी। उनके शत्रुओं का कहना यह था कि, तिलक को अपने हठ एवं उपद्व्याप के कारण ही यह मुक़दमा लड़ना पड़ा है। किन्तु सम्पूर्ण अभियोग का यथेति स्वरूप अवलोकन करने पर, तथा उस में सर्कारी अधिकारियों की चली हुई चालों की बारीकी से जांच करने पर यही ज्ञात होगा कि, उन लोगों का उद्देश्य लो० तिलक को नीतिभ्रष्ट बतलाकर राष्ट्रीय कार्य में भारी धक्का पहुंचाना ही था! किन्तु लो० तिलक के पास तो अपनी अप्रतिहत बुद्धि, असीम राष्ट्रभक्ति और इन सब को पुष्ट बनाये रखने वाले निष्कलंक चरित्र एवं स्वार्थत्याग तथा नीतिमत्ता की ही पूंजी थी। और जिस शुद्ध नीति की वेदी पर वे खड़े हुए थे, उसे नीतिभ्रष्टता रूपी सुरंगों द्वारा उड़ा देने विषयक नौकरशाही की चाल थी, किन्तु वह सब निरर्थक हुई। नौकरशाही ने यही चाल पहले भी अनेक देशभक्तों के विषय में चली थी, किन्तु उन में उसे एकआध बार ही सफलता मिली है। फलतः यह काल भी लो० तिलक के जीवन में संकटमय ही बीता।

सन १९०४ में लार्ड कर्ज़न ने बंगभंग कर के समस्त बंगालियों का अंतःकरण हिला दिया। वाइसराय और स्टेट सेक्रेटरी ने भी उसे (अकाँलिस्ड फेक्ट) वज्रलेख कह कर ही प्रगट किया। इस कार्य के विरुद्ध अर्जियाँ दी गई, निषेध प्रदर्शक प्रस्ताव और डेपुटेशन तक भेजे गये, किन्तु उनका कुछ भी उपयोग न हुआ। देशभर ने वैध-आन्दोलन द्वारा अपने प्रश्न का निपटारा कराना चाहा, किन्तु प्रचलित आन्दोलन के सन्मुख यह मार्ग निराशाजनक प्रतीत हुआ। फलतः बहिष्कार की कल्पना प्रादुर्भूत हुई। लो० तिलक एवं अन्यान्य राष्ट्रीय नेताओं ने इसे आशाजनक बतलाया। स्वदेशी व्रत महाराष्ट्र में पहले से ही प्रचार में था, उसे प्रस्तुत घटना के कारण विशेष उन्नतावस्था प्राप्त हो गई! साथ ही कठिन बहिष्कार का भी प्रयोग किया गया। इस विचार के द्वारा सब की आंखें खुल गईं, और केवल विदेशी माल का ही नहीं, बरन् उस विदेशी सर्कार की न्यायालय, स्कूल, कॉलेज आदि संस्थाओं का भी बहिष्कार कर दिया जाकर, अपने न्याय कार्य के लिये पंचायत प्रथा एवं राष्ट्रीय पाठशालाओं की स्थापना हुई। किन्तु उतने ही से काम न चल सकता था। क्योंकि ये सब कार्य केवल मलम-पट्टी जैसे ही थे। भारत के मुख्य रोग पर रामबाण उपाय एक मात्र

स्वराज्य

प्राप्त कर लेना ही था। यही विचार उस समय यत्रतत्र फैलने लगा। और अखिल भारत को इस विचारशैली का अनुयायी बनाने के लिये बंगाली नेताओं के समान, किंबहुना उनसे भी कई गुना अधिक श्रम यदि किसी को उठाना पड़ा हो तो वह केवल लो० तिलक महाराज को ही। स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय-शिक्षा और स्वराज्य के क्रमबद्ध मार्ग से राष्ट्रीय आकांक्षा का वेग बढ़ने लगा। अखिल भारत में भ्रमण कर लो० तिलक ने उपरोक्त चारों तत्वों का निनाद गुंजा दिया। उनके प्रयत्न से राष्ट्र जाग उठा और स्वराज्य के पथ पर आ लगा। लो० तिलक बड़ी ही सावधानी से अपना मार्ग ठीक करते जाते थे, वे जागृत थे और उन्हें अपने ध्येय पर विश्वास था। इन सब विचारों के साथ ही वे यह भी जानते थे कि, अपने प्रयत्न की सफलता संगठित शक्ति के बिना असम्भव सी ही है। उसकी यदि कोई स्थान विशेषता होगी तो एक मात्र किसी भी वृक्ष की जड़ें बिना गहरी गये वह आकाशगामी बढ़ता की बाढ़ में टिक नहीं सकता, अतः उत्साह के वेग में उत्पन्न हुए विचाररूपी वृक्ष को किसी राष्ट्रीय संस्था की जड़ दृढ़ किये बिना काम नहीं चल सकता था। बस, इसीलिये लो० ... अपने राष्ट्रीय दल की स्थापना कर दी। स्थान २ पर अपने अनुयायी नेता निर्माण किये, और देश भर में लो० तिलक एवं सहकारियों का प्रचार होने लगा। जहां तहां राष्ट्रीय ... तथा पंचायती अदालतें कायम होने लगीं। गणपति एवं ... उत्सव को भी नया स्वरूप प्राप्त हो गया। और पुनः देश भर में मत, एक विचार और एक चित्त से राष्ट्रीय कार्य आरम्भ हो ... फलतः नौकरशाही के पेट में फिर दर्द उठा खड़ा हुआ। क्योंकि ... बात को वह खूब जानती थी कि, पराधीन राष्ट्र को एक बार ... संगठित प्रयत्न का महत्व ज्ञात हो गया कि, फिर उसको ... होने में विशेष विलम्ब नहीं लगता। बस, इसीलिये ... को भी निरर्थक करने के लिये कमर कसी। उसके लिये यह ... कई अंशों में अनुकूल था। बंगालियों की ओर मोड़ने के लिये ... मुसलमानों को भड़काया और हजारों लोगों के मालमत्ते एवं ... बालबच्चों पर हमले होने लगे। प्राण एवं सम्मान पर ही जब ... आने लगी तो, बंगाली हिन्दुओं ने आत्म रक्षा के लिये अखाड़े ... नाना प्रकार की शरीर बलवर्धक सामग्रियाँ खड़ी कर दीं। साथ ... और मारक दोनों तरह के शस्त्रास्त्र तैयार होने लगे और ... सिलसिले में बम की उत्पत्ति भी हुई। इसके लिये जितना ... दायित्वभार राष्ट्रीय नेताओं पर था, उससे कहीं अधिक सर्कार ... भी था। इस बात का उल्लेख निष्पक्षपाती इतिहासकारों द्वारा ... बिना नहीं रह सकता। इधर सन १९०५ की कांग्रेस में बहिष्कार ... का प्रस्ताव भी स्वीकृत हो गया। किन्तु उसी समय देश का ... यह कंटकाकीर्ण मार्ग जिन्हें पसंद न था, वे लोग प्रलाप करने लगे ... स्वदेशी और बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्य ये चारों ही ... अस्त्र से थे। और परकीय राज्य में अर्जी देना या ऐसे प्रस्ताव पास करना निरर्थक माना जाकर उस समय स्वावलम्बन के तत्व पर आन्दोलन करना अर्थात् नाना प्रकार के संकटों का सामना करना ही आवश्यक समझा गया। किन्तु देश के पुराने नेता जिस विचार परम्परा और विचारसरणी एवं सभ्यता में वृद्धि लाभ कर चुके थे, उन्हें यह नया मार्ग क्यों कर पटने लगा! मोटा और भद्दा स्वदेशी कपड़ा काम में लाकर ब्रिटिश माल का बहिष्कार करना, और सदा की जूनी पुरानी पाठशालाएँ छोड़ कर नई दरिद्री शालाएँ स्थापित करना उन्हें अपनी मनोवृत्ति के प्रतिकूल जान पड़ा। उन्हें अंग्रेजों की चतुराई और राजकार्य्य को कुशलतापूर्वक चलाने की बात के बदले स्वराज्य का प्रश्न केवल धृष्टता मात्र ही प्रतीत होने लगा। फलतः देश में दो दल बन गये। सन १९०६ की कांग्रेस को दादाभाई नौरोजी ने उपरोक्त चारों तत्वों का स्वीकार करते हुए 'स्वराज्य' के झंडे के नीचे सफल बनाया। किन्तु १९०७ में सूरत कांग्रेस का भंग हो गया।

राष्ट्रीयपक्ष

और उसके तत्व देशवासियों को पटकर राष्ट्रमान्य संस्था स्वराज्य के लिये परिवर्तित काल की परीक्षा करते हुए नये शस्त्रास्त्र धारण करे, इस प्रकार राष्ट्रीय पुरुषों का आग्रह था। और इन तत्वों के प्रसार ... राष्ट्रीयदल का नेतृत्व एकमतसे लो० तिलक को प्राप्त हो चुका था। ... लो० तिलक भी राष्ट्रीय सभा के अनन्य भक्त और सच्चे पुरस्कर्ता थे। उनके प्रतिपक्षी भलेही कुछ कहते रहें, किन्तु यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि, उन्हें राष्ट्रीय सभा और देश के महत्व का सम्यक् ज्ञान था। यही नहीं किन्तु साथ ही उनकी यह भी इच्छा थी कि राष्ट्रीय सभा कार्यक्षम बने और परमुखापेक्षी न रहे वे चाहते थे कि कांग्रेस को साबित बनाये रखकर ही नये तत्वों को अमलमें लाया जाय। कि-न्तु प्रतिपक्षियों की दृष्टि से ऐसा होना असंभव ही था। सूरतमें पहले दिन का बखेड़ा शान्त हो जाने पर दूसरे दिन पुनः कांग्रेस में जाने को वे तैयार थे। और यद्यपि वह बात अशक्य सी ही थी, तथापि राष्ट्रीय सभा का अगला कार्यक्रम चलाने के लिये उन्होंने एक कमेटी स्थापित कर ही दी थी। यदि भारत के भाग्य से तिलक महाराज और कुछ दिन रहते तो अवश्य ही वे राष्ट्रीय सभा की नई रचना कर दिखाते। सूरत प्रकरण से यह एक बात सिद्ध होगई कि, वे देश के अंतिम हित के लिये तैयार थे। सूरत से लौटने के बाद से १९०८ के आरंभिक मास और दिनों को उन्होंने जिन संस्थाओं का निर्माण किया था, उनकी रक्षा और वृद्धि करने तथा अपने तत्वों का प्रसार करने में ही व्यतीत किया। उस समय उन्होंने सभी ओर को भ्रमण किया और क्षणमात्र के लिये भी विश्राम न लिया। बम्बई की प्रान्तिक परिषद् धूलियामें हुई, और इसके बाद तत्काल ही उन्होंने देशको स्वावलम्बन ... मद्यपान ... यह ... मद्यपान ही

रोक सदैव के लिये ही क्यों न कर दी जाय। और पूना आकर अपने प्रतिज्ञा की कि यदि जनताने स्वार्थत्याग और स्वावलंबन का निश्चय कर लिया तो मैं आठ दिन में ही मद्यपान की प्रथा उठा दूंगा। बस, दूसरे ही दिन से आपने प्रत्येक मद्य की दूकान पर हाथ पाँव जोड़ कर मद्यपान का निषेध करनेवाली स्वयं-सेवक मंडली खड़ी कर दी। खुद लो० तिलक उनकी देखरेख करते हुए घूमने लगे। इस प्रयत्न में यहां तक सफलता मिली कि, जिस पूना शहर में नित्यप्रति हजारों गेलन शराब को लोग गले के नीचे उतार देते थे, उसी जगह शराब का एक बूंद भी न बिक सका, और मद्यपान की समस्या सहज ही में हल हो गई। लोकमत जागृत करके शराब पीनेवाले मनुष्य को अपने व्यसन पर लज्जित बना कर उससे मुक्त करने का यह प्रयत्न था; जो पूरी तरह सफल हुआ। किन्तु लोक-जागृति और संगठित प्रयत्न को सर्कार नहीं चाहती थी। लो० तिलक की बढ़ती हुई प्रभुता और उनकी कर्तव्य शक्ति उसे असह्य प्रतीत होने लगी। लो० तिलक के राष्ट्रीय धर्म प्रसार से देश भरमें क्रान्ति मच गई। विचार उच्चार और आचार में तेजस्विता आगई। तिलक के विरोधी लोग जानते थे कि, यदि उन्हें मद्यपान निषेध के आन्दोलनमें सफलता मिल गई, तो फिर अगले प्रयत्नों में उन्हें कुछ भी कठिनता न उठानी पड़ेगी। बस, इसी कारण उन्होंने प्रथम आठ दिन के बाद ही विरुद्ध पक्षमें प्रयत्न आरंभ कर "मद्यपान स्वातंत्र्य" नामक एक नई स्वतंत्रता को जन्म दे डाला। सर्कार भी उस समय किसी न किसी रूपमें अपनी अधिकार-शक्ति को उपयोग में लाना चाहती ही थी, और उसे अपने प्रयत्नमें सफलता भी मिली। रोक टोक और पकड़ धकड़ एवं मार पीट शुरू होगई। और लो० तिलक ने द्रव्य द्वारा एवं प्रयत्नपूर्वक उनको सहायता दी। वे खुद रात दिन लोगों की सहायतार्थ तैयार रहे, यहां तक कि उन महापुरुषने एक छोटे से पुलिस कर्म्मचारी का किया हुआ अपमान भी सहन कर लिया। यह समय लो० तिलक की तपश्चर्या में कसौटी का था, किन्तु उसमें वे सफल हुए। सरकार के हठ करनेपर उन्हें मद्यपान निषेधक आन्दोलन रोक देना पड़ा। किंतु वह आन्दोलन पूनेमें जो भी बन्द हो चुका था, तथापि महाराष्ट्र में सर्वत्र ही वह प्रचलित था। फलतः सरकारको सर्वव्यापी आन्दोलनका भय प्रतीत होने लगा। राष्ट्रीय भावना को जागृत होने देकर संगठित आन्दोलन के प्रचलित रहने देने से अपने ही हाथ ही संकट का सामना करना होगा, यह सोच कर उसने आन्दोलन के आधारस्तम्भ को ही उखाड़ देने का निश्चय किया। केसरी के कुछ लेखों पर से मुजफ्फरपुर वाली दुर्घटना के छह महीने बाद ही [illegible] की प्रांतिक परिषद और मद्यपान निषेधक आन्दोलन के केवल दो मास पश्चात ही लो० तिलक पर राजद्रोह का

लो० तिलक सन १९१४ में मंडाले से मुक्त होकर आने के बाद।

मुकद्दमा चलाया गया। इस बार लो० तिलकने उस मुकद्दमे की पैरवी खुद ही की और अपनी असाधारण युक्तियों द्वारा सब को दांतों उंगली दबवा दी। मराठी भाषा न समझनेवाली अंग्रेजी ज्यूरी ने लो० तिलक के विरुद्ध फैसला कर दिया। न्यायमूर्ति दावर ने अत्यन्त कटु शब्दों में लो० तिलक की देशभक्ति पर लांछन लगाने का प्रयत्न कर

छह वर्ष कालेपानी

और एक हजार रुपये जुर्माने की सज़ा का हुक्म सुना दिया। यह प्रसंग भी लो० तिलक के लिये कसौटी का ही था। किंतु उपरोक्त दण्डाज्ञा को सुनकर उनके चेहरे पर किसी भी प्रकार का प्रभाव न पड़ा। उस समय उनके शरीर में दैवी शक्ति का संचार हो गया था। [illegible] भारतीय स्वातंत्र्य के देवता संचार कर रहे थे। तत्काल ही भारतीय स्वातंत्र्य भावना का उदय हुआ। [illegible] ने हिरण्यकश्यप को जिस शांति के साथ और धीर वीर दैवी तेज से [illegible] हो कर उत्तर दिया था, उसी प्रकार लो० तिलक ने भी उत्तर दिया कि, "ज्यूरी को यद्यपि [illegible] करने वाली दैवी-शक्ति इन लौकिक [illegible] शक्ति की अपेक्षा श्रेष्ठ तर है। जान पड़ता है कि, इस दैवी शक्ति की इच्छा मेरे कष्ट उठानेहीसे देश को उन्नत बनाने की है। यदि यही बात है, तो उस प्यारे देश के हितार्थ मैं अपने प्राणों को भेंट कर डालने के लिये तैयार हूं।" [illegible] स्वदेश भक्ति के इस दिव्य मिनार से [illegible] उठे और देशवासी ने [illegible] कहा। स्वयं दुःख सहकर [illegible] कर देश का मुख उज्वल करूंगा, सर्वस्व त्याग कर राष्ट्र की उन्नति करूँगा और प्राणों की बलि देकर देश का उद्धार करूंगा—लो० तिलक के इस निश्चय से ही भारत का उद्धार होगया। आत्मसमर्पण के द्वारा उन्होंने स्वतंत्रता के मार्ग का एक भारी गड्ढा पूर दिया। धन्य लो० तिलक और धन्य यह भारत देश! अपनी आहुती के द्वारा लो० तिलक ने भारत भूमि को ईश्वरी कृपा का पात्र बनादिया। १९०८ के बाद भारत के उद्धार का मार्ग सुगम हो गया, और तब संसार में ऐसी एक भी शक्ति न बची कि, जो भारत की स्वातंत्रता की अवरोधक बन सकती थी।

इन सब कार्यों से ही तिलक लोकमान्य तिलक बन गये। उनके कालेपानी की सज़ा से दुखित बनी हुई जनता ने स्थान २ पर अपना विराट् स्वरूप धारण कर संगठित राष्ट्रीय शक्ति का चमत्कार दिखाया। लो० तिलक की अनुपस्थिती में राष्ट्रीय आन्दोलन धीमा पड़ गया और चारों ओर निस्तेज शान्ति फैल गई। देश भर राष्ट्रीय तपश्चर्या में लग गया। इधर लोकमान्य तिलक ने मण्डाले में गीतारहस्य लिखना आरंभ करदिया। ईश्वरीय नियमानुसार यहां नयेप्रश्न उत्पन्न होने लगे। दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों की दुरावस्था को देख देशवासियों को अपने राष्ट्र की कमज़ोरी का ज्ञान हो गया, और उसी समय ईश्वरीय प्रेरणा से यहां एक नया अवतार होगया। बेरिष्टर गांधी ने सर्वस्व त्याग कर सन्यास धारण कर लिया, और इन्हीं महात्मा ने भारत के बाहर अपना कार्यारंभ कर दिया। जैसे कंसवध करनेवाले मोहन को गोकुल में जन्म धारण करना पड़ा, उसी प्रकार परावलंबन, आलस्य एवं आधिभौतिक सुखवाद का नामशेष कर नवीन दैवी तेज उत्पन्न करते हुए लो० तिलक का कार्य चलानेवाले नेता सामने आने लगे। नौकरशाही की भी एक २ चाल बेकाम होने लगी। मुस्लिम युनिवर्सिटी का एक नया ही प्रश्न उत्पन्न हुआ, जिसके कारण कि, नौकरशाही की चालों में फँसे हुए मुसलमान लोग स्वतंत्र हो गये। थियासफी के गूढ़ तत्वों को सुलझाने वाली मि० बिसेन्ट भी राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने लगीं, और अगली तय्यारी भी ओर शोर से होने लगी। छह वर्ष की सज़ा भोग कर सन १९१४ ई. में

लोकमान्य तिलक वापस लौटे

और तत्काल ही उन्होंने सब बातों की जांच पड़ताल कर पुनः अपना राष्ट्रीय कार्य आरंभ कर दिया। छह वर्षों में उनके स्वास्थ्य में भी बहुत कुछ फेरफार हो गया था, शरीर यदि मानसिक क्लेश के कारण जर्जरित बन गई थी। किन्तु फिर भी चित्तवृत्ति वह कर्मयोगी के सदृश ही थी। उनकी महासाध्वी भार्या ने उनकी अनुपस्थिति में इहलोक का परित्याग कर अपने परमपूज्य पतिदेव की तपश्चर्या को पूर्ण सफलीभूत बनाने के लिये स्वर्ग में जाकर ईश्वर के निकट धरना दे दिया था। लो० तिलक का सांसारिक प्रपंच अब तक समाप्त होगया था, और वे राष्ट्र के लिये कर्मयोगी सन्यासी बन चुके थे। इसी दैवी सामर्थ्य के बल पर उन्होंने नये कार्यक्रमों को हाथ में लिया। सन १९१५ में पूने में प्रांतिक परिषद की योजना करके उसके द्वारा महाराष्ट्र की संगठनशक्ति का संचय किया। यह भी यहां [illegible] था। तिलक के सहायकों ने देशप्रेम और स्वाभिमान की ज्योति भी जागृत बनाये रक्खी थी। सन १९१५ में लो० तिलक ने सुसंघटित मजबूत एवं [illegible] राष्ट्रीय संस्थाएं स्थापन करना आरंभ किया। उनके जीवन के अंतिम भाग का यही कार्य मुख्य था। प्रांतिक परिषद के बाद उन्होंने अपनी संस्थाओं का जाल देश भर में फैलाना आरंभ कर दिया। नौकरशाही के सुसंगठित बल से टक्कर लेने के लिये और उसके साथ में [illegible] साधन सामग्री का [illegible] करने के लिये उन्होंने भी यहां सब कुछ [illegible] करने का निश्चय किया। सन १९१६ के [illegible] मास में उन्होंने "होम रूल लीग" की स्थापना करके १९१६ में लखनऊ की [illegible] परिषद में उसकी [illegible] भी की। इसके बाद [illegible] में जिस [illegible] इसके द्वारा [illegible] राष्ट्र में [illegible] करने का उन्होंने निश्चय किया। "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, और उसे मैं लेकर ही रहूँगा।" इस महामंत्र का [illegible] उन्होंने दृढ़ कर दिया। [illegible] होगया, और इसके [illegible]

मिला। लो० तिलक स्वयंसेवकों की सेनाएँ खड़ी करने के लिये अविराम प्रयत्न करने लगे, और साथ ही उन्होंने सर्कार से यह भी कहा कि, फौजी अधिकारियों के पद भारतवासियों को दो। किन्तु नौकरशाही को दोनों ही बातें नहीं चाहिये थी, अर्थात् न तो यह राष्ट्रीय बुद्धि से जागृत स्वयंसेवकों की सेना ही चाहती थी, और न भारतीयों को फौजी अधिकारी ही बनाना उसे इष्ट था। एक प्रकार से इस काम में लो० तिलक से बड़ी भारी भूल हुई। महायुद्ध की आग इस प्रकार भड़की रहने की दशा में लो० तिलक के आन्दोलनों का विरोध करने के लिये नौकरशाही पुन. प्रयत्न करने लगी। सुसंगठित संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय कार्य को आगे जोर शोर से चलाने के विषय में उनका दृढ निश्चय सुन कर महाराष्ट्रीय जनता ने उनकी इकसठवीं वर्षगांठ के दिन एक लाख रुपये की थैली उनको अर्पण करके उसे अपने निज उपयोग में लाने का निवेदन भी किया। किन्तु उन महापुरुष के लिये निजी संसार तो था ही कहां? तत्काल उन्होंने उस लाख रुपये में अपनी ओर से तुलसीदल और मिलाकर पुनः सार्वजनिक कार्यों में उसे अर्पण कर दिया। यहां फिर नौकरशाही को उनकी संगठित शक्ति एवं तपश्चर्या का तेज असहनीय प्रतीत होने लगा! उसने उसी वर्षगांठ के दिन उन पर जबानबन्दी की जमानत का मुकद्दमा चलाया। और मजिस्ट्रेट ने जमानत दाखल करने की आज्ञा दे डाली, किन्तु हाइकोर्ट में जाकर वह फैसला बदला गया। नौकरशाही की तिलक साथ होने वाली यह तीसरी टक्कर थी, किन्तु इस बार भी वही हारी। इसके बाद फिर नौकरशाही ने कभी उनके विरुद्ध सिर न उठाया। लो० तिलक ने इसके बाद अपना स्वराज्य का दौरा करके सर्वत्र ही स्वराज—नाद गुँजा दिया और इसके बाद वे १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित हुए। इसी कांग्रेस में स्वराज्य योजना स्वीकृत हुई और स्वराज्य संघ को जागृति का कार्य सौंपा गया। लखनऊ में लो० तिलक ने हिंदू मुसल्मानों में एका करके राष्ट्रीय समस्या को बड़ी सुगमता से हल कर दिया। इस कार्य में भी उन्हें बड़े २ संकटों का सामना करना पड़ा, किंतु अंतको वे सफल यत्न ही हुये। वह दिन राष्ट्र के लिये स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य था। इसके बाद

राष्ट्रीय भावनाओं का वेग

उत्तरोत्तर बढ़ने लगा जिसके अधिष्ठातृ देव लो० तिलक ही थे। उन्होंने भारत के सभी प्रान्तों में दौरा किया और एक दिन के लिये भी विश्राम न लिया। इस प्रकार राष्ट्रीय जागृति की लहरों के धक्के से नौकरशाही का बांध टूट गया और वे धक्के ठेट विलायत तक पहुँचने लगे। महायुद्ध के कारण प्राप्त परिस्थिति से लो० तिलक ने पूरा २ लाभ उठाया। संसार भर के राजकीय विचारों में क्रान्ति मच कर जो नये तत्व प्रस्थापित हुए उन-स्वातंत्र्य, समता और आत्मनिर्णय के तत्वों-का लो० तिलक ने ज़ोर शोर से प्रचार किया। तहसील परिषद् से लगा कर जिला और प्रान्तिक परिषद् एवं राष्ट्रीय सभा में सर्वत्र यही जयघोष होने लगा। स्वराज्यसंघ का जाल सर्वत्र फैल गया और उसने गाँव २ में आन्दोलन मचवा दिया। जहां तहां लो० तिलक की मूर्ति स्वतन्त्रता का झंडा फहराने लगी। इस आन्दोलन का परिणाम भी अच्छा हुआ। क्योंकि इसी के कारण ब्रिटिश पार्लेमेन्ट में मि० मान्टेग्यू ने स्वराज्य देना ही अपना कर्तव्य एवं ध्येय बतलाकर खुद भारत में आने का कष्ट उठाया, और यहां दौरा कर के उन्होंने सुधार योजना तैयार की। कांग्रेस और स्वराज्य संघ की ओर से लो० तिलक ने मि० मान्टेग्यू से मुलाकात की और उनको स्पष्ट सुना दिया कि, 'बिना पूर्ण स्वराज्य मिले हमें संतोष न होगा।' इसके बाद उन्होंने यह सोच कर कि, बिना विलायत गये और वहां की जनता को भारत की यथार्थ स्थिति समझाये, एवं साथ ही स्वराज्य के बिना इस देश को संतोष होगा इस बात को सिद्ध कर दिखाये अपना कार्य सफल न होगा—उन्होंने बेरिस्टर बेप्टिस्टा को इस कार्य के लिये विलायत भेजा। और कलकत्ता कांग्रेस के बाद खुद उन्होंने भी विलायत जाने का निश्चय किया। सर वेलेन्टाइन चिरोल की लिखी हुई पुस्तक ने समस्त राष्ट्रीय आन्दोलनों को धक्का पहुँचाना शुरू किया था, और खास कर उसमें लो० तिलक के लिये कुछ अपशब्द भी प्रयोग में लाये गये थे, अतः उस पर आपने मानहानि का दावा कर दिया। सन १९१८ के आरम्भ में आपने महाराष्ट्र, बरार मध्यप्रदेश और कर्नाटक प्रान्त में दौरा करके लाखों पुरुषों को स्वराज्य की दीक्षा दी। इसके बाद आपने विलायत के लिये पूने से प्रस्थान किया। उस समय बंबई और पूने से विदाई एवं बंबई से लगा कर कोलंबो तक का उनका स्वागत तथा खास कोलंबो की प्रजा ने उनके प्रति जो श्रद्धा प्रगट की, वे सब घटनाएं अपूर्व ही हैं। कोलंबो पहुँचने पर सरकार ने उनके पासपोर्ट रद्द कर दिये,

फलतः उन्हें लौट आना पड़ा। बम्बई की युद्ध परिषद और उनके खटक जानेवाली घटना, बंबई की स्पेशल कांग्रेस, उनका ... यत प्रयाण और वहां की उनकी कारगुजारी, अमृतसर की सभा आदि बातें हमको निकट परिचय की हैं, उनकी ... केवल पिष्ट-पेषण सा प्रतीत होगा। अतः उन सब की ... एक ही बात को ध्यान में रखना चाहिये कि, विलायत जाने ... उन्होंने भारत का प्रश्न अन्य राष्ट्रों के सन्मुख उपस्थित ... राजनैतिक आन्दोलन की दिशा को बदल दी है। अमेरिका के प्रश्न की चर्चा कराने का श्रेय लाला लजपतराय और लो० ... इन्हीं दो महापुरुषों को दिया जासकता है।

अमृतसर कांग्रेस के बाद भिन्न २ जिला सभाओं में ... और दौरा करने में ही उनके अधिकांश दिन व्यतीत हुए ... अवधी में वे एक बार पुनः दिल्ली गये थे, और सिंध प्रांत में एक ... करके उन्होंने वहां की जनता को स्वराज्य का मंत्रोपदेश किया था ... के बाद वे मद्रास की ओर भी गये थे, और इसके बाद बनारस ... ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी की बैठक में भी सम्मिलित हुए थे ... से लौटते हुए मार्ग में जगह २ उतर कर आपने जनता को ... की दीक्षा दी। इन दिनों सर्वत्र ही

स्वराज-स्वराज्य-स्वराज्य

की प्रतिध्वनि उठने लगी। सन १९१५ से १९२० के जून तक ... तिलक बराबर घूमते रहे। भारत के इस सिरे से उस सिरे ... ही वे दिखाई पड़ते थे। राष्ट्रीय कार्य की पुकार किसी भी ... सुनाई पड़ने की देर थी कि, वे वहां पहुँचने में क्षण मात्र विलंब न करते थे। स्वप्न जागृति और सुषुप्ति में उन्हें राष्ट्रोद्धार के सिवाय कुछ भी न दिखाई पड़ता था। कष्टमय जीवन और ...

... समझ सकता ... रहे थे। इसी ... आरंभ किया ... थे, किन्तु वा... और उसी दशा ...

और वे अचेत रहने लगे। किन्तु उस दशा में भी उन्हें सिवाय देश कार्य के और कुछ ध्यान न था। शरीर यंत्र की क्रियाएँ क्रमशः ... पड़ने लगीं और ३१ जुलाई शनिवार की रात को १२ बज कर ... मिनिट पर वे इस लोक विदा होगये। देश का राष्ट्रीय सूर्य अस्त हो गया! और एक अद्वितीय महात्मा सूर्य मण्डल को भेद कर निकल गया।

अभागे भारत! तेरे सुपुत्र की इस प्रकार अकाल मृत्यु हो, ऐसा तू ने क्या पाप किया है? हाय! इस विकट प्रसंग पर लो० तिलक जैसे वीर का यहां से उठ जाना अवश्य ही देश की दुरावस्था का परिचायक कहा जायगा!

प्यारे देशभाइयों! इस पुण्य चरित्र के अन्त में लो० तिलक का ... आदेश अंकित है, उसे चरितार्थ करने को कटिबद्ध होकर कार्य में लग जाइये। बस, इसीसे स्वर्ग में लो० तिलक की आत्मा को शांति मिलेगी, और आप का एवं देश का कल्याण होगा।

लोकमान्य के पुण्य चरित्र को अंकित करके पवित्र बनी हुई यह जड़ लेखनी उनके कार्यों की आलोचना करने में असमर्थ है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि, लो० तिलक ने आजन्म देश सेवा करके सुरलोक से भी

धन्य तिलक

के उद्गार निकलवा कर छोड़े हैं। उनके ग्रंथ उनकी बुद्धिमत्ता की साक्षी यावच्चंद्रदिवाकरौ देते रहेंगे। उनके सब कार्यों में ईश्वर का आधे... स्थान था। प्रत्येक शुभ कार्य में वे ईश्वर का अस्तित्व समझते थे। ईश्वरीय श्रद्धा का कवच धारण करके ही उन्होंने स्वराज्य-संग्राम का आरंभ किया था। उन्होंने नानाविध कष्ट भोगे और फिर भी वे विजयी ही हुए। उन्होंने प्रत्येक बात में राष्ट्रीयता का संचार किया और देश भर में राष्ट्रीय धर्म की भावना फैला दी। सभी आगत वि... दाओं का उन्होंने स्वागत किया, और निष्काम-बुद्धि एवं स्वार्थत्याग के द्वारा नय राष्ट्रीय युग का आरंभ कर दिया। उनके आत्मार्पण की ... अपार है, और ...

... यतोधर्मस्ततोजय।" आओ भाइयों हम आप मिल कर बोलें—

लोकमान्य तिलक महाराज की जय!

राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य जो इस समय हमारे सामने है, वह इतना महान और विस्तृत एवं इतना आवश्यक है कि, मेरी अपेक्षा कहीं अधिक उत्साह और ... तुम सब को एक होकर उसका पालन करना चाहिये। यह एक ऐसा कार्य है कि, जिसे हम आगे के लिये टाल नहीं सकते। मातृभूमि हम में से प्रत्येक को पुकार कर कह रही है कि उठो, कमर कसो और काम में लग जाओ। मेरा कर्तव्य है कि, मैं आपसे प्रार्थना करूं कि, माता की इस पुकार पर आपस का समस्त मतभेद भूल जाओ और राष्ट्रीय आदर्शों की प्रत्यक्ष मूर्ति बन जाने का उद्योग करो। माता के इस कार्य में न प्रतिद्वन्दिता है न द्वेष है, और न भय है। ईश्वर हमें हमारे उद्योगों का फल प्रदान करेगा और उस फल को यदि हम न भी प्राप्त कर सके, तो यह निश्चय है कि, भारत की भावी संतान उसे अवश्यमेव प्राप्त कर लेगी।

कर्मयोगी तिलक का आदेश।

हमारी दक्षिण भारत की यात्रा।

(लेखक—श्रीयुत बाबासाहिब पंतसचिव युवराज भोर राज्य)

(गतांक की पूर्ति)

रामेश्वर एक छोटासा द्वीप है। अब यहाँ तक रेल मार्ग से आवागमन हो सकता है। किन्तु यह लोह-मार्ग एक विचित्र यांत्रिक पुल पर बना हुआ है। यह पुल जिस खास जगह में तैय्यार किया गया है, उसके नीचे होकर जब जहाज अथवा स्टीमर को आना जाना पड़ता है, तब यह (पुल) दोनों ओर के मिनारों (टावरों) में चलते हुए, यांत्रिक साधनों द्वारा ऊपर को उठा लिया जाता है, और उनके निकल जाने पर फिर नीचे उतार लिया जाता है। जिन किन्हीं ने लन्दन की टेम्स नदी पर के "टॉवर ब्रिज" का चित्र देखा होगा, वही इस पुल की कल्पना कर सकेंगे। आज कल रेल्वे केवल रामेश्वर तक ही नहीं, वरन् वहाँ से ११ मील आगे धनुष्कोटि बंदर स्थान तक पहुँच गई है। उसी स्थान पर मुहाना भी है। उत्तर की ओर से बंगाल की खाड़ी और दक्षिण की ओर से हिन्द महासागर आकर जहाँ एक दूसरे से टकराते हैं, उसे रत्नाकर-महोदधि संगम कहते हैं। धनुष्कोटि से लंका या सिलोन को जाने के लिये दो तीन घंटे जलयान में बैठना पड़ता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने लंका को जाते समय शिवलिंग की स्थापना करके उसका नाम रामेश्वर रख दिया, और तभी से यह स्थान तीर्थ माना जाने लगा—यह कथा रामायण द्वारा घर २ फैल ही चुकी

विजयानगर में हिंडोल का चबूतरा।

तथापि देवालय के आसपास एक के बाद दूसरे के क्रम से जो तीन प्रदक्षिणा पथ हैं, वे बड़े ही अप्रतिम हैं। तीनों पथ आच्छादित रहने पर भी प्रकाश पूर्ण हैं, और दोनों ओर के खम्भों तथा सन्तेदाशी पर की कारीगरी परम मनोहर है। सब से बाहर के प्रदक्षिणा पथ की लम्बाई १००० फुट और चौड़ाई ६०० फुट है। यहाँ प्रतिदिन रात्रि के समय देवता की जो सवारी निकलती है, वह भी दर्शनीय होती है। प्रतिदिन हजारों की संख्या में यात्री लोग यहाँ आया करते हैं। निम्नलिखित पद्धति से यहाँ स्नानादि कार्य करना पड़ते हैं।
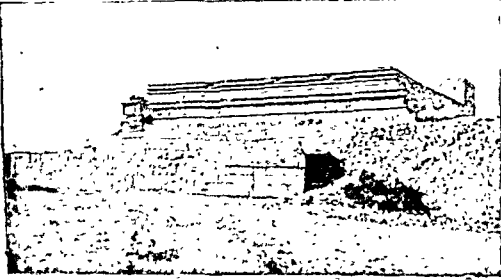
काशी यात्रा करके प्रयाग के संगम पर से लाई हुई गंगा को साथ लेकर प्रथम दिन रामेश्वर में लक्ष्मण कुण्ड पर स्नान एवं तीर्थविधि करनी पड़ती है।

दूसरे दिन गंगा का पूजन, श्राद्धविधि और सौभाग्यवती स्त्रियों एवं ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। तीसरे दिन धनुष्कोटि को जाना पड़ता है, जहाँ प्रथम महोदधि में और उसके पश्चात रत्नाकर में स्नान करना पड़ता है। इसके बाद सेतु अर्थात समुद्र में की बालुका का पूजन करना पड़ता है। तत्पश्चात् प्रत्येक तीन अंजलि बालुका दाहिने के पत्रे में डालना है, जिसे लेकर रामेश्वर को आना पड़ता है। रामेश्वर के देवालय में ही सेतु माधव की प्रतिमा के सम्मुख उस रेती के बराबर तीन ढेर करके पूजा की जाती है। इसके बाद उनमें का एक भाग तो समुद्र में फेंक दिया जाता है, और दूसरा ब्राह्मण को देकर

[illegible]

[illegible]

[illegible]

बीजापुर में चार नगर देखे। इनमें से विजयनगर के सिवाय शेष तीन की राज्य-व्यवस्था बंबई सरकार के अधिकार में है। इन स्थानों की भाषा मुख्यतः कनाड़ी है, किन्तु फिर भी मराठी और साधारण उर्दू

विजयनगर में पत्थर में खुदी हुई देवताओं की मूर्ति ।

(हिन्दी) कई लोग समझ सकते हैं। रहन सहन में कुछ भिन्नता है किन्तु रीति रिवाज़ अधिकतर बंबई प्रांत की ही तरह का है।

हमने पहला मुकाम हुबली में किया, किन्तु वहां देखने योग्य कोई स्थान नहीं था। विजयनगर जाने के लिये होसपेट स्टेशन विशेष सुविधाजनक है। यह स्टेशन हुबली और गुंटकल इन दो जंक्शनों के बीच रेल्वे का जो एक फांटा पूर्व-पश्चिम को जाता है, उसके मध्य भाग पर है। इस स्टेशन से कमलपुर डाक बंगला ७ मील के अन्तर पर है। वहां हम झटके में बैठ कर गये। यह प्रदेश अति प्राचीन है। कहा जाता है कि, रामायण में वर्णित वालि-सुग्रीव की किष्किंधापुरी और मातंग पर्वत एवं पंपा-सरोवर आदि सब इसी प्रांत में हैं!

विजयनगर तुंगभद्रा के किनारे बसा हुआ है। नदी में बहुत बड़ी अर्थात् साधारण घरों के समान ऊंची२ चट्टानें होने के कारण पत्थर की मूर्ति अथवा देवालय आदि बनाने में वहां वालों को कुछ भी कठिनता नहीं पड़ी है। वहां हमने जो स्थान देखे, वे इस प्रकार हैं:-(१) पानी की पुख्ता नहर, जिसके द्वारा तुंगभद्रा का जल शहर में लाया गया था। (२) ४२ फुट लम्बी और ३ फुट चौड़ी एवं २ फुट गहरी पत्थर की एक कुंडी।' गरीबों को दूध बांटने के लिये यह एक खासे हौद के समान ही बनी हुई है। (३) सिंहासन का पाषाणमय चबूतरा! जिसके आसपास दसहरे के समारंभ के चित्र खुदे हुए हैं। इसी प्रकार और भी कई ढंग के रीति रिवाज का ज्ञान करानेवाले चित्र हैं! (४) हजार राममंदिर, जिसमें कि रामायण में वर्णित रामचरित्र विषयक हजारों घटनाओं के चित्र बड़ी ही उत्तमता से बनाये हुए हैं। यह देवालय दर्शनीय है। (५) लोटसमहल (६) गजशाला। इनके सिवाय अन्य कई साधारण स्थान भी देखने योग्य हैं। यहां नरसिंह एवं गजानन की प्रतिमाएँ बहुत बड़ी हैं। इन स्थानों को देख कर हम तुंगभद्रा के उसपार अनागोंदी को "हरगोल" में बैठ कर गये। यह सवारी बांस की पट्टियों से बनी किन्तु बाहर से कमाये हुए चमड़े से मढ़ी हुई टोकरे के आकार की नाव के समान होती है। इस प्रकार की नावें दजला और फुरात नदियों में आज २५०० वर्षों से चल रही हैं। अनागोंदी में विजयनगर के राजा के वर्तमान वंशज रहते हैं, इनकी वार्षिक आय केवल तीस हजार रुपये है। पिछले समय पूर्ण उन्नतावस्था में यहां दसहरा आदि के प्रसंगो पर लाखों रुपयों का इनाम इकराम होजाता था, किन्तु आज केवल उसकी नकलभर रह गई है। नदी लांघ कर हमने पुनः इस पार आ हंपी-विरुपाक्ष के दर्शन किये। विरूपाक्ष विजयनगर राज्य के कुलदेवता हैं। विजयनगर राज्य नष्ट होजाने के निकट ही हंपी और होसपेट ये दो गाँव बस गये। इन्हें हंपी-विरुपाक्ष कहते हैं। यहाँ से हम सड़क होकर बीजापुर पहुँचे। शहर में सर्वोत्तम स्थान डाक बंगला नहीं है। बीजापुर में हमारे ठहरने का प्रबंध राव बहादुर आर.एन. पाटील डि० सु० पुलिस ने किया था।

दक्षिण के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि, ई० सन १३४७ में यहां बहमनी राज्य की स्थापना हुई थी, जिसका संस्थापक अलाउद्दीन हसन गंगू नामक पुरुष था। इसके बाद सन १४८४ में मुहम्मद शाह ने अपने राज्य-कारोबार की सुगमता के लिये इस प्रदेश के पांच भागों में विभाग कर अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, बेदर और बरार पांच जिलों पर एक २ सूबेदार नियत कर दिया था। बीजापुर का सूबेदार युसुफखां नामक एक तुर्क, जो मुहम्मद शाह के पश्चात् स्वतंत्र बन गया, और तब उसने एक नयाही राज्य स्थापित कर दिया था। इस प्रकार उसने सन १४८९ ई० में बीजापुर को आदिल शाही के नाम से राजधानी बनाई। अन्य भागों की अपेक्षा इस राज्य की विशेष उन्नति हुई। विजयनगर के राजा का तालीकोट में पराजय हो जाने के बाद तो यह राज्य उन्नति की चरम सीमा को ही पहुँच गया। किन्तु अन्त को ई० सन १६८६ में औरंगजेब ने इसे नष्ट कर ही तो डाला।

मुसलमानों के मक़बरे जिस प्रकार बनाये जाते हैं, यह प्रायः अधिकांश लोग जानते ही हैं; कि जहां दफन विधि होती है, उसके ऊपर के भाग पर अर्ध गोलाकार लम्ब आकृति में केवल शोभा के लिये कबर बनी रहती है। स्त्रियों की कबरें चौकोनी होती हैं। कब्रस्तान की इमारत के निकट ही प्रायः नमाज के लिये मसजिद भी बनी रहती है। बीजापुर में मुसलमानी शिल्पकला का उत्कर्ष, इस राज्य के साथ ही हुआ। एक बात में तो उत्तर भारत की अपेक्षा बीजापुर की शिल्पकला विशेष उत्कृष्ट कही जा सकती है। वह विशेषता यह है कि, इस ओर जो गुम्बज़ बनाये जाते हैं, वे एक दूसरी से मिली हुई कमानियों' के आधार पर खड़े किये रहते हैं। इसी कारण वे बड़े २ बनाये जासकते हैं, और विशेष सुन्दर दिखाई पड़ते हैं। दूसरा भेद है मिनारों का। ये मिनारे केवल शोभा के लिये ही होते हैं, इनके ऊपर तक चढ़ने की योजना कोईहुई नहीं रहती!

बीजापुर के आसपास तीन कोट बने हुए हैं। सब से भीतर का
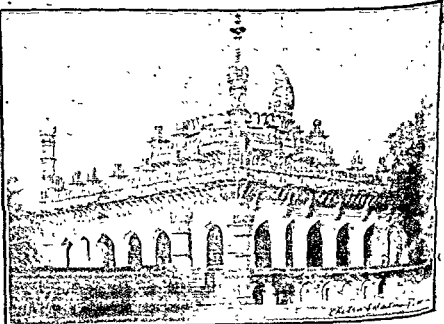
इब्राहिम रोज़ा बीजापुर।

कोट राजभवन और कुछ इमारतों को घेरे हुए है। उन सब इमारतों में आजकल सर्कारी कचहरियाँ होती हैं। उस कोट को 'आर्किला' कहते हैं। दूसरा कोट शहर के आसपास है, और तीसरा अपूर्ण ही

…ह गया है। यह कोट शहर के चारों ओर बड़े ही अन्तर पर बनना …रंभ हुआ था, पर अपूर्ण ही रह गया। पूर्ण उन्नतावस्था में बीजा…र की आबादी १८ लाख थी। फलतः तब उस तीसरे कोट तक …नता बसी हुई होनी चाहिये।

यहां हमने अनेकानेक इमारतें देखीं। उनमें विशेष उल्लेखनीय 'इब्रा…हम रोजा' है। इस मसजिद में द्वितीय इब्राहम बीजापुर का छठा …बादशाह तथा अन्यान्य सब राज कुलोत्पन्न पुरुषों की समाधियाँ हैं। …भीतर की दीवारों पर अर्बी भाषा …में कुछ लिखा गया है। किन्तु उस …की खुदाई इस ढंग से कीगई है कि, …बिलकुल नीचे वाले भाग और …दीवार के ठीक सिरे पर के लिखे …हुए अक्षर एक समान दीख पड़ते …हैं। कहा जाता है कि, इतनी उत्तम …कारिगिरी भारत में दूसरी जगह …शायद ही कहीं होगी! मुख्य क़ब्र…स्तान ४० वर्ग फ़ुट है।
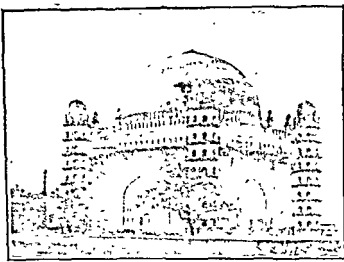
…पर की ओर साफ पत्थरों की …है। किन्तु आश्चर्य की बात …है कि, इतनी भारी तख्तपोशी …लिये नीचे किसी भी प्रकारका…ने आदि का-आधार नहीं है। …र भर में महत्व पूर्ण एवं दर्श…इमारत 'बोल गुम्बज' है। इसमें आदिलशाह-बीजापुर के …वें बादशाह-का मक़बरा है। पासही अन्यान्य राज पुरुषों की भी …माधियाँ बनी हुई हैं। इस इमारत का बीचवाला कमरा १३५ वर्ग …है, और उस पर जो गुम्बज़ बनाया गया है, वह संसार में अपनी …ढ का एक ही है। गुम्बज़ के भीतरी भाग का क्षेत्रफल १८२२ वर्ग …है। इसके चारों किनारे पर चार मिनारे हैं, जिनमें होकर भीतर …बड़ी गेलेरी में जाया जासकता है! यह गेलेरी १८० फुट की ऊँचाई …बनी हुई है। इसकी चौड़ाई ११ फुट और परिधि ४०७ फुट है। …तु इस वृत्ताकार गेलेरी का व्यास लगभग १२७ फुट है। बीच में …ना अन्तर रहने पर भी एक ओर की गेलेरी में खड़े रह कर एक छोटे से ताले में कुंजी डाल कर घुमाने से, उस आवाज की विलोम प्रतिध्वनि सुनाई देती है। इसमें एक मनुष्य यदि चलने लगे तो भास होता है मानों हजारों मनुष्य जारहे हैं। यह इमारत बीस मील के अन्तर पर से दिखाई देने लगती है। एक विशेषता यह और भी है कि, इसमें ७।८ बार एक ही प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। इसके बाहर की इमारतों में प्राचीन वस्तुओं का संग्रहालय बना हुआ है, जो देखने योग्य है। अन्दू मसजिद बिलकुल ही छोटी होकर भी दर्शनीय है।

बोल गुम्बज।

बीजापुर में ही हमने Settlement of Criminal Tribes (लुटेरे, और बदमाश लोगों की बस्ती) नामक संस्था देखी। इस प्रकार की संस्थाएँ बंबई में तीन स्थान पर हैं, और उनमें इन लोगों की संख्या १४००० है। जिनमें से १४३० बीजापुर में हैं। ये सब सर्कारी देखरेख में हैं, इनका मुख्योद्देश्य उन लोगों को और विशेषतः उनके लड़कों को शिक्षा देकर उद्योग धन्धों में लगाना और चोरी आदि अनीतिमय कार्यों से परावृत्त करना मात्र ही है। यहां आर्किला से बाहर की ओर श्रीनृसिंह (दत्तात्रय) का मंदिर है। 'श्रीगुरुचरित्र'* नामक ग्रंथ में इसकी कथा वर्णित रहने के कारण इसका महत्व बहुत बढ़ गया है। मुसलमानी राजत्वकाल में हिन्दू देवालयों और मूर्तियों का विध्वंस होता रहने की दशा में; यह देवालय राजमहल से इतना निकट रहने पर भी अब तक साबित कैसे रह सका, इसकी मर्मकथा महाराष्ट्रवासियों में से जिनको ज्ञात है, वही इसका कारण समझ सकते हैं। बीजापुर से हम सीधे पूना आपहुँचे। और यहीं हमारी दक्षिण भारत की यात्रा समाप्त होगई।

* इस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद "मध्यभारत पुस्तक एजंसी इन्दौर" से मिलता है जो चाहें मांग कर पढ़ें। संपादक 'जगत'

हा ! तिलक-देव !!

हा! हा! हन्त! हन्त! हा! हा! हा! हाय! हाय! हम लुट गये।
लोकमान्य भगवान तिलक हा हम दुखियों से छूट गये॥
शुभ आशा के सूत्र, दीन जिन से जीते थे टूट गये।
भारतीय जनता के हा! हा! भाग्य आज हैं फूट गये॥

वाम विधाता हुआ समय हम दुखियों का है फिरा हुआ।
विपत बादलों से है सारा भारतीय नभ घिरा हुआ॥
हाय! हाय! क्यों दुखिया भारत तुम बिन धीरज धारेगा।
हा! विपत्ति के समय प्रभो, भगवन्! कह किसे पुकारेगा॥

देवलोक से प्रभो आपको देव लिवाने आये थे—
त्याग अभागों का कर दो! क्या यह समझाने आये थे!
हाय! आप उनके कहने से क्यों सुरलोक पधार गये॥
प्रभो आप तो मरे नहीं पर हम दुखियों को मार गये।

हर भारत रूपी शंकर के तुरही भाल के वाम रहे।
दीनों के हित वचनामृत वर्षा करने सब काम रहे॥
अज्ञानी संसार मध्य रह कर भी जीवन मुक्त रहे।
त्याग-मूर्ति नरतन में भी प्रभु ब्रह्मज्ञान संयुक्त रहे॥

सुर नर दोनों लोक आप को हे प्रभु एक समान रहे॥
लोकमान्य क्या! सत्य आप साक्षात्कार भगवान् रहे॥
हम अज्ञानी पुरुष सर्वदा हा अज्ञानाच्छन्न रहे।
ज्ञान और अज्ञान कहां का हम तो मरणासन्न रहे॥

हाय! हाय! प्रभु नहीं इसीसे रूप आप का जान सके।
हा! अभाग्यवश पाकर भी भगवान न हम पहचान सके॥
हम तो अज्ञानी ही थे पर तुम क्यों हम को छोड़ गये?
दीनबन्धु होकर भी क्यों दीनों से नाता तोड़ गये?

कौन अमृत वाणी से युवकों का हृत् कमल खिलायेगा?
सिंह गर्जना गर्ज कौन दुष्टों का हृदय हिलायेगा?
कर्मयोग सिद्धान्त हा प्रभो! कौन हमें सिखलायेगा?
सदुपदेश देदे करके सन्मार्ग कौन दिखलायेगा?

हाय हृदय भर आता है दुग यह अश्रु बरसाते हैं!
होकर हाँ अन्तर्धान प्रभो क्यों हमें आप तरसाते हैं॥
इस दुःख सागर में अब कोई तरनेवाला है हाय नहीं।
भारत समान इस समय जगत में कोई और अनाथ नहीं॥

[illegible]—[illegible] "हिन्दी"

यद्यपि मदन को पहले ये बातें बुरी मालूम होती थीं, लेकिन धीरे२ उसकी चित्तवृत्ति भी पढ़ने की ओर से फिर गयी। उसके हृदय में भी पढ़ने से अरुचि उत्पन्न हो गई, और वह राजेश्वरी के प्रस्ताव का समर्थन करने लगा।

मदन का विवाह हुए चार वर्ष बीत गये। दो वर्ष से वह आई० एस० सी० परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो रहा है। प्रभा इस समाचार को सुन कर बहुत घबड़ायी। उसने समझा था कि, यहां विवाह हो जाने से मेरा 'मदन' निर्विघ्न पढ़ता रहेगा। किन्तु फल विपरीत ही होता देख उसने मदन को वहां रखकर पढ़ाना उचित नहीं समझा। इसी-लिये, धर्मेन्द्र बाबू कई बार अपनी पुत्रवधू तथा पुत्र को लिवा लाने के लिये रामपुर गये, किन्तु वहां इनका कुछ भी समान नहीं हुआ। बाबू केदारनाथ इनकी ओर आंख उठा कर देखते भी न थे। उनका कहना था कि, "दरिद्रों को धैर्य्य नहीं रहता। यदि मैं राजेश्वरी को इनके घर जाने दूं, तो संभव है कि, यह उसके सब आभूषण बेच खायगा, और लड़की को वहां बहुत तकलीफ होगी।" इसी कारण वे बारबार धर्मेन्द्र बाबू को टाल दिया करते थे। समधी के घर अपना अपमान होते देख धर्मेन्द्र बाबू ने हताश होकर वहां जाना छोड़ दिया। प्रभा भी समधी के व्यवहार से बहुत दुखी हुई। उसी दुखावस्था में उसने 'मदन' को बड़ी कड़ी चिट्ठी लिखी थी। मदन माता के पत्र से बहुत लज्जित हुआ। उसने कई बार राजेश्वरी से सब बातें समझा कर छत्रपुर चलने के लिये कहा, किन्तु वह किसी प्रकार जाने को तैयार न हुई। अन्त को विवश होकर उसने अपने अभिन्न हृदय मित्र बाबू कमलाप्रसाद को—जो कि, उनके साथ पढ़ता था, और जिसका विवाह राजेश्वरी की बालसखी वीणा से हुआ था—सब बातें कह सुनायीं। कमला बाबू ने वीणा को पत्र लिख कर राजेश्वरी को मनाने के लिये कहा, किन्तु राजेश्वरी क्यों मानने लगी!

× × × ×

इन्दिरा के बहुत कहने पर केदार बाबू एक बार थोड़े से समय के लिये राजेश्वरी को छत्रपुर भेजने को सहमत हुए। पिता की लाड़िली राजेश्वरी उन्हीं की आज्ञा-उल्लंघन करने की चेष्टा करने लगी। किन्तु पिता के अधिक मनाने पर सिर्फ एक सप्ताह के लिये जाने को राजी हुई। पुत्रवधू के आने के समाचार सुन प्रभा का मुरझाया हुआ कमल मुख खिलकर प्रभा पूर्ण हो गया। जमींदार की लड़की है, जिसमें उसे यहां किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसी अभिप्राय से धर्मेन्द्र बाबू ने अपनी तीन एकड़ जमीन बेच कर पुत्र वधु के लिये अनेक प्रकार की चीजें जुटा रक्खी थीं। प्रभा ने घर को खूब अच्छी तरह से साफ सुथरा कर सजा रक्खा था। यथासमय 'मदन' राजेश्वरी को लिये हुए छत्रपुर पहुँचा! केदारनाथ ने राजेश्वरी के साथ अनेक दास दासियां भेज दिये थे। साथही एक सप्ताह के खर्च के लिये आव-श्यक चीजें भी भेज दी थीं। 'प्रभा' राजेश्वरी के रूप को देख अत्यन्त प्रसन्न हुई। टोले मुहल्ले की स्त्रियां प्रभा के भाग्य की प्रशंसा करने लगीं। किन्तु प्रभा का आनन्द क्षणिक निकला। पुत्रवधू के आने के दो ही तीन दिनों के बाद उसका घर आनन्द निरानन्द में परिणत होने लगा। राजेश्वरी दूसरे ही दिन से सास श्वसुर पर नाक भौं चढ़ाने और खाने-पीने की चीजों को दूर उठाकर फेंकने लगी। वह कहने लगी, "क्या इसी पर मुझे लिवा लाने की इतनी जिद्द ठानी थी? क्या इसी टूटी झोंपड़ी में मैं रहूँगी! घर की दुर्गन्ध से नाक फटी जाती है, भोजन के पदार्थों को देख उलटी आने लगती है! यदि एक महीना यहां रहना पड़े तो मैं अवश्य मौत के मुख में पड़ जाऊँगी।" जिस तिस प्रकार आग्रह अनुरोध से राजेश्वरी सिर्फ पन्द्रह दिनों तक छत्र-पुर में ठहरी। प्रति दिन दो एक व्यक्ति छत्रपुर से रामपुर और रामपुर से छत्रपुर आने जाने लगे। बीसों दास दासियां राजेश्वरी के साथ थे, उन सबों को आदर सत्कार से रखने और विदा करने में धर्मेन्द्र बाबू की पांच एकड़ जमीन और बिक गयी।

पन्द्रहवें दिन 'राजेश्वरी' रामपुर को लौट गयी। और फिर कभी जीवन भर छत्रपुर नहीं आयी। मदन भी स्त्री के साथ ही रामपुर लौट आया। वह मानों राजेश्वरी के हाथ का खिलौना ही बन गया था। पढ़ना तो छोड़ ही चुका था, साथ ही माता पिता को भी वह भूल गया। यहां तक कि फिर वह उनके पत्र का उत्तर भी नहीं देता और राजसी ठाट से रहते हुए फूला नहीं समाता था।

पुत्र के व्यवहार से प्रभा और धर्मेन्द्र बाबू बहुत दुखी हुए। महा-जनों ने रुपये का तकाजा जोरोंपर करना आरम्भ किया। अन्त को विवश होकर उन्होंने अपनी सब जमीन बेच दी और उन सबों का रुपया चुका दिया। सिर्फ दो एकड़ जमीन बच गयी। प्रभा उसी जमीन की पैदावार से जिस तिस प्रकार खर्च चलाने लगी। धर्मेन्द्र बाबू जो कुछ लाते, प्रभा के हवाले कर देते और वह उसी से अपना घर खर्च चला लेती। धीरे २ वे लोग मदन को बिलकुल भूल गये। किन्तु प्रभा जब तब मदन के व्यवहार पर अवश्य आंसू बहाया करती थी।

× × × ×

ईश्वर की लीला भी विचित्र है। बसे को उजाड़ना और उजड़े को बसाना हँसते को रुलाना और रोते को हँसाना तो उनके बायें हाथ का खेल है। आज पांच वर्षों से जो 'मदन' दर्प से फूला नहीं समाता था, जमींदार की लड़की से विवाह होने ही से जो अपने को भी भूल गया था। पिता माता का ध्यान जिसे स्वप्न में भी नहीं आता था। वही आज राह का भिखारी हो गया। जो केदारनाथ अपने जामातृ के रूप में मदन को पाकर उससे अत्यन्त स्नेह रखते थे, आज वही उससे घृणा करते हैं।

उधर राजेश्वरी शीत ज्वर से स्वर्गीया हुई, इधर मदन पर आफत आयी। अब उसके लिये रामपुर सूना हो गया। इन्दिरा अब मदन को देखना भी नहीं चाहती, अन्त को मदन अपमानित हो वहां से निकल गया। धर्मेन्द्र बाबू को यथा समय यह सूचना मिली। उन्होंने 'मदन' को अपने घर लाकर अनेक प्रकार के उपदेशप्रद वाक्यों से उसकी चिन्ता दूर की।

अब मदनप्रसाद रेलवे ऑफिस में एक अच्छी जगह पर काम करता है, और माता पिता के साथ सुख से रहता है।

पूना में तिलक फण्ड का समारम्भ।

यह उत्सव डा० भालासाहब देशमुख के सभापतित्व में ता० २२ मई १९२० को गायकवाड़ बाड़े में बड़ी समारोह के साथ मनाया गया था।

बड़े घर की बेटी।

(लेखक—विमल।)

ग्रीष्म का समय था, दिन के पांच बज चुके थे। एक सुन्दर सजे हुए कमरे के बीच पलंग पर बैठी हुई, एक अष्टादश वर्षीया युवती किसी को पत्र लिख रही थी। उसी समय दबे पैर किसी दूसरी युवती ने उसकी पीठ की ओर से आकर अपने दोनों हाथों से उसकी आंखें बन्द करलीं, युवती पत्र लिखना छोड़ हँसती हुई बोली—"मैं तुम्हें पहचानती हूँ वीणा!"

वीणा—तुम ने मुझे देख लिया होगा, राजेश्वरी!

राजेश्वरी—मैं तो पत्र लिखने में लगी हुई थी, तुझे देखा कैसे?

वीणा—तब पहचाना कैसे?

राजेश्वरी—यों तुम कमला बाबू को भले ही ठगा करो, मैं भला इतना भी नहीं पहचान सकती?

वीणा हँसती हुई बोली, मैं उन्हें क्या ठगती हूँ! तुम अपने ही जैसा सबको समझती हो बहिन!

राजेश्वरी—इसका उत्तर तो कमला बाबू से ही पूछ लेना!

वीणा—तुम तो पूछ चुकी हो, ज़रा कहो भी तो!

राजेश्वरी—क्या तुम नहीं जानतीं!

वीणा—अगर मुझे ज्ञात ही रहता तो तुम्हें क्यों पूछती!

राजेश्वरी वीणा का दाहिना हाथ पकड़ कर कलाई पर बंधी हुई रिस्टवाच की ओर संकेत करके बोलीः—

"यह सोने की घड़ी कहां से मिली है वीणा?"

राजेश्वरी की बात को टालती हुई, वीणा ने कहा, पत्र किसको लिख रही थी बहिन?"

राजेश्वरी—पहले मेरे प्रश्न का उत्तर देना होगा!

वीणा—क्या इसी को तुम ठगना कहती हो?

राजेश्वरी—नहीं २ मैं जानना चाहती हूँ कि, यह कहां से मिली है!

वीणा हँसती हुई बोली—"जाने दो, कहीं से मिल गई है!"

राजेश्वरी—मेरी आँख में धूल डालने की चेष्टा मत करो!

वीणा राजेश्वरी के गले लिपट कर खिलखिला उठी, और एक छोटासा पत्र राजेश्वरी के हाथ में देकर बोली—तुम को मेरी बात पर विश्वास नहीं होता, किन्तु देखो यह मदन बाबू ने पुरस्कार रूप में भेजी है।

राजेश्वरी—कैसा पुरस्कार!

वीणा—पत्र पढ़लो!

राजेश्वरी पत्र पढ़ कर बोली "मेरा ही कहना ठीक निकला। घड़ी तो कमला बाबू ने तुझे मनाने के लिये दी है!"

वीणा—नहीं तुझे मनाने के लिये?

राजेश्वरी—मैं क्या किसीसे रूठी हूँ?

वीणा—अगर नहीं रूठी है तो छत्रपुर जाना क्यों नहीं स्वीकारती?

राजेश्वरी का मुख लज्जा से पीला पड़ गया। कुछ देर मौन रह कर वह बोली—बहिन! वहां जाने को जी नहीं चाहता। बड़ी तकलीफ होगी। सुनते हैं उनके पिताजी को अब जगह जमीन कुछ नहीं रहा है। फिर उन्हींको मेरे लेजाने की क्यों जिद्द पड़ी है! अभी मैं उन्हीं को (मदनप्रसाद) पत्र लिख रही थी। लिखा है कि, यदि पढ़ने में जी नहीं लगता तो पढ़ना छोड़दें! और यहीं आकर रहा करें। यहां किस बात की कमी है। मेरे पिताजी आप को पुत्र से क्या कम समझते हैं?

वीणा—मैं छोटी होकर तुम्हें क्या समझाऊं! कम से कम एक बार तो तुम को छत्रपुर जाना ही चाहिये।

राजेश्वरी—मैं नहीं जाऊँगी।

वीणा—तुम्हारी इच्छा।

जिस समय वीणा और राजेश्वरी बातें कर रही थी, ठीक बाहर खड़ी २ राजेश्वरी की माता इंदिरा यह सब सुन रही थी। राजेश्वरी का हठ देख कर उनके बहुत दुःख हुआ। वह नहीं चाहती थी कि, राजेश्वरी सास ससुर के पास छत्रपुर न जाय! चाहती थी कि, वह कभी उनके पास और कभी सास ससुर के यहां रहा करे।

× × × ×

संसार परिवर्तन शील है, यहां किसी की अवस्था एक सी नहीं रहने पाती। ज्यों ज्यों समय चक्र की धुरी चक्कर काटती है, त्यों त्यों सांसारिक सभी वस्तुओं की अवस्था में कुछ न कुछ उलट फेर होता ही रहता है। इसी समय चक्र के फेरमें आज छत्रपुर के धर्मेंद्रप्रसाद की अवस्था में भी आशा से अधिक परिवर्तन हो गया है। जो दश वर्ष पहले एक प्रतिष्ठित जमीन्दार था, आज उसे क्या एक एकड़ की भी जमींन्दारी नहीं रही। कल जो उन्हें मानते थे, आज उसीकी अवस्था पर उन्हें हंसी आती है। सब बिक जाने पर सिर्फ बीस एकड़ जमीन कृमिन के रूप में को बच गयी थी। बस, वे उसी पर सन्तोष करके दिन काटने लगे। घर में स्त्री और एक छोटे पुत्र के अतिरिक्त उन्हें और कोई नहीं था। उनकी धर्मपत्नी प्रभा बड़ी सुशीला स्त्री थी, साथ ही कार्य में भी वह बड़ी चतुर थी। उसको अपनी सम्पत्ति के चिन्ता नहीं थी। जो कुछ मिले वही पति के भोजनोपरान्त प्रसन्न रहा करती थी। धर्मेन्द्र बाबू भी प्रभा जैसा स्त्री रत्न पा कर प्रसन्न नहीं थे। प्रभा गृह-कार्य में इतनी दक्ष थी कि, थोड़ी से ही वह अपना सब कार्य उत्तम रूप से चला लेती थी। बाबू को एक ही पुत्र होकर फिर कोई सन्तान नहीं हुई। का पुत्र मदनप्रसाद पांच वर्ष का था, तभी से वह उसे पढ़ाने धीरे २ मदन ने अपनी प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ किया। की अवस्था में ही उसने कई पुस्तकें पढ़ डालीं। गणित और में भी अच्छी योग्यता प्राप्त करली। मदन जैसा गुणवान था, वैसा रूपवान भी था। प्रभा मदन जैसा होनहार पुत्र पाकर अत्यन्त प्रसन्न रहा करती थी। वह समझती थी कि, ईश्वर चाहेंगे तो और भी आनन्द पूर्वक दिन कटेंगे।

धीरे २ मदन ने इन्ट्रेन्स परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की। अब प्रभा ने किसी न किसी प्रकार आभूषणादि गिरवी रख कर पढ़ाने का खर्च दिया; धर्मेन्द्र बाबू ने भी इधर उधर से कार्य चलाया, पर अब आगे पढ़ाने की हिम्मत नहीं पड़ती। होनहार है, और आगे पढ़ना चाहता है, यह देख दम्पति चिन्तित रहने लगे। उसी समय रामपुर के जमीन्दार केदारनाथ की लड़की से मदन के विवाह की बातें ठहरी। धर्मेन्द्र बाबू ने आगे पढ़ा सकने की आशा पर मदन का विवाह उक्त जमीन्दार की पुत्री राजेश्वरी से कर दिया। परन्तु 'प्रभा' इस विवाह को स्वीकार नहीं करती थी। उसका कहना था कि, बैर ब्याह और प्रीति सम कक्षा में ही लाभदायक होते हैं, अन्यथा हानि की अधिक संभावना रहती है। इच्छा न रहने पर भी पुत्र को पढ़ने की आशा से उसने स्वीकृति दी।

विवाह के बाद ही मदनप्रसाद पटना कौलेज के आई. एस. सी. क्लास में पढ़ने लगा। पढ़ने का सब खर्च उसको बाबू केदारनाथ जमीन्दार साहब की ओर से मिलता था। यद्यपि मदन को पढ़ने में सब प्रकार से सुभीता था। किन्तु जैसा चाहिये वैसा पढ़ना उसका नहीं होता था। उसके पढ़ने में एक प्रकार से उसकी नवविवाहिता पत्नी राजेश्वरी ही बाधक बन रही थी। वह नहीं चाहती थी कि, वे बाहर जाकर पढ़ें। वह मदन को बारबार कहा करती कि, "पढ़ कर क्या होगा, किस बात की कमी है, आनन्द से आप तो यहीं रहा करें।"

यद्यपि मदन को पहले ये बातें बुरी मालूम होती थीं, लेकिन धीरे२ उसकी चित्तवृत्ति भी पढ़ने की ओर से फिर गयी। उसके हृदय में भी पढ़ने से अरुचि उत्पन्न हो गई, और वह राजेश्वरी के प्रस्ताव का समर्थन करने लगा।

मदन का विवाह हुए चार वर्ष बीत गये। दो वर्ष से वह आई० ए० सी० परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो रहा है। प्रभा इस समाचार को सुन कर बहुत घबड़ायी। उसने समझा था कि, वहां विवाह हो जाने से मेरा 'मदन' निर्विघ्न पढ़ता रहेगा। किन्तु फल विपरीत ही होता देख उसने मदन को वहां रखकर पढ़ाना उचित नहीं समझा। इसीलिये, धर्मेन्द्र बाबू कई बार अपनी पुत्रवधू तथा पुत्र को लिवा लाने के लिये रामपुर गये, किन्तु वहां इनका कुछ भी सम्मान नहीं हुआ। बाबू केदारनाथ इनकी ओर आंख उठा कर देखते भी न थे। उनका कहना था कि, "दरिद्रों को धैर्य्य नहीं रहता। यदि मैं राजेश्वरी को इनके घर जाने दूं, तो संभव है कि, यह उसके सब आभूषण बेच खायगा, और लड़की को वहां बहुत तकलीफ होगी।" इसी कारण वे बारबार धर्मेन्द्र बाबू को टाल दिया करते थे। समधी के घर अपना अपमान होते देख धर्मेन्द्र बाबू ने हताश होकर वहां जाना छोड़ दिया। प्रभा भी समधी के व्यवहार से बहुत दुखी हुई। उसी दुःखावस्था में उसने 'मदन' को बड़ी कड़ी चिट्ठी लिखी थी। मदन माता के पत्र से बहुत लज्जित हुआ। उसने कई बार राजेश्वरी से सब बातें समझा कर छत्रपुर चलने के लिये कहा, किन्तु वह किसी प्रकार जाने को तैयार न हुई। अन्त को विवश होकर उसने अपने अभिन्न हृदय मित्र बाबू कमलाप्रसाद को—जो कि, उनके साथ पढ़ता था, और जिसका विवाह राजेश्वरी की बालसखी वीणा से हुआ था—सब बातें कह सुनायीं। कमला बाबू ने वीणा को पत्र लिख कर राजेश्वरी को मनाने के लिये कहा, किन्तु राजेश्वरी क्यों मानने लगी!

× × × ×

इन्दिरा के बहुत कहने पर केदार बाबू एक बार थोड़े से समय के लिये राजेश्वरी को छत्रपुर भेजने को सहमत हुए। पिता की लाड़िली राजेश्वरी उन्हीं की आज्ञा-उल्लंघन करने की चेष्टा करने लगी। किन्तु पिता के अधिक मनाने पर सिर्फ एक सप्ताह के लिये जाने को राजी हुई। पुत्रवधू के आने के समाचार सुन प्रभा का मुरझाया हुआ कमल मुख खिलकर प्रभा पूर्ण हो गया। जमीन्दार की लड़की है, जिसमें उसे यहां किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसी अभिप्राय से धर्मेन्द्र बाबू ने अपनी तीन एकड़ जमीन बेच कर पुत्र वधु के लिये अनेक प्रकार की चीजें जुटा रक्खी थीं। प्रभा ने घर को खूब अच्छी तरह से साफ सुथरा कर सजा रक्खा था। यथासमय 'मदन' राजेश्वरी को लिये हुए छत्रपुर पहुँचा! केदारनाथ ने राजेश्वरी के साथ अनेक दास दासियां भेज दिये थे। साथही एक सप्ताह के खर्च के लिये आवश्यक चीजें भी भेज दी थीं। 'प्रभा' राजेश्वरी के रूप को देख अत्यन्त प्रसन्न हुई। टोले मुहल्ले की स्त्रियां प्रभा के भाग्य की प्रशंसा करने लगीं। किन्तु प्रभा का आनन्द क्षणिक निकला। पुत्रवधू के आने के दो ही तीन दिनों के बाद उसका यह आनन्द निरानन्द में परिणत होने लगा। राजेश्वरी दूसरे ही दिन से सास श्वसुर पर नाक भौं चढ़ाने और खाने-पीने की चीजों को दूर उठाकर फेंकने लगी। वह कहने लगी, "क्या इसी पर मुझे लिवा लाने की इतनी जिद ठानी थी? क्या इसी टूटी झोंपड़ी में मैं रहूँगी! घर की दुर्गन्धि से नाक फटी जाती है, भोजन के पदार्थों को देख उलटी आने लगती है! यदि एक महीना यहां रहना पड़े तो मैं अवश्य मौत के मुख में पड़ जाऊँगी।" जिस तिस प्रकार आग्रह अनुरोध से राजेश्वरी सिर्फ पन्द्रह दिनों तक छत्रपुर में ठहरी। प्रति दिन दो एक व्यक्ति छत्रपुर से रामपुर और रामपुर से छत्रपुर आने जाने लगे। बीसों दास दासियां राजेश्वरी के साथ थे, उन सबों को आदर सत्कार से रखने और विदा करने में धर्मेन्द्र बाबू की पांच एकड़ जमीन और बिक गयी।

पन्द्रहवें दिन 'राजेश्वरी' रामपुर को लौट गयी। और फिर कभी जीवन भर छत्रपुर नहीं आयी। मदन भी स्त्री के साथ ही रामपुर लौट आया। वह मानों राजेश्वरी के हाथ का खिलौना ही बन गया था। पढ़ना तो छोड़ ही चुका था, साथ ही माता पिता को भी वह भूल गया। यहां तक कि फिर वह उनके पत्र का उत्तर भी नहीं देता और राजसी [illegible]

[illegible] हुए। महा- [illegible] । अन्त को विवश होकर उन्होंने अपनी सब जमीन बेच दी और उन सबों का रुपया चुका दिया। सिर्फ दो एकड़ जमीन बच गयी। प्रभा उसी जमीन की पैदावार से जिस तिस प्रकार खर्च चलाने लगी। धर्मेन्द्र बाबू जो कुछ होता, प्रभा के हवाले कर देते और वह उसी से अपना घर खर्च चला लेती। धीरे २ ये लोग मदन को बिलकुल भूल गये। किन्तु प्रभा जब तब मदन के व्यवहार पर अवश्य आंसू बहाया करती थी।

× × × ×

ईश्वर की लीला भी विचित्र है। बसे को उजाड़ना और उजड़े को बसाना हँसते को रुलाना और रोते को हँसाना तो उनके बायें हाथ का खेल है। आज पांच वर्षों से जो 'मदन' दर्प से फूला नहीं समाता था, जमीन्दार की लड़की से विवाह होने ही से जो अपने को भी भूल गया था। पिता माता का ध्यान जिसे स्वप्न में भी नहीं आता था। वही आज राह का भिखारी हो गया। जो केदारनाथ अपने जामातृ के रूप में मदन को पाकर उससे अत्यन्त स्नेह रखते थे, आज वही उससे घृणा करते हैं।

उधर राजेश्वरी शीत ज्वर से स्वर्गीया हुई, इधर मदन पर आफत आयी। अब उसके लिये रामपुर सूना हो गया। इन्दिरा अब मदन को देखना भी नहीं चाहती, अन्त को मदन अपमानित हो वहां से निकल गया। धर्मेन्द्र बाबू को यथा समय यह सूचना मिली। उन्होंने 'मदन' को अपने घर लाकर अनेक प्रकार के उपदेशप्रद वाक्यों से उसकी चिन्ता दूर की।

अब मदनप्रसाद रेलवे ऑफिस में एक अच्छी जगह पर काम करता है, और माता पिता के साथ सुख से रहता है।

पूना में तिलक पर्सफण्ड का सपारम्भ।

यह उत्सव डा० [illegible] देशमुख के सभापतित्व में ता० २२ मई १९२० को [illegible] बड़े [illegible] से मनाया गया था।

इँग्लैण्ड के भिखारी ।

(लेखक—श्री॰ सदाशिव दामोदर एम. ए, एल-एल. बी.)

[भीख मांगने के धंदे मे फँसे हुए लोग बिना लाचार किये कभी उद्योगरत न बन सकेंगे। किन्तु इसके विरुद्ध अच्छी दशावाले अथवा उद्योग धंधों के द्वारा उन्नत बने हुए मनुष्य को भिक्षा मांगने के लिये विवश करनेवाली आवश्यकताओं को देख हमें आश्चर्यान्वित ही बन जाना पड़ता है। सर, माच्यूहेल।]

आज दिन भारत में भिखमंगों की संख्या बहुत बढ़ी हुई है। इन लोगों को देख सुशिक्षित पुरुषों के हृदय में अनेकोंबार यह प्रश्न उठता होगा कि, ये लोग काम धन्दा न कर भीख क्यों मांगते हैं? और सर्कार, म्युनिसिपालिटियाँ अथवा लोकल बोर्ड इनके विषय में उदासीन क्यों बनी हुई हैं? किन्तु इस उदासीनता का कारण यह नहीं वरन् हमारी दान विषयक कल्पना—और खास कर अन्नदान महापुण्यवाली कल्पना—मात्र ही है। क्योंकि यदि इस इस विषय का कोई कानून बना दिया जाय तो लोगों की धार्मिक श्रद्धा को आघात पहुँचने की संभावना होगी! बस, इसी भय के कारण ये लोग उदासीन बन रहे हैं। द्वार पर आये हुए भिखारी को भिक्षा देने पर से, किसी वृद्ध गृहपति और उसके शिक्षित युवा पुत्र के बीच होता हुआ वाद-विवाद अनेकों बार हमारे देखने आया करता है। आधुनिक युवा पुरुषों की दान-धर्म विषयक कल्पनाएँ अधिकांश बदलती गई हैं। उनके मन में यह भावना दृढ़ होती चली है कि, भिक्षा देकर भिखारियों को हम आलसी बनाते हुए देश के उद्योग धन्दों में काम आसकनेवाली शक्ति को व्यर्थ गवाँ रहे हैं। बंबई की म्युनिसिपालिटी इस भिखारी रूपी व्याधि को नष्ट करने के लिये कुछ उपायों की योजना करनेवाली है। संभव है कि, आगे चल कर अन्यान्य नगरों में भी उसका अनुकरण होने लगे! यह कह देना अनुचित नहीं जान पड़ता कि, लोकमत की अनुकूलता के अनुसार सर्कार भी इस प्रश्न पर विचार कर सकती है। भिखमंगों से पृथ्वी पर का कोई भी देश खाली नहीं, सब कहीं उन की समस्या मुँह बाये खड़ी हुई है। फलत आज हम अपने पाठकों को इँग्लैण्ड जैसे संस्कृत, पाश्चिमात्य राष्ट्र के इस विषय में किये हुए प्रयत्नों का वर्णन उनकी सफलता के प्रमाण सहित भेट करते हैं। आशा है कि, इससे अन्य बातों के साथ पाठकों का पूरा २ मनोरंजन भी होगा।

महारानी एलिजाबेथ के कार्यकाल (ई. स १५५८–१६०३) तक इँग्लैण्ड में राज्यकर्ताओं की ओर से भिखारियों के विषय में किसी भी प्रकार की योजना नहीं हुई थी। न उन लोगों को इस बात का ही पता था कि, हमारे अन्यान्य कर्तव्यों में से यह भी एक मुख्य है। उन लोगों के यहां इनके लिये केवल यही कानून था कि, यदि भिखारी ने किसी प्रकार का अपराध किया तो उसे सर्वसाधारण की भांति दंड दिया जाय! इसके लिये दो मुख्य कारण थे। एक तो देश में 'फ्युडल' (सरंजामी) प्रथा प्रचलित रहने के कारण अधिकतर सभी परिवार किसी न किसी सर्दार के आश्रित बन कर रहते थे। दूसरे संकट के समय उन्हें किसी न किसी रूप में सहायता पहुँचाने का भार उन सर्दारों पर रहता था। किन्तु धीरे २ यह प्रथा नष्ट होती चली, और उसी के साथ गरीब आश्रितों का आधार भी नष्ट हो गया। अर्थात् भिखारियों की अल्प संख्या के कारण उनके प्रश्न को जो राष्ट्रीय महत्ता न मिल सकी थी, वह क्रमशः प्राप्त होने लगी। उन लोगों को सहायता पहुँचाने का भार धार्मिक संस्थाओं ने अपने सिर लेलिया था, इस कारण भी सर्कार को इस प्रश्न की ओर ध्यान देने की आवश्यकता न रही। प्रत्येक धर्माधिकारी अपनी सीमा में के भिखारियों और गरीबों की सुविधा पर पूर्णतयः ध्यान देता था। इसी प्रकार यहां के धनाढ्य लोग भी दान को पुण्यकारक समझ श्रद्धापूर्वक दिल खोल कर धर्माधिकारियों को सहायता देते और गुप्तदान भी करते थे। सिवाय में कई जगह योगी अथवा योगिनियों के मठ भी थे। कुछ मठाधिकारी बड़े धनाढ्य थे, और निःसन्तान होने के कारण धनाढ्यों की भेट पूजा से उनकी सम्पत्ति बराबर बढ़ती जाती थी। उन मठों में प्रत्येक यात्री के लिये खान-पान और रहने का प्रबंध किया जाता था। में जिस प्रकार अन्नसत्र खोलने और धर्मशालाएँ बँधवानेवाले एवं पुण्येच्छुकों की ओर से गरीबों की व्यवस्था कीजाती है, वह उस समय के इँग्लैण्ड में भी प्रचलित था। इस सहायता को लोग धार्मिक भाव से देखते थे। सहायकर्त्री संस्थाओं का संकलित न था, और न कोई ढंग ही था। प्रत्येक संस्था अपने के लिये पर्याप्त कार्य करती थी! यह सहायता स्थानिक होने के कारण विविधतायुक्त थी, किन्तु उसमें राष्ट्रीयता नाम को भी न थी। यह दशा ई. स. १५३६ तक रही। इसी वर्ष आठवें हेन्री और पोप के बीच झगड़ा होजाने के कारण इँग्लैण्ड के मठ तोड़ दिये जाकर सम्पत्ति राज कोष में जमा कर लीगई! हजारों लोग निराश्रित गये। फलतः उन्हें पेट के लिये भटकने और कुछ न मिलने पर चोरी आदि दुष्कर्म करने की ओर प्रवृत्त होना पड़ा। इस कारण उन के अपराधों की संख्या बहुत बढ़ गई और तब विवश होकर सर्कार को इस प्रश्न की ओर ध्यान देना पड़ा। उसी के परिणाम स्वरूप महारानी एलिजाबेथ के कार्य-काल में (Poor laws) गरीबों के लिये बना हुआ कानून है।

इस कानून के द्वारा यह प्रश्न सार्वजनिक समझा जाकर हल का प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक 'पॉरिश' (धर्माधिकारी के प्रांत) में के गरीब लोगों को वहां से बाहर जाने की मुनादी कर दी जाकर, उनका सब प्रबन्ध धर्माधिकारियों के जिम्मे किया गया और इस व्यवस्था के लिये भिखारियों को चार विभागों में बांट दिया गया। प्रथम श्रेणि में व्यंग या अपाहिज लोग—जो किसी प्रकार का काम नहीं कर सकते-रखे गये, दूसरी में लड़के लड़कियाँ, तीसरी में वृद्ध लोग और चौथी श्रेणि में वे लोग रखे गये, जो शक्ति सम्पन्न रह कर भी कुछ काम नहीं करते थे। व्यंग अथवा अपाहिजों के खाने का प्रबंध 'पॉरिश' की ओर से हो, लड़के लड़कियों को किसी प्रकार का उद्योग सिखाने के लिये उम्मेदवार बनाकर रखा जाय, निकम्मे लोगों को काम दिया या दिलाया जाय, और जो मोटे ताजे व्यक्ति भीख मांगते पाये जायँ उन्हें पकड़ कर दंड दिया जाय, तथा उन्हें 'वर्क शाप' या कारखानों में रखा जाय, जहां कि, काम करने पर ही खाने को मिलसके! इस प्रकार उपरोक्त कानून का स्वरूप था। आप लोग देखेंगे कि, इस कानून के द्वारा भिखारियों का प्रश्न धार्मिक रूप से बदल कर एकदम ही व्यवहारिक कैसे बन गया! किन्तु इस कानून की अमलबजावरी ठीक २ न होती रहने से परिणाम भी उतना अधिक नहीं हुआ। किन्तु फिर भी इसका उपयोग खासा हुआ! बाद में इसमें कई तरह की सुधारणाएँ भी हुई। द्वितीय चार्ल्स के कार्य काल (ई. सन १६६० से १६८५) में 'जस्टिस से ऑफ दि पीस' को छोटे बड़े भिखारियों को पकड़ कर अपने देश से बाहर निकाल देने का अधिकार मिला। तीसरे विलियम के कार्य काल में (ई. सन १६८६ से. १७०२) भिक्षा मांगने की आज्ञा पाजानेवाले भिखारियों को बिल्ले या लाकेट दिये गये। किन्तु सन १७२२ में एक नई प्रथा के शुरू होजाने से गरीबों की दशा अधिक बिगड़ने लगी। वह प्रथा—अशक्त गरीबों के पोषण के लिये स्थापित कीहुई संस्थाओं के कार्य में स्वतंत्रता मिल जाना ही थी। उन स्वतंत्रता पूर्वक प्रबंध करनेवालों पर किसी की देख रेख या नजर न रहने से गरीबों की बड़ी दुर्दशा होने लगी, और यह दिनों दिन बढ़ती ही गई। उस समय बेकायदा भीख मांगते हुए, जो लोग पकड़े गये, उन्हें बड़ी ही कठोर सजा दीगई! कोड़े मारने की सजा निरन्तर प्रचार में आती थी। इसके सिवाय जला देने या दाग लगाने आदि की भी कई सजाएँ दीजाती थीं। किन्तु इतने पर भी भिखारी लोग अपने पॉरिश से भाग जाने में ही सफलता प्राप्त कर लेते थे। गरीबों की सहायता के लिये किया हुआ खर्च निभाने को "पूअर

स" (गरीबों के लिये कर) लगाया गया था। खर्च के प्रमाणानुसार यह कर भी न्यूनाधिक कर दिया जाता था।

सन १७८२ में इस कानून में महत्व पूर्ण सुधार किया गया। उस सुधार के अनुसार हट्टे कट्टे भिखारियों को दिया जानेवाला काम परिश के आसपास ही देने का निश्चय किया गया। इस कारण कई जगह आवश्यकता न रहने पर भी निरुपयोगी काम शुरू कर देने पड़े। किन्तु वहां विशेष श्रम उठाने की आवश्यकता न पड़ती देख बहुत से मजदूर उन कामों में लग गये। ई. सन १७९५ में फ्रांस के साथ युद्ध शुरू होजाने पर तो बिना श्रम लिये ही गरीबों को सहायता देने का निश्चय होगया। यह सहायता महँगाई के रूप में लड़कों की संख्या पर अवलंबित रहती थी। जितने ही अधिक लड़के काम करने आते थे, उतनी ही अधिक सहायता दीजाती थी। इसी प्रकार अधिकारी लोग भी इस बात की चौकसी न करते थे कि, महँगाई पानेवाले यथार्थ में ही गरीब हैं या नहीं! फलतः इस प्रकार सहायता पानेवाले लोगों की दशा परिश्रमी लोगों से बहुत बढ़कर होगई। यह सहायता स्थानिक कर की आय से दी जाती थी। सहायता पानेवाले आलसियों की संख्या बढ़ने लगी, साथ ही उद्योगी लोगों पर कर का भार भी विशेष पड़ने लगा। लोगों में असंतोष उत्पन्न होगया, और उसी समय की अवस्था को देख कर 'माल्थस' नामक प्रसिद्ध अर्थशास्त्र वेत्ता को ये उद्गार निकालने पड़े कि, "जिस मनुष्य में अपने बालबच्चों का भरण पोषण और उन्हें शिक्षित बनाने का सामर्थ्य नहीं है, उसे यह कोई नहीं कहता कि, तुम देश की जनसंख्या में वृद्धि करते रहो, और उनका ऐसा न करना ही ठीक भी है।" यह असंतोष आगे जाकर इतना बढ़ गया कि, सर्कार को जांच के लिये एक कमीशन ही नियुक्त कर देना पड़ा, और तब कहीं जाकर कमीशन की सूचनानुसार उस कानून में सुधार किया गया!

उस सुधारणा में दो मुख्य तत्व थे। पहला यह कि, बिना किसी प्रकार का काम लिये केवल बीमारों, विधवाओं तथा छोटे बच्चों और वृद्धों को सहायता दीजाय! शेष सभी हट्टे कट्टे लोगों से 'वर्कहाउस' (कारखाने) में मेहनत करा लेने पर ही उस श्रम के अनुसार सहायता दीजाय! यद्यपि उन्हें दी जानेवाली मज़दूरी सर्वसाधारण की अपेक्षा कम थी, किन्तु उसका उद्देश्य उन्हें सुख से रखने का नहीं वरन् भूखों न मरने देने का था! यह कार्य सब जगह समान रूप में चलाने के लिये 'लोकल-गवर्नमेन्ट बोर्ड' की उसपर देखरेख रहती थी। पास २ के पॉरीशों का समूह बना कर उनकी व्यवस्था की देखरेख रखने के लिये लोग 'बोर्ड ऑफ गार्डियन्स' का निर्वाचन कर देते थे। और उसका मुख्य काम यह होता था कि, प्रत्येक मनुष्य की जांच की जा कर उसे उचित सहायता दीजाती है या नहीं! इस युक्ति से यद्यपि अधिकतर दोष मिट गये थे, तथापि सन १९०९ वाली जांच कमीशन के रिपोर्ट पर से जाना गया कि, फिर भी यह संतोषप्रद नहीं है। लोकल बोर्ड ऑफ गार्डियन्स के निर्वाचन को जो लोग विशेष महत्व का न समझते थे, वे व्यवस्था पूर्वक चुने भी नहीं जाते थे। अर्थात् उनका कार्य असमाधानकारक होता था। कितनी ही बार वे अपने कार्य के लिये असमर्थ, अयोग्य और अनेकों बार रिश्वत खोर भी पाये जाते थे। इसी प्रकार उन समूहों पर देखरेख रखने वाली 'लोकल गवर्नमेन्ट बोर्ड' रहते हुए भी सब का काम एक ही ढंग से न चलता था। दी हुई सहायता बहुधा साधन सम्पन्न-किन्तु जिनका उद्योग यथासमय नहीं चल सकता उन-लोगों को अपर्याप्त अथवा आलसियों को आवश्यकता से अधिक मिलती थी। सब लोगों को एक ही प्रकार से सहायता दीजाती थी! सिवाय में सर्कार का प्रयत्न और किसी निजी व्यक्ति या संस्था का प्रयत्न एक ही दशा में परस्पर के लिये सहायक भी न होता था। सर्कारी सहायता प्राप्त करने के साथ ही धनाढ्यों एवं धर्मार्थ-संस्थाओं से भी अनेक लोग सहायता प्राप्त करते थे। सहायता प्राप्त करते समय ये लोग इस बात को प्रगट न होने देते थे कि, हमें सर्कार की ओर से सहायता मिलती है। इस कारण अनेकों बार लफंगे लोग गरीबों से बाजी मार जाते थे।

आजकल इँग्लैण्ड में भिक्षा मांगनेवाले हट्टे कट्टे पुरुषों की संख्या बहुत घट गई है, और भीख मांगना एक अपराध मान लिया गया है, तथापि वहां थोड़े बहुत भिखारी पाये ही जाते हैं। इसका कारण और भिखारियों का नामोनिशान मिटा सकने की एक प्रगट में सरल किन्तु व्यवहार में कठिन-ऐसी एक युक्ति एक अंग्रेजी ग्रंथकार ने बतलाई है। उसका भाव इस प्रकार है कि, "यदि कोई देनेवाला ही न होगा तो कोई भिक्षा भी न मांग सकेगा, और इस प्रकार दस बीस दिनों में ही यह व्याधि नष्ट हो जायगी! किंतु बिना पूरी चौकसी किये दान देना जब तक पुण्य सम्पादन का मार्ग समझा जाता है, तब तक ऐसा होना अशक्य ही है। अतः यदि भिखारियों के साथ २ उन्हें दान देनेवाला भी दंडनीय समझा जाने लगे तो अवश्य ही इस प्रथा का समूल नाश हो सकता है।" किन्तु इंग्लैण्ड के लोगों की इस प्रकार की तैय्यारी नहीं है, और भारत का तो पूछना ही क्या? तब लोकमत की ओर से बिना ज़ोर दिये सर्कार भी इस विषय में क्यों हाथ डालने लगी! किन्तु इस भिखमंगेपन की प्रबलता के समय इँग्लैण्ड के विचारशील लोगों को क्या प्रतीत होता होगा, इसकी कल्पना निम्न वाक्य समूह पर से हो सकती है:—

"यदि कोई मनुष्य लन्दन के मार्ग पर घूमता हुआ इस बात पर ध्यान दे कि, अपने को भिखारी के रूप में दानपात्र सिद्ध करनेवाले बदमाश लोग कैसा प्रयत्न कर रहे हैं? तो उसे यही दिखाई देगा कि, कोई एक साधारण मनुष्य अपने उद्योग के लिये जो कुछ श्रम करता है-वह उन भिखारियों के सामने पासंग भी नहीं है! और इतने पर भी उन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता!! भिक्षावृत्ति ने एक प्रकार से 'कला' का ही रूप धारण कर लिया है। और भिखारी लोग अपनी सन्तान को बचपन से ही इसकी तालीम देने लग जाते हैं। जिन २ बातों से दूसरे के हृदय में दया का भाव उत्पन्न हो, अर्थात् किसी प्रकार से दुखित रहने या उसके अभाव में दुखी व्यक्ति का ढोंग बनाने, हाथ पावँ को व्यंग्य रूप में दिखाने आदि के रूपों में निर्वाह के साधन अथवा बदमाशी को देख कर हमें अनेकों बार ऐसा विचार होता है कि, यदि इसी गुण का ये लोग सदुपयोग करें तो अवश्य ही देश को अपरिमित लाभ पहुँच सकता है।"

यही दशा आज भी भारत के बड़े २ क्षेत्रों और तीर्थों की-पाई जाती है। किसी भी देवालय में आप एकाध यात्रा के समय जाइये, तो मार्ग के दोनों ओर बैठे हुए भिखारियों को देख कर आपके मन में भी इसी प्रकार के अनेकानेक विचार उत्पन्न होने लगेंगे!

भारत सर्कार की ओर से इसके प्रति ध्यान देने के तो कोई चिन्ह ही दृष्टिगोचर नहीं होते, किन्तु इँग्लैण्ड की सर्कार इस ओर ध्यान देकर भी अभी तक किसी प्रकार का संतोषजनक निर्णय प्रगट न कर सकी है! वह देश इतना संपत्तिशाली रहते हुए भी प्रति इक्कीस के पीछे एक मनुष्य को और ६५ वर्ष से अधिक आयुवाले सौ में से चार को घर पर ही, वर्कहाउसों में दवादारू की अथवा अन्य प्रकार की आवश्यक सहायता सर्कार की ओर से पहुँचाई ही जाती है! इस काम में प्रति वर्ष अस्सी लाख पौंड खर्च होता है! यह एक सर्वश्रुत बात है कि, सम्प्रति श्रम जीवियों ने अपना स्वतंत्रता राजनैतिक दल खड़ा कर लिया है! इस दल की महत्ता बढ़ते ही सर्कार को 'वृद्धों को पेन्शन देने एवं गरीबों के हितार्थ अन्यान्य प्रकार की सहायता दिये जाने के कानून निर्माण करने पड़े हैं। मजदूर संघ के कारण लोगों को उद्योग मिलना एक प्रकार से सरल होगया है! विगत महायुद्ध के कारण जहां तहां लोकशाही की लहर उत्पन्न हो जाने से अंग्रेजी राष्ट्रों में इस प्रश्न पर विशेष रूप से चर्चा होने की संभावना है। और उस चर्चा को अच्छी तरह समझने के लिये तथा भारत में भविष्य क्या २ उद्योग होसकता है, इसका विचार करने में प्रस्तुत लेख का बहुत कुछ उपयोग हो सकने की आशा है।

तिलाञ्जलि।

"सज्जनसङ्गमवियम कस्य न बाधाकरः पुंसः"
यद्गर्वेण जगर्ज भारतधरा स्वर्गीयसोऽम्बरः।
भाले भाऽलमलंल्ल येन तिलकश्रीतिप्रसक्तं निजम्॥
यत्कीर्तिर्विमलपुरस्पर्शसदृशी पारे समुद्रं ययौ।
सोऽयं हा! तिलकस्तिलाञ्जलिजलं पातुं प्रवृत्तिं दधौ॥१॥

अन्यायायामेभारसंहरणदृढ़ धर्मीरुपृष्ठेप्सिन्‌!
शूरो भारतहीनदुःखकलितौलाङ्गुलाभिप्रदः॥
धीमत्पुण्यपुरीनिवासनिरतो गीतामृतोवाहिकः।
भूत्वा धीतिवसात्‌भागवि गतो हा! बालगंगाधरः॥२॥

गोवर्धन—पं० प्रद्युम्न शर्मा।

पृथ्वी को तौलने का सफल प्रयोग।

जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं, उसका बोझ भी वैज्ञानिकों ने ज्ञात कर लिया है। क्वार्ट्स (Quarts) नामक एक रेतीले खनिज पदार्थ के, जिसे कदाचित हम अकीक भी कह सकते हैं-इतने बारीक तार में कि, जिसे मनुष्य आंखों से देख भी नहीं सकता-लटकाये हुए पलड़ों पर हमारी पृथ्वी तोली गई है। यह आश्चर्य भरा प्रयोग युनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) के केम्ब्रिज नगर की मॅसाच्युसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी नामक प्रयोगशाला में प्रो. लानीस ई. डेर (Prof-Louis E. derr) की देखरेख मे सफलता प्राप्त कर चुका है। बाजार में सर्राफ सोने को जिस बारीकी से तोल सकता है, लगभग उतनी ही बारीकी से पृथ्वी का वजन भी वस्तुतः मालूम कर लिया गया है। उन वैज्ञानिकों के हिसाब से वह वजन ६,०००,०००, ०००,०००, ०००, ०००, टन हुआ है, और इतना भारी बोझ तौलने के लिये कांटा या तराजू बड़ाही नाजुक और सिर्फ कपड़ा सीने की मशीन के आकार का काम में लाया गया है। यह कार्य अनेक वर्ष पूर्व सर ऐंजक न्यूटन (म. नवतनु) की आविष्कृत "गुरुत्वाकर्षण शक्ति के आधार पर किया गया है।

सुधरी हुई दुनिया को सबसे पहले न्यूटन ने ही सिखाया है कि, संसार में की प्रत्येक छोटी बडी वस्तु को पृथ्वी अपनी ओर आकर्षित करती है, और वह खुद भी उनकी ओर आकर्षित होती है। न्यूटन के इस आविष्कार से पूर्व लोग यह मानते थे कि, किसी वृक्ष से टूट कर पृथ्वी पर गिरा हुआ सेव, नीचे की हवा बहुत पतली होने के कारण ही एक ओर खिसक जाता है! किन्तु न्यूटन ने बतलाया कि, फल के पृथ्वी पर आ गिरने का कारण पृथ्वी और फल के बीच का गुरुत्वाकर्षण है! और पृथ्वी के अतिशय प्रचण्ड गोले की अपेक्षा सेव बहुत छोटा होने से ही वह प्रथमतः गतिमान बन कर नीचे की ओर पृथ्वी के पास आ जाता है। इस बात का पता लग जाने पर वह और भी एक सिद्धान्त यह कायम कर सका कि, दो चीजों के बीच की आकर्षण शक्ति उन दोनों के वजन गुणाकार के बराबर होती है। अर्थात् एक औंस वज़नवाली वस्तु की अपेक्षा दो औंस की चीज़ पृथ्वी की ओर दूने ज़ोर से आकर्षित होती है। पृथ्वी और उसकी सतह के निकट की वस्तुओं के बीचवाले इस आकर्षण को साधारण शब्दों में हम 'वज़न बोझ या भार (Weight) कहते हैं। पृथ्वी रूपी पदार्थ को तौलने के काम में भी प्रो० डेरने इसी युक्ति से काम लिया है।

इस प्रयोग के लिये दो छोटे २ पीतल के गोले इतनी सूक्ष्मता से तोले गये कि, उनमें एक ग्रेन के सहस्रांश तक का बोझ आगया था! इसके बाद गर्मी देकर पिघलाये हुए क्वार्ट्स (Qualts) अर्थात अकीक या एक प्रकार के रेतीले पदार्थ के रस से मनुष्य के बाल की अपेक्षा केवल बारहवें भाग जितने पतले तार बना कर उसमें, पहले से तोले हुए दोनों पीतल के गोले पेन्सिल के बराबर एक पीतल की डंडी के दोनों सिरों पर लटका दिये गये। इसके बाद उस पीतल की डण्डी को क्वार्ट्स के एक तीसरे तार से ठीक बीचोंबीच बांध कर लटका दिया। और उस तीसरे तार के सिरे पर एक तिल या मूंग की दाल के बराबर खूब चमकता हुआ पत्थर का टुकड़ा इस तरह चिपका दिया गया, कि ज्योंही ये पीतल के गोले लेश मात्र भी इधर उधर आकर्षित हुए कि, वह तीसरा तार और कांच कुछ मुड़ जाय! किन्तु ऐसा होते ही उस कांच पर से परिवर्तित प्रकाश-रश्मि चालीस फुट के अन्तर पर रखी हुई माप की पेटी पर खिसक कर उस परिवर्तन का स्पष्ट रूप में दिखाने लगी। इतना होजाने के बाद प्रयोजक ने लगभग पांच पांच सेर के दो सीसे के गोले लेकर उन्हें एक चौकट में इस तरह मढ़ दिया कि, वे लेश मात्र के लिये भी न हिल सकें। तत्पश्चात् बाद जब वायु का ... के लिये भी प्रचार या वश उन लटकते हुए पीतल के गोलों ... सकता था, उस दशा में सीसे के दो गोलों से मढ़ी हुई चौकट उनके निकट इस प्रकार रख दीगई कि, जिससे उपरोक्त गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्तानुसार वे अत्यन्त सूक्ष्म प्रमाण में आकर्षित हुए, और वह छोटासा काँच किंचित घूम गया। परिणाम स्वरूप प्रकाश-रश्मि चालीस फुट के अन्तर पर रखी हुई, माप की पेटी पर एक गज़ भर खिसक गई! किन्तु इसी पर से यह न समझ लेना चाहिये कि वह गति उत्पन्न करनेवाली आकर्षण शक्ति विशेष बलवान होगी क्योंकि बाद में जांच करने से मालूम हुआ है कि, वह आकर्षण शक्ति केवल एक लक्षांश ($\frac{1}{100000}$) इंच लम्बे मनुष्य के शिर के बाल के सूक्ष्मांश अथवा अणुमात्र बोझ के बराबर थी! किन्तु फिर भी उस यन्त्र की रचना इतनी अधिक नाजुक (Sencitive) थी कि, उस सूक्ष्म आकर्षण से उसका कांटा (Pointer) जिन प्रकाश-किरणों से बना हुआ था, वह मापक पेटी पर गज़ भर खिसक गया। कितना ही सूक्ष्म होने पर भी इस शक्ति का यथार्थ माप ज्ञात होजाने से पृथ्वी का बोझ नापने की क्रिया बड़ी सरल होगई है। क्योंकि, प्रोफेसरों को उन पीतल और सीसे के गोलों का ठीक बोझ पहले ही से ज्ञात था, इसके बाद सीसे के गोलों ने पीतल के गोलों को किस शक्ति से आकर्षित किया, इसका भी उन्हें पता लग गया था। इसी प्रकार उन सीसे के गोलों को पृथ्वी कितने जोर से खींचती थी, (अर्थात्, उनका ठीक २ वज़न कितना था) वह भी उन्हें मालूम ही था। और विशेष में यह कि, उन्हें गुरुत्वाकर्षण का यह सिद्धान्त भी ज्ञात था कि, दो वस्तुओं के बीच का ठीक २ आकर्षण उनके वजन के गुणनफल के बराबर होता है। इन सब साधनों के रहने पर पृथ्वी का वज़न करना एक मात्र साधारण त्रैराशिक के प्रश्न जैसा ही था! जिस प्रकार कि, त्रैराशिक में दिये हुए तीन अंकों पर से चौथा उत्पन्न किया जासकता है, उसी प्रकार उपरोक्त विधि के अनुसार हिसाब लगा कर देखा गया तो पृथ्वी का वज़न ६,०००, ०००, ०००, ८००, ०००, ०००, टन मालूम हुआ।

अवलोकन एवं गणना में यदि किसी प्रकार की भूल रह गई हो तो उसे ठीक कर लेने के उद्देश्य से उपरोक्त संक्षिप्त प्रयोग कई बार करके देखा गया, और बाहर सड़कों पर चलते हुए गाड़ी घोड़े की आवाज़ के कारण प्रयोगशाला में पहुँचते हुए सूक्ष्म कम्पन का प्रभाव, एवं प्रयोगशाला में चलते हुए यंत्रादि के कारण सारे मकान को आ... करनेवाले प्रभाव का हिसाब लगाकर गणना में से उसे घटा गया था। फलतः प्राप्त उत्तर सब प्रकार से सत्य ही कहा जा ... है।

रेव्हरंड जोहन मिचेल नामक एक पादरी के आविष्कृत यंत्र आवश्यक बातों का फेरफार करने के पश्चात् कॅव्हेन्डिश नामक महान अंग्रेज रसायन शास्त्री और पदार्थ-विज्ञान के ज्ञाता ने भी समय पहले पृथ्वी का वजन जो कि कांच के लोलक की हलचल के अनुसार किया था, वह भी जानने योग्य है। किन्तु विस्तार भय से हम यहां उसे नहीं लिख सकते। संक्षेप में यही कहा जा सकता कि, भिन्न २ प्रकार से सूक्ष्म गणना करते हुए पृथ्वी के बोझ का जो भिन्न २ वैज्ञानिकों बतलाया है, वह उपरोक्त संख्या के लगभग पाया गया है।

पृथ्वी के विषय में एक विनोदी वैज्ञानिक ने यह गणना की है हमारी पृथ्वी को आकाश-अवकाश-व्योम में अधर उठाये रखने का कार्य हिन्दू शास्त्रों या पुराणों में जिन भगवान को सौंपा गया अथवा यूनानी दंत कथाओं के आधार पर एटलास (Atlos) ना... बालस कि, जो अपनी पीठ पर इस पृथ्वी हमेशा से उठाये हुए उन्हें थोड़ी सी विश्रान्ति देने के लिये इस भूमंडल को उठाने का यदि किसी मनुष्य को सौंपा जाय तो वह इतना बड़ा होगा कि, जिसकी दोनों भुजाओं की लम्बाई चौबीस हजार मील हो! उसके समान केवल दस मनुष्य यदि अपने हाथों को एक दूसरे की भुजा पर रख कर सरल रेखा में खड़े रहें, तो भी वे केवल दूरी २४०,००० मील के अन्तर वाले चन्द्रमा तक ही पहुँच सकेंगे।

(मनस्वी ...)

लो० तिलक एवं उनके साथी लोग।

सन १९१८ के मार्च में विलायत जाने के पूर्व कोलंबो में लिया हुआ फोटो।

सन १९१८ ई० में बंबई में [illegible]

सन १९१४ [illegible]

पृथ्वी को तौलने का सफल प्रयोग।

जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं, उसका बोझ भी वैज्ञानिकों ने ज्ञात कर लिया है। क्वार्ट्स (Quarts) नामक एक रेतीले खनिज पदार्थ के, जिसे कदाचित हम अकीक भी कह सकते हैं-इतने बारीक तार में कि, जिसे मनुष्य आँखों से देख भी नहीं सकता-लटकाये हुए पलड़ों पर हमारी पृथ्वी तौली गई है। यह आश्चर्य भरा प्रयोग युनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) के केम्ब्रिज नगर की मॉसाच्युसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलोजी नामक प्रयोगशाला में प्रो. लाबीस ई. डेर (Prof-Lonis E. derr) की देखरेख में सफलता प्राप्त कर चुका है। बाजार में सर्राफ सोने को जिस बारीकी से तोल सकता है, लगभग उतनी ही बारीकी से पृथ्वी का वजन भी वस्तुतः मालूम कर लिया गया है। उन वैज्ञानिकों के हिसाब से यह वजन ६,०००,०००, ०००,०००, ०००, ०००, टन हुआ है, और इतना भारी बोझ तौलने के लिये कांटा या तराजू बड़ाही नाजुक और सिर्फ कपड़ा सीने की मशीन के आकार का काम में लाया गया है। यह कार्य अनेक वर्ष पूर्व सर ऐजक न्यूटन (म. नवतनु) की आविष्कृत "गुरुत्वाकर्षण" शक्ति के आधार पर किया गया है।

सुधरी हुई दुनिया को सबसे पहले न्यूटन ने ही सिखाया है कि, संसार में की प्रत्येक छोटी बड़ी वस्तु को पृथ्वी अपनी ओर आकर्षित करती है, और वह खुद भी उनकी ओर आकर्षित होती है। न्यूटन के इस आविष्कार से पूर्व लोग यह मानते थे कि, किसी वृक्ष से टूट कर पृथ्वी पर गिरा हुआ सेब, नीचे की हवा बहुत पतली होने के कारण ही एक ओर खिसक जाता है! किन्तु न्यूटन ने बतलाया कि, फल के पृथ्वी पर आ गिरने का कारण पृथ्वी और फल के बीच का गुरुत्वाकर्षण है! और पृथ्वी के अतिशय प्रचण्ड गोले की अपेक्षा सेब बहुत छोटा होने से ही वह प्रथमतः गतिमान बन कर नीचे की ओर पृथ्वी के पास आ जाता है। इस बात का पता लग जाने पर वह और भी एक सिद्धान्त यह कायम कर सका कि, दो चीजों के बीच की आकर्षण शक्ति उन दोनों के वजन गुणाकार के बराबर होती है। अर्थात् एक औंस वज़नवाली वस्तु की अपेक्षा दो औंस की चीज़ पृथ्वी की ओर दूने ज़ोर से आकर्षित होती है। पृथ्वी और उसकी सतह के निकट की वस्तुओं के बीचवाले इस आकर्षण को साधारण शब्दों में हम 'वज़न बोझ या भार (Weight) कहते हैं। पृथ्वी रूपी पदार्थ को तौलने के काम में भी प्रो० डेरने इसी युक्ति से काम लिया है।

इस प्रयोग के लिये दो छोटे २ पीतल के गोले इतनी सूक्ष्मता से तोले गये कि, उनमें एक ग्रेन के सहस्रांश तक का बोझ आगया था! इसके बाद गर्मी देकर पिघलाये हुए क्वार्ट्स (Qualts) अर्थात अकीक या एक प्रकार के रेतीले पदार्थ के रस से मनुष्य के बाल की अपेक्षा केवल बारहवें भाग जितने पतले तार बना कर उसमें, पहले से तोले हुए दोनों पीतल के गोले पेन्सिल के बराबर एक पीतल की डंडी के दोनों सिरों पर लटका दिये गये। इसके बाद उस पीतल की डण्डी को क्वार्ट्स के एक तीसरे तार से ठीक बीचोंबीच बांध कर लटका दिया। और उस तीसरे तार के सिरे पर एक तिल या मूंग की दाल के बराबर खूब चमकता हुआ पत्थर का टुकड़ा इस तरह चिपका दिया गया, कि ज्योंही वे पीतल के गोले लेश मात्र भी इधर उधर आकर्षित हुए कि, यह तीसरा तार और काँच कुछ मुड़ जाय! किन्तु ऐसा होने ही उस काँच पर से परिवर्तित प्रकाश-रश्मि चालीस फुट के अन्तर पर रखी हुई माप की पेटी पर खिसक कर उस परिवर्तन को स्पष्ट रूप में दिखलाने लगी। इतना होजाने के बाद प्रयोजक ने लगभग पांच पांच सेर के दो सीसे के गोले लेकर उन्हें एक चौकट में इस तरह मढ़ दिया कि, वे नाम मात्र के लिये भी न हिल सकें। तत्पश्चात् बाद जब वायु का नाम मात्र के लिये भी प्रवाह या कम्प उन लटकते हुए पीतल के गोलों तक न पहुँच सकता था, उस दशा में सीसे के दो गोलों से मढ़ी हुई चौकट उनके निकट इस प्रकार रख दीगई कि, [illegible] गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्तानुसार वे अत्यन्त सूक्ष्म प्रमाण में आकर्षित, और यह छोटासा काँच किंचित घूम गया। परिणाम स्वरूप [illegible] रश्मि चालीस फुट के अन्तर पर रखी हुई, माप की पेटी पर [illegible] सरक गई! किन्तु इसी पर से यह न समझ लेना चाहिये कि यह गति उत्पन्न करनेवाली आकर्षण शक्ति विशेष बलवान है क्योंकि बाद में जांच करने से मालूम हुआ है कि, यह आकर्षण [illegible] केवल एक लक्षांश ([illegible]) इंच लम्बे मनुष्य के सिर के बाल के सहस्रांश अथवा अणुमात्र बोझ के बराबर थी! किन्तु फिर भी उस यन्त्र की रचना इतनी अधिक नाजुक (Sencitive) थी कि, उस सूक्ष्म आकर्षण से उसका कांटा (Pointer) जिस प्रकार हिलाई [illegible] बना हुआ था, वह मापक पेटी पर गज़ भर खिसक गया। कितनी [illegible] सूक्ष्म होने पर भी इस शक्ति का यथार्थ माप ज्ञान होजाने से पृथ्वी का बोझ नापने की क्रिया बड़ी सरल होगई है। क्योंकि, प्रोफेसरों को उन पीतल और सीसे के गोलों का ठीक बोझ पहले ही से ज्ञात था, इसके बाद सीसे के गोलों ने पीतल के गोलों को किस शक्ति से आकर्षित किया, इसका भी उन्हें पता लग गया था। इसी प्रकार उन सीसे के गोलों को पृथ्वी कितने जोर से खींचती थी, (अर्थात्, उनका ठीक २ वज़न कितना था) यह भी उन्हें मालूम ही था। और विशेष में यह कि, उन्हें गुरुत्वाकर्षण का यह सिद्धान्त भी ज्ञात था कि, दो वस्तुओं के बीच का ठीक २ आकर्षण उनके वजन के गुणनफल के बराबर होता है। इन सब साधनों के रहने पर पृथ्वी का वज़न करना एक मात्र साधारण त्रैराशिक के प्रश्न जैसा ही था! जिस प्रकार कि, त्रैराशिक में दिये हुए तीन अंकों पर से चौथा उत्पन्न किया जासकता है, उसी प्रकार उपरोक्त विधि के अनुसार हिसाब लगा कर देखा गया तो पृथ्वी का वजन ६,०००, ०००, ०००, ६००, ०००, ०००, टन मालूम हुआ।

अवलोकन एवं गणना में यदि किसी प्रकार की भूल रह गई हो तो उसे ठीक कर लेने के उद्देश्य से उपरोक्त संक्षिप्त प्रयोग कई बार करके देखा गया, और बाहर सड़कों पर चलते हुए गाड़ी घोड़े की आवाज़ के कारण प्रयोगशाला में पहुँचते हुए सूक्ष्म कम्पन का प्रभाव, एवं प्रयोगशाला में चलते हुए यंत्रादि के कारण सारे मकान को आन्दोलित करनेवाले प्रभाव का हिसाब लगाकर गणना में से उसे घटा दिया गया था। फलतः प्राप्त उत्तर सब प्रकार से सत्य ही कहा जा सकता है।

रेव्हरंड जोहन मिचेल नामक एक पादरी के आविष्कृत यन्त्र में कई आवश्यक बातों का फेरफार करने के पश्चात् कॅव्हेन्डिश नामक एक महान अंग्रेज़ रसायन शास्त्री और पदार्थ-विज्ञान के ज्ञाता ने भी बहुत समय पहले पृथ्वी का वजन जो कि कांच के लोलक की हलचल के नियमानुसार किया था, वह भी जानने योग्य है। किन्तु विस्तार भय से आज हम यहां उसे नहीं लिख सकते। संक्षेप में यहां कहा जा सकता है कि, भिन्न २ प्रकार से सूक्ष्म गणना करते हुए पृथ्वी के बोझ का अंक जो भिन्न २ वैज्ञानिकों बतलाया है, वह उपरोक्त संख्या के लगभग ही पाया गया है।

पृथ्वी के विषय में एक विनोदी वैज्ञानिक ने यह गणना की है कि, हमारी पृथ्वी को आकाश-अवकाश-व्योम में अधर उठाये रखने का कार्य हिन्दु शास्त्रों या पुराणों में जिन भगवान को सौंपा गया है, अथवा यूनानी दंत कथाओं के आधार पर एटलास (Atlos) नामक राक्षस कि, जो अपनी पीठ पर इस पृथ्वी हमेशा से उठाये हुए है-उन्हें थोड़ी सी विश्रान्ति देने के लिये इस भूमंडल को उठाने का भार यदि किसी मनुष्य को सौंपा जाय तो वह इतना बड़ा होना चाहिये कि, जिसकी दोनों भुजाओं की लम्बाई चौबीस हजार मील हो! और उसके समान केवल दस मनुष्य यदि अपने हाथों को एक दूसरे की भुजा पर रख कर सरल रेखा में खड़े रहें, तो भी वे केवल पृथ्वी से २४०,००० मील के अन्तर वाले चन्द्रमा तक ही पहुँच सकेंगे।

(धन्वन्तरी से उद्धृत)

लो० तिलक एवं उनके साथी लोग।

सन १९१८ के मार्च में विलायत जाने के पूर्व कोलंबो में लिया हुआ फोटो।

सन १९१८ में बंबई में विर.यत जाते समय

. के समय का .चित्र .

लो० तिलक की बंबई में स्मशान यात्रा।

अपूर्व भक्ति।

लो० तिलक की बंबई में स्मशान यात्रा !

लो० तिलक और उनकी विलायती मित्र मंडली।

ता० ३ नवंबर सन १९१९ को सकलातवाला के घर पर लिया हुआ फोटो।

पूना में लोकमान्य तिलक के लिये दुःखप्रदर्शक सभा।

यह सभा [illegible] के मार्केट के [illegible] की ओर के विशाल मैदान में ता० १-८-१९२० को पञ्जाब केसरी लाला लाजपतराय के सभापतित्व में हुई थी। लगभग ४० हजार स्त्री-पुरुष नंगे सिर और नंगे पैर सभा में उपस्थित थे। लालाजी का भाषण मार्मिक और उत्तेजक हुआ।

सूचना—[illegible] इस अंक में लोकमान्य तिलक के [illegible] —"[illegible]"।
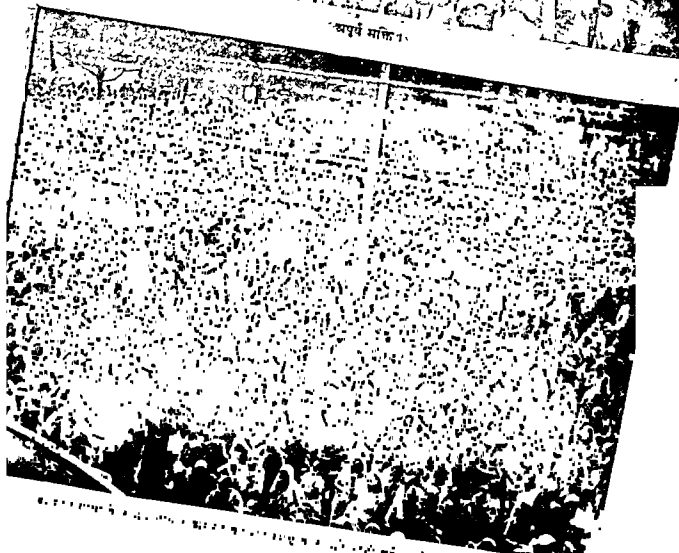
ने स्वीकार की है, और पैरिस वाली सन्धी की शर्तों को एक ओर रख कर उन्होंने ज़ोर शोर से सेना की तैय्यारी शुरू कर दी है। इटली इंग्लैंड और अमेरिका तीनों के इस नये अखाड़े में न उतरते हुए यदि अकेले फ्रान्स ने ही रशिया पर शस्त्र उठाया तो जर्मनी अपनी शक्ति द्वारा अवश्य ही रशिया को सहायता पहुँचायेगा। जर्मन प्रदेश में से जाकर यदि फ्रेन्च सेना वार्सा को न गाँठ सकी और काले सागर में से ही यदि फ्रांस ने रशिया पर चढ़ाई कर दी, तो पोलैंड को ज़मी-दोस्त करके जर्मनी को अपनी गुट में मिलाते हुए बाल्शेविक अपना मोर्चा दक्षिण को ज० रंगले की ओर फेरेंगे। पोलैण्ड के जमी-दोस्त होजाने पर, जर्मनी और रशिया की गुट अवश्य हो जाने के लक्षण दिखाई देने से, कुछ सप्ताह तक सेना का प्रबन्ध करने के लिये जर्मनी को मौका देना फ्रांस के हक़ में फौजी दृष्टि से हितावह नहीं है। अपनी ही कज़ाई के बल पर अवलम्बित रह कर यदि फ्रांस पोलैंड की रक्षा करना और बाल्शेविकों की सत्ता नष्ट करना चाहता हो तो, अपने और पोलैंड के बीचवाले जर्मनी के बव्हेरिया प्रान्त को बात की बात में पार कर, वहां की रेलों को हथियाते हुए पोलैंड की रणभूमि की ओर उसे फ़ुर्ती से बढ़ जाना चाहिये। इस प्रकार करने पर उसे प्रथमतः जर्मनी से ही लड़ना पड़ेगा। किन्तु जर्मनी को रोकते हुए दूसरे से पोलैंड की सहायता कर ... झुककर तोड़ने की शक्ति फ्रांस में है अवश्य। मि० ... मण्डल मज़दूरों की हड़ताल से जितना भय खाता है, ... मैं एम० मिलरैंड का नहीं। गत मई में मज़दूरों की हड़ताल इलाज हो चुका है। इसी कारण फ्रान्स ... बलात्कार कर उन्हें गिराने के लिये अपने को समर्थ ... रूपी सर्प का फन यदि निर्विष हो तो यह ... पोलैण्ड के लिये यथाशक्य रिआयतें प्राप्त कराने का ... जायगा। किन्तु यदि उसमें विघ्न हुआ तो फ्रांस जर्मनी सहित के ३। ४ सप्ताहों में पोलैंड के युद्ध में सम्मिलित हो कर ... इंग्लैण्ड का भी इस चक्र में खींचने से न चूकेगा। ... तारीख को पोलैण्ड वाला युद्ध इस दशा में ... ता० ६ अगस्त को सन्धिपत्र पर ... जाने की ओर यूरोप भर में किसी का भी ध्यान न जासका।

साहित्य-समालोचन।

(१) नल-दमयंती—लेखक श्रीयुत नवजादिक लाल श्रीवास्तव। प्रकाशक आर. एल. बर्मन कं० नं० ३७१ अपरचितपुर रोड़ कलकत्ता। पृ० सं० १५०, कागज़ बढ़िया एन्टिक। छपाई सुन्दर और मनमोहक सुनहरी रेशमी जिल्द मू० २) रुपये। सादी का १॥) रु०

आजकल पठित समाज की वृत्ति कुछ बदल सी गई है, यही कारण है कि, उसे पुरानी कथाएँ रुचिकर एवं विश्वसनीय नहीं जान पड़तीं। किन्तु चतुर लेखक उन्हीं को जब उस के मनोनुकूल रूप में गढ़ देता है, तब वही कथाएँ लोग बड़े चाव से पढ़ने लग जाते हैं। अर्थात् वर्तमान काल में लोगों में उपन्यास पढ़ने का शौक़ बेतरह बढ रहा है, और उनमें की कल्पित किन्तु कुछ विचित्र घटनाओं को बढ़कर लोकाभिरुचि दिन दूनी जागृत होती जाती है। ऐसी दशा में उन्हीं पुरानी कथाओं को जिन्हें कि, लोग केवल कपोल कल्पना ही समझ रहे हैं, उपन्यास के रूप में जनता के सामने रखने से अवश्य लाभ पहुँच सकता है। प्रस्तुत ग्रंथ इसके लिये एक उत्तम उदाहरण है। ऐसी कोई भी आर्य सन्तान हो जो "नल-दमयंती" का नाम न जानती हो। इस ग्रंथ में उसी नल-दमयंती की कथा को उपन्यास का जामा पहिना कर जनता के सामने रक्खा गया है। अब तक नल-दमयंती पर हिन्दी में ही नहीं वरन् भारत की अन्यन्य भाषाओं के अलावा विदेशी भाषाओं में भी नानाविध नाटक एवं कथानकों की रचना हो चुकी है। किन्तु हिन्दी में जितनी पुस्तकें इस विषय की अब तक हमारे देखने में आई हैं, यह ग्रंथ उन सब से बढ़कर है। लेखन-शैली इतनी उत्कृष्ट है कि, एक बार पुस्तक को हाथ में लेने पर बिना पूरी पढ़े छोड़ने को जी नहीं चाहता। यही नहीं वरन् दो चार बार पढ़ने की इच्छा होती है। चतुर लेखक ने इसे सब प्रकार से उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न किया है। भाषा भी सरल है। इन्हीं लेखक महाशय की "सावित्री-सत्यवान" नामक पुस्तक पर गत वर्ष हम 'जगत' में अपनी सम्मति प्रगट कर चुके हैं। यह उससे भी कई अंशों में बढ़ चढ़ कर निकली है। कलकत्ते के बर्मन प्रेस से "रमणी-रत्नमाला" नामक एक सीरीज़ निकलने लगी है, उसीकी यह दूसरी पुस्तक है। इसके प्रकाशक सीरीज़ में ऐसी प्रकार की पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं को सुन्दर रूप में निकाल कर, भारतीय रमणियों की अभिरुचि को उनके पूर्वादर्श पर पहुँचाया चाहते हैं। प्रयत्न स्तुत्य है। नल-दमयंती की कथा से नर-नारी उच्च आदर्श की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। लेखक ने जिस प्रकार इसे उत्तम बनाने का पूरा २ प्रयत्न किया है, उसी प्रकार प्रकाशक ने भी इसे सब प्रकार से उपादेय बना दिया है। कथानक के विविध प्रसंगानुसार पुस्तक में ७ रंगीन और छह सादे चित्र देने से पुस्तक में बहुत कुछ विशेषता आगई है।

हम अनुरोध पूर्वक कह सकते हैं कि, जो लोग अपनी बहू बेटियों के पढ़ने योग्य ग्रंथों की तलाश में रहते हैं, उन्हें यह ग्रंथ अवश्य ही खरीद कर उन्हें उपहार में देना चाहिये, और खुद भी पढना चाहिये। इसके प्रकाशक को उनकी कर्तव्य-दक्षता पर बिना धन्यवाद दिये नहीं रहा जासकता। हमारा विश्वास है कि, उनका यह प्रयत्न अपने ढंग का एक ही कहा जायगा। आज कल की महंगाई के ज़माने में इस प्रकार के अपूर्व और दर्शनीय एवं पठनीय ग्रंथ को प्रकाशित करके उन्होंने हिन्दी जगत को चिर कृतज्ञ बना लिया है। ईश्वर करे, और उनके द्वारा आगे भी इसी प्रकार के अपूर्व ग्रंथ प्रकाशित होते रहे।

(२) वीर-पंचरत्न—लेखक लाला भगवानदीन जी "लक्ष्मी" सम्पादक तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी प्रोफेसर (काशी), प्रकाशक उपरोक्त आर. एल बर्मन कंपनी। छपाई जिल्द-बन्दी और काग़ज़ आदि सभी उच्च प्रकार का होकर मूल्य सादी का २॥) रु० और रंगीन कपड़े की जिल्द वाली पुस्तक का ३) रुपये है, जो कि पुस्तक को देख कर अधिक नहीं कहा जासकता। लालाजी की वीररस-भरी कविताओं का आस्वादन 'लक्ष्मी' के पाठक अनेकों बार कर चुके होंगे। क्योंकि इस पुस्तक में प्रकाशित कई कविताएँ 'लक्ष्मी' में निकल चुकी हैं। तदनंतर दो तीन पुस्तकों के रूप में अलग भी निकली हैं, किंतु अब उन सबको एक ही पुस्तक में बहुत कुछ संशोधन के साथ बाईस रंग बिरंगे चित्र देकर 'वीर-पंचरत्न' के नाम से उपरोक्त बर्मन कंपनी के स्वामी बाबू राम-लालजी बर्मा ने प्रकाशित किया है। इसमें लालाजी की प्रायः सभी प्रकाशित ... कविताएँ संग्रह कर दीगई हैं।

सार पुस्तक पांच भागों में विभक्त है। ... भाग में हिन्दू कुल सूर्य महाराणा प्रताप ... रंगीन चित्र एवं उनकी वीरताओं का ... है। द्वितीय भाग में कई पौराणिक एवं ऐतिहा- सिक बालकों की वीरता का चित्र खींचा ... है। तीसरे में भारत की क्षत्राणियों ... में वीर माताओं की कथा है। पांचवां ... सती शिरोमणि वीर ... से सुशोभित है। प्रत्येक कविता ... भाषा के साथ 'रोला' छंद में रची गई है। पिछली कुछ कविताएँ 'वीर' छन्द में भी ... प्रायः प्रत्येक कविता सचित्र है। हिन्दी ... का प्राचीन काव्य विभाग अधिकांश शृंगार से ही परिप्लुत पाया जाता है, उसमें ... मक्खी के छोटे पैर की तरह बिलकुल जैसा ही है। किन्तु यह उसके लिये ... भाग्य का विषय है कि, अब कुछ कवि वीर रस की कविताएँ रचने लगे हैं। लाला ... का स्थान उन सब में बहुत ऊंचा है। आप ... आदर्श चरित्रों द्वारा उपदेश देने की शैली ... कर इन काव्य-प्रबंधों की सृष्टि की है। ... में यदि देखा जाय तो वर्तमान हिन्दी ... में यह ग्रन्थ अपने ढंग का अनूठा ही कहा ... सकता है। पुस्तक की भाषा कई स्थानों ... उर्दू मिश्रित रहने के कारण कठिन हुई ... अर्थ नीचे टिप्पणी में दे दिया गया है। प्रत्ये... बालक बालिका और स्त्री पुरुष इसे पढ़ ... शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इस कागज़ ... महंगी के जमाने में ऐसी बढ़िया पुस्तकें प्रका- शित करने का साहस बर्मन कंपनी ... संस्थाएँ ही कर सकती हैं। हमारी ... अनुसार कंपनी ने प्रकाशन जगत में ... युगान्तर ही उपस्थित कर दिया है। ... कि, इसके द्वारा आगे भी ऐसी ही सब ... पुस्तकों की सृष्टि होती रहेगी।

पंच स्तुति—ले० कवि श्री. पं. ... शर्मा 'नवरत्न' सरस्वती भवन ... सिटी। मूल्य चार आने। आजकल के ... दों बाबुओं के लिये सनातन धर्मानुया... देवों के संस्कृत अष्टकों का पाठ कर... कठिनाई दूर करने के आशय से हिंदी ... लिखी गई है। कविता सरस एवं भाव... प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य देखना चाहिये।

वर्ष १० अंक १०

अक्टूबर, १९२०, OCTOBER 1920

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो ! आत्मीयता दीजिए । देखें हार्दिक दृष्टि से सब हमें ऐसी कृपा कीजिए ॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से । फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द की दृष्टि से ॥

राष्ट्रीय-गान !

(रचयिता—श्रीमान पं० गिरिधरजी शर्मा " नवरत्न ")

जय जय जय जय हिन्दुस्तान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान

(१)

महि मण्डल में सबसे बढ़कर हो तेरा सम्मान
सौर जगत में सबसे उन्नत होवे तेरा स्थान
अखिल विश्व में सबसे उत्तम है तू जीवन प्रान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान

(२)

धर्म्मासन तेरा बढ़कर है,
रक्षक तेरा गिरिधर-धर है,
न्यायी तू है तू प्रियवर है;
हे प्रिय तव संतान।
जय जय जय जय हिन्दुस्तान ॥
महि मण्डल में सबसे बढ़कर हो तेरा सम्मान
सौर जगत में सबसे उन्नत होवे तेरा स्थान
अखिल विश्व में सबसे उत्तम है तू जीवन प्रान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान

(३)

पैदा हुआ न तू बंधन को;
दुख से मुक्त कर तू जनको,
फिर ने तू कह नीति वचन को;
है तेरा शुचि ज्ञान।
जय जय जय जय हिन्दुस्तान।
महि मण्डल में सबसे बढ़कर हो तेरा सम्मान
सौर जगत में सबसे उन्नत होवे तेरा स्थान
अखिल विश्व में सबसे उत्तम है तू जीवन प्रान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान

(४)

बड़े बड़े तप पूर्ण किये हैं,
हरि को भी निज गोद लिये हैं,
इन्द्रासन तक हिला दिये हैं;
है तेरी यह शान।
जय जय जय जय हिन्दुस्तान ॥
महि मण्डल में सबसे बढ़कर हो तेरा सम्मान
सौर जगत में सबसे उन्नत होवे तेरा स्थान
अखिल विश्व में सबसे उत्तम है तू जीवन प्रान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान

(५)

तेजस्वी तेरे बालक हैं;
आत्म-प्रतिष्ठा के पालक हैं,
विश्व नाव के संचालक हैं,
ध्रुवसम, देश महान।
जय जय जय जय हिन्दुस्तान ॥
महि मण्डल में सबसे बढ़कर हो तेरा सम्मान
सौर जगत में सबसे उन्नत होवे तेरा स्थान
अखिल विश्व में सबसे उत्तम है तू जीवन प्रान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान
जय जय जय जय हिन्दुस्तान

(६)

तव सुगन्धि सब जग में छावे;
लोकमान्य तू सबका भावे,
तेरी मोहन मूर्ति सुहावे;
करूं निछावर जान।
जय जय जय जय हिन्दुस्तान ॥
महिमण्डल में सबसे बढ़कर हो तेरा सम्मान
सौर जगत में सबसे उन्नत होवे तेरा स्थान
अखिल विश्व में सबसे उत्तम है तू जीवन प्रान
जय जय जय जय

लिये परम कल्याणकारी कार्य होने के कारण ही यह (सन्ध्योपासन) सब का आद्य एवं पवित्र कर्तव्य कर्म कहा गया है।

सन्ध्या कर्म में आचमन, प्राणायाम, मार्जन, संकल्प, अघमर्षण, अर्घ्य, परिषेचन, आसन, ध्यान, गायत्रीजप, उपस्थान और अभिवादन इन बारह बातों का ही सामान्यतः समावेश होता है। इनमें आचमन से लगा कर परिषेचन तक सम्पूर्ण विधि चित्त शुद्धिकारक है। आचमन के द्वारा कंठस्थ कफादि दोषों की निवृत्ति होकर शरीर के स्नायु स्निग्ध बनते, और चित्त शान्त हो जाता है। समस्त शुद्धिकारक वस्तुओं में श्रेष्ठ एवं पवित्र होने के कारण ही जल का सन्ध्या सदृश पुनीत कार्य में उपयोग किया जाता है। प्राणायाम से शरीर और चित्त निर्दोष होकर मन एकाग्र बनता; और उत्साह, बल, तेज एवं आरोग्यता का लाभ करता है। मार्जन को ब्राह्मस्नान कहा गया है, (मृज=शुद्ध करना) इस विधि से शरीर के भिन्न २ भागों और मुख्य कर मस्तक पर जल सिंचन किया जाता है। जिससे कि, आलस्य ग्लानि प्रभृति दोष दूर होकर मन प्रसन्न एवं कार्यक्षम बनजाय। संकल्प का अर्थ कर्तव्यकर्म विषयक निश्चय करना है। अघमर्षण अर्थात् पाप-मुक्त होना। जब तक अपनी अपात्रता की भावना निःशेष नहीं हो जाती; तब तक सत्कर्म के विषय में मन एकनिष्ठ नहीं हो सकता। 'आत्मविश्वास' ही कार्य-सिद्धी का मूल साधन है। अर्घ्य का भावार्थ पूजा या सत्कार है। ऐसा करने का उद्देश्य एक मात्र यही है कि, अपने उपास्य के विषय में मानसिक श्रद्धा दृढ़ हो जाय। क्योंकि धर्मशास्त्रों का नियम है कि, बिना श्रद्धा के कभी सिद्धी प्राप्त नहीं होती। परिषेचन का मतलब है, अपने चारों ओर जल सींचना। किसी भी कार्य में मन; बिना निर्भय एवं शंका रहित हुए वह कभी एकाग्र या कर्मनिष्ठ नहीं हो सकता। इसीलिये "अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं" इस श्रुति-वचन के अनुसार अपने चारों ओर संरक्षण कर सकने वाला परमात्म-तत्व फैला हुआ है, इस प्रकार की भावना निश्चित करते हुए निर्भय कर्मनिष्ठ बनना इस कार्य का मूल उद्देश्य है। यहां तक संध्योपासन की पहली तय्यारी हुई। इन सब विधियों का हेतु चित्त की प्रसन्नता के साथ २ उसको कार्यक्षम बनाना मात्र ही है!

इसके बाद आसन-विधि करके प्रत्याहार पूर्वक 'ब्रह्मकर्म समारभे।' अर्थात् ब्रह्मोपासन या संध्या-कर्म का आरंभ करना चाहिये। यह कर्म गायत्री मंत्र का जप है। जप के समय विवेकबुद्धि से परमात्मा के शुद्ध स्वरूप का ध्यान (संयम) करके 'तद्रूप' होने का यथाकाल अभ्यास करना चाहिये। यही संध्या है! और इसमें जितना अधिक समय व्यतीत होगा, वह विशेष महत्व का समझा जायगा!!

प्रथमतः कुछ दिन तक ध्यान का अभ्यास स्थिर होना बहुत कुछ कठिन प्रतीत होगा। मन भी शीघ्रता पूर्वक एकाग्र न हो सकेगा, और यदि वह हो भी गया तो अधिक देर स्थिर न रहेगा। किन्तु फिर भी धैर्य न छोड़ते हुए मन को एकाग्र करने का पुनः पुनः प्रयत्न करना चाहिये। धैर्य पूर्वक सतत प्रयत्न करते रहने से वह थोड़े ही दिनों में एकाग्र होने लगेगा; और यह एकाग्रता ज्यों २ अधिक स्थिर होती जायगी, त्यों २ साधक को अप्रतिम 'शांति सुख' एवं 'आत्मसामर्थ्य' की प्रतीति होने लगेगी!

यथाशक्ति यह अभ्यास होजाने पर उपस्थान (निकट जाना); अर्थात् सर्वसाक्षी परमात्मा के सान्निध्य के विषय में नित्य जागृत रहना, और अन्त को अभिवादन अर्थात् परमात्मा की शरण में जाना या आत्म-समर्पित होना किंवा तत्स्वरूप बनना चाहिये!!

संध्या कर्म में उपासना के लिये साधन-स्वरूप सूर्य (सविता) देवता को ही शास्त्रकारोंने भौतिक-दृश्य-देवता माना है। वस्तुतः अध्यात्म शास्त्रों में आत्मा को ही 'सविता' अथवा सूर्य कहा गया है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (यजु) अर्थात् इस स्थावर जंगम सृष्टि के लिये आधारभूत 'आत्मा' सूर्य ही है। इसी आत्मसूर्य के योग से हम अथवा यह संपूर्ण जगत व्यवहार-संपन्न हुआ है। सविता का अर्थ निर्माता है; और परमात्मा ही सर्व नियंता है। किन्तु वह अत्यन्त गूढ़ अव्यक्त एवं इंद्रियों के लिये अगोचर होने से चर्मचक्षुओं द्वारा उसका प्रत्यक्ष दर्शन होसकना अशक्य है। अतः जिसका प्रत्यक्ष बोध नहीं हो सकता उसका ध्यान या उपासना करना सामान्य बुद्धि के सामर्थ्य से परे की बात है। (भ० गीता १२-५) इसी लिये शास्त्रों ने सामान्य जनों के हितार्थ निर्गुणोपासना का सुलभ मार्ग दिखला दिया है। इस राजमार्ग से प्रथमतः सगुण का सहारा लेकर अन्त को निर्गुण तक पहुँचना विशेष सुगम कहा गया है। राजयोग अथवा उपासना में भावना ही प्रधान होने के कारण 'असौ आदित्यः ब्रह्म" अर्थात् यह आदित्य (सूर्य) ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है, इस भावना को दृढ़ रखकर संध्योपासन किया जाता है। 'भाविका देव यथार्थ।' इस प्रकार उपासना शास्त्र का सिद्धान्त ही है! इसी तरह अन्य कई कारणों से भी सूर्योपासना हितावह मानी गई है। यह सूर्य-गोल प्राण शक्ति, आरोग्य, तथा सौभाग्य एवं सामर्थ्य का मूर्तिमंत अधिष्ठान होने के साथ ही हमारे भौतिक उत्कर्ष के लिये भी मुख्य आधार है। 'आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते।' अर्थात्; सबकी महिमा बढ़ाने के लिये सूर्य ही मुख्य कारण है। इस प्रकार सूर्य के विषय में उपनिषद् का वाक्य है। और उपासना अथवा योग का प्रभाव साधक को उपास्य वस्तु के गुणधर्म प्राप्त करा देने या तद्रूप बना देनेवाला होनेसे ही निःसंशय उपासक सूर्योपासना द्वारा सामर्थ्य, सौभाग्य एवं आरोग्य, तेज, कीर्ति आदि प्राप्त कर सकता है। "भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात्", सूर्य के प्रति संयम साधने से त्रिभुवन का ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार पातंजल योगशास्त्र में कहा गया है। सारांश यह कि, सूर्योपासना से ऐहिक एवं पारमार्थिक दोनों ही प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति होने के कारण संध्या सदृश श्रेष्ठ एवं दिव्य कर्म के लिये 'सूर्य' को ही सर्व सामर्थ्य संपन्न एवं उपयुक्त साधन माना गया है। किन्तु साथ ही यह भी न भूल जाना चाहिये कि सूर्य रूपी साधन के द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति करना ही संध्योपासन का मुख्य ध्येय है! आत्म-स्वरूप का ज्ञान कराते हुए, बृहदारण्यकादि श्रुतियों में कहा गया है कि, "सूर्य गोलक में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाली दिव्य एवं सचेतन ज्योति ही परमात्मा का शुद्ध स्वरूप है!"

हमारे लिये उपलब्ध पदार्थों में जल ही एक सबसे अधिक शुद्धिकारक एवं तत्काल शांति, तुष्टि एवं आरोग्यप्रदान करने वाली वस्तु है। इसी प्रकार वह सर्वत्र सुगमता पूर्वक एवं यथेच्छ प्रमाण में मिल सक[ने] के कारण ही सन्ध्या सदृश पवित्र कर्म में उस (शुद्ध जल) की आवश्यक[ता] बतलाई गई है। अन्य साधनों की संख्या में विशेष आवश्यकता न[हीं] रहती। किंबहुना, चित्त को व्यग्र कर देने वाली अनावश्यक वस्तु[एं] अथवा विषयों का पसारा इस प्रकार के पवित्र कार्यों के समय ह[मारे] पथ में जितना भी कम हो, उतना ही वह हितकारक हो सकता है। प्रसंग विशेष पर यदि जल न भी मिले तो समयानुकूल पत्र पुष्प फ[ल] के अनुसार जो कुछ भी प्राप्त हो, वही विनय पूर्वक ईश्वर को अर्प[ण] करके, संध्योपासन करने में कोई प्रत्यवाय नहीं है। क्योंकि भारती[य] युद्ध (महाभारत) के समय एकबार रणभूमि पर आर्यों ने केव[ल] रेती का अर्घ्य देकर संध्योपासना की थी, इसका प्रमाण इतिहास [में] मिल सकता है। उपासना का मुख्य साधन चित्त या मन ही है। व[ह] यदि शुद्ध और कार्यक्षम हो तो फिर अन्य साधनों की विशेष [रूप से] आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि अन्य साधन भी तो केवल इ[स] चित्त-शुद्धि के लिये उपयोग में लाये जाते हैं!

संध्या के लिये स्थान एकान्त एवं रम्य होना चाहिये। जिस स्था[न] पर जाने से मन सहजही में एकाग्र एवं प्रसन्न होसके, वही इस कर्म [के] लिये प्रशस्त माना गया है। 'निर्जन अरण्य अथवा नदी किनारे ज[ा] कर एकान्त में संध्या करनी चाहिये।' इस प्रकार श्रुति-स्मृतियों [की] आज्ञा है। विशिष्ट प्रकार की भावनाएँ उद्दीपित होने के लिये, अनु[-] कूल वातावरण की विशेष आवश्यकता रहा करती है। आजकल [...] अरण्य सदृश प्रशान्त एकान्त स्थान सामान्यतः दुर्लभ से हो ग[ये] हैं। अर्थात् आज सभी लोग इस प्रकार का लाभ नहीं उठा सकते। अतः जहां तक हो सके; गाँव के आसपास किसी बाग बगीचे य[ा] मैदान में; अथवा कम से कम घर के ही किसी स्वच्छ, एकान्त ए[वं] रम्य स्थान में बैठ कर संध्या की जासकती है। 'अधिकस्य अधिक[ं] फलं' के न्यायानुसार जहां तक हो सके, एकान्त स्थान की खोज करके ही संध्या करनी चाहिये।

इसी प्रकार संध्योपासना का समय भी नियमित होना चाहिये। सूर्योदय एवं सूर्यास्त ये दोनों ही संधिकाल सन्ध्योपासन अथवा योगाभ्यास के लिये शास्त्र में उत्कृष्ट माने गये हैं। इन संधियों के समय सृष्टि का स्वरूप स्वभावतः शांत एवं रमणीय होने के कारण चित्त आपही प्रसन्न हो उठा है। और संध्या कर्म के लिये चित्त की इस प्रकार की वृत्ति ही अपेक्षणीय होती है। एकाध बार किसी अपरिहार्य कारणवश इस कार्य का समय चूक जाय, तो भी जहां तक हो

थासमय ही इसका अभ्यास करते रहना चाहिये। अभ्यास में त्यय होना शास्त्र में दोष माना गया है। क्योंकि इससे चित्त की ाश्रिम व्यवस्था में धक्का पहुँचकर अभ्यास में शिथिलता आजाने का य रहता है।

योगाभ्यास करने वाले के लिये और भी एक महत्व की बात अहार-हार की मर्यादा का पालन करना है। (यमनियमों में इसका समावेश जाता है,) क्योंकि अहार-विहार का परिणाम चित्त पर गिरे बिना हीं रहता। अत. उसके शुद्ध एवं सात्विक होने से चित्तवृत्ति भी गाभ्यास के लिये अनुकूल बन सकती है। जिसे अपने बौद्धिक अथवा ात्मिक सामर्थ्य को बढ़ाने की इच्छा हो, उसे शुद्ध अहार-विहार वं उन सब बातों का सहवास—जिनसे कि, चित्त की पवित्रता ढ़ती हो—नित्यप्रति दृढ़ता पूर्वक करना चाहिये। छान्दोग्योपनिषद् कहा गया है कि, "अहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।" अर्थात्) शुद्ध अथवा सात्विक अहार से अन्तःकरण सत्वगुणी हो र धारणा शक्ति निर्दोष एवं निश्चित बन जाती है। अति निद्रा अथवा ति जागरण एवं अनावश्यक निषिद्ध (कटु-तीक्ष्ण, अम्ल इत्यादि) पदार्थों का सेवन, दुराचरण, दुर्जनों की संगति, काम, क्रोध, के प्रसंग ये सब बातें योगाभ्यासी के लिये विघातक होती हैं। सुज्ञों को इस विषय का विशेष ज्ञान श्रीमद्भगवद्गीता के सोलह अध्याय के मनन करने से प्राप्त हो सकता है। अस्तु,

संध्या का ध्येय क्या है, और उसे साधने के लिये किन २ साधनों की आवश्यकता होती है, यह सब उपरोक्त विवेचन पर से पाठकों को ज्ञात हो ही गया होगा। अस्तु। जीव के दुःख मूलक सांसारिक बन्धन टूटकर उसे मुक्तस्थिति अर्थात् 'पूर्ण स्वतंत्रावस्था' प्राप्त हो, कि जिससे जीव का शाश्वत एवं यथार्थ कल्याण हो सके, यही मात्र संध्योपासन का अंतिम हेतु है। इसी हेतु को सिद्ध करना जीवन की सच्ची सफलता है, इस प्रकार संसार के सर्वश्रेष्ठ एवं वंद्य पुरुषों का आज तक का अनुभव है। अतएव इस परम हितकारी एवं पवित्र कर्म का प्रत्येक मनुष्य को चिकित्सक किन्तु आदर पूर्ण बुद्धि से अभ्यास करके आत्महित सिद्ध करना चाहिये, और स्वाभिमान की दृष्टि से "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" के भगवद् वाक्यानुसार अपनी अत्यन्त उज्ज्वल आर्य संस्कृति को जागृत रखना चाहिये।

सम्माननीयों का अभिनन्दन !

महाराष्ट्र प्रांतीय माहेश्वरी सभा

बाबू गोविन्ददासजी मालपाणी और सेठ हनुमन्तराम रामनाथ।

इस सभा की तीसरी बैठक अगस्त मास की ता० २० से २२ तक श्रीमान बाबू गोविंददासजी मालपाणी (जबलपुर) के सभापतित्व में पूना में होगई। स्वागत समिति के अध्यक्ष रा० ब० हनुमंतराम राम-नाथ और परिषद के सभापति बाबू गोविन्ददासजी दोनों ही महानु-भावों के भाषण बड़े महत्व के हुए। बाबू साहब का भाषण पुस्तकाकार छपा हुआ था, और कई प्रकार की उपयोगी बातों से पूर्ण था। सभा में राजनैतिक, सामाजिक एवं औद्योगिक सभी प्रकार के विषयों पर महत्व पूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए। कई विदुषियों के सिवा पंडिता मनोरमाबाई के भी एक दो भाषण हुए। करीब १०० प्रतिनिधि आये थे।

भारतवर्षीय महिला विद्यापीठ पूना

(खड़ी हुई) (१) सौ० वेतीबाई नवरे जी० ए० (लेडी सुपरिंटेंडेंट कन्या शाला)

(२) कुमारी गंगूबाई कोक जी० ए० (सहायक अध्यापिका महिलाश्रम)

(बैठी हुई) (१) श्री० कमलाबाई देशपांडे जी० ए० (अध्यापिका महिलाश्रम)

(२) श्री० यमुबाई शोवडे जी० ए० (लेडी सुपरिंटेंडेंट महिलाश्रम)

इस विद्यापीठ से सन १९२० तक इन ४ छात्राओं को गृहितागमा (जी० ए० अर्थात् ग्रेजुएट इन आर्ट्स) की पदवी मिली है।

नवयुग का संदेश !

[स्त्रियों की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पर अध्यापक रामदेव बी. ए. के विचार ।]

आजकल देश में स्त्री शिक्षा का खासा प्रचार हो चला है, परन्तु पढ़ी लिखी लड़कियों के नित्यप्रति के व्यवहार से हिन्दू-समाज में असन्तोष भी आये दिन कम नहीं बढ़ रहा है। शिक्षाभिमानिनी कन्याओं को न तो धर्म से प्रेम है, और न उनका मन घर के आवश्यक काम-धन्धों में ही लगता है। उनको यदि किसी बात की चिन्ता है, तो केवल नाना प्रकार की सजावट तथा वेश-भूषा के सुधार की। और बहुत हुई तो मनोरंजन करने वाले, किन्तु परिणाम में भविष्यज्जीवन को और भी अशान्त बना देने वाले उपन्यासों के तलाश करने की।

आजकल देश की ५० फी सदी स्त्रियां हिस्टीरिया का भीषण कष्ट भोग रही हैं। यदि शिक्षा की इस उल्टी लहर को शीघ्र ही न रोका गया, तो वह दिन बहुत दूर नहीं, जब कि—हमारे घरों की स्त्रियां Smeling salts की बोतलें जेबों में रखकर वायु सेवन के लिये जाया करेंगी। उन्हें हरदम विविध रोग सताये रहेंगे। समाज में स्त्री-शिक्षा का प्रचार किया गया था-हिन्दू गृहस्थ को सर्व सुखमय बनाने के लिये, किन्तु आज उसका परिणाम अति भयानक दीख रहा है। मालूम होता है, उसकी वर्तमान अवस्था भी हाथ से जाती रहेगी, जो कि-इस समय ग़नीमत है।

देश की आर्थिक अवस्था की हीनता दिनबदिन आकाश को चढ़ रही है। उसका स्वरूप रोज़ रोज़ भीषण होता जाता है। इतना होने पर भी आधुनिक शिक्षा के बड़े बड़े खर्चों में किफ़ायत नहीं की जाती। पहली स्त्रियां गहने कपड़ों को दिलोजान से प्यार करती थीं। सोचा था, शिक्षा से उनमें कमी होगी। किन्तु ऐसा न होकर खर्च का मुंह और भी फैलगया। अब पढ़ाई के परिणाम-स्वरूप विचार-परिवर्त्तन के साथ फैशन भी नयी होनी चाहिये। आर्थिक लाभ के स्थान पर यह बहुलव्यय की बला और भी पीछे लगी।

वर्त्तमान शिक्षाप्रणाली के दोष से पातिव्रत जैसे अत्यन्त पवित्र धर्म और मर्य्यादा का भी ह्रास होना आरंभ हो गया है। कहीं २ तो पढ़ी लिखी स्त्रियों द्वारा इस विषय की इतनी बिकट हँसी उड़ायी जाती है, कि देखकर मारे आश्चर्य्य के दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। यूरोपीय रहन सहन के ढंग, सम्भव है वहां के अन्यान्य रीति रवाजों के अनुकूल होने से हानिकारक न हों, पर यहां तो उनके प्रवेश ने ब्रह्मचर्य्य और पातिव्रत आदि पवित्रता के आवश्यक भागों को भी निर्बल बना दिया है।

आधुनिक पढ़ी लिखी स्त्रियां जब बाहरी पुरुषों से खुले आम मिलती-जुलती तथा किसी विषय पर वार्त्तालाप करती हैं, तो विचार-शील व्यक्ति उनमें शिक्षा के फल-स्वरूप धार्मिक तथा मानसिक विचारों में कोई नया परिवर्त्तन नहीं देखते। उनकी वर्त्तमान शिक्षा न तो धर्म के बहिरंग को ही पलट कर वहां अन्तरंग का महत्व स्थापित करती है, और न राजनीति के गूढ़ प्रश्नों पर विचार करने योग्य जिन गंभीर भावों की आवश्यकता है, उनको ही उत्पन्न करती है। 'गये दोनों जहान के काम से हम, न इधर के हुए न उधर के हुए—' वाली घटना यहां ठीक चरितार्थ होती है। इसका कारण? कारण यह है कि इन्होंने अपने शिक्षा काल का अधिकांश भाग एक अपूर्ण विदेशी तथा दोहरी भाषा के सीखने में ही व्यतीत कर दिया है। उस का वास्तविक लाभ उठाने योग्य ज्ञान [illegible] भी प्राप्ति नहीं किया। नाम बड़ा किया, केवल [illegible] की [illegible] कहीं २ [illegible] को। कोई [illegible] उनको शिक्षा धार्मिक होगी, [illegible] धार्मिक [illegible] में [illegible] वाली संस्कृत भाषा की शिक्षा दी जाती, तो उन्हें 'धर्म' [illegible] वस्तु का एक [illegible] होता। यह [illegible]

लोकसुधार का लाभ, सो; यह उन्हें उस विषय के अनेकानेक ग्रन्थों के अवलोकन से प्राप्त हो जाता।

ये स्त्रियां जिस समय भड़कीली पोशाकें पहनकर बाहर के लोगों से गपशप किया करेंगी, और धार्मिक क्रिया-कलापों का पालन तथा इन्द्रियसंयम के विविध साधनों को काम में न लावेंगी, तो सिवा इसके, कि-यहां पर भी सामाजिक पवित्रता के लाले पड़ने लगें, और कुछ न होगा।

तब इस दोष का सुधार किस प्रकार किया जाय? किया जाय इस प्रकार से, कि-आगे से जाति के बालकों के साथ बालिकायें भी ब्रह्मचर्य्य धारण कर वानप्रस्थगत गुरुओं की पत्नियों के गुरुकुलों में तप, संयम, सादगी और कष्ट सहने की वृत्तियों का अभ्यास करें, धार्मिक शिक्षा-विषयक समस्त अंग और उपांगों का अध्ययन करें। इस उपाय के द्वारा जो आजकल गुरुकुलों के सुफल बालकों में दीख पड़ते रहे हैं उनसे कहीं अधिक अच्छे परिणाम बालिकाओं में दिखायी देंगे। क्योंकि ये पुरुषों की अपेक्षा अधिक कोमल और प्रभाव ग्राहिका होती हैं। इस के अलावा ऐसा कोई रास्ता नहीं, जिस पर चलकर हमारे [illegible] स्त्रियां वास्तविक गृहलक्ष्मी बनसकें या सुशिक्षा का जटिल प्रश्न ही में हल हो जाय।

हमें अपनी बालिकाओं को आधुनिक प्रणाली की शिक्षा [illegible] अपेक्षा तो बेपढ़ी रखना ही अच्छा है, क्योंकि-सिद्धान्त हमें इस के लिये स्पष्ट रूप में आज्ञा देता है, कि-एक अपात्र को, एक [illegible] को शस्त्र देकर उसका दुरुपयोग होता देखना बुरा है। लोग का[illegible] some thing is bater nothing अर्थात् 'जब तक हम लोग [illegible] विषयक अपने पुराने आदर्शों को उपयोग में लाने योग्य न बन[illegible] तब तक हम नये आदर्शों के अनुसार ही शिक्षा देना अच्छा है।' हम इस अभियोग को न्याय के अनुकूल नहीं समझते। हमारी [illegible] में माथे को यदि केसर न मिले, तो कीचड़ अथवा कलंक का लगाने की अपेक्षा शून्य रखना श्रेष्ठ है।

विधवा और [illegible] की गति—

आजकल देश में जिस प्रकार स्त्री शिक्षा के प्रचार की धूम हुई है, उसी प्रकार जाति की विधवाओं के उद्धार का प्रश्न भी ज़ोर पकड़ रहा है। स्थान २ पर विधवा-सहायक सभायें [illegible] उनके पुनर्विवाह की व्यवस्था देती हैं। जैसे जैसे ये एक ओर [illegible] विधवा के विवाह के लिये गर्जती हैं दूसरी ओर से किसी [illegible] को उसका पाणिग्रहण करने के निमित्त तय्यार करती हैं। वि[illegible] शास्त्रोक्त पुनर्विवाह के लिये योग्य भी है या नहीं इसके देख[illegible] कुछ आवश्यकता नहीं। जिस तरह भी हो एक को दूसरे के मत्थे देना-बस यहीं उनकी कर्त्तव्य-समाप्ति है। किन्तु यदि [illegible] द्विजातियों के लिये [illegible] की विधवा के साथ विवाह [illegible] निषिद्ध है। फिर [illegible] ही क्यों? [illegible] की विधवा विवाह करना भी [illegible] निषिद्ध और एक [illegible] पर इन बातों पर ध्यान कौन देता है? [illegible] जिस तरह भी हो [illegible] को मिलाकर सिद्ध [illegible] है, [illegible] की [illegible] भी कुछ [illegible] वर्त्तमान काल में हमारे पूर्व पुरुष विधवाओं को यथाविधि [illegible] शिक्षा दिला कर [illegible] विधवाओं की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

धारण कर लेते हैं; किन्तु फिर भी उक्त प्रथाओं से लाभ की अपेक्षा हानि होने की संभावना नहीं थी।

स्त्रियों के अधिकार—

जबसे देश में नवयुग का नया प्रकाश देख पड़ा है, तब से यहां पर स्त्रियों के अधिकार-लाभ की बात भी ज़ोर पकड़ गयी है। जिस पत्र-पत्रिका और पुस्तक को उठाइये, उसीमें पुरुषों के लिये दश पांच उपदेश स्त्रियों का अधिकार-दान के विषय में लिखे दृष्टिगोचर होते हैं। कहा जाता है, कि क्या स्त्रियों में पुरुषों से कोई शक्ति कम है? क्यों न उन्हें स्वच्छन्दता दीजाय? वे क्यों कैदखानों में रखी जायँ? उन्हें एकदम स्वतंत्र कर देना चाहिये; पुरुषों की भांति उनकी गति-विधि भी अबाध्य हो।' किन्तु हम देखते हैं, जिन परिवारों की स्त्रियों को उनकी समझ के अनुकूल 'आज़ादी' मिली हुई है, वहां सधवा और विधवा दोनों नित नये फैशनों को आश्रय देतीं, ऐय्यारी या ऐय्याशी के मन बहलाने वाले उपन्यासों का पाठ करतीं और हँसी दिल्लगी की जगहों में खुले आम शरीक होती हैं। इन्द्रियों का संयम कराना दूर रहा, वहां इन्द्रियों की चाह को पूरा करने वाले ही सारे सामान इकट्ठे किये जाते हैं। फिर क्यों न वे ब्रह्मचर्य की लाभकारी अवस्था को कष्ट की फाँसी, और पुनर्विवाह एवं विवाह को अपना प्रधान उपकारक समझें?

आजकल सारी अच्छी बातें केवल कलम से निकलने और मुख से उपदेश का रूप धारण करने के लिये ही हैं। कार्य्य रूप में ... एक का भी पालन नहीं होता। स्त्री-स्वातंत्र्य के पक्षपाती लो... संयम हीन जवान लड़कों और संयमहीन जवान लड़कियों एवं ... वालों के परस्पर मिलने तथा प्रेमालाप करने की आज्ञा दे ... ही 'स्त्रियों की स्वतंत्रता' रख लिया है। फल स्वरूप—पाठक पाठिकायें हमें सच कहने के लिये क्षमा करें—सन्तान वाली ... भी अपने हृदयों में क्वाँरे लड़कों के साथ विवाह करने ... छिपे हुए हैं, एवं अपनी सन्तानों की दुर्दशा के होने का ... रही हैं।

क्या इस प्रकार का सामाजिक अत्याचार हमारी पवित्र और ... मयी भारतभूमि को यूरोप की जैसी नरकभूमि बनाने ... जा रहा है? क्या इस क्षेत्र में-ऐसी दयनीय दशा में धर्म्म ... सोलहों आना प्रवर्त्तन करने या जारी होने की ... नहीं है?

नवीन शिक्षाभिमानी लोग बड़े भीषण भ्रम में गिरे हुए हैं। ... एक दिन अवश्य ऐसे अवसर का सामना करना पड़ेगा कि ... पूरा थपेड़ा उन्हें अपने किये पर पश्चात्ताप कराने के लिये मजबूर ...

"गृहलक्ष्मी" प्रयाग
चैत्र सं० १९७७ वि०

—बादरायण।

परिचय।

कुँवर उदयवीर सिंह बैरिष्टर

अलीगढ़

[illegible]

स्वागत समिति के भी आप मंत्री थे। और अब भी कई वर्षों से अलीगढ़ स्वराज्यसंघ और प्रांतिक परिषद् के मंत्री हैं। आप रघुवंशी राजपूत हैं। कहा जाता है कि, रामचन्द्रजी के पुत्र लव के द्वारा आपके वंश की उत्पत्ति हुई है। आप राजपूतों की शिक्षा विषयक कई संस्थाओं के पुरस्कर्ता हैं, और अलीगढ़ की जिला कांग्रेस कमेटी की ओर से आपही का नाम नई कौंसिल के निर्वाचन के लिये प्रकट किया गया था। इस वर्ष की अलीगढ़ जिला कान्फ्रेन्स आप के सभापतित्व में बड़े ही समारोह के साथ होगई। हम कुँवर साहब को उनकी कर्मण्यशीलता के लिये बधाई देते हैं।

—

मि० डी. बी. देवधर

(मेसोपोटामिया के क्रिकेट पटु)

ये महाशय शुरू से पूना के निवासी थे। [illegible]

[illegible]

और वहां अपने ऑफिस के मुख्याधिकारी ... आज्ञा से इन्होंने एक क्रिकेट टीम स्थापित ... जिसके सर्वानुमति से आपही कप्तान चुने ...

[illegible] ... क्रिकेट की टीम ... [illegible] ... प्राप्त का गौरव दिया गया है।

कठिन परिस्थिति।

[illegible]

चुकी हैं। पहिले आप अकसर 'जैनहितैषी' में ही बहुत लिखा करते थे। शायद इसका कारण श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी का उनका अपना नगर निवासी होना ही हो। हाँ, कभी २ और पत्रों में भी आपकी एकाध कविता निकल जाती थी। अस्तु, आप वास्तव में ब्रजभाषा के कवि हैं। परन्तु समय की गति को देख आप खड़ी बोली की कविता के प्रचार के ही पक्षपाती हैं। आप स्वयं भी खड़ी बोली में सरस, सरल, भावपूर्ण एवं हृदयग्राही कविता करते हैं।

आप हैं तो मुसलमान, पर हिन्दू धर्म पर भी आप की कुछ कम श्रद्धा नहीं। आप को हिन्दू धर्मशास्त्रों और पुराणों से बहुत प्रेम है। आपका पौराणिक ज्ञान देखकर आश्चर्य चकित होना पड़ता है। आप हिन्दू मुसलमानों में प्रेमभाव स्थापित करने और हिन्दी उर्दू का झगड़ा मिटाने में बहुत यत्नशील रहते हैं। हिन्दी की सेवा के लिये आपका जन्म ही समझिये। एक मुसलमान सज्जन में हिन्दी के प्रति इतनी प्रगाढ़-भक्ति देख बड़ाही हर्ष होता है। द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मिलन की रिपोर्ट में आपने "हिन्दी और मुसलमान" शीर्षक देकर एक बहुत लम्बा लेख लिखा है। जिसमें आपने हिन्दी के प्रति मुसलमानों के कर्तव्य का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। उसमें आप "आखिरी अर्ज़" करते हुए मुसलमानों को सम्बोधन कर लिखते हैं-

"मुल्की लिहाज से हमें हिन्दी को जगह देनी ही होगी। यह उसका घर है, उसे हम कैसे दुरदुरा सकते हैं? जब हमारा सितारा प्रकाशमान था तब इसी दोष ने प्रजामत पर विजय न पाई थी, अकबर के दरबार में हिन्दी की चर्चा बड़े ज़ोर शोर से होती थी। इसीसे हिन्दू मुसलमानों में मेल हो गया था। आज अंगरेजी राम-राज्य के रहते, छापखाना, रेल, तार और जहाज आदि के होते हुए यदि हम लोग परस्पर मिलकर न रहें तो यह लज्जा की बात होगी। मिलकर रहना भाषा के बिना नहीं हो सकता। इससे मिलने के लिये हम दोनों हिंदू मुसलमानों को थोड़ा २ आगे बढ़ना होगा, अर्थात् संस्कृत और फ़ारसी का मोह छोड़ हिन्दी और उर्दू का एक मिश्रित सुन्दर सरल रूप बनाना होगा। समाचार पत्रों अथवा उपन्यासों में उन शब्दों का भी लिखना हम लोगों को छोड़ देना पड़ेगा, जो इतिहास लिखने के बहाने हमारी तंगदिली या गंदगी जाहिर करते हों; क्योंकि दूर भागने वाले को गाली देकर हम पास नहीं बुला सकते। भाषा का सुधार लोगों के दिल को खींच लेता है। × × × साहित्य बढ़ाओ, मीठी वाणी बोलो, हमदर्दी करो; जिससे आपस में मेल पैदा हो। बुराई मिटे, भलाई बढ़े।"

आशा है कि दोनों पक्ष 'मीर' साहिब के उपर्युक्त वाक्यों पर अवश्य ध्यान देंगे।

इस हिन्दी प्रेम के लिये 'मीर' साहिब धन्यवाद के पात्र ज़रूर हैं; पर मेरी समझ में इतने से ही उनका कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। यदि वे चाहते तो हिन्दी की बहुत अधिक सेवा कर सकते थे, (अब भी कर सकने के लिये समय है।) हाँ मीर साहिब का यह प्रेम हिन्दू-मुसलमान दोनों ही के लिये अनुकरणीय है। 'मीर' मुसलमान होने पर भी हिन्दी की आराधना करते हैं, यह देख उन हिन्दू कुल कुपुत्रों को शरम आनी चाहिये, जो अपनी भाषा में बात करने में भी बेइज़्ज़ती समझते हैं। मुसलमान भाइयों को चाहिये कि वे अपने इन माननीय बंधु के पूर्वोल्लिखित शब्दों का ख़याल रख उनका अनुकरण करें। (हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और कवि श्रीयुत मुहम्मद मुनिम, मौलवी अब्दुलजलील, लतीफ हुसेन, उमरदराज़ और मंज़र अली सोख्ता कहीं इसी अनुकरण के ही स्वरूप न हों।)

खेद की बात है कि, आप के कोई सन्तति नहीं। आप इस [illegible]

को त्याग कर यह विभाग क्यों पसंद किया है! कदाचित् द्रव्य की आय ही इसका कारण हो। मीर विद्वान् और समझदार हैं, शायद उनके द्वारा यहाँ की पुलिस का कुछ सुधार हुआ हो। पर मुझे तो इसका भरोसा नहीं। पुलिस का पहिला प्रभाव तो आप पर यही हुआ है कि अब प्रायः आपकी लेखनी शान्त ही हो गई है। अब उस पवित्र लेखनी का उपयोग पुलिस की डायरी और रोज़नामचे लिखने में होने लगा है।

शायद आप पत्रों का उत्तर देने में भी बड़ी ढील करते हैं। आप एक पत्र में लिखते हैं—"आज तुम्हारे लेखानुसार एक फ़ोटो (चित्र) भेज रहा हूं। भला, इसका क्या करोगे? चित्र और चरित्र ऐसे पुरुष का प्रकाशित कराने से लाभ है, जिसकी चरित्र कथा से लोग स्वदेशानुराग, सहिष्णुता, सहानुभूति, स्वार्थत्याग, स्वात्मावलम्बन, दया, परोपकार, समयकुशलता और जाति के गौरव को स्थिर रखने का गुण आदि उत्तमोत्तम शिक्षा पासकें। चित्र भी सौन्दर्य पूर्ण हो। जब चित्र और चरित्र ऐसे हों तो उसमें मनोमोहकता आसकती है, अन्यथा कागज़ काला करने से क्या लाभ? चित्र-चरित्र आदर्शनीय होना चाहिये। सो यहां दोनों का ही अभाव है!" पाठक, इससे चाहे उनकी सरलता का अनुमान करें; चाहे निरभिमानता का। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि, उपर्युक्त गुणों का बहुत कुछ अंश उनके 'हिन्दी प्रेम' में ही समाया हुआ है। और सुन्दरता चित्र ही की नहीं हृदय की भी देखी जाती है, सो मीर साहिब का हृदय बहुत कुछ सुन्दर है। अस्तु।

प्रभो! मीर को ऐसी शक्ति दो; कि वे अब फिर दूने उत्साह से कार्य क्षेत्र में आवें और हिन्दी का कल्याण करें।

इस लेख के लिखने में मुझे अपने मित्र पं० मुकुन्दधर पाण्डेय से बड़ी सहायता मिली है। अपने कृपाकर अपना लिखा हुआ एक नोट भी मुझे भेजा तथा लेख लिखने के लिये बहुत कुछ उत्तेजन भी दिया। तदर्थ उन्हें हृदय से अनेक धन्यवाद।

विनोदी चित्र!
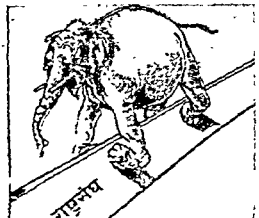
राष्ट्र संघ रूपी सर्कस वर्सेलीज़ वाली सन्धि-चर्चा के समय से ही अस्तित्व में आचुकी है। अब कई तज्ञों के मन में विचार हुआ है, कि उसके द्वारा अन्तराष्ट्रीय प्रश्नों के विचित्र खेल दिखलाये जायँ। क्योंकि यदि उससे प्रत्यक्ष लाभ कुछ न हुआ, तो भी कुछ राष्ट्र इस सर्कस की ओर ध्यान पूर्वक देखने में हो जो कुछ समय बिता देंगे, यह भी तो एक प्रकार का लाभ ही है। किन्तु हाथी के पैर अभी से काँपने लगे हैं।

नगरों की वृद्धि हो कर जब देहात उजड़ने लगते हैं तब देश की क्या दुर्दशा होती है यह चित्र नं० २ से भली भांति प्रगट हो सकती है। अनाज और रुई के रूप में अन्न एवं वस्त्र की (स्थूलमान से) केवल दो ही गाड़ियाँ यदि देहात से शहर में पहुंच जायँ; तो उन्हीं से हजारों मज़दूरों के श्रम उठाने पर जो उपयोगी वस्तुएँ तय्यार होती हैं, उन्हें वापस देहात में लेजाने के लिये पचासों गाड़ियाँ लग जाती हैं। इसी से फिर पूंजी वालों के विरुद्ध झगड़ा मचानेवाला कंगाल लोगों का एक समाज तय्यार हो कर, हड़ताल, दंगेफ़साद और बोल्शेविज़्म जैसी व्याधियाँ अस्तित्व में आती हैं।

स्वदेशी आन्दोलन पर प्रासंगिक विचार।

(लेखक--श्री, दत्तात्रय विष्णु आपटे बी. ए.)

राष्ट्रीय सभा ने कलकत्ते में जो असहकारिता का प्रस्ताव पास किया है, वह केवल निषेधात्मक ही नहीं वरन् विधायक भी है। क्योंकि पंजाब और खिलाफ़त प्रकरण में किये गये अन्याय के कारण उपरोक्त प्रस्ताव से निषेध तो व्यक्त होता ही है, किन्तु साथ ही उसमें इस प्रकार का दुर्घटनाएं फिर न होने देने के आशय से स्वराज्य की आवश्यकता बतलाकर यह भी कहा गया है कि, आज हमारी जो शक्ति यहां की नौकरशाही को सहायता पहुँचाने में व्यय होती है, उसका उपयोग देशोन्नति के उपायों की खोज में किस प्रकार हो सकता है। "जिन गुणों के बिना देश की उन्नति नहीं हो सकती, उनका पाठ सिखाने के उद्देश्य से ही असहकारिता का आन्दोलन खड़ा किया गया है। और जहां कि, इस आन्दोलन के आरंभ से ही प्रत्येक स्त्री-पुरुष एवं बालक तक के लिये किसी न किसी प्रकार का स्वार्थत्याग करने एवं शांत रहने की शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक माना गया है, वहीं उन्हें यह राष्ट्रीय सभा स्वदेशी माल का, और मुख्यत. स्वदेशी कपड़े का उपयोग करने की आज्ञा भी दे रही है।" असहकारिता के प्रस्ताव में के ये शब्द बड़े ही महत्व के और अर्थपूर्ण हैं।

इनको ध्यान में रखने से इस बात का खुलासा भी हो जायगा कि, हमारे उद्योग धन्दों का पुनरुज्जीवन कैसे हो सकता है। क्योंकि ज्यों-ही एक बार इस बात का निश्चय कर लिया जाय कि, देश में उद्योग-वृद्धि करना ही हमारा मुख्य कर्तव्य है, उसी क्षण परदेशी माल से दूर रहने और स्वदेशी माल को उत्पन्न करने की ओर सहज ही हमारा मन आकर्षित होजायगा। किन्तु हैं ये दोनों ही बातें कठिन। क्योंकि बर्सों से विदेशी माल को काम में लाने की आदत पड़ी रहने और स्वदेशी माल मिलने का प्रबन्ध न होने की कठिनाइयाँ दिखला-कर कई लोग स्वदेशी व्रत का शब्दों में न सही, किन्तु कृति के रूप में उपहास अवश्य कर रहे हैं। किन्तु याद रखना चाहिये कि जब तक सब लोग संयम और स्वार्थत्याग का पाठ नहीं सीख लेते; तब तक देश की उन्नति की आशा रखना निराशा मात्र है।

तथापि केवल राष्ट्रीय सभा के प्रस्ताव पर ही अवलम्बित रह कर हमारे उद्योग-धन्दों की उन्नति होनी चाहिये, ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं है। सर्वमान्य सिद्धान्त तो यही है कि, किसी भी प्रकार से हो, किन्तु देश के उद्योग-धन्दे बढ़कर देश में स्वदेशी माल का भरपूर संग्रह हो जाय। विवाद केवल औद्योगिक प्रगति के उपायों के सम्बन्ध में है, और इसी दृष्टि से आज हम अपने विचार यहां प्रगट करना चाहते हैं।

सबसे पहले हमारे सामने यह प्रश्न खड़ा होता है कि, "पहले माल जुटाया जाय या मांग पूरी की जाय?" अतः हम प्रथमतः उसी पर विचार करते हैं। कई लोग कहा करते हैं कि, "यदि बाजार में स्वदेशी माल मिलने लगे तो उसे लेने के लिये हम आज तय्यार हैं। किन्तु जब वह मिलता ही नहीं, तब हमारा वश क्या है?" लोगों के इस कथन में बहुत कुछ तथ्यांश है। इसी तरह देशी धन्दे वाले भी यह पुकार मचा रहे हैं कि, यांत्रिक अथवा मिलों के युग में हम बाजार भाव से माल दे सकने में असमर्थ हैं। उन लोगों का यह कथन भी यथार्थ है। किन्तु इन दोनों झगड़ों का तात्पर्य यही है कि, हमारे देश में स्वदेशी माल को संग्रह करने के साधन और कारीगर काफी मौजूद हैं, तथा उसे लेनेवाले भी अगणित प्रमाण में तय्यार हैं। यही नहीं वरन् कच्चा माल और कारखाना खोलने के लिये आवश्यक पूंजी, मजदूरों की पूरी संख्या और माल की मांग यहां इतने विपुल प्रमाण में उपलब्ध है कि, जिसका उपयोग करके विदेशी लोग मालामाल हो गये; और आज भी हो रहे हैं। आज तक विदेशी पूंजीदार यहां से कच्चा माल विदेश भेजकर उसे उपयोग में लाने योग्य बनवाते और बेचते थे। किन्तु अब तो वह तकलीफ भी न उठा कर परस्पर ही सब बातें भारत में निपटते हुए, केवल मुनाफे की ही थैली स्वदेश को रवाना करने का विदेशी पूंजीदार एवं कंपनी वाले प्रयत्न करते दिखाई पड़ते हैं। बड़े २ उपजाऊ प्रदेश अधिकृत करके सोला-पुर की तरह नाममात्र के स्वदेशी, किन्तु वस्तुतः विदेशी कपड़े तय्यार करने वाली मिलें खोलकर अथवा ताता के नाम की आड़ में लोहे के प्रचंड कारखाने छिपाकर ये विदेशी पूंजीदार भारत में पैर फैला रहे हैं। ऐसी दशा में 'देश में उद्योग धन्दों की कीमत न रहने विषयक पुकार मचाना केवल अपनी कर्तव्यशून्यता का परिचय कराना ही है।

विदेशी पूंजी वालों को धन एवं सत्ता की ओर से अनुमोदन मिलने के कारण ही वे यहां मजाके से हाथ पाँव पसार रहे हैं, यह ठीक बात है। किन्तु देशाभिमान, स्वार्थत्याग, संयम और संघशक्ति के बल पर क्या हम उन पूंजी वालों का उद्योग नष्ट कर स्वदेश का पुनरुज्जीवन नहीं कर सकते? हमारे देश भाइयों के बैंकों में रखे हुए लाखों रुपये, तथा विदेशी कंपनियों के शेअर लेने और विदेशी माल खरीदने में व्यय होने वाले करोड़ों रुपयों के अंक देखे जांय तो देश में विपुल पूंजी होने की कल्पना सहज ही में की जासकती है। यही दशा मजदूरों की भी है। यहां का मजदूर-दल संख्या में इतना पर्याप्त और श्रम में कष्टसहिष्णु है कि, जिसका उपयोग कर विदेशियों ने भारत से अपार द्रव्य तो लुटाही लिया, किन्तु आफ्रिका और आष्ट्रेलिया अथवा अमेरिका के कई भाग उपनिवेश, एवं कृषि के योग्य बनाने के काम में भी हिन्दुस्तानी मजदूरों की संख्या ही कारणीभूत हुई है। ग्राहकों के विषय में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। भारत का बाजार अधिकृत करने के लिये संसार के सभी मुख्य २ राष्ट्रों की गड़बड़ शुरू थी, और वह आज भी है। क्योंकि इंग्लैण्ड, अमेरिका और जर्मनी एवं जापानादि समस्त देशों के लिये भारत का बाजार मानों कामधेनु सा ही बन गया है। सारांश, पूंजी मजदूर और खपत तीनों बातें अनुकूल होते हुए भी केवल हम अपनी सुस्ती एवं विचार-शून्यता के कारण ही दारिद्री बने हुए हैं। योजकता और उद्योग-तत्परता का संयोग होते ही इस देश के उद्योग धन्दों की उन्नति करना आज भी कोई कठिन सा कार्य नहीं है।

किन्तु यह प्रयत्न व्यवस्थापूर्वक होना चाहिये। तात्विक एवं व्यावहारिक दोनों ही प्रकार से इस प्रश्न पर विचार होकर पायेदार प्रयत्न आरंभ किया जाना चाहिये। साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि, वर्तमान काल यांत्रिक युग का है, और उन नानाविध यंत्रों के विषय में हम बिलकुल ही परमुखापेक्षी हैं। उदाहरण के लिये स्वदेशी कपड़े का प्रश्न ही लीजिये।

सन १९०६ में जब स्वदेशी आन्दोलन जोरों पर था, तब कई लोगों ने सदुद्देश्य से, किन्तु बिना उस विषय की पूरी २ जानकारी किये लकड़ी के करघे खोल दिये थे। किन्तु यांत्रिक युग में करघों पर किफायत-सर कपड़ा बना सकने के लिये किन २ बातों का उनमें परिवर्तन करना चाहिये, मिलों में कपास लुढ़वाने से लगा कर कपड़े तय्यार होने तक जो २ संस्कार होते हैं, वे किन २ तत्वों पर किये जाते हैं, लकड़ी के करघे की अपेक्षा लोहे के करघे कहां तक लाभकारक हो सकते हैं, मिलों की तरह कपास को उत्तम प्रकार से लुढ़ाने और २ सूत को बारीक बनाने के लिये क्या २ करना चाहिये, इन सब बातों का ज्ञान प्राप्त किये बिना; अथवा इस विषय का पिछला इतिहास देखे बिना; एकदम ही काम में लग जाने से बहुधा हानि ही उठाना पड़ती है। इस लिये किसी भी काम में हाथ डालने से पहले उसकी चौकसी और विचार करने में कुछ समय लगाने की आवश्यकता होती है। इसी बात का विचार न करने से पिछले स्वदेशी-आन्दोलन के समय कई लोगों को सर्वस्व खो बैठना पड़ा; और लाखों रुपये खो कर भी लोगों को यही प्रतीत हुआ कि, हम ने व्यर्थ ही इस धन्दे में हाथ डाला।

किन्तु इसके विरुद्ध निश्चय एवं दृढ़तापूर्वक यदि बुद्धिमान लोग इस काम में हाथ लगावें तो उन्हें अवश्य ही पूरी२सफलता भी मिल सकती है। इसके लिये एक दो उदाहरण दे देना हम उचित समझते हैं। बंबई में श्री युत नामजोशी नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति ने लोहे का करघा खड़ा किया है। और उसे एक छोटे से एन्जिन की शक्ति से संबद्ध कर साड़ियाँ बुनने के काम में अब तक बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त करली है। यही नहीं, वरन् तीस चालीस हजार की पूंजी पर एक छोटी सी मिल खोलने के लिये जिस यंत्र-सामग्री की आवश्यकता होती है, उसे तय्यार करने की योजना भी उन्होंने निश्चित करली है।

पर इसके विरुद्ध कई प्रमाण ऐसे भी मिल सकते हैं कि, बर्सों से चलते हुए कारखानों में भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। वेसीन (बंबई) के श्रीयुत मराठे ने मिलों की ही तरह सूत कातने के यंत्र थोड़ी पूंजी में किस प्रकार तय्यार किये जासकते हैं, इस विषय में जो तत्परता दिखाई है, उसके लिये उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय वह कमही होगी। इन महाशय ने लगातार दो पीढ़ियों से इस प्रयत्न का विचार

एवं प्रयोग करने के लिये बहुत सा समय तथा हजारों रुपया व्यय कर डाला, और उसमें कई प्रकार का महत्व पूर्ण अनुभव भी प्राप्त किया है। किन्तु अभी तक पूरा २ अनुभव प्राप्त न हो सकने के कारण उनका यंत्र देश के लिये उपकारक नहीं हो सका। क्योंकि किसी भी नई युक्ति के अर्ध-साध्य होने से काम नहीं चल सकता। इन उदाहरणों पर से भलीभांति समझ में आसकता है कि, किसी काम में हाथ डालने से पूर्व उसकी पूरी जानकारी प्राप्त करने की कितनी आवश्यकता है, और उसका ध्येय निश्चित हो जाने पर उत्साहपूर्वक यश प्राप्त होने तक सतत् रूप से किस प्रकार कार्य तत्पर रहना चाहिये।

यांत्रिक युग में दिनों दिन करघे किफायती नहीं हो सकते, और मिल के यंत्र हमारे देश में तय्यार होते नहीं, इसी प्रकार यहां स्वदेशी माल तय्यार होने में विदेशी मिल वालों का का टुकड़ा छिन जाने की आशंका से, परकीय लोग हमें यंत्र सामग्री देने में हर-तरह से टालाटूली करेंगे-ये तीनों बातें निर्विवाद होने के कारण हमारे लिये यंत्र-कला हथियाकर स्वदेशी यंत्र निर्माण करने के सिवा कोई मार्ग ही नहीं बच रहता। क्योंकि यंत्रों के विषय में यदि हम परावलम्बी रहेंगे; तो हमारे स्वदेशी व्रत का पाया एक ओर से डगमगाता रहकर न जाने कब दगा दे बैठेगा!

सिवाय में विद्वानों के लिये यंत्रकला सीखकर स्वदेशी यंत्रशास्त्र निर्माण करने की आवश्यकता और भी एक कारण से प्रतीत होती है। वह कारण कुछ नाजुक अवश्य है, किन्तु अब उसे निर्भय होकर प्रकट कर देना आवश्यक हो गया है। बारह वर्ष पूर्व जब स्वदेशी आन्दोलन जोरों पर आया, तब कष्ट एवं हानि उठा कर भी स्वदेशी माल खरीदने विषयक राष्ट्रीय सभा के प्रस्ताव का अनुसरण कर हजारों लोगों ने ड्योढ़े मूल्य में स्वदेशी कपड़ा खरीदा, और इस प्रकार मिलवालों को अपरिमित लाभ भी हुआ। किन्तु उस लाभ को उन मिलवालों ने कृतज्ञतापूर्वक और कर्तव्य-बुद्धि से स्वदेशी आन्दोलन को सहायता पहुँचाने के कार्य में न लगाकर विदेशी विलास सामग्री खरीदने में ही उड़ा दिया! इन लोगों की यह मूर्खता और कृतघ्नता ही अधिकतर तत्कालीन स्वदेशी आन्दोलन की लहर को निर्बल बनाने के लिये कारणीभूत हुई है। गरीबगुर्बे तो विचारे कष्ट उठाकर स्वदेशी कपड़ा खरीदें, और उनकी खरीदी से मिला हुआ लाखों रुपया मिल वाले मोटरें खरीदने एवं नखाशखांत परदेसी वस्तुओं से सजने में खर्च कर दें, भला यह कहां का सभ्यता है? जब यह कार्य 'ओताइ श्रम करके जुटाये हुए पैसे को फटे हुए जेब में रखने' जैसा हास्यास्पद होने लगा; तब लोगों ने साफ कह दिया था कि, यदि तुम लोग ऐसा ही करते रहोगे तो हम तुम से स्वदेशी माल नहीं खरीदेंगे। यद्यपि यह निश्चय प्रकट रूप में उच्चारण नहीं किया गया, तो भी अधिकांश लोग स्वदेशी माल का काम में लाने विषयक निश्चय से च्युत अवश्य होगये। फिर भी लोगों की स्वदेशी व्रत विषयक आस्था इतनी प्रबल है कि, आज भी हजारों लोग स्वदेशी कपड़े काम में लारहे हैं। 'मिल वाले भले ही अपने कर्तव्य को न पहचानते हों किन्तु हम कभी कर्तव्य भ्रष्ट न होंगे,' यह सोचकर ही वे लोग स्वदेशी कपड़ा खरीदते हैं। इसी कारण मिलवालों को अपरिमित लाभ भी हो रहा है, और उसका उपयोग व लोगों को सस्ते भावों से कपड़ा देने के कार्य में न करते हुए कंपनी के शेयरों पर कल्पनातीत मुनाफा बांटने में ही कर रहे हैं। प्रमाण के लिये नागपुर की 'एम्प्रेस मिल' के ५०० रुपयों के शेयर पर इस बार ८०० रुपये मुनाफा तात्पर्य के डिविडेन्ड के रूप में बांटा जाने वाला है! यह कार्य (महाराष्ट्र पत्र के संपादक के कथनानुसार) [illegible] की पराकाष्ठा कर डालने जैसा है। इस पर से लोगों को ज्ञात हो सकता है कि, आज-कल जो कपड़ा महंगा हो रहा है, वह कपास या रुई की कीमत बढ़ जाने से नहीं, वरन् मिलवालों को सैकड़ा डेढ़ सौ से दो सौ रुपये तक मुनाफा दिखाने के मतलब से जानबूझ महंगा बेचा जारहा है। पूंजीदारों ने गरीबों को दबाकर यह पैसा वसूल किया और '[illegible] [illegible]' द्वारा [illegible] सरकार का मुंह बंद कर दिया, इस प्रकार यदि उनकी कार्रवाइयों पर कोई क्रोध प्रकट करे तो उसमें अनुचित ही क्या है? सारांश, मिलवाले केवल स्वदेशी कपड़ा तैयार करने के कारण से ही स्वदेशी आन्दोलन के हितकर्ता नहीं कहे जासकते, वरन् आज तक का अनुभव तो यह बतलाता है कि, स्वदेशी आन्दोलन के सच्चे हितैषियों को बेतरह मिल-मालिकों की [illegible] दिखाने पर आने के लिये ही तय्यार हो जाना चाहिये। इसके सिवाय, स्वदेशी कपड़े का संग्रह करने के लिये भारत की आधुनिक मिलों पर ही पूरा २ भरोसा नहीं रखा जासकता। सिवाय में यदि संसार के कारखानों की वर्तमान स्थिति पर ध्यान दिया जाय, तो स्पष्ट ज्ञात जाता है कि, पूंजीदार और मजदूरों [illegible] इस कारण वे मिलें कब बंद हो जायेंगी यह निश्चयपूर्वक नहीं [illegible] जासकता। अतः इस नये मन्वन्तर की परिवर्तित प्रवृत्ति पर [illegible] देकर लाखों रुपयों की पूंजी पर खड़ी की जाने वाली मि[illegible] [illegible] अन्य मार्ग से कपड़ा तयार करने के विचार में लग[illegible] लिये आवश्यक प्रतीत होता है। उन अन्य मार्गों का विवेचन [illegible] अंक में किया जायगा।

प्रेम-बन्धन।

(लेखक—पं० जगदीश झा 'विमल')

विश्वनाथ के बहुत गिड़गिड़ाने पर वैद्यराज पं० [illegible] जी शर्मा ने तीन छोटी २ पुड़िया देकर कहा-"आज दो २ घण्टे के बाद अदरक के रस के साथ इन्हें चटा देना; मैं कल आऊँगा। लेकिन स्मरण रहे; यदि कल भी रुपये नहीं मिले तो फिर दवा नहीं दूंगा।"

शर्माजी से दवा लेकर विश्वनाथ चिन्तित [illegible] घर को लौटा। लम्बी २ डेगें भरता हुआ, दसही मिनिट में वह अपने घर के सदर दरवाजे पर आपहुँचा। वहां पहले ही से उसकी धर्मपत्नी उत्तरा बाट जोह रही थी। स्वामी को आया देख वह उत्सुकतापूर्वक बोली-"पंडितजी आते हैं न?"

विश्वनाथ—वे नहीं आवेंगे।

उत्तरा—क्यों?

विश्वनाथ—बिना रुपया लिये वे नहीं आसकते।

उत्तरा—(ठण्डी सांस लेकर) बाबूजी की हालत बिगड़ती आती है; वे आप को बुला रहे हैं, अभी तक वे होश में हैं। आप उनको देखलें और फिर उलटे पाँव जाकर वैद्यजी को ले आवें।

विश्वनाथ—बिना रुपया लिये वे कभी नहीं आवेंगे। उन्होंने यह तीन पुड़िया औषधि दी है। यों कहकर विश्वनाथ उत्तरा के साथ अपने वृद्ध पिता लोकनाथ के निकट—जहां कि वे रुग्नावस्था में पड़े थे—आया। पुत्र को आता देख पं० लोकनाथजी ने क्षीण स्वर में कहा—"बेटा विश्वनाथ; अब मेरा अन्तिम समय निकट है। मेरे लिये व्यर्थ यत्न क्यों करते हो। मैं सिर्फ दो एक दिन का और मेहमान हूं। अब मुझ को जीने में सुख प्रतीत नहीं होता। मेरा प्रत्येक अंग शिथिल पड़ गया है। आँखें आँख का काम नहीं करतीं; और हाथ पैर भी अपने २ कार्यों को छोड़ चुके हैं।

पिता की बातें सुनकर विश्वनाथ की आँखें आँसू से छल छलागईं, गला रुंध गया; बोलने की चेष्टा करने पर भी उससे कुछ बोला नहीं गया। उत्तरा औषधि को अदरक के रस में घोल कर ससुर को पिलाने लगी। उसी समय एक षष्ठ वर्षीय बालक दौड़ता हुआ आ लोकनाथ की चारपायी पर आबैठा; और वृद्ध का हाथ पकड़ कर बोला-'बाबा! मैं मोहन के सरीखा जूता लूंगा। मुझको अभी मँगवादो।"

वृद्ध लोकनाथ, अबोध पौत्र को हठ करते देख धीरे से बोले-"हां बेटा; तेरी चाची जूता खरीद देगी।"

"चाची जूता खरीद देगी" ये शब्द सुनते ही लड़का चारपाई से उतर कर चाची की गोद में जा बैठा; और जूते के लिये हठ करने लगा।

उत्तरा उसका हठ देख ठंढी सांस लेती हुई बोली-"कल तुझे भी वैसा ही जूता मगवादूंगी, मदन! अभी जाकर खेलो। बाबूजी की तबीयत अच्छी नहीं है।"

"कल मगवा दूंगी" इतना सुनते ही मदन खुश होकर बाहर खेलने चला गया।

उत्तरा के अधिक आग्रह करने पर भी वृद्ध ने दवाई नहीं [illegible] की अवस्था देखकर विश्वनाथ अधीर हो उठा। उसको [illegible] मृत्यु की विशेष चिन्ता न थी, चिन्ता थी तो केवल [illegible] [illegible] की। यह इसलिये कि, इस समय पास में एक पैसा भी नहीं है। यदि पिताजी चल भी बसें तो उनका उत्तर कार्य ही कैसे होगा। इधर थोड़ी ही देर के बाद मदन, अपने साथ खेलने वाले मोहन का जूता हाथ में लिये दौड़ता हुआ अपनी चाची उत्तरा के निकट आया और बोला-"चाची मुझको ऐसा ही जूता कल मँगवा देना" उत्तरा ने [illegible] पूर्वक मदन को गोद में उठा लिया और फिर चूमकर कहा-"[illegible]

बेटा, ऐसाही मंगवा दूंगी।"

मदन चाची की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उत्तरा के गले से लिपट गया।

जिस तिस प्रकार वह रात तो बीती, किन्तु दूसरे दिन पं० लोक- की अवस्था और भी बिगड़ी सी प्रतीत होने लगी। विश्वनाथ की अवस्था देख बहुत घबराया। वैद्यराज के यहां जाने की रहने पर भी उसका पैर आगे नहीं पड़ता था। रुपयों का स्मरण ही पण्डितजी का रौद्र रूप याद कर वह डर जाता था। उत्तरा चुकी थी कि, आज बिना रुपया लिये वैद्यजी नहीं आयेंगे, और ों का कोसों तक पता नहीं है। उधर मदन जूते के लिये अलग किये बैठा है। यदि जूता नहीं मंगवाया तो बच्चा फूट २ कर रोने ा। किन्तु मुझ से उस अनाथ बच्चे का रोना कभी सुना नहीं गा। ऐसी दशा में अब इन दो एक रहे सहे आभूषणों को रख- भी क्या करूंगी। यह विचार कर उसने अपने कर्णफूल जो के पिता के घर के थे, विश्वनाथ बाबू के हाथ में देकर कहा— भी आप इन्हें बेचकर बाबूजी की दवाई कीजिये। वैद्य को भी दे दें, और मदन के लिये भी एक जूता जोड़ लादें।"

विश्वनाथ—एक २ करके तुम्हारे सब आभूषण तो बिक चुके। अब एक दो शेष हैं, वे भी नहीं रह पायेंगे! और ये मेरे बनवाये भी तो नहीं, सबके सब तुम्हारे पिता ही के दिये हुए थे।

उत्तरा—इससे क्या? इनका और उपयोग ही क्या हो सकता है! र की शोभा को बढ़ाना और समय पर मान-मर्यादा की रक्षा ना।

विश्वनाथ ने और कोई उपाय न देख कर्णफूल को गिरवी रखकर से मिले हुए रुपयों से मदन के लिये जूता लिया और वैद्यजी को कर पिता के लिये औषध-पानी का प्रबन्ध किया।

मदन जूता पाकर बहुत खुश हुआ और दौड़ता हुआ मोहन को ाने चला गया।

इधर वैद्यराजने विश्वनाथ से रुपये ऐंठ कर वृद्ध लोकनाथको चेत रखने का यत्न किया। क्योंकि उनके और भी दस पाँच दिन जाने से दस बीस रुपये अनायास ही प्राप्त होसकते थे।

दिन के तीन बज चुके थे। विश्वनाथ चिन्ताग्रस्त हो बाहर से घर ट रहा था। उसके हाथ में दो तीन छोटी २ पुड़ियां थीं। वह अपने से कोई पचास गज के अन्तर पर होगा कि, इतने में मदन दौड़कर के निकट आया और बोला—"चचा, जल्दी घर चलो। चाची प को बुलाती है। बाबा बहुत औंघते हैं, उनकी आंखें बन्द हो ती हैं।"

मदन की बात सुनकर विश्वनाथ शीघ्रतापूर्वक घर में आया। उसके छे मदन भी दौड़ा आया। उत्तरा चमचे से वृद्ध के मुँह में गंगाजल ल रही थी। पिता का अन्तकाल निकट देख विश्वनाथ कुल हो उठा। मदन दौड़ता हुआ, आकर वृद्ध के सिरहाने बैठ का हाथ पकड़कर बोला—"बाबा! तुम सोते क्यों हो! यह देखो चाचा को बुला लाया हूं।"

मदन की मीठी बातें वृद्ध के कान में पड़ीं। वे आंखें खोल कर ने लगे। सामने ही उत्तरा और विश्वनाथ को खड़ा देखकर उन्होंने ना हाथ बढ़ाया; और उन दोनों ने भी अपना २ हाथ आगे बढ़ाने का त्न किया। विश्वनाथ और उत्तरा ने अपना २ हाथ वृद्ध के हाथ रख दिया। वृद्ध लोकनाथजी ने उन दोनों के हाथ में "मदन" हाथ सौंपकर कहा—"अब तुम लोगों के हाथ म-द-न-को-सौं- ता-हूं।" अस्फुट शब्दों में इतनी बात कहते कहते ही वृद्ध ने सदा लिये अपनी आंखें बन्द करलीं।

—× ×—

मदन पांच ही महीने की अवस्था में माता पिता के सुख से छिन हो चुका था। बस, तभी से लोकनाथ अपने पौत्र का लालन- लन करने लगे। क्योंकि उस समय उनके छोटे पुत्र विश्वनाथ का याह नहीं हुआ था; और वह किसी छोटी-मोटी नौकरी के साथ २ र से बाहर रहकर शिक्षा प्राप्त कर रहा था। जब तक विश्वनाथ के ड़े भाई भुवनेश्वर जीते रहे; तब तक उन्होंने विश्वनाथ को नौकरी हीं करने दी। क्योंकि वे स्वयं एक अच्छे पद पर नियुक्त थे। घर ा सब खर्च चलाकर भी वे पन्द्रह रुपये मासिक सेविंग बैंक में जमा रते जाते थे। उनके स्वर्गवास से के समय ४०० रुपये खर्च से बचकर मा हो चुके थे।

अब पं० लोकनाथजी को अपने छोटे पुत्र विश्वनाथ के विवाह की चिन्ता पड़ी। क्योंकि घर का कार्य सम्हालने और मदन की देख-रेख रने के लिये उनके घर में दूसरा कोई भी न था। वे स्वयं भी वृद्ध हो चुके थे, तिस पर फिर सुयोग्य पुत्र की मृत्यु के शोक से तो उनका शरीर और भी जर्जरीभूत हो गया था। विश्वनाथ जिस तिस प्रकार एन्ट्रेन्स की श्रेणी तक पहुँच गया। वह पढ़ने लिखने में साधा रणतः अच्छा था। किन्तु जब पढ़ाई का खर्च उसको घर से नहीं मिलने लगा, तब उसने बाबू ललिताप्रसाद हेड क्लार्क के दो छोटे बच्चों को रात के दो घण्टे तक पढ़ना शुरू करादिया। वे उसे भोजन के अतिरिक्त स्कूल शुल्क भी दे दिया करते थे। विश्वनाथ रहता भी ललिताप्रसाद ही के यहां था। धीरे २ विश्वनाथ उक्त बाबू साहब का पूर्ण कृपापात्र बन गया। वे विश्वनाथ के शील-स्वभाव पर मुग्ध थे। उनके परिवार में विश्वनाथ पर सबकी दया दृष्टि बनी रहती थी। कुछ दिनों के बाद ललिता बाबू की बदली रतनगंज से निर्भय नगर के सरकारी दफ्तर में होगई। बाबू साहब निर्भयनगर जाते समय विश्वनाथ को भी साथ लिवाते गये, और उन्होंने वहाँ के टाउन हाई- स्कूल में उसका नाम लिखा दिया। अब विश्वनाथ निर्भयनगर में उक्त बाबू साहब के साथ आनन्द से रहने लगा। ललिता बाबू की स्त्री रूपवती विश्वनाथ को बहुत प्यार करती थी। वह चाहती थी कि, अपनी उत्तरा से विश्वनाथ का विवाह करा दूं तो अच्छी हो।

उत्तरा के हृदय में भी विश्वनाथ का प्रेमांकुर जम चुका था। पहले तो वह विश्वनाथ से निःसंकोच बातें किया करती थी, किन्तु जिस दिन माता के मुँह से विश्वनाथ के विवाह विषयक बातें ज्ञात हुईं, उस दिन से वह उसके सम्मुख नहीं आती। उत्तरा माता के प्रस्ताव का हृदय से अनुमोदन करती थी। विश्वनाथ अब उत्तरा को अपने सामने न आते देख चिन्तित था। बहुत कुछ चेष्टा करने पर भी वह उसके न आने का कारण न समझ सका।

—× ×—

इस वर्ष निर्भयपुर में कफज्वर का भारी प्रकोप है। प्रायः प्रत्येक घर में कोई न कोई व्यक्ति बीमार रहता ही है। किसी २ घर में तो सबके सब बीमार पड़े हैं। इस ज्वर में दो तीन दिन उपवास कर लेने से रोगमुक्त होने की संभावना रहती है। अन्यथा ज्वर बिगड़ जाता है। बाबू ललिताप्रसाद के घर सबकेसब उक्त ज्वर के पंजे में फँस गये। स्वयं बाबू साहब तो बीमार थे ही, पर उनके दोनों लड़के, उत्तरा और धर्मपत्नी रूपवती भी ज्वर के पंजे में फँसी हुई थीं। अकेला विश्वनाथ ही भला चंगा था। वही उन लोगों की सेवा करता, डाक्टर के यहां से दवा लाता, पानी गर्म करता और हाथ मुँह धुलाकर, उन्हें उठाता बैठाता था। घर का सब कार्य उसी को करना पड़ता, क्योंकि उन दिनों उनके घर के दासी नौकर भी बीमार थे। डाक्टर ने एक कमरे में दो रोगियों को रखने से मना किया था; इसी कारण सब अलग२ कमरे में थे। सिर्फ रूपवती के निकट उसका छोटा लड़का भूपेन्द्र था। माता के कमरे से लगे हुए, एक छोटे कमरे में उत्तरा चारपाई पर पड़ी थी। जब कभी विश्वनाथ उसके कमरे में जाता, तब झटपट वह अपना मुँह ढँक लेती और जब वह उसे दवा पिलाता, तब वह अस्वीकार कर कहती कि, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। मैं भली हूँ, आप मेरे लिये इतना कष्ट न उठाइये।"

विश्वनाथ के बहुत आग्रह करने पर उत्तरा उसके लाये हुए गर्म जल से मुँह धोकर दवाई पी लेती थी। वह इतनी निर्बल हो गयी थी कि, चारपाई पर उठ कर बैठना भी उसके लिये कठिन हो रहा था। विश्वनाथ जब धीरे २ उसे उठाकर बिठाता और स्वयं भी उसके पास आ बैठता, तब कहीं उत्तरा मुँह धोकर दवा पीती थी। जिस समय विश्वनाथ उसको उठाने लगता तब उत्तरा लज्जा से मस्तक नीचे कर लेती थी। किन्तु हृदय से तो वह अपने को विश्वनाथ के चरणों पर बहुत पहले ही अर्पण कर चुकी थी।

एक २ करके ललिता बाबू के घर के सब लोग स्वस्थ हो गये। रूपवती अपने पुत्र पुत्री सहित भली चंगी हो गई। वे सब हृदय से विश्वनाथ के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने और अपने को उसका ऋणी समझने लगे। अब विश्वनाथ के साथ वहां किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहा। ललिता बाबू और रूपवती उसको पुत्र से किसी भी प्रकार कम नहीं समझते थे। उत्तरा पूर्ववत भली चंगी हो गई। अब उसकी अवस्था सोलह वर्ष की हो चुकी था। पुष्प कमल प्रस्फुटित पल्लव सा कान्तिमान बन रहा था। अंग प्रत्यंग से अपूर्व सुन्दरता प्रगटित होती थी। पुत्री को वयस्क हुई देखकर ललिताप्रसाद से रूपवती ने उसके विवाह की चर्चा छेड़ी। ललिताप्रसाद ने वचन दिया कि, "शीघ्रही विवाह कर दिया जायगा। मैं लड़के की तलाश कर रहा हूं।" स्वामी के मुँह से लड़का खोजने की बात सुनकर रूपवती ने कहा—"क्या विश्वनाथ मेरी उत्तरा के लिये योग्य नहीं है?"

ललिताप्र०—किन्तु क्या उसके पिता इस बात को स्वीकार करेंगे?

रूपवती—क्यों ? न करने को क्या हुआ !

ललिताप्र०—वे लोग हम से बहुत उच्च कुल के हैं ।

रूपवती—पहले यह कहो कि लड़का तुम को पसन्द है या नहीं ?

ललिताप्र०—भला विश्वनाथ किसको पसन्द न होगा ! लड़का जैसा रूप-शीलवान है, वैसाही गुणवान भी है ।

रूपवती—तो बस अब मैं विश्वनाथ के हाथों ही उत्तरा को सौंपूंगी ।

ललितप्रसाद—मैं आज विश्वनाथ के पिता को पत्र भेजता हूँ । देखें वे क्या उत्तर देते हैं ।

रूपवती—आप पत्र तो भेजियेही, किन्तु यदि हो सके तो किसी रविवार को स्वयं भी वहां जाने का कष्ट उठाइये ।

ललिता बाबू ने पत्र लिखने से वहां जाने का विचार ही ठीक समझा ।

—× ×—

जबसे उत्तरा स्वस्थ हुई है, तब से वह विश्वनाथ से उतना संकोच नहीं करती। अब वह उससे निधड़क बातें किया करती है; किन्तु लज्जा की सीमा के अन्तर्गत रहकर ही । विश्वनाथ भी उसकी बातों का उत्तर देने में संकोच नहीं करता ।

एक दिन रात के आठ बजे जब कि विश्वनाथ अपने कमरे में लेम्प के निकट बैठा हुआ, समाचार पत्र पढ़ने में निमग्न था, और उसके दोनों छात्र नृपेन्द्र और भूपेन्द्र भी पढ़कर जा चुके थे, ठीक उसी समय 'महिलादर्पण' का विशेषांक लिये उत्तरा उस के कमरे में आयी । किन्तु विश्वनाथ समाचार पत्र के पढ़ने में ऐसा लीन था कि, उसे उत्तरा के आने की कुछ खबर तक न रही । उत्तरा उसके निकट जाकर हँसती हुई कहने लगी, "मास्टर साहब ! क्या मुझ को भी पढ़ाओगे ?"

उत्तरा की बात सुनकर विश्वनाथ चौंक पड़ा । अपने सामने उत्तरा को पुस्तक लिये खड़ी देख वह कुछ देर चुप रहकर बोला—"मैं तुम को न पढ़ा सकूँगा !"

उत्तरा—क्यों ? आप नरेन्द्र और भूपेन्द्र को तो पढ़ाया करते हैं !

विश्वनाथ—किन्तु वे अभी लड़के हैं !

उत्तरा—तो मैं क्या उनसे अधिक जानती हूँ ?

विश्वनाथ—मैं बिना माता से पूछे तुम्हें नहीं पढ़ा सकता ।

उत्तरा—क्यों भला !

विश्वनाथ—मैं बिना माता की आज्ञा लिये कोई कार्य नहीं करता ।

उत्तरा—परन्तु मैं तो माता से पूछ आयी हूँ, चलिये आप के सामने और कहला दूं ।

विश्वनाथ—मैं भोजन करते समय पूछ लूंगा ।

उत्तरा—'आप डरते क्यों हैं मास्टर साहब ! मैं क्या से झूँठ बोलती हूँ ! कृपाकर आप मुझे पढ़ाने का कष्ट अवश्य स्वीकार कीजिये । गुरु दक्षिणा भी खासी मिलेगी ।

विश्वनाथ ने मुसकुराते हुए कहा "अहोभाग्य"

उत्तरा—"आप को विश्वास न हो तो आइये मैं अभी माताजी से कहलवा दूँ ।

विश्वनाथ—अच्छा तुम चलो; मैं भी आता हूँ ।

उत्तरा के जाने के थोड़ी ही देर बाद विश्वनाथ भी रूपवती के कमरे में जा पहुँचा । उसको आया देख रूपवती ने कहा—"क्यों विश्वनाथ; उत्तरा को पढ़ाते क्यों नहीं ? अब मैं उसे नहीं पढ़ा सकती हूँ । अतः तुम इसमें किसी प्रकार संकोच न करो । क्योंकि अब वह तुम्हारी हो चुकी है । जब से उत्तरा की बीमारी दूर हुई है, तभी से मैं उसे तुम्हें सौंप चुकी हूं ।

माता के मुँह से एकदम ही ऐसी बात सुनकर उत्तरा लज्जा से मुख नीचा किये चुपचाप कमरे से बाहर निकल गई । विश्वनाथ सिर नीचा किये मौन साधे खड़ा रहा । रूपवती ने विश्वनाथ को मौन देख कर फिर कहा—"क्या मेरी बात स्वीकार नहीं है ?"

विश्वनाथ—जैसी आज्ञा !

—× ×—

यथासमय विश्वनाथ का उत्तरा के साथ विवाह हो गया । विश्वनाथ ने कई बार उत्तरा को पढ़ाने की चेष्टा की; किन्तु विवाह से पहले वह कभी उसके निकट पढ़ने नहीं आई ।

एन्ट्रेन्स की परीक्षा देकर विश्वनाथ उत्तरा को लिवाये हुए अपने घर पहुँचा । पुत्र और पुत्रवधु के आने पर वृद्ध लोकनाथ बड़े प्रसन्न हुए । अपने मातृ पितृहीन अबोध पौत्र 'मदन' के लालन पालन का भार [illegible] अपनी सुशीला पुत्रवधु उत्तरा को सौंप दिया । उत्तरा मदन [illegible] बड़ी प्रसन्न हुई और बड़े ही प्रेम से उसका लालन-पालन [illegible] ।

जबसे भुवनेश्वरप्रसाद स्वर्गीय हुए, तभी से लोकनाथ पर [illegible] का पहाड़ टूट पड़ा था । यदि बालक मदन का मोह न होता तो वे अब तक स्वर्गीय हुए रहते । अस्तु, उन्होंने भुवनेश्वर के [illegible] रुपयों से कारबार चलाकर किसी प्रकार अब तक मदन का [illegible] किया । किन्तु घर की आर्थिक अवस्था अब इतनी बुरी होगई थी [illegible] पेटभर भोजन पाना भी कठिन हो रहा था । जबसे सुशीला [illegible] उनके घर आयी, तब से उनको (वृद्ध को) विशेष कष्ट नहीं होता था क्योंकि वह पिता के घर से लाये हुए रुपयों और आभूषणों से [illegible] खर्च चला रही थी । किन्तु उसने इसके लिये अपने मुख पर [illegible] और चिन्ता की छाया तक न पड़ने दी ।

एन्ट्रेन्स परीक्षा में सफलता प्राप्त कर विश्वनाथ ने [illegible] कुछ दिन इधर उधर भटकने के बाद उसको [illegible] के सेठ [illegible] के यहां तीस रुपये मासिक पर सहायक मुनीम की जगह मिल गई । चार ही वर्ष तक उस स्थान पर कार्य करने के बाद सेठजी ने विश्वनाथ को प्रधान मुनीम के पद पर नियुक्त कर दिया, [illegible] हजार रु० वार्षिक वेतन देने लगे । विश्वनाथ की कार्य-दक्षता और सत्यप्रियता से सेठजी उस पर बहुत प्रसन्न रहते थे ।

अब उत्तरा के सुख सूर्य का पूर्णरूपेण उदय हो चुका था । घर का प्रबन्ध वह उत्तम प्रकार से कर चुकी थी । अब उसका 'मदन' भी आठ वर्ष का हो चुका, और वह अंग्रेजी की तीसरी श्रेणी में पढ़ रहा था । उत्तरा उसे पुत्र से भी अधिक प्यार करती थी । यद्यपि उसको एक पुत्ररत्न प्राप्त हो चुका था, किन्तु फिर भी वह 'मदन' को ही अपना प्रियपुत्र मानती थी ।

—+ +—

रात के दस बज चुके थे । मदन बिना भोजन किये ही सोगया । उत्तरा का पुत्र रामसेवक जो अभी दो ही वर्ष का था [illegible] सोकर उठा और फिर सो गया । किन्तु अभी तक विश्वनाथ बाबू सेठजी की दुकान से घर नहीं लौटे । उत्तरा रामसेवक की चारपाई के निकट बैठी अपने पति की प्रतीक्षा कर रही थी । ज्यों २ रात बीतने लगी, त्यों २ वह अधिकाधिक घबड़ाने लगी । [illegible] ग्यारह बजे विश्वनाथ बाबू घर आये । उनको आया देख उत्तरा [illegible] हो बोली—"आज आप को इतनी रात क्यों हुई ।"

विश्वनाथ—आज मेरी परीक्षा थी !

उत्तरा—परीक्षा देकर मदन तो पांच ही बजे आ गया । आपकी परीक्षा कैसी ?

विश्वनाथ—सेठजी मेरी परीक्षा लेते थे ।

उत्तरा—एं ! सेठजी ने आप की परीक्षा ली ?

विश्वनाथ—हां, बही खाते की जांच की थी । उनको किसी ने [illegible] करा दिया था कि, रुपयों में कुछ गड़बड़ हुई है !

उत्तरा—आखिर हुआ क्या ?

विश्वनाथ—होता क्या ? सांच को आंच थोड़े ही लगती है ।

उत्तरा—मेरा मदन भी परीक्षा में पास हुआ, और आप भी ।

विश्वनाथ—अच्छा; अब कल मैं तुम्हारी भी परीक्षा लूँगा ।

उत्तरा—क्या मेरी परीक्षा ?

विश्वनाथ ने प्रेमपूर्वक उत्तरा का हाथ पकड़ कर कहा, "हां हां, तुम्हारी परीक्षा ! स्मरण है, 'मेरी गुरु दक्षिणा' वाली बात !

उत्तरा हँसती हुई बोली "हां स्मरण है । उसी दक्षिणा के [illegible] मैं तो दासी ने यह जीवन इन चरणों की सेवा के लिये अर्पण कर दिया है ।

विश्वनाथ—उत्तरे ! तुम्हारी परीक्षा हो चुकी, मदन ही तुम्हारी परीक्षा का फल स्वरूप है । मैं तुम को स्त्री रूप में पाकर कृतार्थ हुआ ।

उत्तरा—"आप मुझे लजाते हैं; मैंने भला आपकी ऐसी सेवा की ही कौन सी है ! यदि आप उस रुग्णावस्था में मेरी रक्षा न करते तो, मैं मरी ही न जाती !

विश्वनाथ—नहीं उत्तरा, उस समय मैंने अपना कर्तव्य पालन किया था । कर्तव्य पालन करना ही मनुष्यता है ।

उत्तरा—तो क्या मैं ही कर्तव्य पालन से वंचित रहूँ ? अस्तु ! चलिये, भोजन कीजिये । रात बहुत बीत गई है । मदन भूखा सो गया है ।

विश्वनाथ—हैं ! क्या अभी तक उसने भोजन नहीं किया !

उत्तरा—आप जानते नहीं कि, बिना आपके वह कभी भोजन नहीं करता ! मैंने बहुत कहा; किन्तु उसने भोजन नहीं किया ।

विश्वनाथ ने शीघ्रता पूर्वक मदन को जगाया और चचा भतीजे ने साथ ही भोजन किया ।

उनके भोजनोपरान्त उत्तरा ने भी प्रसादी पाई ।

लोकमान्य तिलक के भिन्न २ प्रसंगों के फोटो।

(सूरत में राष्ट्रीयदल की प्रथम परिषद् ।)
खड़े हुए—(बायीं ओर से) १ डॉ० मुंजे नागपुर, २ श्री० रामस्वामी, ३ के० कुँवरजी देसाई।
बैठे हुए—(बायीं ओर से) स० अजीत सिंह, बाबू अरविन्द घोष, लो० तिलक, सैयद हैदर रज़ा।
बैठे हुए—(नीचे) श्री० खापर्डे, श्री० अश्विनीकुमार दत्त।

सूरत की राष्ट्रीय सभा भंग हो जाने के बाद बाबू अरविन्द घोष के सभापतित्व में जो राष्ट्रीय पक्ष की सभा (सन् १९०७ में) सूरत में हुई, उसमें लो० तिलक व्याख्यान दे रहे हैं।

लोकमान्य और उनके कुछ पारिवारिक जन।

खड़े—(बायीं ओर से) १ श्री० रघुनाथ केलकर (लो० के नाती), २ श्रीधरपंत और रामचंद्र तिलक (लोकमान्य के दोनों पुत्र)। कुर्सी पर—(बायीं ओर से) १ सौ० कृष्णाबाई केलकर (लोकमान्य की जेठी पुत्री) २ श्री० केलकर (लोकमान्य के जामाता) ३ लोकमान्य तिलक, ४ श्री० सौ० मथुराबाई साने, (लोकमान्य की [illegible]

नाशिक कान्फ्रेंस के समय लो० तिलक और श्रीयुत खापर्डे आदि।

(लेखक—श्रीयुत दामोदर विश्वनाथ गोखले बी. ए., एल एल. बी.) .

अहयोग पर्व

जब से राष्ट्रीय सभा में असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है, तब से भारतवर्ष की युद्ध सामग्री में एक नये शस्त्र की वृद्धि होकर उसके इतिहास का ध्येय भी बदल गया है। किन्तु इस पर से यह न समझ लेना चाहिये कि, अब तक इस शस्त्र के विषय में भारत बिलकुल ही अपरिचित था! क्योंकि प्राचीन इतिहास में इसके अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं। बात यह है कि, प्रत्येक आन्दोलन की सफलता के लिये एक खास समय के आने की आवश्यकता रहा करती है, और उस समय का भावार्थ यही है कि, उस आन्दोलन के लिये पोषक विशिष्ट लोकमत तय्यार हो जाय। किन्तु उस विशिष्ट लोकमत के प्रभावशाली या विजयी होने में भी एक विशिष्ट परिस्थिति के अस्तित्व की आवश्यकता रहा करती है। महात्मा गांधी ने जब इस शस्त्र को हाथ में लिया, उस समय उपरोक्त परिस्थिति पूर्णतयः अस्तित्व में थी। खिलाफत प्रकरण में मुसलमानों को दिया हुआ वचन भंगकर अंग्रेज़ नज्ञों ने भयंकर भूल की। जब इस्लाम की धार्मिक कल्पनाओं का उपमर्द हुआ, तो उस दशा में भारतीय मुसलमानों के अन्तःकरण में चिढ़ उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। बस, उसी समय उन्होंने अपने धर्म ग्रन्थ की आज्ञानुसार यह निश्चय प्रकट कर दिया कि, 'हम अपनी धार्मिक सत्ता का उपमर्द सहन नहीं कर सकते, और इसीलिये धर्माज्ञा के अनुसार धर्म घातियों के साथ हम असहकारिता करेंगे।' ऐसी दशा में धार्मिक बातों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रहने पर भी मुसलमानों के इस सात्विक आन्दोलन का समर्थन करना प्रत्येक हिन्दू सन्तान के लिये परम कर्तव्य ही था। क्योंकि भारतीय हिन्दू-मुसलमानों का यह विश्वास रहने के कारण ही कि, हम पारस्परिक एकता की नींव पर ही स्वराज्य-मंदिर निर्माण कर सकेंगे—उन्होंने इस एकता की जंजीर के जोड़ों को विशेष पुष्ट बनाना आवश्यक समझा। इस तरह खिलाफत के मामले में अपने मुसलमान भाइयों की मांग को पूरी करने के लिये हिन्दू नेताओं ने सहायता देना आरंभ कर दिया। पञ्जाब में अत्याचार करने वाले अंग्रेज़ अपराधियों को समुचित दंड दिलाये बिना किसी भी स्वाभिमानी भारतीय के लिये चुप बैठ सकना एक असंभव बात है। निःशस्त्र जनता पर गोलियां चलाई गईं, निरपराधी लोगों पर आकाश पथ से बम फेंके गये, छोटे २ बच्चों से पवित्र ब्रिटिश झण्डे के सामने सलाम करवाया गया, और सरे बाज़ार इज़्ज़तदारों की आबरू धूल में मिलाई गई, भारतीयों की खुली पीठ पर कोड़े मारे गये, उन्हें पेट के बल रेंगने को विवश किया, और उनकी माँ बहनों का अपमान किया गया, ये बातें मनुष्यता-युक्त भारत कैसे भूल सकता है! जिन नराधमों ने उपरोक्त अत्याचार किये, उनसे सहकारिता करना किस मनुष्य को शक्य प्रतीत होगा! जिन लोगों के हुक्म से ये सब अत्याचार किये गये, उनके भ्रष्टाचार एवं दुराचार से दूषित बने हुए वातावरण (कौंसिल में) हम कैसे बैठ सकते हैं! उनकी सत्ता पुष्ट करने में हम सहायता भी क्योंकर पहुंचा सकते हैं! अपने भाइयों के खून से लाल बने हुए उनके हाथों में हम अपना हाथ किस प्रकार दे सकते हैं! असहकारिता का मूल बीज इसी प्रकार की मनोवृत्ति में अंकित है, और उपरोक्त परिस्थिति ने ही असहयोग का [illegible] है। इसी [illegible] के कारण भारत ने

[illegible]

के [illegible] से असहयोग का [illegible] शुरू किया है। [illegible] यह आवश्यक न हो, अथवा भी उपरोक्त [illegible] की [illegible] सकता हो, या [illegible] उचित [illegible] करने के लिये जो तैयार हैं, वह [illegible] सहकारिता करना रहे। यदि समग्र भारत की ही मनोवृत्ति इस प्रकार की बन जाय तो कहना पड़ेगा कि, उसकी दुर्दशा के दिन अभी समाप्त नहीं हुए। महात्मा गांधी सरीखे शांति प्रिय, सात्विक और सर्कार से सहकारिता करने के लिये गत वर्ष तक हठ धारण करने वाले महापुरुष ही जब असहकारिता करते हैं, यही नहीं वरन् खुद उसके अगुए तक बनते हैं, तो फिर असहयोग की आवश्यकता बतलाने वाला प्रमाण इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है! इस असहयोगरूपी यज्ञ की समाप्ति स्वराज्य प्राप्त हुए बिना कभी नहीं हो सकती, और इसी निश्चयपूर्वक असहयोग के नेता लोग बद्ध परिकर हुए हैं। इस यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने और उसका विध्वंस करने के लिये सर्कार ने अनेक भूत-पिशाचों को खड़ा कर दिया है। यही नहीं वरन् उनको अपर्याप्त समझ वह खुद भी दो २ हाथ दिखाने के लिये अखाड़े में उतर पड़ी है। यह आनंद की बात है। यह टक्कर बौद्धिक दृष्टि से ही चलाई जाने कारण हमें देखना होगा कि, असहकारिता के विरोधियों के पास शस्त्रास्त्र क्या हैं, और उनका युक्तिवाद किस प्रकार का है, तथा किस वृत्ति के लोग उसमें योग दे रहे हैं!

असहकारिता के विरोधियों की सेना में खुद नौकरशाही के वीर, महावीर और उनके अन्न पर जीने वाले, उनके निकट परिचित एवं उनकी परिक्रमाकर अपने को धन्य समझने वाले तथा अपने शरीर को नाम मात्र का भी कष्ट न पहुँचाकर राष्ट्रहित करने का ढोंग दिखाने वाले, स्वार्थसाधु एवं बगुला भक्त माडरेट या नर्मदल वालों की गणना ही प्रमुखता से करनी पड़ेगी। साम्राज्य की शक्ति के सहारे प्राप्त होने वाली सत्ता और क्षमता के द्वारा, प्रतिपक्षियों में फूट डालने के शस्त्र पर ही यहां की नौकरशाही भरोसा किये बैठी है, और स्वयं कुछ भी न करके राष्ट्र को निर्बल, असहाय एवं आत्मविश्वास से रहित बनाने का अस्त्र मुर्दार नर्मदलियों ने हाथ में लिया है। इन शस्त्रास्त्रों से सज कर यह सेना असहकारिता पर चढ़ाई कर रही है। असहयोग को भ्रष्ट कर देने के आशय से इस कानून ने कमर कसकर गत अक्टूबर महीने से प्रयत्न करना आरंभ किया है। अतः यह कह देने में हानि प्रतीत नहीं होती कि, प्रस्तुत बौद्धिक युद्ध का अब ठीक निर्णय हो सकेगा। क्योंकि जहां असहयोग वालों की ओर सत्य, न्याय, स्वाभिमान, राष्ट्रप्रेम, स्वार्थत्याग और परमेश्वरी शक्ति है, वहीं उनके विरोधियों के पक्ष में असत्य, अन्याय, स्वाभिमान-शून्यता एवं स्वार्थ जैसी राक्षसी शक्तियां हैं। देश में इस प्रकार के झगड़े अब से पहले भी कई बार हो चुके हैं। और उभय पक्ष के पलड़े ऊंचे नीचे होते २ अन्त को सत्य एवं न्याय वाले पक्ष की ही विजय हुई है। यह बात भारती इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई पाई जाती है। अतः प्रस्तुत समस्या का निर्णय भी सत्य के अनुकूल हुए बिना कभी नहीं रह सकता।

सबसे पहले हमें अपने नर्मदली भाइयों की दशा देखनी चाहिये। असहकारिता के विरोधी

नर्मदलियों की मनोरचना

बड़ी ही विचित्र है। इस दल के [illegible] एवं पूर्ण [illegible] का [illegible] करने पर उनकी [illegible] के [illegible] में मिल सकते हैं। [illegible] और [illegible] यदि [illegible] की [illegible] के [illegible] इन [illegible] के कारण ही [illegible] के [illegible] है। [illegible] [illegible] करने के लिये [illegible]

प्रेम और स्वदेशाभिमान की लहर बढ़ने लगी, तब इस दल ने भी अपने पिछले स्वांग में कुछ रद्दो-बदल कर यह डौल दिखाना शुरू किया कि, राष्ट्रहित के विचार से ही हम सर्कार का पक्ष ग्रहण करते हैं। किंतु यह निश्चित बात है कि, हरएक दशा में यह समाज सर्कार के ही पक्ष में रहेगा। बहुत हुआ तो; विशेष लोकक्षोभ उत्पन्न होने पर जब लोकमत के नेता राष्ट्रीय बलि-वेदी पर अपने को बलिदान करने लगेंगे, तब ये लोग अपनी इज्जत के लिये सर्कार से केवल सौम्य निषेध भर व्यक्त कर सकेंगे। भारत में अब तक कितने ही आन्दोलन हुए, किन्तु उनमें से किसी में भी यह समाज लोकपक्ष से पूर्णतयः नहीं मिला। और खुद ही किसी राष्ट्रीय आन्दोलन को खड़ाकर पराक्रम दिखाने का तो इनके भाग्य में ही नहीं बदा है। फलतः इन्होंने किया क्या है? यही कि, सामर्थ्यवान सर्कार के पक्ष में रहकर लोकपक्ष को भयभीत बनाने के लिये राजद्रोह का हौआ खड़ा कर दिया। प्रकट रूप में अमुक आन्दोलन या व्यक्ति को राजद्रोही कहने या बतलाने अथवा पुरुषत्वहीन प्राणी की तरह गालियों की बौछार करने में इन नृपांगणगतों को कुछ भी भय प्रतीत नहीं होता। क्योंकि समर्थ के आश्रित होने से इस श्वान-समाज को हरएक पर भौंक सकने की स्वतंत्रता मिलगई है। किन्तु विरुद्ध पक्ष में किसी को देशद्रोही कहने या बतलाने का इनके लिये कारण नहीं रहता। क्योंकि इससे उन्हें किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँच सकती। फिर भी एक-आध बार किसी को देशद्रोही कह दिया जाय, तो प्रत्यक्ष व्यवहार में जब तक हानि नहीं पहुँचती, तब तक उन्हें इसकी पर्वाह भी नहीं रहती। यदि लोकक्षोभ बहुत ही बढ़ गया, तो पुनः अपनी प्रामाणिकता की ठसक दिखाकर इस बात का भास कराने में कि, हम लोकक्षोभ को सहने में महान् स्वार्थत्याग कर रहे हैं; इनके मन में इन्हें कुछ भी शर्म नहीं उपजाती, और न किसी प्रकार का दुःख ही होता है। क्योंकि सत्ताहीन लोकक्षोभ इनको हानि ही क्या पहुँचा सकता है? सुखमय और अल्प कष्टकारक पथ का दिग्दर्शन कराते हुए, ये लोग अल्पज्ञों के सन्मुख राष्ट्रीय विग्रह का भीषण चित्र खड़ा कर उन्हें धोखा देते हैं। ऐसी दशा में परतंत्रता के भारी जुए से दबे हुए दास-वृत्ति के लोगों को यदि वह मार्ग सुगम जान पड़े तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? न इन्हें परतंत्रता की चिढ़ है, और न राष्ट्रीय अपमान का ज्ञान ही। तब, छाती ठोककर राज्यकर्ताओं के सन्मुख खड़े हो मर्द की तरह दो २ हाथ बतलाने का सामर्थ्य तो इनमें हो ही कहां से सकता है? ये तो केवल परतंत्रता के कारण उत्पन्न हो जाने वाले सामाजिक एवं धार्मिक दोष दिखाकर उनके विरुद्ध बड़े दिमाग़ से अकाण्ड ताण्डव करने में ही अपनी वीरता की इतिश्री समझ बैठे हैं। कारण यह है कि, इस समय समाज और धर्म दोनों ही लावारिस से बन रहे हैं। उनकी रक्षा करने वाला कोई भी नहीं रहा। ऐसी दशा में मरे मुर्दे पर चार लठ्ठ कोई जमा भी दे, तो इससे उसे क्या हानि पहुँच सकती है? किन्तु राजनैतिक कार्यों की दशा बिलकुलही इससे उलटे स्वरूप की है। नर्मदलियों का कार्यक्रम सदा से केवल यही रहा है कि, पर[क]ीय राज्यकर्ताओं की सत्ता को कायम रखकर उनके आज्ञाधारक बने रहना, और प्रत्येक बात में हां में हां मिलाकर उनका आश्रय ग्रहण करना! किन्तु इससे भी अधिक भयंकर पातक जो कि, समय २ पर ये लोग कर रहे हैं वह

राष्ट्रीय भावों का नाश

है। सर्कार की अमर्यादित छत्र छाया में खड़े रहकर लोकपक्ष को उसी की निर्बलता एवं बुराइयों का स्मरण कराते हुए, उसके आरंभित कार्य को अशक्य कोटि का सिद्ध करने को ही ये लोग रातदिन खटपट किया करते हैं। दस वर्ष पूर्व जब स्वदेशी आन्दोलन खड़ा हुआ, उस समय भी इन लोगों ने अपना अंकशास्त्र उपस्थित कर; भारत कभी पूर्णतय स्वदेशी नहीं बन सकता, इस बात को सिद्ध करते हुए, उस आन्दोलन को हास्यास्पद बतलाने में कुछ भी उठा न रक्खा। इनके सड़े दिमाग़ में राष्ट्रीय शिक्षा का भूत तो प्रवेश भी नहीं कर पाता। किसी राष्ट्रीय व्यक्ति के मुँह से स्वराज्य प्राप्ति की ध्वनि निकलते ही इन्हें उसमें स्वातंत्र्य अर्थात् राजद्रोह का हौआ दिखाई देने लगता है। मानो; यदि देश स्वाधीन हो गया तो इसके मतानुसार उसका सर्व[नाश] ही हो जायगा! यों तो भारत के सभी नर्मदलियों की यही [दशा] है, किन्तु उनमें महाराष्ट्रीय माडरेटों का नंबर पहला है। प्रत्येक [आन्द]ोलन में बाह्य स्वरूप की अपेक्षा उसके मूल तत्व का महत्व [अध]िक रहता है, और यह तत्व ही उस आन्दोलन का जीवनाधार [होता] है। किन्तु इस साधारण सी बात का भी इन पिट्ठुओं को ज्ञान नहीं है। स्वदेशी आन्दोलन से देशी कला-कौशल्य को [उत्तेजन] मिलता ही है, किन्तु इसीके साथ २ अपने देश और उसकी [उन्नति] के लिये प्रयत्न करने की महत्व पूर्ण भावना भी उत्पन्न हो जाती [है।] बहिष्कार, राष्ट्रीय-शिक्षा और स्वराज्य के आन्दोलनों में [भावना] को ही विशेष महत्व दिया जाना चाहिये। यह बात नर्मदलि[यों को] ज्ञात न हो सो बात नहीं है। किन्तु जनता को नि[...] की पिछलग्गु का ठेका सदैव के लिये प्राप्त कर लेने की [...] यदि देशभक्ति का जोश ही ठंडा पड़ जाय, तो फिर उसके लिये [...] ही क्या? ये लोग स्वावलम्बन का नाम तक नहीं जानते। [...] है कि, भारतीय जनता इस दल को कौड़ी मूल्य में भी नहीं [...] क्योंकि इन लोगों ने अपने पत्रों में अनेकों बार सर्कार के सामने रोया है कि, हमारे मतानुसार राज्यकारोबार क्यों नहीं चलाया [...] मतलब यह कि, सब प्रकार से केवल सर्कार पर ही अवलम्बि[त रहने] वाले नर्मदल की अन्तरिक दशा किस प्रकार की है, इस [की] जानकारी रखकर ही लोगों को उसके प्रयत्नों पर ध्यान देना [...] प्रमाण के लिये हम प्रस्तुत असहयोग आन्दोलन का ही प्रश्न ले[ते हैं।] इस आन्दोलन के आदि कारण ऊपर दिखाये गये हैं, और [...] विशद मीमांसा भी इस लेख माला में पहले की जाचुकी है। [...] पंजाबी दुर्घटनाओं के विषय में इन लोगों को कहां तक चिढ़ हुई, और उसके लिये इन्होंने क्या २ उपाय सोचे, सो संसार [को] ज्ञात है। असहयोग मंत्र का उच्चारण होते ही ये लोग कांप उठे [और] मनमाना बकवाद करने लगे। सर्कार ने अभी जो अपने ध्येय वि[षयक] घोषणापत्र प्रकट किया है, उसमें जिस घड़ी से इन नर्मदलियों [ने] पढ़ा कि, 'असहयोग के मामले में वह सब प्रकार इस चतुर [...] पर ही अवलम्बित है।' तब से तो इनके लिये स्वर्ग केवल [...] अंगुल दूर रह गया है। महाराष्ट्रीय नर्मदलियों ने तो जमीन प[र पैर] रखना भी छोड़ दिया; और महात्मा गांधी जैसे देशपूज्य नेता [को] अर्ध विक्षिप्त बतलाने की धृष्टता करने लगे हैं। इस आन्दोलन में अनर्थ के बादल दिखाई पड़ते हैं। यदि ये लोग सरलता, शिष्टता [और] देशभक्ति से प्रेरित होते, तो एक ही बैठक में पंजाबी दुर्घटना[ओं के] विषय में सर्कार के किये हुए; अन्याय का परिमार्जन करने के [लिये] उसे कुछ न कुछ उपाय अवश्य ही सुझा सकते थे। किन्तु इस अ[सह]कारिता के विवाद में ये लोग पंजाब को बिलकुलही भूल गये। जब ये खुद कोई रास्ता नहीं दिखा सके, तब इन्होंने महात्मा गा[ंधी] के मार्ग में कांटे बिछाना शुरू कर दिया। प्रत्यक्ष विधायक कार्य दिखाने या अन्य विषयों में लोकपक्ष की ओर से सर्कार के [साथ] झगड़ा करते समय जहां इनकी योग्यता कुम्हड़े की तरह शून्याकार [...] रहती है, वहीं विरुद्ध पक्ष में यदि किसी ने जनता को सबल बनाने का [...] मार्ग खोज निकाला; तो ये उसके विरुद्ध आक्रमण कर सर्कार के [...] को मज़बूती से पकड़ रखने में ही अपना सारा उत्साह खर्चकर डा[लते] हैं। ऐसी दशा में जहां एक ओर भारत तो दूसरी ओर इंग्लैण्ड है, [...] स्वतंत्रता के लिये ऐसा सुयोग उपस्थित हुआ है, वहां यदि ये ल[ोग] जनता की हँसी उड़ाने में बह चलें; तो इसमें आश्चर्य जैसी बात क्या! फलत. कौंव २ मचा कर इन लोगों ने अब

काक-शाप

देना शुरू कर दिया है। और खास कर राष्ट्रीय दल के असहयोगवादि[यों] की निन्दा कर बड़ी सफाई के साथ यह हो हल्ला मचाना शुरू किया कि, ये लोग महात्मा गांधी की तरह असहकारी नहीं है। किन्तु महात[्मा] गांधी के नेतृत्व में यदि राष्ट्रीयदल ने राष्ट्रीय—मंदिर निर्माण कराने [में] शक्ति भर ही हाथ बटाया तो इसमें उन्होंने क्या भारी पातक [कर] डाला? यदि महात्माजी मनों मिट्टी का ढेर लगा रहे हैं, और राष्ट्री[य] दल उसमें केवल दो चार ही टोकरी डाल सके तो इसके लिये उ[...] नाम रखने में इन्हें लाभ ही क्या पहुँच सकता है? क्योंकि ये मुर्दे [...] उनको चुटकी भर मिट्टी डालकर भी सहायता नहीं पहुँचा सक[ते।] हां, राष्ट्रीय-मंदिर की नींव और जुटाई हुई सामग्री को नष्टभ्रष्ट [करने] का प्रयत्न अलबत्ता इन्होंने जोर शोर शुरू कर दिया है। यदि [इनमें] सच्ची देशभक्ति होती तो अवश्य ही इन्होंने "परकीय से सम्[बन्ध] करते समय हम एक सौ पांच हैं" इस प्रकार की बुद्धि से काम [लेकर] असहकारिता में के असम्मत भाग को बदलवाने, या बिलकुलही [...] न होने की दशा में उसके बदले दूसरे किसी उपाय को सुझाने [का] यत्न किया होता! परन्तु ऐसी बातें इनके हाथों हो कैसे सकती हैं! सर्कार का ढोल बजते ही इनका नाच शुरू होगया। भूतपूर्व [...]

मूर्ति खरशापरकर ने जो एक पोथा प्रसिद्ध किया है, उसमें श्रीगणेश से ही अपनी न्यायबुद्धि को भूलकर उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि, "असहयोगवादी कांग्रेस के असहकारिता वाले प्रस्ताव को हिमायती बुद्धि की भी पर्वाह न करते हुए मानने के लिये आग्रह कर रहे हैं। और इसीलिये उनके कथन से व्यक्ति-स्वातंत्र्य का नाश होता है!" पाठक! देखा आपने, कैसी न्यायपूर्ण विचार-सरणी है। राष्ट्रीय-महासभा का स्वीकृत किया हुआ प्रस्ताव होने से इसे मानने का तो राष्ट्रीय पुरुष आग्रह कर ही रहे हैं, किन्तु यह पास क्यों किया गया, इस प्रश्न की ओर ऐसे २ न्यायमूर्ति क्यों ध्यान नहीं देते? केवल प्रस्ताव को पास कर देने के कारण ही राष्ट्र उसे नहीं मानता, वरन् वैसा प्रस्ताव पास करना आवश्यक था, और इसीलिये राष्ट्रीय सभा ने उसे पास किया है। पंजाब वाले अत्याचारों से खिद्र उत्पन्न होने के कारण ही देश ने असहकारिता का अभिमत प्रकट किया है, और खेद होगी यह इसे मानेगा। अस्तु। इस नारायणमूर्ति का कथन 'जिस गुलामी से छूटने का प्रयत्न हो रहा है, वह इस विचार-से छूटने के बदले और भी दृढ़ होगी! महात्मा गांधी जुल्मी [illegible]यंकर राज्यपद्धति प्रचलित करना चाहते हैं।' किन्तु जब महा-अथवा राष्ट्रीयदल लोकशाही के ध्येय को सामने रखे हुए हैं, [इ]स तरह का ज्ञान इन नर्मदलियों को कहां से और कैसे हुआ? [ईश्]वर ही जान सकता है। यदि क्षणभर के लिये यह भी मान [लिया] जाय कि; गुलामी दृढ़ होगी, तथापि परकीयों की गुलामी से तो [रा]जी के समान सात्विक भारतीय की गुलामी लाख दर्जे अच्छी! ये लोग नाशक-बुद्धि से विधायक कार्य न हो सकने का सिद्धांत [रखते] हैं, किन्तु हम नहीं समझ सकते कि, देश ने जिस मार्ग [ग्र]हण किया है, उसमें कांटे बिखेरने को ये किस हेतु से प्रवृत्त [हैं]। अस्तु, आगे चलकर ये महाशिष्ट फिर कहते हैं कि, 'प्रस्तुत [प्रश्न] व्यक्ति-स्वातंत्र्य का है, अत: राष्ट्रीय-सभा जैसी संस्थाओं का [निर्णय] पालन बन्धनकारक नहीं हो सकता!' किन्तु यह विचार-[सरणी] इन्होंने किस इतिहास से ढूंढ निकाली है; ईश्वर ही जाने! [य]ुद्ध के समय पार्लमेन्ट द्वारा युद्ध के लिये सम्मति दे दी जाने पर [इस] विचार-सरणी की प्रतिध्वनि भी इनके परात्पर गुरु के देश में न [सुनाई] पड़ी। यही नहीं वरन् सब पर समान बोझ डालने और किसी को [इ]स राष्ट्रीय कर्तव्य से मुक्त न होने देने के लिये वहां भरसक प्रयत्न भी [किये] गये। किन्तु यहां देश के सामने जीने मरने का प्रश्न उपस्थित रहने [की द]शा में ये व्यक्ति-स्वातंत्र्य के बहाने शत्रुदल में जा मिले। इसी विचार-[सरण]ी से ही आज तक भारत की इतनी दुर्गति हुई है। सब

उत्पाती लोगों का कार्यक्रम

[इसी] प्रकार का होता है! राष्ट्रीय सभा का निश्चय ही राष्ट्र का निश्चय [है], और इस नियम का पालन करने से ही देश की स्वतंत्रता का यह [यु]द्ध यशस्वी होगा, अन्यथा नहीं। खरशापर कर का दूसरा कोटि-[क्रम] यह है कि 'स्वराज्य प्राप्ति के लिये इन लोगों को असहयोग के [सिव]ा दूसरा मार्ग ही नहीं दीखता, यह एक भारी भूल है।' और इस [बात] को सिद्ध करने के लिये उन्होंने यूरोपीय इतिहास में के ग्लेडस्टन [से ल]गाकर कावूर तक के उदाहरण दे डाले हैं। किन्तु इस ऐतिहा-[सि]कता के जोश में उन्हें इस बात का ज्ञान तक न रहा कि, ये सब [उदा]हरण स्वतंत्र-राष्ट्रों के हैं। अर्थात् उनकी दलील तभी मानी जास-[कती] थी, जब कि उन्होंने इस प्रकार का उदाहरण उपस्थित किया [हो]ता, परतंत्रता के गंभीर गर्त में पड़े हुए किसी राष्ट्र ने परतंत्रता को [ला]दने वाले और दासता का बन्धन दृढ़ बना रखने के इच्छुक [किसी] दूसरे किसी राष्ट्र से सहकारिता करके अपना उद्धार कर लिया हो। [किन्]तु इन अस्तित्व-हीन शश-शृंगों को ये ला कहां से सकते थे! [अस्]तु, इस प्रकार के भ्रामक एवं अस्थिर युक्तिवाद के द्वारा ये लोग [अस]हयोग की प्रचंड लहर को रोक रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। [रा]ष्ट्रीय मानापमान और उसके जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित रहने की [दश]ा में इन नर्मदलियों के समान विलक्षण मनोवृत्ति वाले जीवों का [भा]रत में अस्तित्व रहना दुर्भाग्य की बात है। इनके सिवाय सर्कार ने [औ]र भी कई छोटे-बड़े भूत-प्रेत खड़े कर रखे हैं। महाराष्ट्र के राष्ट्रीय-[द]ल का मार्ग कंटकाकीर्ण बनाने के लिये उसने ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर का [प्र]श्न उपस्थित किया है। आजकल राज्य अंग्रेजों का नहीं वरन् ब्राह्मणों [क]ा है, और देश के दरिद्री बन जाने के कारण यहां की सम्पत्ति का [इंग्]लैण्ड चला जाना नहीं; वरन् उसका ब्राह्मणों के हाथ में पड़ना ही [है], इस प्रकार का अर्थशास्त्र विरुद्ध और मिथ्या कोटिक्रम किया जा-रहा है। हिन्दू २ में ही नहीं, बल्कि हिन्दू-मुसलमानों में भी [...] व्यवहार शुरू हुए बिना स्वराज्य के प्रश्न का हाथ नहीं लग[...] [स]कता! इस प्रकार का एक आततायी युक्तिवाद सत्यशोधक स[...] खड़ाकर रहे हैं। किन्तु इन सरीखे मच्छरों की भिनभिनाहट [...] गांधी सदृश वीर कभी भय खाने वाले नहीं हैं। इस प्रका[र] [...]दो रोड़े ही क्या; यदि उन पर गालियों और निस्सार युक्ति[यों का] पहाड़ भी ढहा दिया जाय, तो भी वे अपने मार्ग से विरत [न होंगे।] इन नर्मदलियों और खुशामदी टट्टुओं के हाथों पूरा २ धि[क्कार] [पा]सकने के लक्षण देख कर अब खुद नौकरशाही के भी प[...] आगे बढ़ने लगे हैं। सितारे के कलेक्टर ने एक नये युक्ति-[वाद की] रचना कर यह भास कराया है कि, असहकारिता के तत्वानु[सार] (वोट) न देना अपराध है। किन्तु यह युक्तिवाद बिलकुल ही [...] है। क्योंकि मत देना या न देना व्यक्तिविषयक अधिकार है, [और मत] न देने से हमारे हाथों किसी भी मानवी कानून का भंग [नहीं हो] सकता, इस बात को सर्कार अच्छी तरह जानते हैं। यदि [...] न्याय से यह भी सिद्ध होजाय कि, हम मानवी नियम का [...] हैं, किन्तु फिर भी यह निःसंकोच कहा जासकता है कि, [...] नियम का भंग नहीं करते। और भारत की जनता मानवी [...] अपेक्षा ईश्वरी नियमों को ही विशेष आदरणीय समझती है [...] कर फिर कहते हैं कि, 'तुम असहयोग का शस्त्र उठाने के[...] लोगों से कह रहे हो, किन्तु जब इसी शस्त्र को लेकर ब्राह्म[ण] पर वार करेंगे, तब तुम्हारी क्या दशा होगी?' परन्तु ब्राह्मण [...] का झगड़ा तो सजातीय, सधर्मीय और राष्ट्रीयों से ही सम्ब[न्ध रखने] वाला है, जब कि प्रस्तुत विवाद परकीयों के साथ है। अतः [...] का यहां कुछ भी उपयोग नहीं हो सकता। किन्तु दुर्भाग्य से [...] फुसलाहट में आकर प्रचलित आन्दोलन की तरह यदि ब्राह्मण[...] असहयोग मार्ग का अवलंबन किया, तो इसमें बिगाड़ ही क्या [...] हम तो समझते हैं कि, इसी शस्त्र के द्वारा ये देश-बन्धु भी स्वरा[ज्य प्राप्त] कर सकेंगे! देश की स्वतंत्रता के लिये यदि समग्र ब्राह्मण जाति [अपने] को बलिदान कर दे तो भी क्या बुरा है? इतने पर भी यदि [...] [क्ष]त्रिय कमर कसकर इस बात के लिये तैयार हो जांय कि, [ब्राह्मण] जाति के अलग हट जाने पर हम देश को स्वराज्य प्राप्त क[रा देंगे तो] बड़ी ही प्रसन्नता के साथ ब्राह्मण लोग अलग हो सकते हैं। [...] केवल इसीलिये कि, ब्राह्मण लोग सर्कार से झगड़कर यदि स्व[राज्य के] लिये खटपट कर रहे हैं। और उनके कार्य में विघ्न डालने के [...] सर्कार के दाव को सिद्ध करके, पुन देश की पारतंत्र्य-शृं[खला] विशेष पुष्ट बनाने का ही यदि आज की तरह प्रयत्न होता [रहा तो] उन लोगों को अच्छी तरह याद रखना चाहिये कि, 'हम ([...] माणिकता के ही साथ २ देशद्रोह का भयंकर पातक भी [...] लाद रहे हैं। सितारे के कलेक्टर की भांति किये जाने वा[ले] इस दृष्टि से स्थानिक; और राष्ट्रीय दृष्टि से बिलकुल ही निस्स[ार समझे] जासकते थे, किन्तु अब तो खुद

सर्कार भी दम फटकार चुकी है।

पार्लमेन्ट में माण्टेग्यू साहब ने कह दिया है कि, हमने इस [असह-]योग) आन्दोलन के विषय में भारत सर्कार को पूर्ण स्वतंत्र[ता दी] है, और इस आन्दोलन का भंग करने के लिये उसके काम [में लाये] हुए सभी उपायों का हम समर्थन करेंगे। वाइसराय ने इस [...] परमूर्खता का सिक्का लगा दिया है, और हाल ही में घोषणा-[...] कर फर्माया है कि, यह आन्दोलन अयोग्य है। अतः जब तक [...] की मर्यादा का उलंघन नहीं किया जाता, तब तक हम चुप रहें[गे] फिर ऐसा न कर सकेंगे! इसी तरह उसमें उन्होंने अपने छिद्रा[न्वेषण का] एक प्रमाण यह भी दिया है कि, कुछ लोगों को सजा दी जाने से [लोगों] में उनका महत्व बढ़ जाता है, और फिर वे उसका दुरुपयोग [करने] लगते हैं। इसलिये हम ऐसे लोगों को बड़े होने का मौका [नहीं] देना चाहते। किन्तु इस स्वयंमन्य सर्कार के दिमाग में यह चि[न्ता] प्रवेश नहीं कर पाता कि, प्रत्येक आन्दोलन का महत्व उसके [तत्व] पर ही अवलम्बित रहता है, व्यक्ति विशेष पर नहीं। असह[योग के] सिद्धान्त देश भर को मान्य होने का कारण महात्मा गांधी न[हीं,] उनके मूल-तत्व का सामर्थ्य ही है। आन्दोलन यदि व्यक्ति[विशेष पर अवलम्बित] होते तो, इन्हीं महात्माजी का एक विशिष्ट विषय में कुछ [...] उठाया हुआ, सहयोग का आन्दोलन क्यों सफल नहीं हुआ? [...] आन्दोलन की तीव्रता का कारण व्यक्ति नहीं, वरन् तदंगभू[त...]

महायुद्ध के सातवें वर्ष का अक्टूबर मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी. ए. ।)

अक्टूबर मास में बालशेविकों ने पोलैण्ड से स्थायी सन्धि करली और मास्को-पोलैण्ड का झगड़ा सदा के लिये मिट गया। इस सन्धि के अस्थायी रहने की दशा में पोल सेना ने लुथोनिया पर चढ़ाई करके उसकी नई राजधानी विलना शहर पर अपना अधिकार जमा लिया था। उस दशा में भी पोलैण्ड यही कहता रहा कि, विलना [जि]ले में पोलिश लोगों की बस्ती ही विशेष है, अतः उसे लुथोनिया [के] अधिकार में रखने या पोलैण्ड में मिला देने का फैसला स्वयंनि[र्ण]य के तत्वानुसार ही होना चाहिये। पोलैण्ड की सेना के विलना [जि]ले पर अधिकार जमाने का हेतु यही था कि, राष्ट्रसंघ स्वयंनिर्णय [क]ा तत्व लागू करे। किन्तु जबरन् ही लुथोनिया के जिले पर अधि[का]र जमाना राष्ट्रसंघ के तत्व विरुद्ध बात हुई, अतः यह कह देने में हानि [न]हीं कि; पोलैण्ड ने लुथोनिया पर एक प्रकार का आक्रमण ही किया [था]। यही सोच कर लुथोनियन सरकार ने भी सामना करने का प्रबन्ध [क]िया। जिस प्रकार इटालियन सेना ने फ्यूम बन्दर-स्थान को प्रथमतः [अ]धिकृत किया और फिर उस पर वह अपना हक बतलाने लगी, [व]ही दशा विलना जिले की भी हुई। राष्ट्रसंघ ने पोल सरकार को [ब]हुत कुछ समझाया भी सही, किन्तु वह यही कहती रही कि; फौजी [द]ल के सामने हमारा कुछ भी वश नहीं चल सकता। फ्रांस और [प]ोलैण्ड इन दोनों देशों के मुत्सद्दियों ने भी पोलैण्ड को खूब समझा[य]ा, किन्तु सब व्यर्थ हुआ। उसके अस्पष्ट उत्तर पर से यही प्रतीत होता [थ]ा कि, किसी न किसी प्रकार का झगड़ा खड़ा करके अथवा दूसरे [क]िसी निमित्त से और बालशेविकों पर प्राप्त की हुई विजय से लाभ उठाकर, लुथोनियों को अपनी बगल में मारने के लिये ही यह (पोलैण्ड) इस प्रकार की व्यूह रचना कर रहा है। उसी समय यह भी सन्देह उत्पन्न होने लगा कि, इस व्यूह में फ्रांस का भी किसी न किसी रूप में हाथ अवश्य है। लुथोनिया और मास्को वाली बालशेविक सरकार के बीच घनिष्ट प्रेमभाव होने और उधर रशिया एवं जर्मनी के बीच लुथोनिया का प्रान्त रहने के कारण, जर्मनी और बालशेविकों के बीच की दीवार को पूर्ण करने के लिये लुथोनिया का पोलैण्ड के अधिकार में आना जरूरी हुआ, और इस दीवार को पूरी करने का ध्येय भी फ्रांस [illegible] समय स्वीकार कर चुका है। किन्तु बीच में ही बालशेविकों के सिर उठा देने से लुथोनिया मास्को के अधिकार में चला गया, और फ्रांस की खड़ी की हुई दीवार लगभग आधे भाग तक गिर पड़ी। वारसौ वाली लड़ाई से तो यह दीवार समूल ही गिर जाने वाली थी, परन्तु उस युद्ध में पोलैण्ड की जीत हो जाने से वह [illegible] खड़ी रही। अब विजय-मद की धुन में पोलैण्ड उस अपूर्ण दीवार को पूरी करने के प्रयत्न में लगा। [illegible]

आरंभ में उसे पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया गया है। अर्थात् कुछ ऐंग्लो-फ्रेंच तज्ञों ने स्वयंमेव प्रयत्न किया है कि, जर्मनी से लिये जाने वाले युद्ध-दंड और राष्ट्रों की पारस्परिक व्यापार सम्बन्धी झंझटों को दूर करने में इस संस्था का पूर्ण उपयोग हो सकता है, इसी दृष्टि से विचार करके जर्मनी, आस्ट्रिया हंगेरी आदि को राष्ट्रसंघ में सम्मिलित कर लिया जाय। जो लोग किसी समय यह कहने वाले थे कि, आस्ट्रिया और जर्मनी को राष्ट्र-संघ में बहुत समय के बाद स्थान मिल सकेगा, वही आज उसे झटपट मिला लेने पर जोर दे रहे हैं। रशियन बालशेविक सत्ता और जर्मनी के बीच की दीवार दो वर्ष के भीतर ही गिर पड़ने के कारण, जबरन् नहीं तो कम से कम स्वेच्छा से ही बालशेविकों के विरुद्ध जर्मन-शक्ति को खड़ी करने का यह एक साधन मिल गया है। जर्मनी से वसूल किया जाने वाला युद्ध-दंड उसकी शक्ति के अनुसार होना चाहिये, यह बात भी अब फ्रांस ने मंजूर करली है। पोलैण्ड युद्ध में वह खूब मरा भले ही न हो, किन्तु यह तो निश्चित है कि, अब उसके हाथों बालशेविकों के नाश का समय नहीं रहा, और दीवार भी लगभग आधी फिसल गई है। सिवाय में इंग्लिश मजदूर दल के दिन बदिन राजकीय सत्ता हस्तगत करने के लिये अग्रसर होते जाने और कोयले की खान एवं रेल्वे की हड़तालों के कारण इंग्लैण्ड की सामाजिक स्थिति इस समय बड़ी संकटापन्न हो रही है। गत मई मास में फ्रांस ने हड़तालों का अंगकर(?) श्रमजीवियों की दशा कुछ निर्बल सी अवश्य करदी किन्तु अक्टूबर के आरम्भ में [illegible] की इंग्लैण्ड में जो हड़ताल हुई उससे मजदूर-दल का पैर आगे ही बढ़ा है। आयर्लैण्ड वाले सिन फिनरों के उपद्रव से इंग्लैण्ड के तरुण लोग बड़ी चिन्ता में पड़ गये हैं। और इसीसे महायुद्ध के [illegible] की ओर ध्यान देने के लिये न उन्हें अवकाश ही मिल रहा है, और न उनमें वैसी शक्ति ही रही है। इंग्लैण्ड की आन्तरिक स्थिति बिगड़ती चली है और [illegible] स्थिति भी सुधरने के बदले [illegible] ही होती जाती है। इन झंझटों से मुक्त होने के लिये इस समय वह दूसरे झगड़ों में बिलकुल पड़ना नहीं चाहता। इसी प्रकार इटली की [illegible] स्थिति भी इंग्लैण्ड से कई अंशों में अधिक बिगड़ी हुई है। [illegible] फ्रांस की दशा किसी प्रकार अच्छी है, किन्तु मनुष्य हानि की दृष्टि से महायुद्ध में उसकी बहुत बड़ी हानि पहुंचने के कारण वह भी विदेशी झगड़ों में अपनी सेना को काम में लाना नहीं चाहता। हाल ही में यह खबर मिली है कि, [illegible]

नहीं रहा, और न यूरोप के झगड़ों में अमेरिका के पड़ने की आवश्यकता ही है। इन बातों पर से उसने जर्मनी, आष्ट्रिया, एवं रशियादि देशों को यह समझाकर कि, मानों महायुद्ध में अमेरिका ने कभी योग ही नहीं दिया; और अब वह इनसे पूर्ववत् ही सम्बन्ध रखकर अपना व्यापार व्यवहार चलाना चाहता है--इस प्रकार नये अमेरिकन सत्ताधारियों ने प्रयत्न किया है। अतः जर्मन-सन्धि की शर्तों का अमल कराने के लिये अमेरिका का साथ रहना न रहना बराबर ही है! इसी प्रकार जर्मनी या रशिया पर व्यापारिक बहिष्कार डालकर साम्पत्तिक लगाम के द्वारा उन्हें ठीक रास्ते पर लाने के कार्य में भी अमेरिका मदद नहीं दे सकती। अर्मीनियों को फौजी सहायता पहुँचाकर यूरोप एव रशिया में अल्प-संख्याकों का स्वातंत्र्य बनाये रखने के कार्य में भी अब उससे कुछ सहायता नहीं मिल सकती! इस प्रकार का अमेरिकन ध्येय नवम्बर मास में निश्चित हो जाने से बालशेविकों के साथ झगड़ने में एंग्लो-फ्रेंचों पर अब अमेरिकन छत्र-छाया नहीं रह सकती। महायुद्ध के समय अमेरिका ने ही एँग्लो-फ्रेंचों को बचाया, किन्तु अब बालशेविकों के साथ आगे के लिये भी कई वर्षों तक होती रहनेवाली छीनाझपटी एवं रोज २ की छेड़ छाड़ के काम में अमेरिका ने इन्हें सूखा ही जवाब दे दिया है। एँग्लो फ्रेंचों को जो अब तक इस बात का जो विश्वास था कि, बालशेविकों को हम आज न सही, कल तो अवश्य ही गर्व-गलित कर देंगे वह फौजी शक्ति के कारण नहीं वरन् व्यापार विषयक बहिष्कार के भरोसे पर ही था। क्योंकि इनकी व्यापारिक बहिष्कार की विचार सरणी यह रही है कि, विदेशों में व्यापार बन्द हो ... जनता की संसारयात्रा कष्टकारक हो जायगी, किन्तु अब स्वयमेव ही अमेरिका द्वारा बाल्शेविकों का व्यापार सम्बन्ध जुड़ जाने के कारण एँग्लो-फ्रेंचों का बहिष्कार निष्फल बिना नहीं रह सकता। रशिया को रासायनिक द्रव्य, यंत्र-स... एवं कृषिकर्मोपयोगी साहित्य तथा औषधियों की आवश्यकता है, सबकी पूर्ति अमेरिका सहज ही में करके रशिया के कच्चे माल विदेशों में बेचकर अपने माल की कीमत बड़ी आसानी से वसूल लेगा। इसी तरह जर्मनी को भी एँग्लो-फ्रेंचों द्वारा आजकल जो त्य... करना पड़ता है, और एँग्लो फ्रेंचों की साख का उपयोग किये... उसके लिये विदेशों में व्यापार कर सकना कठिन हो गया है, कठिनाई भी अमेरिका के इस नये ध्येय से दूर हो जायगी। अब अमेरिका ही जर्मनी से व्यापार शुरू करके उसकी साख जमा... तब इस विषय में भी जर्मनी को एँग्लो फ्रेंचों का मुँह ताकने रहने... आवश्यकता न पड़ेगी। अर्मीनियों एवं तुर्कों के झगड़े में अमेरिका की ओर से हाथ खींच लिया जाने के कारण, जर्मन-सन्धि द्वारा स्व... बनाया हुआ अर्मीनिया प्रांत अनाथ हो गया है। इस प्रकार अमे... रिका के नये निर्वाचन में प्रे० विलसन का पराजय हो कर नये ... विरुद्धपक्ष का वहां अधिकार जम जाने के कारण जर्मन-सन्धि... एक भारी धक्का पहुँचा है; यही नहीं वरन् बालशेविक एवं तुर्कों... इससे खासी प्रसन्नता भी हुई है। इस तरह जर्मनी से पूर्व और... दीवार भी गिर पड़ी और अमेरिका ने एँग्लो-फ्रेंचों का साथ भी छो... दिया, तथा बाल्शेविकों की मृत्यु टलकर उनको जीवन ज्योति फिर ... करने लगी है। इन सब आपत्तियों से मुक्त होने के लिये समयानुस... आष्ट्रो-जर्मनों से भी सहायता लेकर राष्ट्रसंघ के लंगड़े ...

है। अब जर्मनी के पूर्व की ओर दीवार खड़ी करने के बदले; बाल्शे-विकों के ही चारों ओर-रशिया के पश्चिम और दक्षिण में-राजसत्ता की न सही-किन्तु कम से कम नैतिक सत्ता की तो दीवार खड़ी करना ऐंग्लो फ्रेंचों के लिये अत्यावश्यक हो गया है। और इस कार्य को सुगमतापूर्वक निपटा लेने के लिये राष्ट्रसंघ की ही द्विरावृत्ति की जारही है। किन्तु बाल्शेविकों को इस प्रकार घेरकर मारने के काम में उनके लिये अक्टूबर का अंतिम और नवंबर का आरंभिक भाग ठीक नहीं बीता, और अमेरिका के निर्वाचन में प्रे० विल्सन की हार हो जाने के कारण व्यापारिक बहिष्कार की दीवार भी गिरने जैसी ही बन चुकी है। इसी प्रकार दक्षिण की ओर रशियन सेनापति रेंगल ने पोलैण्ड की धूम के समय जो चढ़ाई शुरू की थी, उसका अन्त भी नवंबर के दूसरे सप्ताह में से० डेनिकन की चढ़ाई की ही तरह हुआ, और से० रेंगल फ्रांस में जारहने के आशय से जहाज पर सवार हो चुके हैं। कालेसागर में के क्रिमिया द्वीपसमूह में सेनापति डेनिकन के अवशिष्ट अनुयाइयों को इकट्ठा कर से० रेंगल ने पोलैण्ड की धूम के समय उत्तर दिशा में बाल्शेविकों पर आक्रमण कर दिया था। पोलैण्ड की लड़ाई में बाल्शेविक सेना के लगी रहने से सेनापति रेंगल की खासी जीत हुई, और अक्टूबर के आरंभ में उन्होंने नीपर नदी तक का प्रदेश भी हस्तगत कर लिया। किन्तु पोलैण्ड की धूम शांत होते ही बाल्शेविक अपनी सेना को दक्षिण में ले आये; और अक्टूबर के अन्त में उन्होंने से०रेंगल पर प्रत्याक्रमण शुरू कर दिया। लेकिन उस समय इधर से प्रकट यह किया गया कि, रशिया में चारों ओर लोग अकाल पीड़ित हो कर स्थान २ पर बाल्शेविकों के विरुद्ध उपद्रव मचा रहे हैं, और मास्को सर्कार कब नष्ट हो जायगी, यह ठीक २ नहीं कहा जासकता। पोलैण्ड वाली हार से बाल्शेविकों की इज्जत रशिया में कम भले ही हो गई हो, किन्तु यह कह देने में हानि नहीं जान पड़ती कि, उपरोक्त अपवाद से उनकी यथार्थ अन्त स्थिति का दिग्दर्शन बिलकुलही नहीं होता था। यह अफवाह केवल इसी-लिये उड़ाई गई थी कि, बालशेविकों के उलट पड़ने से पूर्व ही से० रेंगल को सहायता देना इंग्लैण्ड और फ्रांस ने उचित समझा-इस प्रकार का लोकमत तय्यार हो जाय। क्योंकि अक्टूबर के अन्त में जब बाल्शेविक से० रेंगल पर आक्रमण कर रहे थे, उस समय यह भास कराया गया था कि, शीत काल के बाद भयंकर युद्ध मचाने की [illegible] तय्यारी कर रहे हैं। किन्तु यह युद्ध अक्टूबर के अन्त में शुरू हो गया, और नवंबर के आरंभ में सेनापति रेंगल को नीपर छोड़कर क्रिमिया द्वीप-समूह के [illegible] द्वार तक पीछे हट आना [illegible]। तब ऐंग्लो मित्रों ने सेनापति रेंगल को यह आश्वासन दिया कि, [illegible]शेविकों को भले लाख डेढ़ लाख सेना आजाने से पीछे भले ही [illegible] आना पड़ा हो, किन्तु फिर भी क्रिमिया द्वीप समूह का संकीर्णद्वार [illegible] जिसे तुमने खूब मजबूत बना दिया है, उसे [illegible]शेविक कभी नहीं ले सकते। [illegible] उसमें प्रवेश कर सकना तो उनके [illegible] बिलकुलही असंभव बात है। फलतः नवंबर की १०।११ तारीखों [illegible] के पास एक भयंकर युद्ध हुआ। उसमें जो भी बालशेविकों [illegible] १०।४० हजार सेना नष्ट हो गई, तथापि उसने विषाक्त गैस का [illegible]योग खूब किया, और समुद्र मार्ग पर पुलों से बढ़ने आकर से० [illegible]गल की सेना को चारों ओर से घेर लिया। इस तरह अचानक ही [illegible] पीछे की ओर भी बालशेविक सेना के आपहुँचने से से० रेंगल [illegible] फौज के होश उड़गये, और भागने व उसे जान बचाना कठिन हो [illegible]। से० रेंगल के इस [illegible] पराभव के कारण बालशेविकों के [illegible] क्रिमिया द्वीपसमूह में चारों ओर से [illegible] ही घुस पड़े [illegible] इस प्रकार से० रेंगल को फ्रांस की [illegible]

[illegible]

को भी खासी नसीहत मिल जाने से ज्ञात होता है कि, इंग्लैण्ड की तरह वह भी होशियार बनकर बालशेविकों के मार्ग में विशेषतः पैर न रखेगा। किन्तु इंग्लैण्ड और फ्रांस की तरह ठोकर लगने पर होशि-यार होने की बुद्धि इटली में न रहने; और प्रारंभ से ही वह बालशे-विकों का पक्षपाती रहने के कारण बालशेविकों को रशियन सत्ता के विरुद्ध उपद्रव मचाने के लिये अब यूरोप की कोई सी भी फौजी सत्ता आगे न बढ़ सकेगी। अर्थात् नवंबर के दूसरे सप्ताह में मास्को के सिंहासन पर लेनिनशाही स्थायी रूप से विराजमान हो चुकी। अतः कहा जासकता है कि, अभी २ तो बाहर से भी कोई बालशेविकों कष्ट नहीं पहुँचा सकता। से० रेंगल पर बालशेविकों की प्राप्त कीहुई, इस महान् विजय के समय ही कमाल पाशा के तरुण तुर्क दल ने भी तीन बातों में अंशतः विजय प्राप्त करली है। कमाल-पाशा और दक्षिण काकेशिया अर्थात् अजर-बेजन के बीच अर्मीनिया रूपी जो दीवार खड़ी कीगई उसे स्वतंत्र करते समय यह सूचना दीगई थी कि, वह बालशेविकों को सहायता न दे। किन्तु अक्टूबर के अन्त में कमाल पाशा की सेना ने अर्मीनिया पर आक्रमण कर उसे पूर्ण पराजित किया और उस प्रदेश के मुख्य २ शहरों पर अपना अधि कार भी जमा दिया। अर्मीनियों को आशा थी कि, इस मौके पर अवश्य ही मुझे फ्रांस, इंग्लैण्ड या अमेरिका से सहायता मिलेगी। किन्तु इंग्लैण्ड कोयले की खान वाले मजदूरों के हड़तालरूपी भँवर में फँस गया, फ्रांस को से० रेंगल की फिकर पड़ी और अमेरिका ने प्रे० विलसन के मतों को त्याग दिया। तब विवश होकर अर्मीनिया को कमाल पाशा से विनयपूर्वक सन्धी कर लेनी पड़ी। इस सन्धी के द्वारा दक्षिण काकेशिया में होकर कमाल पाशा के मुल्क में तुर्क या बालशेविकों के लिये आने जाने का मार्ग खुल गया है। फलतः तुर्क एवं बालशेविकों के बीच की दीवार अब नष्ट होगई, और उनके कंधे एक दूसरे से भिड़ गये हैं। अतः इसका परिणाम उत्तर ईरान, बुखारा, समरकन्द अथवा काबुल के कारस्थान पर हुआ तुर्कों के लिये अनुकूल हुए बिना नहीं रह सकता। इस समाज की बालशेविकों से मित्रता रहने एवं उनसे सहायता प्राप्त करने का मार्ग खुल जाने के कारण, रशिया से तुर्कों को अब गोली बारूद की पूरी २ सहायता मिल सकेगी। से० डेनिकिन और रेंगल की सहायतार्थ इंग्लैंड और फ्रांस से जो युद्ध सामिग्री रवाना हुई थी, वह सब दक्षिण रशिया में बालशेविकों के हाथ पड़ गई है। अतः अब इस भय से कि—कहीं यह सब सामग्री काले सागर के उत्तर तट से दक्षिण किनारे पर अर्थात् कमाल पाशा के हाथ तो नहीं लग जाती—ऐंग्लो-मित्रों की जलसेना काले सागर पर बड़ी सावधानी से पहरा दे रही है। मास्को सर्कार ने इंग्लैंड को शिकायत के रूप में धमकी दी है कि, हमारे समुद्र पर इस प्रकार तुम्हारा पहरा रहने की कुछ भी आव श्यकता नहीं है, इसी तरह तुम्हें इस बात से भी कोई वास्ता नहीं हो सकता कि, हम तुर्क, ईरानी या काबुलियों में अपनी सत्ता बढ़ाने वि-षयक हमारे कार्य में विघ्न डालो। हम स्वतंत्र हैं, अतः जो चाहे कर सकते हैं, तुम्हें बीच में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी तरह लेनिन के [illegible] पर से भी अन्दाज लगाया जा सकता है कि, इंग्लैंड और रशिया का मेल [illegible] ही नहीं जुड़ सकता, और [illegible]

[illegible]

जान पड़ा कि, कुस्तुन्तुनियां शहर भी ग्रीस के अधिकार में ला सकने का समय उपस्थित करने; एवं अपनी विद्वत्ता के द्वारा स्वदेश के वैभव को उच्चासन पर ला बिठाने वाले व्हेनिज़ेलास के विरुद्ध ग्रीस की जनता कभी मत न देगी। पर निर्वाचन के समय अर्थात् नवंबर के दूसरे सप्ताह में मताधिक्य से ग्रीस के लोगों ने व्हेनिज़ेलास का पक्ष छोड़कर प्रकट किया कि, कान्स्टंटाइन ही राजा होना चाहिये। महायुद्ध के समय एँग्लो-फ्रेंच उसके विरुद्ध अवश्य थे; किन्तु अब शांतिकाल में और ग्रीस की प्रजा का मत लेने पर खुद स्वतंत्र ग्रीस के लिये भी अपने जितना स्वयंनिर्णय का सिद्धान्त लागू न होने देना, मानों एँग्लो-फ्रेंचों का छोटे से राष्ट्र पर अकारण ही बलात्कार करने जैसा होगा। अतः चुनाव के निर्णयानुसार यह कहने में हानि नहीं कि, शीघ्र ही कान्स्टंटाइन ग्रीस का राजा होगा, और एम्. व्हेनिज़ेलास का कारोबार अस्तंगत हो जायगा। यदि सचमुच ही ऐसा हुआ तो तुर्क सन्धी में ग्रीस-विषयक परिवर्तन करते समय उस (ग्रीस) की ओर से कुछ भी रुकावट नहीं पड़ सकेगी। ग्रीस ने पर्याय रूप से प्रकट किया है कि, निर्वाचन के द्वारा व्यर्थ की महत्वाकांक्षा के फेर में पड़कर हमेशा के लिये तुर्कों से वादविवाद करते रहने की उसे बिलकुलही इच्छा नहीं है। ग्रीस में यह अन्तःस्थ बखेड़ा मचा देखकर नवंबर के दूसरे सप्ताह में कमाल पाशा की सेना ने ब्रुसा की ओर ग्रिशियन सेना पर आक्रमण करके उसे बहुत दूर तक पीछे हटा दिया। अतः अब यह निसन्देह कहा जासकता है कि, यदि ग्रीस ने एम्. व्हेनिज़ेलास की महत्वाकांक्षा की धुन छोड़दी, तो वह स्वयमेव ही स्मर्ना के टापू से अपनी सेना को हटा लेगा और तुर्क-सन्धी में फेरफार करने का समय शीघ्र उपस्थित हो जायगा।

साहित्य समालोचन।

रोम का इतिहास—लेखक प्रो० ज्वालाप्रसाद एम ए., प्रकाशक; तरुण भारत ग्रंथावली दारागंज, प्रयाग। पृ० सं० १८० मूल्य १) रुपया।

यह पुस्तक तरुण भारत ग्रन्थावली की आठवीं संख्या है। अबतक इस ग्रंथावली में कोई ३-४ इतिहास विषयक पुस्तकें निकल चुकी हैं। जब से ग्रीस का इतिहास निकला, तभी से इस इतिहास की न्यूनता का भास हो रहा था। किन्तु हर्ष की विषय है कि, ग्रंथावली के सम्पादक पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी के प्रयत्न से यह कमी पूरी होगई। यूरोपीय सभ्यता का ज्ञान ग्रीस और रोम के इतिहास से ही प्राप्त हो सकता है। इन दिनों हिन्दी में ऐतिहासिक ग्रंथों की कितनी कमी है, यह किसी से छिपी नहीं। ऐसी दशा में यदि यह यह ग्रंथावली उस विभाग की पूर्ति का यत्न करे तो हिन्दी जनता का कर्तव्य होगा कि, वह उसके प्रचार में हाथ बँटावें। इस ग्रंथ के अध्ययन से यूरोप के आचार-विचार, कला-कौशल्य और वहां की शासन पद्धति आदि की उत्पत्ति एवं उनके विकास का समुचित ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पुस्तक हिंदी संसार में आदर की वस्तु है। अंग्रेज़ी पुस्तक के बदले विद्यार्थी इससे विशेष लाभ उठा सकते हैं।

[illegible]—लेखक श्रीयुत लक्ष्मी नारायण गुप्त। प्रकाशक साहित्य सदन [illegible]। पृ० संख्या १०२ मूल्य आठ आने। कागज़, छपाई मामूली।

इसमें [illegible] की दस [illegible] का समावेश हुआ है। जो [illegible] योग्य हुई हैं। [illegible] एवं विविध रस संपन्न हुआ है। [illegible] सामाजिक जीवन का सजीव चित्र खींच दिया है। पुस्तक पढ़ने योग्य हुई है। इस में लेखक महाशय का चित्र भी दिया गया है।

[illegible]—लेखक पं० [illegible] शर्मा प्रकाशक [illegible]। पृ० सं० ८० । मूल्य [illegible] आने। कागज़ छपाई साधारण।

इस पुस्तक के द्वारा लेखक ने हिन्दी के एक नये विषय की [illegible] [illegible]

निवारण किया है। सारांश, पुस्तक स्वल्प मूल्य में बड़े काम की हुई है। हमारा विश्वास है कि, यदि हिन्दी संसार में इस पुस्तक का समुचित आदर हुआ, तो लेखक महाशय एक बड़े ग्रंथ द्वारा इस विषय का पूरा २ विवेचन भी अवश्य करेंगे।

मेयर मॅक्स्विनी।

आयरिश लोगों के द्वारा स्वदेश को स्वतंत्रता प्राप्त कराने का [illegible] निर्माण होजाने [illegible] यहाँ के अंग्रेज अधिकारियों के हाथ [illegible] नहीं रह सके [illegible] कानून का पालन [illegible] जनता [illegible] होती थी [illegible] से लाभ [illegible] अन्यायपूर्ण कानून के अनुसार [illegible] देशभक्तों को दोषी ठहराने के निश्चित उपाय से वहां की नौकरशाही ने काम लिया था, किन्तु अब वहां वालों ने उसे निष्फल करने की युक्ति खोज निकाली है। ईश्वर पर विश्वास और स्वार्थत्याग के लिये पराकाष्ठा की तय्यारी इन दो गुणों के सहारे उन्होंने स्वतंत्रता का युद्ध पुकार दिया है। किन्तु अंग्रेज अधिकारी उसे रक्तपात और उपद्रव के नाम से सम्बोधन कर रहे हैं। इस युद्ध में अब तक अनेकों आयरिश बलिदान हुए, और लार्ड मोर्ले सदृश तत्ववेत्ता ने भी इन सब घटनाओं के विषय में अंग्रेज अधिकारियों के अच्छी तरह कान खोल देने का प्रयत्न किया। किन्तु दमननीति में ऐसी कुछ जादू भरी हुई है कि, ज्योंही अधिकारियों ने एक बार उसका सेवन किया, कि फिर उन्हें लोकापवाद का भय तक मात्र को भी नहीं रहता। इसके लिये उत्तम उदाहरण कॉर्क के मेयर मॅक्स्विनी के साथ अंग्रेज तज्ञों का किया हुआ, निर्दयता का आचरण है। मेयर कार्क के नगर सेठ और एक अत्यन्त प्रतिष्ठित सज्जन थे, और इनके विरुद्ध कोई सा भी अपराध सिद्ध नहीं हुआ। कहने मात्र के लिये तलाशी के समय उनके घर में से पुलिस के गुप्त कोड (कानून) की एक प्रति अलबत्ता मिली थी, और इसके लिये छोटे मोटे जुर्माने पर वे छोड़े जासकते थे। किन्तु वैसा न किया जाकर इन मेयर को दो वर्ष के लिये सख्त मजदूरी युक्त क़ैद की सज़ा दीगई। यहां यह बड़ी सज़ा केवल लोगों में दहशत बैठाने का उपाय मात्रही था। किन्तु मॅक्स्विनी ने इससे लाभ उठाकर संसार को देशहितार्थ प्राण अर्पण करने का एक नया पाठ सिखाना चाहा, और अन्नत्याग कर भूख की भयंकर यातना सहते हुए ७४वें दिन उन्होंने इस संसार से प्रस्थान कर दिया! भारत में धर्माज्ञानुसार देहत्याग करने की तो प्रथा थी, किन्तु देशार्थ स्वयं प्राणत्याग करने का उदाहरण यह पहला ही है। इस घटना पर से यह स्पष्टतयः ज्ञात हो रहा है कि, आयर्लैण्ड ही नहीं [illegible] सारे संसार पर ऐसी घटनाओं का क्या प्रभाव पड़ने वाला है! [illegible] आयरिश जनता का अन्तःकरण खिन्न और संतापादि मनोविकार से अवश्य ही [illegible] हो उठा है। अंग्रेज तज्ञों ने यह दलील पेश की है कि, यदि मॅक्स्विनी उपवास कर रहा है, और इसी कारण [illegible] दिया गया तो सभी क़ैदी उपवास करके गड़बड़ मचा देंगे। [illegible] मेयर ने यह व्रत अंग्रेज तज्ञों के सुख के लिये नहीं, [illegible] से प्रेरित हो कर ही आरंभ किया था, अब अधिकारियों [illegible] 'एक ओर कुआ तो दूसरी ओर खाई' वाली स्थिति उत्पन्न हो [illegible] का दोष मॅक्स्विनी पर नहीं लगाया जासकता। [illegible] से यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि, कठिन प्रसंगों से युक्त [illegible] [illegible] की समय-सूचक बुद्धि अब [illegible] नहीं है। और वे लोग कानून एवं व्यवहार के सिवा दूसरा [illegible] में करने को समर्थ ही नहीं [illegible], किन्तु संसार की [illegible] अभी तक हृदय नहीं बन चुकी है। स्वतंत्रता के लिये और [illegible] [illegible] में प्राणार्पण करने वाले इस देशभक्त के प्रति [illegible] आदर भाव ही व्यक्त किया जायगा। [illegible] [illegible] के सिवाय दूसरा मार्ग ही [illegible] नहीं [illegible] [illegible] है। [illegible], इस [illegible] की [illegible] को देखकर यही कहना पड़ता है कि, [illegible] [illegible] की [illegible] विफल जाती है।

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो ! आत्मीयता दीजिए। देखें हार्दिक दृष्टि से सब हमें ऐसी कृपा कीजिए ॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से। फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से ॥

वंदेमातरम् !

१

सीस मुकुट मणि भूत हिमाचल
चरण परस-कर पूत जलधि जल
एक एक अनुपम है जल थल
करते सम प्रणिपात। वन्देमातरम्

२

मधुर दिवस ज्योत्स्नामय रजनी
नैसर्गिक श्रीमय तनु धरणी
सुफल सुशोभित सस्य वितरणी
भरणी जग-जन-जात। वंदेमातरम्

३

ज्ञानालोक प्रकाशित धरणी
वाणी-विद्या-वितरण-करणी
धर्म कर्म मेधा की जननी
बुद्धि-दायिनी मात। वन्देमातरम्

वंदनीय तू गुण-गरिमा युत त्रिभुवन में विख्यात।
तेरे चरण कमल को प्रणमें हम सब भारत मात॥
वंदेमातरम्।

४

—— ईश्वरी कमला अभया
सिद्धिदा विमला विजया
वरदा सुखदा नित सदाशया
घर घर पूजी जात। वंदेमातरम्

५

शस्त्र धारिणी शास्त्र-सारिणी
शत्रुवारिणी दुःख-दारिणी
विश्वतारिणी कार्यकारिणी
महाशक्ति अवदात। वंदेमातरम

६

भक्तिरूप हो हिय में राजे
तनमें जीवन प्राण विराजे
महा शक्ति बन भुजमें भ्राजे
करती क्लेश निपात। वंदेमातरम

७

कोटि कोटि हम हिन्दी बालक
सब प्रकार सज्जित रिपु घालक
हैं तेरे ही आज्ञा-पालक
वीर-हृदय दृढ़ गात। वंदेमातरम।

—श्री गिरिधर शर्मा।

प्रार्थना !

लीलामय ! लीला बन्द करो !

१

[illegible] समेट यह दुखमय दृश्य सुखमय साज सजाओ !
जीवन की ज्योति जगाओ !!
[illegible]क तुल्य हम बने हुए हैं सुधा-धार बरसाओ !
आनन्द भवन में आओ !!
[illegible]नन्द-कन्द आनन्द करो-:-लीलामय ! लीला बन्द करो !!

२

[illegible]र्ण-कुटी दुखियों की,-ऊपर अग्नि शीत बरसाने दो !
करुणासिंधु कहाने दो !!
[illegible]र और भूपाल जनों पर अपना चक्र चलाने दो !
हृदय भूप दर्शाने दो !!
[illegible]मर-भाव दुख फन्द हरो-:-लीलामय ! लीला बन्द करो !

३

दुख की निशा उमड़ दो-करदो-विधुत पुण्य प्रभात !
सुदृढ़ बने यह कोमल गात !!
जगती तल के प्रहन भीरु नर-बने घोर विख्यात !
कभी किसी को लगे न घात !!
ज्योति-जगत की मन्द हरो-:-लीलामय ! लीला बन्द करो !

४

बड़े बड़े ऋषियों मुनियों ने पार न पाया नाथ !
रहे भटकते बने अनाथ !!
पार मिलेगा कैसे !-हम्दर सरल बनादो-पाथ !
वसुन्धरा हो पुनः सनाथ !!
दुख दीन-बंध स्वच्छन्द करो—लीलामय ! लीला बन्द करो !!

—"गुलाब"

वैदिक धर्म की पांच मुख्य शाखाएं !

(लेखक—श्रीयुत मुक्ताशंकर गौरीशंकर याज्ञिक, सम्पादक "गुजराती विश्वमय जगत्"।)

यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि, भगवान बादरायण कृत वेदान्तसूत्रों की रचना उपनिषदों के आधार पर हुई है। ऋक्, यजु, साम और अथर्व ये चार वेद एवं प्रत्येक के संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद के रूप में तीन और विभाग किये गये हैं। अर्थात् उपनिषदों का समावेश भी श्रुतियों में ही किया जाने से वेदान्त प्रणीत धर्म "वैदिक-धर्म" की संज्ञा से ही संबोधित किया जाता है। और इसी कारण इस लेख के शीर्षक में 'वैदिक-धर्म' शब्द का उपयोग किया गया है। अस्तु,

वेदान्तशास्त्र के मुख्य आधारभूत ग्रन्थ उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता हैं, और इन्हीं को कई लोग प्रस्थानत्रयी भी कहते हैं। हमारे भारत में आज तक जो बड़े २ धर्म संस्थापक महापुरुष हो गये हैं, उन्होंने उपरोक्त प्रस्थानत्रयी पर जुदे २ भाष्य लिखे हैं। इसी कारण उन्हें "आचार्य" की पदवी भी प्राप्त हुई है। वेदान्तशास्त्र के मूलभूत तत्वों के विषय में जुदे २ आचार्यों में एक वाक्यता भले ही हो, किंतु "तुण्डे तुण्डे मतिर्भिन्ना" के अनुसार उनमें दृष्टिभेद होना एक साधारण सी बात है।

इसी नियम का अनुसरण कर उन्होंने पूर्वोक्त मूल तत्वों का अपनी २ दृष्टि से पर्यालोचन करके भिन्न २ मत प्रतिपादन किये हैं। और उन मतों के अनुसार ही भिन्न २ सम्प्रदाय अथवा शाखाएँ उन आचार्यों के नाम से भारत में आज प्रचलित हैं। उन सब में मुख्य सम्प्रदाय ये चार हैं—(१) शंकराचार्य का मायावादी अद्वैत सम्प्रदाय (२) रामानुजाचार्य का परिणामवादी विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय (३) माध्वाचार्य का तारतम्यवादी द्वैत सम्प्रदाय (४) वल्लभाचार्य का ब्रह्मवादी केवलाद्वैत सम्प्रदाय। इस प्रकार वेदान्तधर्म की चार शाखाएँ तो प्रसिद्ध ही हैं, किन्तु हाल ही की उपलब्ध खोज पर से इस बात का पता लगता है कि, इस देश के भिन्न २ भागों में उपरोक्त चार के सिवाय आचार्य संज्ञक और भी कई पुरुष हो चुके हैं, और उनके भिन्न २ सम्प्रदाय भी आज भारत में प्रचलित हैं। इस विषय में मद्रास प्रांत के श्री० टी. एस. नारायण शास्त्री बी. ए. बी. एल. नामक विद्वान ने कुछ समय पूर्व एक बड़ा ही मार्मिक लेख लिखा था। उसी लेख के आधार पर आज हम यहां कुछ पंक्तियां लिखने का प्रयत्न करते हैं। मि० नारायणशास्त्री की बातें बिलकुल ही संक्षेप में हैं, और उन्होंने जिस ग्रन्थ के आधार पर उपरोक्त बातों का पता लगाया है; उस का उन्होंने नामोल्लेख भी नहीं किया। किन्तु फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि, दी हुई जानकारी साधार, अतएव विश्वसनीय ही मानी जासकती है।

भारत के सर्व धर्म विषयक वाङ्मय का निरीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि, देश के भिन्न २ भागों में वेदान्तप्रणीत धर्म की आज ग्यारह शाखाएं पाई जाती हैं। प्रत्येक शाखा के एक २ आचार्य हुए हैं, और उन्होंने भगवान वेद व्यास कृत वेदान्तसूत्र पर भिन्न २ भाष्यों की रचना की है। किस आचार्य ने कौनसी शाखा स्थापित की और कौनसा भाष्य लिखा,-यह सब निम्न तालिका पर से अच्छी तरह ज्ञात हो सकेगा।

प्रथम—श्रीशंकर भगवत्पादाचार्य, अथवा आदि शंकराचार्य विरचित शारीरक भाष्य। यह भाष्य अद्वैत परक है, और अखिल भारत में ब्रह्मसूत्र के विशदीकरणार्थ यही आधारभूत माना जाता है। इसी प्रकार शंकराचार्य के समय से आज तक जिन २ पुरुषों ने वेदान्त पर उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें के अधिकांश इसी (अद्वैत) शाखा के अनुयायी थे।

द्वितीय—भगवत् विज्ञानभिक्षु अथवा विज्ञान भिक्षु कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य। यह भाष्य विशिष्ट द्वैत परक है। किन्तु विष्णु या शिव को ही प्रधानता देकर नहीं लिखा गया है। अतः यह (unsectarian) विशिष्ट देवता के आधार से हीन है।

तृतीय—श्रीकण्ठ शिवाचार्य कृत ब्रह्ममीमांसा भाष्य। यह भी विशिष्टाद्वैत परक ही है। किन्तु इसमें शिव को ही प्रधानता दी गई है। अतः यह शैव-विशिष्ट परक कहा जासकता है।

चतुर्थ—भगवत् रामानुजाचार्य का श्रीभाष्य। यह भाष्य भी विशिष्टाद्वैत परक है। किन्तु इसमें विष्णु को प्राधान्य दिया गया है। अतः इसका नाम वैष्णव विशिष्टाद्वैत परक रखना होगा।

पंचम—बलदेवाचार्यकृत वेदान्तसूत्र भाष्य। यह भाष्य न तो शंकराचार्य के अद्वैत सम्प्रदाय का समर्थक है और न रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत का; वरन् लगभग मध्यवर्ती ध्येय का है।

षष्ठ—श्रीभास्कराचार्यकृत ब्रह्मसूत्र भाष्य। यह भी द्वैत परक (द्वितीय के अनुसार) विशिष्ट देवता के प्राधान्य से हीन है।

सप्तम—श्रीकराचार्य अथवा श्रीपति आचार्य कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य इसी को श्रीकर भाष्य भी कहते हैं। यह शिव प्रधान द्वैत परक भाष्य है।

अष्टम—श्रीमध्वाचार्यकृत ब्रह्मसूत्र भाष्य, अथवा द्वैत भाष्य। यह भाष्य विष्णु प्रधान द्वैत शाखा का है।

नवम—श्री वल्लभाचार्यकृत अणु भाष्य। यह शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय का है।

दशम—श्री निम्बार्काचार्य कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य। इसी भाष्य का नाम 'वेदान्त पारिजात सौरभ' है। यह द्वैताद्वैत सम्प्रदाय का है।

एकादश—श्री शुक भगवत्पादाचार्यकृत शुक भाष्य। इस भाष्य को 'सर्व वेदान्तसार मीमांसा भाष्य' भी कहते हैं। इस भाष्य का ध्येय श्रीमत् भागवत् पुराण में प्रतिपादित भक्तिमार्ग के अनुसार होने से, यह 'भागवत धर्म परक' कहा जासकता है।

उपरोक्त ग्यारह शाखाओं में से केवल पांच ही मुख्य अतएव महत्व की मानी गई हैं। प्रथम, श्रीशंकराचार्य की अद्वैत शाखा द्वितीय, श्रीकण्ठशिवाचार्य की शिव प्रधान विशिष्टाद्वैत शाखा। तृतीय, रामानुजाचार्य की विष्णुप्रधान विशिष्टाद्वैत शाखा। चतुर्थ, श्रीकराचार्य की शिव प्रधान द्वैत शाखा। और पंचम; मध्वाचार्य की विष्णु प्रधान द्वैत शाखा। इनमें से शंकराचार्य ई० स० पूर्व छठी शताब्दि (जन्म ५०६ B. C.) में हुए हैं, और श्रीकण्ठ ईसवी सन की आठवीं शताब्दि में। श्री० नारायणशास्त्री का कहना है कि, शंकराचार्य ऊपर लिखे अनुसार ईस्वी सन से पूर्व छठी* शताब्दि में हुए; और उनकी अड़तीसवीं पीढ़ी वाले उन्हीं की गद्दी के आचार्य जो द्वितीय शंकराचार्य हुए, वे ई० सन ७८८ में उत्पन्न हुए थे। वे भी अपूर्व विद्वान थे। सामान्यतः यही आद्य शंकराचार्य माने जाते हैं। किन्तु यह बात अप्रामाणिक है। श्रीकण्ठ (शिवाचार्य) द्वितीय शंकराचार्य के समकालीन थे। रामानुजाचार्य ई० सन की ग्यारहवीं शताब्दि में हुए (जन्म ई० सन १०१७); और श्रीकराचार्य भी इसी ग्यारहवीं सदी में उत्पन्न हुए (जन्म ई० १०७३)। श्रीमन्मध्वाचार्य ई० सन की बारहवीं शताब्दि में हुए (जन्म ई० सन ११९९)।

इस प्रकार श्री० नारायण शास्त्री के लेख का सार है। यह लेख कुछ बड़ा होना चाहिये था, किन्तु इसके लिये हमारे पास कोई साधन नहीं। उनके लेख में दी हुई ज्ञातव्य बातें नवीन एवं महत्वपूर्ण-अतएव मनोरंजक-प्रतीत होने से ही हमने आप लोगों के सन्मुख उपस्थित कर दी हैं।

* कई बार सुना गया है कि, एकाधिक शंकराचार्य हुए हैं, किन्तु इसके लिये प्रमाण क्या है, सो कुछ ज्ञात नहीं होता। इसी कारण आज तक लोगों की यह धारणा रही है कि, ब्रह्मसूत्र पर शारीरक भाष्य लिखने वाले शंकराचार्य ई. सन की आठवीं शताब्दि वाले आचार्य ही हैं। किन्तु श्री० नारायण शास्त्री के लेख से अब स्पष्ट हो ज्ञात हो रहा है कि, शारीरक भाष्य अर्थात् अद्वैत सिद्धान्त प्रवर्तक के नाते जो आचार्य विख्यात हैं, वे आद्य शंकराचार्य ई. सन से पूर्व छठी शताब्दि में हुए और द्वितीय शंकराचार्य उनकी ३८ वीं पीढ़ी में; अर्थात् ई. सन की आठवीं शताब्दि में हुए हैं। अस्तु। यदि श्रीयुत नारायण शास्त्री इसके लिये आधारभूत ग्रंथ का उल्लेख करते तो बड़ा अच्छा होता।

संपादक 'जगत'

आयर्लैंड में अत्याचारों की धूम।

(लेखक—श्रीयुत जनार्दन सखाराम करंदीकर बी. ए., एल-एल. बी.)

भारत की ब्रिटिश राज्यपद्धति को महात्मा गांधी 'रावण-राज्य' के नाम से संबोधित करते हैं। यह 'रावणराज्य' अथवा 'डायरशाही' केवल भारत में ही अकस्मात व्यक्त नहीं हो गई, वरन् यह ब्रिटिशों के स्वभाव की ही परिचायक है। यह बात सम्प्रति आयर्लैण्ड में उनके द्वारा जो अत्याचारों की धूम मच रही है, उस पर से स्पष्टतया सिद्ध हो जाती है। आयरिश लोग ब्रिटिशों के ही भाई बन्धु एवं वर्ण धर्म के विचार से भी उन्हीं से मिलते हुए हैं। इसी तरह स्वराज्य विषयक उनका प्रयत्न आजकल का नहीं वरन् कम से कम आधी शताब्दि से यह प्रचलित है। इतना हो कर भी जो ब्रिटिश सर्कार आयर्लैंड को स्वराज्य नहीं देती, उसके हाथों भारत को शांतिपूर्वक स्वराज्य दिया जासकना, बिलकुल ही असंभव सी बात है। स्वराज्य की तो बात ही छोड़िये, किन्तु इस समय ब्रिटिश राज्य सुराज्य भी नहीं रहा। अमृतसर के जल्यानवाला बाग का अत्याचार तो केवल एक ही दिन हुआ, और पंजाब में फौजी कानून भी तीन चार ही महिने लित रहा; किन्तु आयर्लैंड में ऐसे भयंकर अत्याचार हर समय र रहने के साथ ही डायरशाही ने वहां कायम के लिये अड्डा जमा ा है। ब्रिटिश फौज एवं पुलिस के सिपाहियों द्वारा वहां कैसे २ अत्या र होते हैं, और डायरशाही वहां किस प्रकार का स्वरूप धारण किये : है, इन बातों का कुछ परिचय प्राप्त करने के लिये ता० १५ अक्टू- के "रिव्यू ऑफ़ रिव्यूज़" को पढ़ना चाहिये। इस मासिक पत्र सम्पादक ने अपने विशेष संवाददाता को भेजकर उसके लेख द्वारा यर्लैंड की परिस्थिति का जो चित्र खींचा है, वह ब्रिटिश फौज और लिस के लिये इतना कुछ लांच्छनास्पद हुआ है कि, उसके आगे जर्मनी बेल्जियम में किये हुए अत्याचार किसी गिनती में भी नहीं। इन त्याचारी आक्रमणों का वर्णन उक्त पत्र से हम यहां ज्यों का त्यों ये देते हैं। उस पर से पाठकगण जो चाहें निर्णय कर सकते हैं।

"आयर्लैण्ड के दक्षिण भाग की परिस्थिति के निरीक्षणार्थ जाने पूर्व मैंने डब्लिन नगर में सेनापति 'मेकरेडी' से भेंट की। उनकी शिकायत यह है कि, 'आयर्लैंड से समझौता करने या युद्ध चलाने ा ठीक २ निश्चय ब्रिटिश सर्कार अब तक नहीं कर सकी है! यदि समझौता करना हो तो वह यहां से समग्र सेना को हटाले, अथवा यदि युद्ध ही करना हो तो उसके लिये स्पष्ट आज्ञा प्रकट कर मुझे वह पूर्ण अधिकार दे कि, जिससे मैं दो तीन सप्ताह में ही सर्वत्र शांति स्थापित कर दिखाऊं!"

सेनापति मेकरेडी का यह मत आज किसी भी आयरिश प्रजाजन ो विश्वसनीय नहीं जान पड़ता। कुछ भी हो, किन्तु यह तो स्पष्ट प्रकट ो रहा है कि, मेकरेडी को पूर्ण सत्ता प्राप्त नहीं है। आयर्लैण्ड की सेना पर उनकी नियुक्ति करते समय फौजी और पुलिस दोनों ही विभागों पर उन्हें पूर्ण प्रभुत्व दिया गया था। किन्तु आज यदि देखा जाय तो सेना पर उनकी सत्ता अपूर्ण ही है, और पुलिस पर तो उनकी हुकूमत नाम को भी नहीं रही। पुलिस वालों के दो दल हैं। एक महायुद्ध में काम दे चुकने के बाद आज निठल्ला बना हुआ नर समूह; जो स्पेशल पुलिस कह लाता है, और जिसे प्रतिदिन १५ रुपये के हिसाब से

मासिक ४५० रुपये वेतन

दिया जारहा है! दूसरा समाज 'दंडधारी' पुलिस वालों का है। आयर्लैण्ड में इन दिनों जो कुछ अत्याचार हो रहे हैं, उसका अधिक-तर दोष इसी दूसरे समाज पर है। इस पर हुकूमत किसकी चलती है, इसका पता तक नहीं लगता! अर्थात् इनके अत्याचार निरंकुशता पूर्वक होते जारहे हैं। जिन लोगों को इंग्लैण्ड में कोई कुत्तों के पास भी खड़ा नहीं रहने देता, उन्हीं उठाईगिरों में से इन दण्डधारी पुलिस के लिये जवान भर्ती किये जाते हैं। और फिर ये दण्डधारी लोग हथियार अथवा गोलीबारूद का पता लगाने के बहाने ओंचारे उनके घर पर डाका डालकर यथेच्छ लूटपाट द्वारा अपनी थैली भर लेते हैं।

वाटरफर्ड का ही उदाहरण लीजिये। इस गाँव में पूर्णतया शांति स्थापित थी, और वहां वाले पुलिस के खून का नाम तक न जानते थे। किन्तु इन दण्डधारियों का थाना जमते ही वहां की जनता के नाम धमकी के पत्र आने लगे और सब लोग अब घबरा उठे हैं। अभी उस दिन तीन लड़कियों को सड़क से जाते हुए इन भूतों ने रोक दिया, और उनके सामने पिस्तौल का निशाना जमाकर न जाने क्या २ धमकियाँ दीं! इसके बाद असह्य चेष्टा एवं मान हानि कर उन्हें छोड़ दिया! इन दण्डधारियों के लिये न कोई काम है न धन्दा; किन्तु फिर भी इनकी संख्या नित्य बढ़ाई जारही है! जनता के जीवन और उसके मालमत्ते की रक्षा तो ये करते ही नहीं, हां, उसे खुद लूट अवश्य लेते हैं, अथवा आंखों देखते हुए दूसरे को लूटने से मना भी नहीं करते। इतना ही होकर नहीं रह जाता, बल्कि किसी न किसी बहाने ये लोग गाँवों पर छापा मारते और शराब के अड्डों को लूट कर उसके नशे से उन्मत्त बन

गाँवों में आग

भी लगा देते हैं। यदि यह पुलिस आयर्लैण्ड में न होती तो वाटरफर्ड सरीखे अनेक गाँवों में पूर्ण शांति बनी रहती। किन्तु जब तक इन भूतों का वहां निवास है, जब तक किसी भी मकान के दरो-दीवार तक सुरक्षित नहीं रह सकते, और न बीमा कंपनी ही किसी मकान का बीमा उतारने की हिम्मत कर सकती है! किन्तु ये सब अत्याचार अकेले इन दण्डधारियों के ही हाथों होकर नहीं रह जाते वरन् फौजी सिपाही भी इनसे अधिक अत्याचार कर दिखाते हैं!

'फ़र्मॉय' नामक शहर का हाल सुनिये। यह शहर इंग्लैण्ड के प्रति अत्यन्त राजनिष्ठ बना रहने के साथ ही; महायुद्ध में रेडमंड की खड़ी कीहुई सेना का केन्द्र भी इसी नगर कायम हुआ था। किन्तु गत वर्ष में यह शहर दो बार लूटा गया। जब से० ल्यूकस को सिनफिनरों ने पकड़ कर कैद कर लिया, तब यहां दूसरी बार लूट हुई थी। उस दिन संध्या समय इन लुटेरों की टोली ने नगर में प्रवेश कर घरों की खिड़कियाँ और किवाँड़ आदि तोड़ फोड़ डाले; और फिर रात में सिपाहियों के समूह ने आकर यथेच्छ लूटपाट की। यहां तक कि उसे "जलाकर खाक करने" का भी उन्होंने निश्चय कर लिया, किन्तु काफी पेट्रोल न मिलने से गांव बच गया। जो सिपाही केवल रात को छावनी से बाहर जासकते हैं, और रातभर जो यथेष्ट लूटपाट कर सकते हैं, उन पर या तो अधिकारियों की कड़ी नज़र ही न रक्खी जाती होगी, अथवा वे खुद भी इस

लूटपाट से सहमत

हो सकते हैं। इसी तरह 'मलो' नामक गाँव का हाल भी है। यह गाँव फ़र्मॉय की छावनी से २० मील की दूरी पर है। यहां भी फौजी पुलिस की एक छोटी सी छावनी थी। एक दिन रात को अचानक ही तीन मोटरें वहां आधमकीं। वे मोटरें किसकी थीं, कहां से आई थीं और उनमें कौन २ थे, इन बातों का पता आज तक नहीं लगा! जब मोटर गाड़ियाँ वहां आईं, तब छावनी में केवल तीन ही सिपाही मौजूद थे। शेष सब कहां गये थे और क्यों गये थे, इसका पता नहीं। मोटर वालों ने उन तीन सिपाहियों पर हमला किया। उन में से एक गोली खाकर मर गया, और मोटर वाले पुलिस थाने में के सब शस्त्रास्त्र को लेकर चम्पत हो गये। वे कौन थे, इसका निर्णय आज तक नहीं हो सका। गाँव वालों को इस छापे का पता तक न था। किन्तु ज्यों ही छापे की बात वहां सुनी गई कि, सनूचाम लोग इस भय से कि—अब फौजी सिपाहियों की टोलियाँ यहां डाका डालने आवेंगी—गाँव छोड़ २ कर भाग चले, और श्याम तक गाँव में चौपाई बच्चे भी शेष न रहे। रात होते ही फ़र्मॉय के फौजी सिपाही मोटर में सवार कर मलो पर चढ़ आये; और उन्होंने इस गाँव को यथेच्छ

लूट कर जला दिया!

अब यहां किसी भी मकान के द्वार या खिड़की आदि साबित नहीं रह पाये हैं, और दुरुस्त करने पर सिपाही लोग फिर उन्हें नष्ट कर देते हैं। गांव वालों को सरे बाज़ार धमकी देने के लिये पिस्तौल दिखाना अथवा घर या दूकान पर निशाने मारना और जनता को पैरों तले रौंदना इन सिपाहियों के लिये नित्य का खेल हो गया है! फर्माय और मेलो की ही तरह बालब्रिगन की भी दशा है! अन्तर केवल यही है कि, यदि ये दो गाँव फौजी लोगों ने लूटे हैं तो तीसरा सोंटेधारियों ने। इस प्रकार अब तक (ता० १ अक्टूबर तक) फर्माय, मेलो, बालब्रिगन, कौंन्स टाउन, लिस्मोर, गाल्वे, टुआम, और अथलोन ये

आठ बड़े २ गाँव जला दिये

कराया जाय, इसके लिये कोई नियम ही नहीं रहा है। छावनी से रातबिरात सिपाही लोग मोटर द्वारा निकल पड़ते हैं! और वे गोली बारूद, मोटर-गाड़ियाँ एवं पेट्रोल का स्वेच्छापूर्वक उपयोग भी कर सकते हैं! इसी पर से स्पष्ट प्रकट है कि, उनमें अवश्य ही फौजी अधिकारी भी मिले हुए हैं। पार्लमेन्ट में सर हैंमर ग्रीनवुड कहते हैं कि, सर्कार इन अत्याचारों की ओर दुर्लक्ष्य नहीं करती, बरन् इनकी पूरी २ जांच भी करा रही है। किन्तु मॅकरेडी कहते हैं कि, मुझे यह बदला चुकाने का कार्य पसंद नहीं है! और यही बहादुर फिर यह भी बड़ाई मारते हैं कि, पूरा २ अधिकार मिल जाने पर मैं तीन ही सप्ताह में सर्वत्र शांति स्थापित कर दूंगा। तब क्या ये जंग बहादुर प्रत्येक गाँवों को जलाकर इसी प्रकार की

स्मशान-शांति

स्थापित करने की इच्छा रखते हैं? किन्तु इस आग लगाने का उद्देश्य भी तो कुछ होना चाहिये! मेलो से हथियार उड़ा लेजाने वालों का पता भी नहीं लगने पाता, और वे कोई भी हों, तथापि गाँव को जला कर खाक कर देने से छापा मारने वालों को लाभ क्या हुआ? कुछ भी नहीं। बिचारे गाँव वाले ही सर्वस्व से हाथ धो बैठे। कई गाँव वालों को तो यह सन्देह हो रहा है कि, सोंटेधारी पुलिस में ही कुछ बदमाश आदमी अपने को लुटेरों के नाते पकड़वाने के आशय से प्रथमतः खुद ही छापा मारते हैं, और फिर उसके प्रायश्चित् स्वरूप यथेच्छ लूट-पाट करते हैं। कुछ पुलिस अधिकारियों का खून करने का दोष इन्हीं सोंटेधारियों पर सिद्ध होता चला है, और कारण यह मालूम हुआ है कि, वे लोग इन्हें व्यवस्थापूर्वक चलन के लिये बाध्य करते थे। किन्तु प्रश्न यह उपस्थित होता है कि, ये घटनाएँ कब तक होती रहेंगी! यथार्थ में ही यदि देखा जाय तो ये दुर्घटनाएँ इसमे पूर्व ही बंद हो जानी चाहिये थीं; किन्तु जब सर्कार ही उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं देती, तब अवश्य उसका भी इसमें कोई गुप्त हेतु होना चाहिये। इस प्रकार कुछ चाणाक्ष लोगों का तर्क है। एक आयरिश चाणाक्ष ने तो यहां तक कह दिया है कि, "ब्रिटिश सर्कार आयर्लैंड से इस सेना को इसीलिये हटाना नहीं चाहती कि, जब इंग्लैण्ड में मजदूर संघ के दंगे होंगे; उस समय उसे यह सेना तैयार मिलेगी! इंग्लैण्ड में यह सेना मज़दूर-दल के सामने रखी नहीं जासकती। इसी प्रकार यहां रखने से खर्च भी विशेष बढ़ जायगा। आयर्लैंड में रखने से कम खर्च के साथ ही मजदूर दल की दृष्टि भी इस पर नहीं पड़ सकती! इसी तरह यहां उसे लूट-पाट एवं नगर जलाने और छापा मारने आदि कामों की तालीम भी अच्छी तरह मिल सकती है। इसीलिये ब्रिटिश सर्कार ने यह सेना और सशस्त्र पुलिस यहां जमा कर रक्खी है।" यह कल्पना बिलकुल ही ठीक नहीं कही जासकती। आयर्लैण्ड में [illegible] अत्याचारों से भी भयंकर दुर्घटनाएँ होती रहने पर भी सर्कार [illegible] बन्द करना नहीं चाहती, बरन् इसके विरुद्ध 'जब तक सर्कारी [illegible] के खून होते रहेंगे, तब तक ये अत्याचार भी प्रचलित रहेंगे।' इस प्रकार अब तक यह [illegible] और उत्तेजन दे रही है, तब तक उसके उद्देश्य के सम्बन्ध में कोई किसी भी प्रकार का अनुमान बांधा करे, किन्तु इससे उसमें किसी प्रकार की [illegible] नहीं आसकती। ब्रिटिश राजकर्ताओं के इसमें [illegible] एवं [illegible] हो जाने का भी [illegible] है, किन्तु [illegible] के साथ [illegible] स्वराज्य [illegible] और [illegible] के लिये युद्ध करने वाले [illegible], अमेरिका [illegible] आयर्लैंड में प्रचलित इन [illegible] के लिये [illegible] विशेष [illegible] है। [illegible] है।

मध्यभारत का एक दर्शनीय स्थान—गांगा

राजा भोज की राजधानी धारा नगरी मध्यभारत का [illegible] ऐतिहासिक नगर है। इसके आसपास अनेक ऐसे दर्शनीय [illegible] कि, जिनके देखने से हमें प्राचीन भारत की झलक और [illegible] के पुरुषार्थ का खासा परिचय मिल सकता है। इसी प्रकार प्रकृति [illegible] और वैज्ञानिक लोग भी वहां पहुँचकर विविध प्रकार से ला[illegible] सकते हैं। आज हम आप लोगों की सेवा में ऐसेही एक दर्श[illegible] स्थान का चित्र एवं परिचय अर्पण किया चाहते हैं।

यह स्थान धार (मालवा) से पश्चिमोत्तर लगभग ७ मील के [illegible] पर है। यहां न कोई गाँव बसा हुआ है; और न शहर ही। केवल महादेवजी का एक मंदिर है। मंदिर से लगभग मील भर के [illegible] पर चार पांच झोंपड़ियों का एक ग्राम भीलवस्ती है। महादेवजी [illegible] मन्दिर बहुत पुराना है। मन्दिर में कोई रह नहीं सकता, क्योंकि [illegible] स्थान बड़ा ही भयानक है। इसकी बनावट प्राकृतिक है। यहां [illegible] भग ७५-८० गज़ गहरी एक खाई है, जिसके आसपास सघन [illegible] है। पहाड़ी पर से एक छोटासा नाला बहता हुआ आकर [illegible] में गिरता है। इस झरने का दृश्य बड़ा ही चित्ताकर्षक है। [illegible] नीचे गिरते समय इतना शोर करता है कि, कान पड़े आवाज़ भी [illegible] सुन पड़ती। गिरती हुई जल-धारा एवं पहाड़ी के बीच एक [illegible] बैल-गाड़ी के निकल जाने जितना अन्तर है। पहाड़ में (जो [illegible] के आसपास हैं) ऐसी बड़ी २ कंदराएँ हैं कि, जिनमें दिन के [illegible] भी सिंह व्याघ्रादि पड़े रहते हैं। इसी कारण एक दो मनुष्यों का [illegible] आसकना असम्भव नहीं पर कठिन अवश्य है। प्राचीन मंदिर के [illegible] कुछ २ दिखाई पड़ते हैं, यहीं कभी २ कोई साधु महात्मा आकर [illegible] जाते हैं। किन्तु ऐसे महात्मा विरले ही होते हैं, जो यहां [illegible] महाने टिक सके हों। हां, एक साधु (गोलोकवासी श्री० परमहंस [illegible] डानंदजी) अलबत्ता यहां दो ढाई वर्ष रह चुके हैं। उन्हीं महात्मा [illegible] कृपा से यहां के भवन, मंदिर आदि पक्के बन गये हैं। महात्मा [illegible] कई अच्छी २ कंदराएँ भी पक्की करादी हैं। सघन झाड़ी के [illegible] यहां सूर्यदेव के दर्शन भी नहीं हो पाते! हां, पिछले पहर उनकी [illegible] मात्र दिखजाती है। पहाड़ी में अनेक प्रकार के चमकीले [illegible] उज्वल, सफेद, लाल, हरे आदि रंगों के पत्थर भी पाये जाते हैं। [illegible] की चमक हीरे के समान दीख पड़ती है। अनेक विद्वान लोग [illegible] से अच्छे २ पत्थर ले जाकर उन्हें कांट छांट करवाने के बाद [illegible] तरीके पर अंगूठी आदि में लगवाते हैं। इतिहास लेखकों के लिये [illegible] यह स्थान बड़े काम का हो सकता है। यदि कोई वैज्ञानिक [illegible] तो इस झरने से विद्युत्शक्ति उत्पन्न कर देश को यह बड़ा लाभ [illegible] सकता है। दूर २ के लोग इस स्थान को देखने आया करते हैं। [illegible] स्थान ग्वालियर राज्य की सीमा में है। यदि श्रीमान ग्वालियर [illegible] इस ओर ध्यान देने की कृपा करें, तो अवश्य ही यह स्थान [illegible] धारण के लिये विशेष लाभकारक हो सकता है। लगभग [illegible] मील के घेरे में तो ऐसा कोई स्थान देखने में नहीं आता। [illegible] मकान की जो दीवारें हैं; वे ईंट या पत्थर से बनी हुई नहीं [illegible] पहाड़ को ही काट २ कर बनाई गई हैं, इसी से हम उन [illegible] मकान आदि का फोटो नहीं दे सके। यात्रियों के लिये [illegible] का एक [illegible] और [illegible] कुण्ड भी बना हुआ है, [illegible] असामान्य अवश्य है। पहाड़ी जल की स्वच्छता के [illegible] कुछ कहने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। [illegible] यह है कि, जो लोग मध्यभारत में कभी आवें, वे [illegible] स्थान को एकबार देखें। यहां जाने के लिये आर. एम. आर [illegible] के मह स्टेशन पर उतर कर ३३ मील मोटर से धार [illegible] वहां से फिर सब प्रबंध आसानी के साथ हो सकता है।

[illegible] शर्मा, [illegible]

ज्ञातिसंघ।

(लेखक—श्री० महादेव राजाराम बोड्स बी. ए., एल-एल. बी. बंबई)

[महाराष्ट्रीय हिन्दू धर्मपरिषद् (नाशिक) में पढ़ा हुआ निबंध]

हिंदू समाजान्तर्गत् असंख्य जाति, उपजाति एवं उनकी स्पर्धा को घटाकर; भारतीयों के राष्ट्रीय ऐक्य को बढ़ाने और पुष्ट बनाने वाले समस्त उपायों की योजना करने का समय अब बिलकुलही निकट आगया है। संसार के सुसंस्कृत एवं अग्रसर राष्ट्रों के समूह में भारत को प्रमुख स्थान प्राप्त करना है। अतः तदनुकूल सामाजिक स्थिति निर्माण हुए बिना हमारा काम नहीं चल सकता। जब तक स्वदेश में ही समस्त लौकिक व्यवहार चल सकता था, तब तक लोगों को समाजान्तर्गत् जातियों के झगड़े महत्व पूर्ण प्रतीत होते थे; किन्तु इस समय भारत को परद्वीपस्थ एवं विधर्मी लोगों से सामना करना है, और इन दिनों ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य शूद्र का भेदभाव मिटना जाकर सभी लोग एक ही विदेशी स्टीम रूलर से समान रूप में पिसे जारहे हैं। जिस प्रकार चक्की के मुँह में डाले हुए सभी अनाजों का एकसाँ आटा हो जाता है, उसी प्रकार आज हिन्दू समाज की अवस्था हो रही है। इसी एक बात को अपने दृष्टिपथ में रखकर भारत के नये पुराने, शिक्षिताशिक्षित, ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर, धार्मिक और सुधारक, तथा प्रागतिक और पुराणप्रिय आदि सभी दल के लोगों को आगे बढ़ना चाहिये। धार्मिक सामाजिक अथवा जाति विषयक बातों में विशेष मतभेद हो सकता है। किन्तु यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि, उन सबका ध्येय अवश्य ही एक होना चाहिये, और वह दूसरा कुछ न होकर एक मात्र हिन्दू समाज की उन्नति एवं भारत की स्वतन्त्रता ही हो सकता है। ध्येय के विषय में एकमत हो जाने से अन्य वाद विषयक प्रश्नों का निर्णय करने की एक सर्व संमत कसौटी ही हमें हस्तगत हो जाती है, जो कि वाद क्षेत्र को सहजही में संकुचित बना सकती है। अतः हमारा कर्तव्य होगा कि, धार्मिक एवं सामाजिक तूफान में पड़ी हुई हिन्दू समाज की नौका को पार लगाने के लिये सम्मिलित प्रयत्न आरंभ करें। इस प्रकार के राष्ट्रीय ध्येय को निश्चित करने का यदि इस धर्म-परिषद् ने प्रयत्न किया तो, यह विश्वासपूर्वक कहा जासकता है कि, जाति विषयक ही नहीं वरन् सामाजिक और धार्मिक वादग्रस्त प्रश्नों का निर्णय भी शीघ्रतापूर्वक हो सकेगा।

राष्ट्र के शैशव काल में व्यक्ति के व्यवहार और उसकी आवश्यकतायें संकुचित रहने के कारण उसके जीवन की इति कर्तव्यता भी स्वपर्याप्त ही होती है। किन्तु ज्यों २ राष्ट्र की प्रगति होती जाती है, और व्यक्तियों के छोटे बड़े समूह एकत्र होकर संगठित समाज का रूप धारण करने लगते हैं तथा इस प्रकार के भिन्न २ समूहों की स्पर्धा बढ़ती जाकर राष्ट्रों का निर्माण होने लगता है, त्यों २ उस राष्ट्र के व्यक्ति की कर्तव्य मर्यादा भी बढ़ती जाती है। और केवल आत्मोन्नति से राष्ट्रोन्नति का महत्व ही विशेष प्रतीत होने लगता है। उस समय देश के प्रत्येक व्यक्ति के लिये राष्ट्रोन्नति का पोषक आचरण ही मुख्य ध्येय बन जाता है। भगवान मनु ने कालानुरूप धर्म के बदलते जाने का तत्व मनुस्मृति में अंकित किया है—

> अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
> अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ (म० १-८५)

इसके बाद मनु भगवान ने कृतयुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान को धर्म का प्रधान स्वरूप बतलाया है। अर्थात् राष्ट्र के लिये बाल्यावस्था में तप अथवा शारीरिक, युवावस्था में बुद्धि-संस्कार, तृतीयावस्था में यज्ञद्वारा देवार्चन और चतुर्थावस्था में (कलियुग में) परोपकार ही मुख्य धर्म बतलाया गया है। पहले की अपेक्षा बाद का धर्म आचरण के लिये विशेष सरल, किन्तु स्वरूप में व्यापक है—यह स्पष्ट ही प्रकट हो रहा है। युगान्तर के कारण लोगों का ह्रास होता है या उत्कर्ष? इस वादग्रस्त प्रश्न को यदि क्षणभर के लिये एक ओर रख दिया जाय तो भी व्यक्तिविषयक धर्म अथवा ध्येय युगान्तर के कारण विशेष व्यापक और लोकसंग्राहक ही होते जाते हैं। इस सिद्धान्त को मनु ने भी ग्रहण किया है। अर्थात् हमें भी अब प्राचीन ग्रंथोक्त धार्मिक कल्पनाओं को छोड़कर वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप उच्च धर्म को ध्येय के रूप में स्वीकार करना चाहिये। केवल आत्मोन्नति या मोक्ष प्राप्ति को साध्य करने वाली धर्माज्ञायें प्राचीन काल में कितनी ही श्रेयस्कर क्यों न रही हों, किन्तु आज वे हमारे लिये अपर्याप्त ही हैं; अतः वर्तमान काल में आवश्यक प्रतीत होने वाली राष्ट्रीय उन्नति के लिये उन्हें पोषक स्वरूप-प्रदान करना हमारा मुख्य कर्तव्य धर्म होगा। प्राचीन ऋषियों ने धर्म के रूप में यज्ञयागादि अनेक बाह्य आचार अवश्य बतलाये हैं, किन्तु "अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्" अर्थात् उन सबकी अपेक्षा आत्मस्वरूप का परिचय करा देने वाले चित्तवृत्ति निरोधरूपी योग को महर्षि याज्ञवल्क्य ने श्रेष्ठ धर्म कहा है। अतः व्यक्तिविषयक वासनाओं का विरोध करके समष्टि रूप राष्ट्रीय आत्मा के साथ एक रूप होना ही सच्चा योग और वर्तमानयुग का श्रेष्ठ धर्म कहा जा सकता है। इस धर्म का जानना विशेष कठिन कार्य नहीं। क्योंकि, आत्मज्ञान हो जाने पर इस उच्च धर्म का भी स्वयमेव ही ज्ञान हो सकता है। अतः जिनकी योग्यता यहां तक न पहुँच सकी हो, उन्हें समाज के चतुर व्यक्तियों से पूछकर उसे समझ लेना चाहिये।

> चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत्त्रैविद्यमेव वा।
> सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः ॥ (?)
>
> (याज्ञ० १-९)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने धर्मनिश्चय का जो राजमार्ग दिखला दिया है, तदनुसार ही इस परिषद् को—जो धर्मनिश्चय के निमित्त आज यहां एकत्रित हुई है—सांप्रत लोकस्थिति का निरीक्षण कर भविष्य की ओर दृष्टि रखते हुए धर्म का निश्चय करना चाहिये। समय २ पर धर्म का संशोधन हुए, बिना कालगति से सम्बद्ध हो जाने वाला मालिन्य दूर हो कर धर्म-जागृति नहीं हो सकती। प्राचीन ऋषि एवं आचार्यों द्वारा समय २ पर इस प्रकार का धर्म संशोधन होता रहने से ही हमारा सनातन धर्म आज तक जीवित रह सका है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्मत्त क्षत्रियों का गर्व परिहार करके भगवद्गीतोक्त अद्भुत कर्मयोग बतलाया, और अर्वाचीन काल में अनेक आचार्यों ने लोकबुद्धि को पुनः चलन देकर आत्मज्ञान का प्रसार किया। चैतन्य, तुकाराम अथवा कबीर आदि साधु सन्तों ने भक्ति के द्वारा लोगों के चित्त एकाग्र बनादिये, और अब तो पाश्चात्य ज्ञान के संस्कार से प्रत्येक विषय के मूलभूत सिद्धान्त की चर्चा करने की ओर ही शिक्षित समाज की प्रवृत्ति बढ़ती जारही है। ऐसी दशा में समस्त प्राचीन धर्म कल्पना, आचार-विचार, विधि-निषेध एवं प्रमाण प्रमेय की सांगोपांग मीमांसा करके उसके ग्राह्यांश को बचा कर अनुपयुक्त भाग निकाल देना अत्यावश्यक हो गया है। अर्वाचीन शिक्षा के द्वारा लोगों की तर्कशक्ति इतनी कुछ जागृत हो गई है कि, अन्ध श्रद्धा के लिये कहीं स्थान तक नहीं रहा। अतः जो बात मनुष्य की विचार शक्ति को ग्राह्य नहीं पटती, वह भविष्यत् में कभी टिक नहीं सकती। लोगों की सम्यक् प्रकारेण जागृत बन जाने वाली विचारशक्ति को प्रयत्न द्वारा वशीभूत किये बिना आगे के लिये हमारे सनातन धर्म का जीवित रह सकना असम्भव है। अतः जो लोग इस बात से निराश हो चुके हों कि, इस धर्म में ऐसा करने की शक्ति नहीं है उन्हें उसकी आशा भी न रखनी चाहिये। गत सौ वर्षों में हिन्दू-धर्म के विरुद्ध अनेक शत्रु उत्पन्न हुए। ईसाई मिशनरी, अंग्रेजी शिक्षा, विधर्मी राज्यकर्ताओं के कानून, नास्तिकतामतवाद से बाधित्य जाने वाले हमारे

अर्थलोलितों का पाखंड व और स्वाभाविक स्वेच्छाचार की प्रवृत्ति, इन सब बाह्य शत्रुओं ने सनातन धर्म की इमारत को बहुत कुछ शिथिलावस्था में पहुँचा दिया था, किन्तु अब उनकी शक्ति बिलकुल घट गई है। नई विद्या के ही साथ २ लोगों की धर्मवासना भी जागृत हो कर उसके द्वारा प्राचीन धर्म-कल्पनाओं का पुनरुज्जीवन होने लगा है। किन्तु लोगों की प्रबुद्ध-विचारशक्ति रूपी भट्टी में सनातन धर्म का निरुपयोगी भाग झोंक देना अब अनिवार्य हो गया है। अतः आज की तरह धर्मपरिषदों को आगे के लिये, किस प्रकार के प्रतिस्पर्धियों से सामना करना होगा, उसीका दिग्दर्शन कराने के आशय हमें इस भूमिका को निर्माण करना पड़ा है।

वस्तुतः सनातन धर्म के लिये इस युद्ध से भयभीत होने की कुछ भी आवश्यकता नहीं। क्योंकि गत चार हजार वर्षों में वह इस प्रकार के अनेक तूफानों का सामना कर चुका है, और प्रत्येक बार में उसका स्वरूप अधिकाधिक शुद्ध एवं उदात्त होता गया है। विधर्मियों के आक्रमण, अन्तस्थ कलह और परकीय सत्ता के कारण गत हजार बारासौ वर्षों में हिन्दू धर्म बहुत कुछ दीनहीन बन गया है। किन्तु हर्ष का स्थान है कि, पाश्चात्य विद्या की जागृति से धर्म के मूलभूत तत्वों का लोगों को ज्ञान होकर सनातन धर्म को पुनः उज्वल स्वरूप प्राप्त होने के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं। जिस प्रकार नई विचार लहरों के योग से धर्मक्रांति होती है, उसी प्रकार उसका पुनरुज्जीवन भी होता है। नये और पुराने दोनों ही दल के हठी रहने की दशा में धर्मक्रांति हो कर सदैव के लिये देश में धार्मिक दलबन्दियाँ हो जाती हैं। किन्तु यदि दोनों ही दल विचारशील और दूरदर्शी हुए तो थोड़े से विवाद के पश्चात् भी कुछ न कुछ उभय-सम्मत नया मार्ग खुलकर धर्म का सनातनत्व और एक-रूप ही कायम रह सकता है। यूरोप में केथोलिक और प्रोटेस्टंट नामक दो ईसाई धर्मपंथों का अस्तित्व हुआ, और वे सदैव के लिये परस्पर शत्रु भी बन गये। किन्तु भारत में अनेकों बार धर्मक्रांति और धर्म-सुधारणा होती रहने पर भी सब पंथ और मतमतान्तरवाले अपने धर्म को वैदिक धर्म की शाखा ही समझते रहे हैं। इस भेद का कारण उभय स्थानों की जनता का भिन्न स्वभाव ही हो सकता है। परंपरागत रूढ़ि और मताभिमान का पचड़ा भारत में भी है। किन्तु हिन्दू लोग स्वभावतः सौम्य एवं परिस्थित्यनुरूप आचरण करने वाले होने से, समय २ पर उनके द्वारा रूढ़ि एवं धर्म मतों को चलन मिलने के प्रमाण इतिहास पर से स्पष्ट ज्ञात हो रहे हैं। देश, काल, आश्रम, जाति, वय, अधिकार, बुद्धि, शक्ति इत्यादि भेदों पर ध्यान देकर भिन्न २ धर्माज्ञाएँ प्रचलित करने वाला, हिन्दू-धर्म के सिवा संसार में अन्य कोई सा भी धर्म नहीं है। और इसी कारण उसके विरुद्ध तात्विक प्रतिस्पर्धी कितने ही उत्पन्न हुए, तथापि अन्त को वे सब उसी में विलीन हो गये। अन्ततः हमें अपने सनातन धर्म की यह विशिष्टता सदैव के स्थायी बना देने का ही प्रबल प्रयत्न करते रहना चाहिये। यही विशिष्टता उसका मुख्य गुण हो सकती है। धर्म मनुष्य के निःश्रेयसार्थ है, नकि मनुष्य धर्म के लिये उत्पन्न किये गये हैं। इसीसे लोक-बुद्धि के अनुसार उसके धर्म की प्रगमनशीलता का तत्व हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों की तरह किसी भी धर्म संस्थापक के ध्यान में नहीं आ सका है। मोजेस की दस आज्ञाएँ और मुहम्मद की आदेश एक ही बार प्रसिद्ध हुए, किन्तु हमारी श्रुति-स्मृति कथित धर्माज्ञा देशकालानुसार सदैव बदलती रही हैं। इस्राइल की बायबल और पैगम्बर का कुरान ही दोनों के धर्मों के विशिष्ट ग्रन्थ हैं, और वह सम्पूर्ण धर्म केवल इन्हीं में समाया हुआ है। किन्तु हमारे वेद स्वयं अनन्त हैं, साथ ही उनकी शाखाएँ भी अनन्त होकर स्मृति, सदाचार एवं आत्मतुष्टि को भी हमारे यहाँ धर्म-साधन ही माना है। सनातन धर्म का प्रणेता एक ही व्यक्ति या कोई विवक्षित ग्रन्थ मात्र ही नहीं; वरन् वह श्रुति विहित है। किन्तु वे श्रुतियाँ धाता सृष्टि के अनुसार "धाता यथापूर्वमकल्पयत्" के नियमानुसार अनादि और अनन्त हैं। बायबल के द्वारा ईश्वर कथित होने से अनुयायी लोग उन्हें स्वतःप्रमाण मानते हैं, किन्तु वेद परमेश्वर के निःश्वसित रूप होने से उनका अर्थ प्रत्येक के लिये बुद्धिग्राह्य हुआ है। ईसाई और इस्लाम धर्म में व्यक्तिगत बुद्धि का कुछ भी मूल्य नहीं रक्खा गया है, जब कि हमारे सनातन धर्म में धार्मिक आज्ञाएँ प्रत्येक के लिये यथा-शक्ति और यथाबुद्धि पालन करने की आज्ञा दी गई है।

पुरुषार्थहीन अथवा प्रेरणाधर्म कभी चिरस्थायी नहीं हो सकता, और कालान्तर में लोकज्ञान की वृद्धि हो जाने से श्रद्धा घट जाती है और जब परिस्थिति बदल जाने से ज्यों ही किसी धर्म संस्थापक या ग्रन्थ का महत्व कम हुआ कि, तत्काल उस धर्म का ह्रास आरंभ हो जाता है। किन्तु वैदिक धर्म की नींव मनुष्यत्व की भावनाओं पर रक्खी गई है। "अहं ब्रह्मास्मि" और "तत्वमसि" उसके बीजमन्त्र हैं। धर्म का आचरण किसी आकाशस्थ भय से अथवा पैगम्बर की आज्ञा समझकर ही नहीं किया वरन् स्व-प्रयत्न के द्वारा आत्मस्वरूप के ज्ञान और संसार-बन्धन मुक्तिप्राप्ति के लिये ही उसका पालन करने विषयक सनातन त्रिकालाबाधित महातत्व है। "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" यह महासिद्धान्त सनातनधर्म के सिवा अन्य किसी भी धर्म में पाया जाता। इस पर जिनकी पूर्ण निष्ठा है, उन लोगों का विषयों में कितना ही मतभेद क्यों न हो, किन्तु वे आस्तिक धार्मिक ही माने जायँगे। अतः हमारे मतानुसार इस धर्म-परिषद का मुख्य कर्तव्य यही होसकता है कि, सनातन धर्म के त्रिकालाबाधित मूलभूत सिद्धान्त कौन २ से हैं, और परिस्थिति के अनुसार समय २ पर बदलने वाले अन्यान्य ऐच्छिक विषय क्या हैं, इनका स्पष्ट विभाग कर वह लोगों की धर्मबुद्धि को स्थिरता प्राप्त कराने के लिये यत्नशील बने। इस तरह नित्यानित्य विवेक के द्वारा धार्मिक विचारों की कसौटी निर्माण हो जाने से प्रस्तुत वादविवादों का अधिकांश निर्णय स्वयमेव ही हो सकता है। आद्य श्रीशंकराचार्य, मध्वाचार्य, रामानुजाचार्यादि धर्म-संस्थापकों के द्वारा यह कार्य अपने २ समय में होता रहने से ही भारत का धर्मदीपक अद्यावधि प्रज्वलित बना रह सका है। अतः वर्तमान पीठाधिकारियों को भी वह कार्य आगे के लिये चलाते रहना चाहिये।

जातिविषयक वादग्रस्त प्रश्न पर विचार करने से पूर्व उपरोक्त सामान्य मत निरूपण करने का उद्देश्य केवल यही है कि, हमारी आलोचना की मर्यादा और दिशा लोगों को प्रारंभ से ही ज्ञात हो कर अकारण ही वितंडावाद न मचने पावे। जातिविषयक आचार सामयिक और अधिकतर रूढ़ि मूलक ही हैं। अर्थात वे श्रुति-स्मृति प्रयुक्त और सदाचार सम्मत हैं या नहीं? एवं आत्म-प्रत्यय होने के लिये उनकी योग्यता कहाँ तक की है! इन बातों का निर्णय तर्कशक्ति एवं सदसद्विवेक-बुद्धि के द्वारा करने का प्रत्येक मनुष्य को पूर्ण अधिकार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का भेद केवल व्यवहार भर का है, मोक्षमार्ग में उसके गतार्थ ही नहीं वरन् त्याज्य होने का भी शास्त्रकारों स्पष्टतयः प्रतिपादन किया है।

> यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।
> आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान्॥
> (मनु० १२-९२)

इस मनु वाक्यानुसार जातिविशिष्ट आचारकर्मों का व्यावहारिक दशा से ही सम्बन्ध रहने के कारण आत्यन्तिक मोक्षपथ से गमन करने वाले को उन्हें बिलकुलही त्याग देना चाहिये। सर्वभूतान्तरात्मा परमेश्वर ब्राह्मण से शूद्र तक सबके हृदयों में समान रूप से ही निवास करता है। ज्ञानदेव और तुकाराम को समानरूप से ही साक्षात्कार हुआ। गणिका और गजेन्द्र ईश्वर को समान ही प्रिय थे। हमारे धर्म में यह सिद्धान्त प्रमाणभूत माना गया है कि, ईश्वर दृष्टि में सभी जातियाँ समान योग्यता की होने के साथ ही वे भले ही जन्मसिद्ध हों या गुण कर्म द्वारा प्रादुर्भूत,—किन्तु मनुष्य की धार्मिक उन्नति में उनसे कुछ भी रुकावट नहीं पड़ सकती। "स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः" यह भगवद् वाक्य सभी जाति के लोगों के लिये समान रूप से ही लागू है। भूमण्डल के अन्य राष्ट्रों की ही भांति भारत में भी पहले उच्चनीच का भाव फैला हुआ था, किन्तु अब व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं समता की जड़ जमती जाने के कारण आगे के लिये जाति या व्यक्तिगत उच्चनीच भाव बना रहना असह्य हो गया है। मनुष्य स्वभाव में ही वर्णव्यवस्था का मूलबीज गर्भित रहने के कारण समाज में किसी न किसी प्रकार का भेद अवश्य होता है। किन्तु वे भेद या वर्ग लोगों के नैसर्गिक गुणानुसार होने चाहियें, या आगंतुक सांपत्तिक स्थिति के अनुरूप उनका निर्माण होना उचित होगा? यह प्रश्न कदाचित् वादग्रस्त भी हो, किन्तु यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि, समस्त सुव्यवस्थित समाजों में छोटे बड़े वर्ग, श्रेणि, जातियाँ अथवा संघ हमेशा रहते ही हैं, और उन्हीं के कारण उस समाज के अन्तर्गत् व्यवहार सुगमतापूर्वक चलते रहते हैं।—परन्तु जब एक जाति बुद्धि या सम्पत्ति अथवा शरीर-सामर्थ्य के द्वारा दूसरी जाति पर अपना स्थायी प्रभाव डालती है, अथवा उस पर निरन्तर अपनी सत्ता जमाना चाहती है, तब अवश्य ही इनमें स्पर्धा उत्पन्न

हो कर खुल्लमखुल्ला झगड़े के रूप में भी उसका पर्यवसान होने की संभावना रहती है। ज्यू और जेंटाइल, रोमन, ग्रीशियन, इंग्लैण्ड के अमीर-उमराव और मध्यमवर्ग तथा भारत के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों में भयंकर युद्ध होने की साक्षी इतिहास देता है। किन्तु भारत की विशेषता उसमें यही है कि, यहां पहले से ही प्रथम श्रेणि वाले को बुद्धि, दूसरे के हाथ सत्ता तीसरे को सम्पत्ति और चौथे को मनुष्यबल का विभाग सौंपदिया जाने के कारण, कोई सी भी जाति एक दूसरी की अपेक्षा विशेष बलवान या सतत श्रेष्ठ नहीं बन सकी है। इसी विशेषता के कारण भारत में जातिविषयक बखेड़े उत्पन्न होने पर भी उनको विशेष भयंकर स्वरूप प्राप्त नहीं होने पाता। और इसी से वर्णव्यवस्था की नींव जो कि—अति प्राचीन काल से लोगों से सम्बद्ध हो चुकी है—डावां डोल नहीं होने पाती। फिर भी आगन्तुक कारणों से कभी २ जातिविषयक स्पर्धा बढ़ती हुई अवश्य दिखाई पड़ती है। पेशवाओं के समय महाराष्ट्र का राज्याधिकार चित्पावन ब्राह्मणों के हाथ में रहने से उसके लिये अन्य जातियों में इस प्रकार की स्पर्धा उत्पन्न हुई थी। इसी प्रकार अंग्रेजी राज्यकाल में, ईसाई मिशनरियों के उपदेश, अंग्रेज अधिकारियों के उत्तेजन और अंग्रेजी भाषा सीखकर अल्पस्वल्प अधिकार मद के कारण लोगों से शुष्क व्यवहार रखने वाले कुछ ब्राह्मण अधिकारियों का आचरण, आदि बातें भी महाद्वेष जागृत करने के लिये कारणीभूत हुई हैं, किन्तु अब उनका [ज़ो]र धीरे २ कम होता जारहा है। ज्यों २ लोगों को अपने कर्त्तव्य का [ज्ञा]न होता जायगा, त्यों २ ये चित्तक्षोभ के बाह्य कारण भी निर्बल [ब]नते जायँगे; और लोगों को विश्वास हो जायगा कि, परस्पर जाति-[द्वे]ष फैलाना निरी मूर्खता का कार्य है, और इससे लाभ के बदले हानि [ही] अधिक होती है। लोगों में राष्ट्रीय भाव बढ़ाना ही देश के लिये [ज]ात्युपजाति के क्षुद्र बखेड़ों को मिटाने का उत्तम साधन है। समुद्र [में] आकर मिलने वाली सहस्रों नदियों की तरह एकराष्ट्रीयता का [उ]च्च भावना में समाज के सभी छोटे बड़े भेद लुप्त हो जायँगे। और [ल]ोकमान्य के उच्च ध्येय के सम्मुख स्व, स्वकीय, स्वजाति प्रभृति क्षुद्र-[त]म ध्येय निस्तेज बन जायँगे। भिन्न २ जातियों का वादविवाद एवं [उ]सके अनिष्ट परिणाम को दूर करने का यही एक मात्र रामबाण उपाय [है]। और उसे उपयोग में लाने के लिये राजकीय धुरीणों की ओर से [य]त्न प्रयत्न किया जारहा है। परन्तु केवल राजकीय प्रयत्नों से ही यह [क]ार्य पूरा नहीं हो सकता। जाति-भेद के समान धार्मिक एवं सामा-[जि]क विवाद को बन्द करने के लिये भी समग्र हिन्दू समाज को प्रिय [प्र]तीत होने वाला उदात्त धार्मिक ध्येय ही प्रकट दिखाई पड़ना [च]ाहिये, और इस प्रकार के उदात्त ध्येय को दृष्टिपथ में ला खड़ा [क]रने वाले महात्मा का अवतार होना चाहिये। जब २ धर्म-ग्लानि [औ]र अधर्म का प्रादुर्भाव होने लगता है, तब २, परमेश्वर महात्माओं [के] द्वारा उदात्त धर्म का पुनरुज्जीवन करता है। बिगड़े हुए अन्न में [की]ड़े पड़ना या उफनना या सड़ो होना ही जिस प्रकार मर जाते हैं, [उ]सी प्रकार आन्तरिक के समान क्षुद्र मनोविकार उदात्त धर्म की शांति [से] नष्ट हो जाते हैं। धर्मसंस्थापना का जो कार्य प्राचीन काल में ऋषि [म]हात्मा कर सकते थे, वही अब संघशक्ति पर अवलम्बित रहने वाले [क]लि काल में धर्म-परिषदों को कर दिखाना चाहिये। एक व्यक्ति के [प्र]खरबुद्धि सामर्थ्य से जो साधन वाला कार्य अनेक मनुष्यों के बुद्धि समुच्चय से भी हो सकता है। धर्म के सामान्य मूलभूत तत्व और अन्य विषयों का पृथक्करण करके सामान्य सिद्धान्तों के विषय में लोगों के मत का निर्णय करना ही जिस प्रकार धर्मपरिषद् के मुख्य कार्य के अंग हम ऊपर बतला चुके हैं, उसी प्रकार उन सामान्य सिद्धान्तों को सर्व-साधारण धार्मिक-ध्येय का स्वरूप प्रदान कर [illegible] भावना को बढ़ाना भी धर्मपरिषद् का एक प्रधान कर्तव्य हो सकता है। जिसके ही रोग जो प्रत्यक्ष औषधोपचार से नष्ट नहीं होते, वे उत्तम शरीर पोषण से ही जिस प्रकार निर्मूल हो जाते हैं उसी प्रकार [illegible] के समान [illegible] उपायों से ही दूर करने चाहिये। [illegible] विचार में ही शामिल होता है, और वे [illegible] होने के कारण [illegible] होते हैं। [illegible] बखेड़ों से [illegible] नहीं होता। [illegible] यह [illegible] किन्तु [illegible] एक [illegible] होता।

कई बार जातिविषयक बखेड़ों के सच्चे कारण बिलकुलही भिन्न हुआ करते हैं, और उनका निराकरण किये बिना प्रत्यक्ष उपायों से भी विरोध मिटा सकना अशक्य हो जाता है। आधुनिक कोल्हापुर वाला वेदोक्त प्रकरण इसके लिये खासा उदाहरण है। यदि छत्रपति को तंजौर के मुक़द्दमे द्वारा-क्षत्रिय सिद्ध हुए बिना बड़ी जायदाद न पा सकने की चेतावनी न मिली होती, तो उन्हें क्षात्रेय कहलाने के लिये जगद्-गुरु और कोल्हापुर के ब्राह्मणों पर कदाचित् सख्ती भी न करनी पड़ती। इसी प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मणेतरों का विवाद बढ़ाने में भी कई उपद्व्यापी लोगों का उदरनिर्वाह होता है, और कइयों को लोक-प्रसिद्धी प्राप्त हो जाती है। ब्राह्मणेतरों की ओर से कई अयोग्य पुरुषों के लिये कौंसिल में जाना सुगम हो गया है, और अन्य कई लोगों ने महद्वेषी अधिकारियों को खुश करके नौकरी और पदवियाँ भी प्राप्त करली हैं। इस प्रकार के जाति विषयक बखेड़ों को निर्मूल करने के लिये उनके आदि कारणों को दूर करना ही एक सुगम उपाय है। अर्थात् इस परिषद सरीखे स्थानों में इसके लिये किसी भी प्रकार का सामान्य नियम निश्चित कर देना अशक्य है। अधिकतर जाति विषयक बखेड़े अज्ञान के कारण ही उत्पन्न होते हैं, अथवा यों कहा जासकता है कि, वे स्वार्थ भाव के कारण ही अस्तित्व में आते हैं। इनमें से प्रथम प्रकार के बखेड़ों को मिटाने के लिये, लोगों को उदात्त धर्म का ज्ञान करा देने का उपाय हम ऊपर बतला चुके हैं। स्वार्थ विष-[illegible] चाहिये, और अज्ञान के [illegible] को अच्छी तरह [illegible] हैं, उनके कारणों को दूर करना चाहिये, और अन्य जो कठिनाइयाँ उपस्थित हों, उनसे भी मुक्त होने का उपाय सोचना चाहिये। सारांश, प्रत्येक प्रकार के यत्नों द्वारा हिन्दू समाज में एकता की वृद्धि करने और उसके लिये शक्ति-भर कष्ट उठाने एवं स्वार्थत्याग करने को तैयार हो जाने वाले पुरुष जब प्रत्येक जाति के सामने आयेंगे, तब इस प्रकार के आन्तरिक झगड़े सहज ही में मिट सकेंगे। उभय पक्षों में इच्छा उत्पन्न हो जाने पर ये झगड़े तत्क्षण मिट सकते हैं किन्तु इस प्रकार की इच्छा उत्पन्न करने के लिये निरे उपदेशों की अपेक्षा उभय पक्षों को एक दूसरे की आवश्यकताओं का भान कराना ही एक सरल उपाय हो सकता है। हिन्दू मुसलमानों के प्रश्न से हमें यह शिक्षा ग्रहण करना है। अब तक हिन्दू निर्बल थे, और मुसलमानों को अंग्रेज़ अधिकारी बढ़ावा करते थे, तब तक छोटे २ कारणों से ही बारंबार हिन्दू मुसलमानों के झगड़े उठ खड़े होते थे। किन्तु अब यूरोपीय युद्ध में टर्की की हार हो कर भारत के मुसलमानों का बाहरी संरक्षक न रहने पाया, और स्वदेश में ही परस्पर एकता रखे बिना पूर्ण स्वराज न पा सकने की बात पर अब हिन्दू मुसलमानों को विश्वास हो गया, तब उभय समाजों में तत्काल ही मेल भी हो गया। राष्ट्रीय सभा और मुस्लिमलीग एक जीव हो गईं, और [illegible] 'अल्ला' ही अकबर' की ध्वनियाँ भी परस्पर मिल गईं। अब भारत की विभिन्न जातियों की पारस्परिक सहायता की आवश्यकता प्रतीत होगी, तब उनमें यह भाव स्वयं ही पैदा होगा। आज हिन्दू समाज की अव्यवस्थित दशा हो जाने से उसमें प्रत्येक अवसर भी [illegible] विभिन्न मार्गों से गमन करता चल रहे हैं, [illegible] समाज की [illegible] बनाना आज हमारे धर्माधिकारियों और ज्ञान के ठेकेदारों का मुख्य कर्तव्य हो गया है। [illegible] समाज व्यवस्था को [illegible] वर्णव्यवस्था का [illegible] हुए ही समाज का [illegible] है। [illegible] सब से [illegible] हो [illegible] अनुसार समाज [illegible] चाहिये, [illegible] चाहिये। इस काम के लिये [illegible] होंगे और [illegible] रहेंगे। किन्तु इस [illegible] पूर्वक [illegible] कर [illegible] हो जायगा।

[illegible] हिन्दू [illegible] [illegible] [illegible]

सकना असंभव सा है। आज तो केवल यही कहा जासकेगा कि, प्रारंभ कहां से और किस प्रकार होना चाहिये? और इसी आशय से यह निबंध लिखा भी गया है। हिन्दू-समाज की वर्तमान अंधाधुन्दी मिटाकर उसे सुसंगठित एवं कार्यक्षम बनाने के उद्देश्य को दृष्टिपथ में रखते हुए ही हमें समाज मंदिर की मरम्मत करना है। भिन्न २ भागों की दुरुस्ती क्रमानुसार करनी होगी, और उसे सुसंगत बनाने के लिये एकमत हो कर कार्य को हाथ लगाना होगा। समाज के भिन्न २ घटकावयवों (जातियों) की रचना सुधार कर उन्हें परस्पर सहायकारी बनाना होगा। प्रत्येक जाति की रचना और व्यवस्था नियमबद्ध करके उसका उल्लंघन करने वालों के लिये शासन का निर्णय भी हमें कर देना पड़ेगा। प्रत्येक जाति का स्वतंत्र संघ बनाकर उसके अन्तर्बाह्य कारोबार को भावी *लोकशाही के तत्वानुसार सर्वसम्मति से* चला सकने की भी योजना कर देनी होगी। और तब उन सब का नियंत्रण करने वाले लोकनियुक्त मण्डल की स्थापना की जासकेगी। आज तक भिन्न २ स्थान के पीठाधिकारियों ने यह कार्य अपने २ शिष्य-समाज के लिये ही पर्याप्त हो सकने जितना किया है। तिस पर भी प्रथम तो इस कार्य के लिये योग्य मनुष्य ही नहीं मिलते; और जो मिलते हैं, उनमें सत्रह-दल और बीसियों प्रकार के भेदभाव भरे रहते हैं। कोई जगद्गुरु है तो कोई प्रतिवादि भयंकर और कोई केवल १०८ या १००८ श्री कहलाने में ही अपनी महत्ता मान बैठा है। पादपूजा, हाथी घोड़े और ज़मीन जायदाद पर उन्होंने धर्म-संरक्षणार्थ ही ट्रस्टी के नाते अपना अधिकार जमाया है! साथ ही कभी २ उनकी ओर से सार्वजनिक कर्तव्य से भार से झुके रहने की भावना भी प्रदर्शित की जाती है। यदि संकेश्वर मठ का मुकद्दमा अदालत में पेश है, तो शारदामठ की भी तीन पीढ़ियाँ अदालत का द्वारा खट्खटा चुकी हैं, और श्रीनाथद्वारा वाले महाराज के लिये दिवानी फौजदारी निश्य का ही व्यवसाय बन गया है।

पीठाधिकारियों की ओर से अपनी मर्यादा छोड़ दी जाने के कारण लोकश्रद्धा घट गई; और अन्य कोई नियंता न रहने से धार्मिक अंदाधुंदी मच गई है। तात्पर्य, समाज के गुणज्ञ एवं अनुभवी पुरुषों को ही यह काम हाथ में लेना चाहिये। पीठाधिकारियों की ओर से भी इस काम में हमें यथोचित सहायता लेने की आवश्यकता है, और उसका लेना देना हम सबका मुख्य कर्तव्य है। किन्तु फिर भी हमें किसी की प्रतीक्षा न करते हुए कार्यारंभ कर देना चाहिये।

ज्ञातिसंघ का निर्माण करते समय हमें मुख्यतः दो प्रश्नों पर विचार करना होगा। उनमें प्रथम और विकट प्रश्न यह है कि, आजकल जो जाति और उपजातियों की अपार संख्या बढ़ी हुई है—उन्हें भिन्न २ जातियाँ मान कर ही अलग २ संघ निर्माण किये जायँ; या समान और समीप जातियों का एकीकरण कर दिया जाय? और वह कौन करे? क्योंकि दोनों ही प्रकार से आरंभ में झगड़े बढ़ने की संभावना है। इसी प्रकार प्रत्येक अन्तर्जाति को भिन्न मानने में भी कठिनाई पड़ेगी, और उसे दूसरी जाति में समावेश करने पर भी उतनी ही प्रबलता से विरोध होगा। मर्दुम शुमारी के समय इस पर विविध प्रकार के झगड़े मच जाते हैं, और सर्कारी सेन्सस कमिश्नर तक उन का ठीक २ निर्णय नहीं कर सकते। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र सभी अपने भेदभाव के कारण पारस्परिक प्रेम-भाव को नष्ट कर रहे हैं। इस पर कई लोगों का यह कहना है कि, ज्ञातिसंघ निर्माण करके इन झगड़ों के खटाटोप में पड़ने की अपेक्षा; यदि कालगति के अनुसार आज समग्र जाति और अन्तर्जातियाँ जो स्वयमेव मिटती जा रही हैं, उनकी गति को न रोकना भी क्या बुरा है? किन्तु यह कथन ऐसा है मानों, रोगी की पीड़ा बढ़ती जाने पर बिना इलाज किये ही उसे सुख से मरने दिया जाय! फलतः इस आपत्ति को टालने के लिये एक ही उपाय हो सकता है, और वह यह कि, आजकल विभिन्न नामों से जो जाति, उपजाति, अथवा अन्तर्जातियाँ प्रसिद्ध हैं, उनके उच्चनीच भाव को मन मे न लाते हुए, सबसे प्रथम भिन्न २ वर्गीकरण किये जायँ और हो सके तो मनुष्य-गणना भी की जाय। इस के बाद समीपवर्ती जातियों के पारस्परिक नाते या एकीकरण का निश्चय कर दिया जाय, और यह उन्हीं के विचार विनिमय एवं सर्व-सम्मति के अनुसार हो। इस तरह कुछ ही समय में जाति विषयक सकल बखेड़े मिट जायँगे। कोई सा भी झगड़ा दुर्लक्ष्य करने से शान्त नहीं हो जाता, वरन् उसने की अग्नि के समान भिन्नकर धुंधुआता रहता है। अतः गुण दोष और गुणागुणआचरण से प्रत्येक बात का साधक-बाधक (पूर्ण) विचार करने के बाद ही स्थायी करना समस्त दल और समाज की शांति के लिये हितावह ... इन झगड़ों को विधर्मी न्यायाध्यक्ष के सामने ले जाने की ... तक हो सके; उभयपक्षों की सम्मति से आपस के पंच ... द्वारा तुड़वाना ही एक उत्तम उपाय है। क्योंकि पंचों का निर्णय सर्वमान्य हो सकता है। जिन दो अन्तर्जातियों में झगड़ा हो, प्रथमतः अपने २ विशिष्टवर्ग के मत संकलित करने के बाद नेताओं को परस्पर संभाषण करना चाहिये। अन्यथा यदि मनुष्य डेढ़ ईंट की मसजिद बनाने लगा तो इससे झगड़ा बदले और भी बढ़ जाने की संभावना रहेगी।

इस अन्धा-धुन्दी को रोकने का उपाय केवल यही हो सकता है कि *जातियों के अस्थायी संघ निर्माण कर उनके पंच भी चुन* ... और वे पंच लोग उस जाति के अनुत्तरदायी पुरुषों का नियंत्रण ... लगें। प्रत्येक जाति में कुछ चतुर एवं (अपना) दायित्व समझने ... मनुष्य होते ही हैं। यदि उन्होंने एकत्र बैठकर शांत चित्त से ... प्रश्न का निर्णय किया तो हमारा विश्वास है कि; ... विषयक बखेड़े सहज ही में मिट जायँगे। किन्तु इसके ... जाति में से जवाबदार अगुए चुनकर उन्हें पंचायत के पूर्ण ... दिये जाने चाहिये। केवल महाराष्ट्र में ही इस प्रकार का ... नहीं है, अन्यथा गुजरात प्रांत की कई जातियों में तो इस ... पंच लोग बहुत दिनों से नियुक्त हैं। और उत्तर भारत की मुसलमान एवं कई हिन्दू जातियों में भी मुखिये अथवा सर्दार लोग चुन लिये जाते हैं। किन्तु यह प्राचीन प्रथा अंग्रेजी कानून के भय से आज लुप्त सी हो रही है। अतः उसका पुनरुद्धार करके उसे सर्वत्र प्रचलित करना इस समय एक आवश्यक कार्य हो गया है।

इस विषय में दूसरा एक विकट प्रश्न धर्मपंथों का है। एक ही जाति अथवा अन्तर्जाति में स्मार्त, वैष्णव, रामानुज, शाक्त आदि विविध मतानुयायी लोग रहने से आचार भेद बहुत बढ़ गया है, और कहीं २ तो वह तो द्वेष का रूप भी धारण कर चुका है। ... के देशस्थ-ब्राह्मणों मे यदि स्मार्त और वैष्णव का भेद है तो, गुजरात में स्मार्त और वाल्लभ की टक्कर हो रही है। इसी प्रकार मद्रास के अय्यर और आयंगार एवं सारस्वत प्रांत के स्मार्त-वैष्णवों का भी प्रश्न वादग्रस्त बन रहा है। इनके सिवा, स्वामी नारायण, शिवसमत, आर्य समाज, मानभाव, ब्रह्मसमाज और राधास्वामी आदि अन्य ... भी संख्या बहुत बढ़ी हुई है। तब क्या इन सबकी अलग २ ... मानी जायँ? इस प्रश्न पर हमें विचार करना होगा। प्रत्ये... गुरू अलग २ होने से आचार भेद के कारण विभिन्न संघों के ... में आने का भी संभव है। किन्तु यह कठिनाई अपरिहार्य ... ज्ञातिसंघ का कारोबार लोकनियुक्त पंचों के हाथ में रखने ... गुरुओं का विशेष महत्व नहीं रह जाता। वे केवल न्याया... धर्माध्यक्ष बनकर ही रह सकते हैं, किन्तु ज्ञाति-विषयक प्रत्यक्ष ... उनके हाथ में कभी नहीं रह सकती। पीठाधिकारी समस्त ... के सामान्य गुरु होने के कारण, उनके लिये किसी भी जाति की व्यवस्था में हाथ डालना उचित नहीं और इस प्रकार की योजना ... दी जाने पर ही उपरोक्त आपत्ति टल सकती है।

तीसरी बात हमें यह ध्यान में रखनी चाहिये कि, ज्ञातिसंघ निर्माण करते समय उपजाति एवं अन्तर्जातियों की संख्या जितनी कम हो सके-करदी जाय। किन्तु प्रत्यक्ष भेद की ओर जानबूझकर दुर्लक्ष्य करना जिस प्रकार उचित नहीं कहा जासकता; उसी ... व्यर्थ के काल्पनिक भेद बढ़ाना भी अनुचित है। इसके लिये एक ही नियम बना देने की अपेक्षा भिन्न २ स्थान के अनुसार अपनी तारतम्यबुद्धि का उपयोग करना ही उचित होगा। इसी ... कोई अन्तर्भेद अस्थायी रूप से मान लिया जाने पर भी, ... चलकर विशेष खोज करने के बाद यह काल्पनिक सिद्ध हो तो ... मिटा देना चाहिये। आजकल अन्तर्जातियों की जो संख्या बढ़ी है, उसे धीरे २ कम करने का यही एक सुगम उपाय है।

अन्त को इस ज्ञातिसंघ निर्माण-विषयक सूचना पर राष्ट्रीयता की ओर से जिस आक्षेप के किये जाने की संभावना है, उस पर भी ... विचार कर लेना अनुचित न होगा। वह यह कि, भारत का ... राष्ट्रीय एकता के लिये विघातक होने के कारण उसे निर्मूल ... के बदले, उसके भिन्न २ संघ बनाकर प्रचलित जातियों को ... करना राष्ट्रीय विचार से आवश्यक नहीं है, और इसी कारण ...

इस के अनेक व्यक्ति जातिनिर्बंध को त्याग देने के लिये तैयार हो जाते हैं। किन्तु यह आक्षेप भ्रामक है। संसार में आज तक जिन बड़े २ राष्ट्रों का निर्माण हुआ है, वे सब हजारों अनियंत्रित मनुष्यों के एकदम ही एकत्रित हो जाने से नहीं बन गये हैं। वरन् सबसे पहले समान आचार-विचार वाले मनुष्यों की छोटी २ जातियां निर्माण हुईं, और फिर वे सब मिलकर एक समूह का रूप पागईं। तदनन्तर उनके संघ बने और उस प्रकार के अनेक-संघों के एकीकरण से कालान्तर में राष्ट्र निर्माण हो गया। इंग्लैण्ड में पिक्ट, सेल्ट, स्काट, डेन्स, साक्सन, नॉर्मन, ट्यूटन, प्रभृति अनेक संघों के मिश्रण से ही अंग्रेजी राष्ट्र का निर्माण हुआ है। फ्रांस में गाल, लेटिन, सेल्ट आदि के मिश्रण से अर्वाचीन फ्रेंचराष्ट्र का जन्म हुआ, और अमेरिका में तो आज भी ऐंग्लो सेक्सन, आयरिश अमेरिकन, और जर्मन अमेरिकन के भेद लोगों के सामने मौजूद हैं। अनेक कोठरियां का मिलकर घर बनाता है, और अनेक शाखाओं से वृक्ष एवं अनेक नदियों के मिल जाने से जिस प्रकार समुद्र बन जाता है, उसी प्रकार देश में भिन्न २ ज्ञातिसंघ यदि अन्तर्व्यवस्था के लिये ही पर्याप्त रूप में संगठित हो जायँ तो उन सबका एक राष्ट्र बन जाने से कुछ भी कठिनाई न होगी। इन दिनों पाश्चात्य देशों में प्रत्येक जाति के श्रमजीवियों के भिन्न २ गिल्ड, ट्रेड यूनियन अथवा फेडरेशन बन गये हैं, और वे अपना २ स्वतंत्र प्रबंध कर लेते हैं। किन्तु इससे श्रमजीवी समाज निर्बल न बनकर विशेष बलिष्ठ ही बनता चला है। वस्तुतः इस प्रकार प्रत्येक अवयव के संगठित एवं व्यवस्थित रहने पर उनसे समस्त राष्ट्रीय कार्यों में सहायता पहुँचती है। देश में किसी भी कार्य के लिये सबको एकमत बनाने की आवश्यकता पड़ने पर; समस्त भागों का एकदम ही उत्थान करने की योजना तय्यार रहने से; तत्काल ही राष्ट्र को चारों ओर से शक्ति प्राप्त होकर राष्ट्रीय कार्य बड़ी सुगमता से हो सकता है। सेना के अनेक पथक या विभाग कर देने पर भी वरिष्ठ सेनापति की आज्ञा जिस प्रकार सबको एकदम ही सुनाई जासकती है, अथवा इन दिनों प्रांतिक एवं ज़िला सभाओं की स्थापना हो जाने से राष्ट्रीय महासभा की जड़ जिस प्रकार और भी मज़बूत बन गई है, उसी प्रकार यदि हिन्दू-समाज के पृथक्त्वमय स्वरूप ज्ञातिसंघ निर्माण किये गये, तो यह समाज भी सब प्रकार से व्यवस्थित एवं बलवान और कार्यक्षम ही बन सकेगा। आजकल जिस प्रकार किसी पादरी के द्वारा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र को गाली-गलौज किया जाने पर भी हम लोग मुँह बिगाड़कर जैसे चुपचाप रहते हैं, अथवा हम में से किसी अज्ञान मनुष्य के भूलकर विधर्मी हो जाने पर जिस प्रकार हम उधर विशेष ध्यान नहीं देते, वह स्थिति अब आगे न रहने पावेगी। समाज की संगठित व्यवस्था हो जाने पर बिजली के तार की भांति एक सिरे पर पहुँचा हुआ धक्का तत्काल ही समग्र यंत्रों के परिचय में आकर उसकी प्रति-क्रिया भी होने लगेगी। आधुनिक चिकित्सक एवं स्वतंत्र विचार के जमाने में किसी भी संगठन के प्रतिगामी होने की विशेष सी संभावना नहीं रही है, और यदि कदाचित् वैसा हुआ भी तो अग्रगामी राष्ट्र अधिक समय तक उसे उस दशा में नहीं रहने देंगे। फलतः प्रागतिकों को इस संगठन के कारण ज्ञातिभेद बढ़ने का जो भय प्रतीत हो रहा है, वह बिलकुल ही निर्मूल है।

वस्तुत इस प्रश्न पर यदि हम व्यापक और राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करें तो यही ज्ञात होगा कि, उपरोक्त प्रकार की योजना को कार्यरूप में परिणत करना इस समय परमावश्यक है।

यूरोपीय महायुद्ध ने यूरोपियन एवं एशियाटिक लोगों में स्थायी विरोध उत्पन्न कर दिया है। यूरोपभर में केवल टर्की का राज्य ही विधर्मी था। किन्तु अब तो उस पर भी अंग्रेजी सत्ता कायम हो जाने के कारण, समग्र यूरोप ही एक प्रकार से ईसाई बन गया है, और अब वह एशिया के सब राष्ट्रों पर सत्ता जमाना चाहता है। इस भावी संकट का प्रतीकार करने के लिये जापान कमरकस चुका, और चीन भी तैयारी कर रहा है। मुसलमानी राष्ट्रों में बड़ी ही गड़बड़ मच गई है, किन्तु फिर भी वे युक्तिपूर्वक एक होने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसी दशा में क्या केवल हम भारतीय हिन्दुओं को ही सोते पड़े रहना उचित होगा? यदि हिन्दुओं को भी अन्य एशियाटिक राष्ट्रों के साथ २ यूरोपियनों से सामना करना हो तो, क्या उनके लिये अपने समाज को शीघ्रतापूर्वक सुसंगठित कर बलवान बना लेना आवश्यक नहीं है? मुसलमान तो खिलाफत के निमित्त अपना एक राष्ट्र बना रहे हैं, किन्तु हम हिन्दुओं ने किस सर्व संग्राहक ध्येय को निश्चित किया है?

क्षुद्र सामाजिक प्रश्नों की चर्चा करके परस्पर भेद बढ़ाने की अपेक्षा किसी एक ही उच्च ध्येय के निमित्त से, समग्र हिन्दू-समाज के संगठन को दृढ़ बना लेने पर ही हम उपरोक्त दंगल में अन्य भाइयों के साथ खड़े रह सकेंगे। अन्यथा यदि आज यहां अंग्रेज राज्य कर रहे हैं, तो कल जापान करेगा और परसों अफ़ग़ान यहां आकर अड्डा जमा देंगे, और हम सतत भारवाहक ही बने रहेंगे! ज्ञातिसंघ या अन्य प्रकार के संघों का निर्माण करने और उनके मतों पर दृष्टि डालने एवं उनमें एकता फैलाने आदि के प्रश्नों पर क्रमानुसार विचार किया जा सकता है। किन्तु फिर भी यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि, इस प्रकार की समाज रचना करके भारत को बलवान और तेजस्वी अवश्य ही बनाना चाहिये। यह प्रश्न, केवल सामाजिक या धार्मिक ही नहीं, वरन् राष्ट्र के जीवन-मरण से सम्बन्ध रखने वाला है। अत आशा की जाती है कि, यह परिषद् अवश्यमेव इस पर शांतिपूर्वक विचार करेगी।

विधि-वाम-वामा !

(रचयिता—पं० विष्णुदासजी मिश्र, 'विशारद'।)

[राग—विहाग तिताला।]

वाम वाम सब काज हुआ।
[illegible] सदन मैंने बनवाया, पर वह दुख का साज हुआ॥ टेक०॥
सरस-सुधा प्याला था मैंने आकर [illegible] और हुआ।
मेरे हीन भाग्य से वह भी त्योंही गरल गंभीर हुआ॥
हे सजनी! रजनी में मैंने किया [illegible] का।
पर उसने भी [illegible] [illegible] बन [illegible] किया मेरे मन का॥
हे सखि, वामे वाम दैव की कथा कथा तुझे सुनाऊँगी!
मेरी [illegible] हृदय-[illegible] का [illegible] दिखाऊँगी॥ ३॥
[illegible] विश्राम करने जा कर [illegible] पर विश्राम लिया।
पर मेरे [illegible] भाग्य के उसने उलटा काम किया॥ ४॥
[illegible] भी [illegible] से [illegible] है।
[illegible] भी इस [illegible] को [illegible] है॥ ५॥
[illegible] दुख होने [illegible] में [illegible] भूमि [illegible]।
[illegible] सुख [illegible] भी न [illegible]॥ ६॥
हे [illegible]! [illegible] दुख दूर [illegible] करो।
[illegible] फिर [illegible] प्राण [illegible] करो॥ ७॥

बहता हुआ दीपक !

(रचयिता—श्रीयुत [illegible]।)

दीपक* बहता है मँझ धार।
नीर अपार बहाए बहा है, कोई न खेवन हार॥ टेक॥

१

उछल कूद भी मचा रही है, लहर उधर धार।
असमर्थ हम दुख सरिता में, [illegible] है आधार॥

२

[illegible] जाता है, कभी होती [illegible]।
[illegible] रहा है धीरे धीरे; [illegible] की [illegible]॥

३

मृत्यु [illegible] रही है, [illegible]।
जीवन और मृत्यु के [illegible] में है [illegible]॥

४

[illegible] है, है [illegible]।
[illegible] सिंधु के [illegible], है [illegible]॥

५

[illegible] के [illegible] किसी [illegible]।
[illegible] है, [illegible]॥

* [illegible] का देव।

डेक्कन जिमखाने का इस वर्ष का दंगल !

इसी नवम्बर मास में पूने के डेक्कन जिमखाने की ओर से कुस्तियों और मर्दानी खेलों का जो भारी दंगल होगया वह अद्वितीय ही था। इस बार सचालकों ने जिस उत्साह के साथ यह कार्य किया वह परम प्रशंसनीय कहा जा सकता है। द्वितिया के चन्द्र की भांति डेक्कन

इस बार के दंगल का विजयी पहलवान।

श्री. गुलाम कादर (इन्दौर) [१००० रुपये इनाम पाया]

पटियाले का जाली पहलवान [५०० रुपये की कुस्ती में जीत]

जिमखाने का कार्य प्रतिवर्ष वृद्धिंगत होता जा रहा है। गतवर्ष के कार्य से इस वर्ष के कामों की तुलना करने पर उस उन्नति का कुछ परिचय हमारे पाठकों को मिल सकेगा। इस बार तैराकों की शर्त और पचास मील की सायकल रेस, छह मील की दौड़ एवं वतनमंचार आदि बातें गतवर्ष की अपेक्षा अधिक थीं। गतवर्ष मुख्य शर्त कुस्ती की ही थी; और केवल रुचि-वैचित्र्य के लिये दो चार काम दूसरे भी शामिल कर दिये गये थे किन्तु इसबार अनेक प्रकार के मर्दानी और मैदानी खेलों को भी कुस्ती की समानता का अधिकार दिया गया था। गत वर्ष का कार्यक्रम केवल चार ही दिन का था, तो इसबार पूरे आठ दिन का। गतवर्ष १०२२ उमेदवारों ने भिन्न २ कामों में अपने दर्जे कराये थे, तो इस बार उनकी संख्या १०८३ तक पहुँच गई ... वर्ष यह दंगल ... नाम

तैराकों की शर्त।

"वेस्टर्न इंडिया टूर्नामेंट" रखा गया था, तो इस वर्ष राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त हो जाने से गतवर्ष का नाम बदल कर अब नाम "दि फर्स्ट ऑलिम्पियड ऑफ इंडिया" रख दिया गया है। अजमेर मैसूर आदि दूर २ के नगरों से दौड़ने वाले उमेदवार थे। बंगाल से लेकर और मध्यप्रदेश, अमृतसर, एवं पटियाला में कुस्ती के लिये नामी २ पहलवान आये थे। गतवर्ष जहां राधनपुर के गामा कल्लू और कोल्हापुर के ... सिंग का जोड़ लगा हुआ, ... उनमें भी ... इस वर्ष इंदौर के गुलामकादर और पटियाला के ... गामा आदि ... ख्याति हो ... मील दौड़ की ... में गत वर्ष ... उम्मेदवार थे, ... इस वर्ष उनकी संख्या २१ ... थी। केवल ... की दृष्टि से ... नहीं बल्कि ... की अपेक्षा ... है। ... के दौड़ने वाले खिलाड़ी विशेष गुणज्ञ भी सिद्ध हुए हैं। ... सर्वराष्ट्रीय ऑलिम्पिक टूर्नामेण्ट में डेक्कन जिमखाने की ओर से ... हुए श्री० चौगुले (बेलगांव) को गतवर्ष २७ मील की दौड़ ... घण्टे ४१ मिनिट ४८ सेकंड लगे थे, (और एण्टवर्प में तो ... भी कोई डेढ़ दो मिनिट अधिक लगे) तो इसबार इस दौड़ ...

इजिप्त की असहकारिता !

(लेखक—श्रीयुत 'पार्थिव')

असहकारिता से पूर्व ।

सहयोग का आन्दोलन जिसे नया जान पड़ता हो, वह मनुष्य ऐतिहासिक ज्ञान से सर्वथैव अपरिचितही कहा जा सकता है। क्योंकि संसार के इतिहास में तो यह आन्दोलन नया है ही नहीं, किन्तु भारत के इतिहास से भी यह नया सिद्ध नहीं हो सकता। पर-तंत्रता से मुक्त होकर स्वतंत्रता के आश्रय में पहुँच जाने वाले देश के इतिहास में कहीं न कहीं इसका पता लग ही जाता है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि, इसका मूलबीज, स्वभाव की अन्याय विरुद्ध चिढ़ एवं अत्याचार के प्रति घृणा ...तिकार की प्रवृत्ति में ही गर्भित है। और इसीलिये जहां२ अन्याय, ...चार और बलात्कार का प्रयोग हुआ है, वहां प्रतिकार की अश- ...अथवा अनावश्यकता प्रतीत होने पर अन्यायियों के विरुद्ध कम ...म से असहकारिता का आन्दोलन तो अवश्य ही खड़ा किया. ...है। अमेरिका के संयुक्त राज्यों ने इँग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध पुकारने ...र्व असहकारिता का ही आश्रय लिया था। उसके इतिहास में स्वदेशी की शपथ, बहिष्कार का आन्दोलन और सर्कार से तिर- ...रयुक्त सूखा बर्ताव रखना; आदि बातें इतने स्पष्ट रूप में पाई जाती ...कि, जिन्हें पढ़कर पाठकों को मन में यह भ्रम उत्पन्न होने लगता है ...के, कहीं हम भारत का ही इतिहास तो नहीं पढ़ रहे हैं! वही दशा ...टली के मेज़िनी-कालीन इतिहास में भी पाई जाती है। नीदरलैंण्ड ...का इतिहास भी इसी बात की साक्षी देता है। आयर्लैंड के पूर्वेति- ...हास में भी वही चित्र दृष्टिगोचर होता है, और यदि बिलकुल ताजे उदाहरण की आवश्यकता हो तो इजिप्त (मिसर-मिश्र) के स्वातंत्र्य प्राप्ति विषयक प्रयत्न में असहकारिता का स्वैर-संचार मन भर कर किया जासकता है। इतिहास असहकारिता के विरुद्ध नहीं, वरन् वह निरन्तर उसके अनुकूल ही रहता आया है। ऐतिहासिकता की शेखी दिखलाकर सर नारायण चन्दावरकर अज्ञ, भोले, और भीरु एवं स्वाभि-मान्य शून्य माडरेटों को भले ही चकमा देते रहें, किन्तु राष्ट्रीय दल के सन्मुख उनकी एक भी चाल नहीं चल सकती। क्योंकि वह इनकी सारी शेखी किरकिरी कर सकता है। हम कह सकते हैं कि, यदि उन्हें उपरोक्त ऐतिहासिक घटनाएँ उन देशों के इतिहास में न दिखाई दी हों, तो यह केवल उनका इतिहास विषयक गाढ़ अज्ञान ही कहा जासकता है, अथवा वे जानबूझकर ही लोगों के सन्मुख अपने ...ज्ञान के प्रमाण उपस्थित कर रहे हैं।

...अस्तु; सर चन्दावर कर सदृश नर्मदलिये और भी एक बार हमारे ...धे में फँसने वाले हैं, इसलिये उन्हें यहीं छोड़कर; हम इस असहका-...रिता के विषय में अपने से समता किंबहुना कुछ विशेषता रखने वाले; और जिसका उदाहरण बिलकुल ही ताजा है; उस इजिप्त की ओर दृष्टि डालते हैं।

इजिप्त का प्राचीन इतिहास जो भी वहां की मीनारों के सदृश मनो-वेधक भले ही रहा हो, किन्तु सम्प्रति उससे हमारा कुछ भी सम्बन्ध न रहने के कारण, हम उस पर विचार नहीं करना चाहते। यही नहीं वरन् अर्वाचीन इतिहास में से भी बिलकुल संक्षिप्त और प्रस्तुत विषय के परिपोषणार्थ जितने की अंश आवश्यकता है, उसी का हम यहां उल्लेख करेंगे। ई० सन १५१७ में तुर्किस्तान के जगज्जेता सुलतान ने विजय प्राप्त कर इस देश को अपने राज्य में मिला लिया था। और तब से सन १९१४ तक उस पर तुर्किस्तान की सत्ता शुक्ल कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की भांति न्यूनाधिक प्रमाण में बनी रही है। बीच में कुछ दिन इजिप्त पर गुलामों का राज्य था। जिन्हें कि, म्यामेलुक्स कहते हैं। इँग्लैण्ड में जिस प्रकार अत्यन्त साधारण रहन-सहन के पुरस्कर्ता प्यूरिटन्स थे, उसी प्रकार ये गुलाम राज्यकर्ता भी थे। कौटुम्बिक प्रथा की इन्हें ज़रा भी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि गद्दी के लिये अपने औरस वारिस की अपेक्षा दत्तक ही नहीं; वरन् 'क्रीत वारिस' ही ये ज्यादा पसन्द करते थे। अस्तु, इनमें भी सन १७७१ ... 'अलीबे' नामक एक वीर बड़ा ही पराक्रमी हुआ। जिसने कि, ... से तुर्क सुल्तान का भी बोरा-बद्ना उठवा दिया था। कालान्तर ... लियन ने इस समाज के दांत खट्टे करदिये, किन्तु अंग्रेज़ों ने तुर्कों की सहायता से फ्रांस को भी यहां से उखाड़ दिया, और इसी ... में ठीक नेपोलियन के जन्म दिन को पैदा होने वाले मुहम्मद अली की ख्याति वृद्धिंगत हुई। इजिप्त का प्रथम राज्यकर्ता यही वीर पुरुष था। सन १८०७ में जब तुर्कों से अंग्रेज़ों का वैमनस्य बढ़ा, तब इजिप्त में ... चुनीदा अंग्रेज सैनिकों को ज़मींदोस्त करके करो की प्रजा के ... ४५० गोरे सिपाहियों की ठुकाई करने वाला यही वीर था। इन्हीं विजयों के कारण ही यह इजिप्त का राज्य हस्तगत कर सका था। उसके बाद जितने भर म्यामेलुक्स नेपोलियन की मार से बचगये थे, उन सब को इसने रास्ते लगा दिया। यह अपने को तुर्क सुलतान का अनु-यायी कहलवाता था। अरब के वहाबी लोगों के विरुद्ध खड़ा किया हुआ षड्यन्त्र भी इसी ने अपने इब्राहिम नामक शूर पुत्र के द्वारा नष्ट कराया था। इब्राहिम मुहम्मद अली जैसे वीर पिता के ही अनुरूप पुत्र था। जब तुर्कों के विरुद्ध ग्रीक लोग उठे तब इसने उनके भी धुर्रे बिखरे दिये। इस प्रकार इन पिता पुत्रों ने यूरोपियन सेना विषयक ढौंग को बहुत कुछ निस्तेज बना दिया। इसी कारण ये दोनों इजिप्शियन लोगों के परम प्रिय बन गये थे। मुहम्मद अली ने अन्तर्गत सुधारणाएँ भी बहुत कुछ कीं। उसे इजिप्त पर बड़ा प्रेम था। यहां तक कि एक बार उसने बकहार्ड नामक व्यक्ति के सन्मुख ईश्वर से प्रार्थना की थी कि, हे ईश्वर यदि तूने मुझे १००० जन्म भी दिये; तो भी मैं बराबर इजिप्त के लिये ही अपना शरीर अर्पण करता जाऊंगा। यद्यपि वह स्वयं अशिक्षित ही था, किन्तु शिक्षाभिमानी होने से उसने यहां कई एक शालाएँ स्थापित करदी थीं। जमीन की व्यवस्था, नहरें, पल्टन और जल-सेना आदि का ठीक २ प्रबन्ध इसी ने किया। इजिप्त में सर्व प्रथम और ... प्रचण्ड ध्येय का निर्माण भी इसी के द्वारा हुआ, और इसी के आदर्श पर इजिप्शियन राष्ट्री-दल का यह कहना कि— ... हम यूरोपियनों के न रहने पर भी सब प्रबन्ध भली भांति कर सकेंगे—यथार्थ है। किन्तु इसीने आगे चलकर यूरोपियनों को व्यापार के बहाने चंचुप्रवेश करने की आज्ञा दी, और अन्त में ... उनका वहां अड्डा जम गया। एकबार जैसे ही इन गोरे प्रवासियों को वहां ठहरने के लिये जगह मिली कि; फिर इन्होंने अपना पसारा इतना बढ़ा दिया कि, जिसके कारण इजिप्त की स्वतंत्रता ही नष्ट ... हो गई। इसके बाद प्रथम अब्बास राज्याधिकारी हुआ, इसे, गोरों से बड़ी चिढ़ थी, इसी कारण इसने उनकी व्यापार विषयक रिआयतें छीनलीं। इसका परिणाम इजिप्त के फेलाहीन कृषकों के लिये उन्नतिकारक हुआ, किन्तु अब्बास मरा गया। उसके बाद सैयद गद्दी पर बैठा। इसे गोरे बहुत प्रिय थे। इसीके राजत्व काल में स्वेज़ नहर तैयार हुई। यह बड़ा ही खाऊ उड़ाऊ था, और इसी ने सबसे प्रथम अंग्रेज़ों से ऋण लेना शुरू किया। इसके बाद का राज्याधिकारी खेदिव इस्माइल था। इसने निकम्मी बातों में ही इजिप्त का सर्व नाश कर दिया। ... इसने यूरोपियन राष्ट्रों से ऋण लेने में ज़रा भी आगा पीछा न देखा और ९ करोड़ ४० लाख पौंड का कर्ज अपने सिर कर लिया। ... रकम में से ८ करोड़ तो इसने केवल ठाटपाट और ऐश-आराम तथा स्वेच्छाचार में ही व्यय कर दिये! इस ऋण के कारण बिचारे ... देश को दिवालिया ही बन जाना पड़ा। समय आते ही उसकी हुंडियाँ कौड़ी मोल में भी न पूछी जाने लगीं, और धनिक कष्ट की हाय हाय करने लगे। इसीसे मध्यस्थ बनकर उनके लिये राष्ट्र को बीच में पड़ना पड़ा। उस ऋण में इँग्लैण्ड का पैसा भी था। अन्ततः सब धनिक राष्ट्रों ने मिलकर 'इजिप्त ऋण कमीशन' नियुक्त किया और उसके द्वारा बिचारे इजिप्त का गला घोंटा गया। एकतंत्री राज्य-सत्ता में होते

ई गलाघोंटू राजा किस प्रकार उत्पन्न हो जाता है, और वह किस
रह सारे देश को गढ्ढे में गिरा देता है, इसके लिये इस्माइल एक
ासा उदाहरण है। उन गोरे साहूकारों में कुछ ऐसे निमक-हराम भी
, जो कि इस्माइल को पैसा उड़ाने और ऋण लेने के लिये उभाड़ा
रते थे। अस्तु। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि, इस्माइल
ो वहां से हटाकर उसके गरीब लड़के ट्यूफिक को एंग्लो-फ्रेंच सर्कार
 गद्दीपर बिठाया। जाते २ इस्माइल को इन गोरों के स्वभाव की
रख हुई, और तब उसकी आँखें खुलीं! किन्तु उस दशा में हो ही
्या सकता था? फिर भी उसने यह कह कर कि—मैं अपनी जनता
ो पूछे बिना यूरोपियनों की सम्मति के अनुसार कुछ भी न करूंगा—
न गोरों के मार्ग में रुकावट डालने का प्रयत्न किया। जनता को भी
सने किसी अंश में वशीभूत कर लिया था, और सैनिक लोग भी
नुकूल हो चुके थे। यद्यपि इन सब का उपयोग कुछ भी न हुआ,
केन्तु फिर भी उसने "जनता की सम्मति" का जो सिद्धान्त प्रकट
किया, उसके द्वारा इजिप्त के राष्ट्रीयता का आन्दोलन अवश्य अस्तित्व
ागया।

इस आन्दोलन का प्रथम पुरस्कर्ता आरबी था। प्रथमतः यह आन्दोलन तुर्कों के विरुद्ध खड़ा किया गया था। इजिप्त का राजा (खेदिव) स्वयं तुर्क वंशीय होने के कारण, और बरसों तक उस पर तुर्क साम्राज्य की सत्ता रहने से, इजिप्त का कोई भी मनुष्य सर्वगुणसंपन्न होने पर भी सेना में अधिकारी नहीं बन सकता था। इसके बाद उन्हें निम्नाधिकारियों के पद मिलने लगे, किन्तु इससे भी वे संतुष्ट न हुए। असंतोष अधिकाधिक बढ़ता चला। इसी बीच इस्माइल को पदच्युत कर देने के कारण "नराणां च नराधिपम्" वाली भावना नष्ट हो गई, और प्रजा के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि, जब गोरे लोग राजा को पदच्युत कर देते हैं, तो हम भी क्यों न अन्यायी राजा को हटादें। इसी प्रकार इस्माइल के आसपास जमा हो जाने वाले खाऊ गोरों के प्रति और उनके कारण अन्य गोरों के विषय में भी उनमें आदर या विश्वास हो सकना अशक्य था। और इस्माइल पर जबरन् ही एक गोरे दिवान का भार लाद दिया जाने से तो वे बहुत ही असंतुष्ट हो गये थे। फलतः उनमें यह भाव फैलना कि—हम पर गोरों का राज्य करना अस्लेल-इस्लाम के विरुद्ध है—स्वाभाविक ही था। इन सब विचारों ने उस समय इजिप्त में खलबली मचादी, क्योंकि इसी में राष्ट्राभिमान का उदय हो रहा था। यदि यह भी कह दिया जाय तो अनुचित न होगा कि, इजिप्त को उस समय प्रसूति-वेदना हो रही थी! क्योंकि उसका प्रथम और दृश्य स्वरूप आरबी द्वारा उद्भूत वह षड्यंत्र था, जो आरंभ में तुर्कों के विरुद्ध किन्तु तत्पश्चात् पश्चिमी गोरों के विरुद्ध खड़ा किया गया था। आरबी एक सामान्य सेनाधिकारी किन्तु जन्मतः कृषक था। उसने अपने सहायकों को एकत्रित कर एक दिन खेदिव के सामने इजिप्शियन जनता के नाम से तीन बातों की मांग उपस्थित की थी। वे तीनों बातें—प्रधान मण्डल का बहिष्कार, पार्लमेन्ट का संगठन और सेना का परिमाण १८००० तक बढ़ा देना—ही थीं। आरबी खेदिव के प्रति राजनिष्ठ था, और जब उसे खेदिव ने तलवार को म्यान में रखने की आज्ञा दी, तब अविलम्ब उसने उसका पालन भी किया। फलतः इस प्रश्न पर चर्चा होने लगी। इसी बीच इजिप्त की सर्दार मण्डली भी आरबी से आ मिली। तुर्क सुलतान ने भी अपने लोगों को भेजकर आरबी को मिला लेना चाहा; और उनमें मेल हो जाने से आरबी ने अपना वह मोर्चा जो तुर्कों के विरुद्ध था—बदल कर केवल पश्चिमी गोरों के विरुद्ध ही आक्रमण करना निश्चित कर दिया।

इन सब घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि, पुराने प्रधान मण्डल को बदलकर उसके स्थान पर नया मण्डल निर्माण करना पड़ा। और उसमें आरबी युद्ध-मंत्री बनाया गया। क्रांतिकारी की दशा से बदल कर विजयी पुरुष एकदम ही दीवान किस प्रकार बन जाता है; यह बात कावूर के उदाहरण पर से हमें भलीभांति ज्ञात हो चुकी है। वही दशा आरबी के विषय में भी हुई। इसके बाद आरबी ने अपना हेतु सिद्ध करने का उपक्रम किया। गोरों के विरुद्ध होने के कारण उसकी धाक सरक्स ही में जम गई। और इससे उत्साहित हो कर उसने अंग्रेज एवं फ्रेंचों के अधिकार का उच्छेद किया। किन्तु ग्लॅडस्टन नामक अंग्रेज ने युक्तिपूर्वक उसे यह धमका दिया कि, प्रथम तो ग्लेडस्टन ही फ्रेंचों को आक्रमण के लिये आज्ञा नहीं देंगे, और यदि उन्होंने दे भी दी तो फ्रेंच लोग इस काम में अंग्रेजों से सहकारिता नहीं करेंगे। फलतः तुर्क पर आक्रमण होने की कुछ भी संभावना नहीं है।

४

किन्तु इस विषय में पहला अनुमान मिथ्या सिद्ध हुआ, और आरबी ने धोखा खाया। इसी बीच अलेक्झेंड्रिया में ५० गोरों का खून हो गया। यद्यपि इस कार्य में आरबी का कुछ भी हाथ न था, किन्तु फिर भी खून तो अंग्रेजों का ही गिरा था; नकि जलयानवाला बाग की तरह निःशस्त्र भारतीयों का! फलतः समग्र यूरोपियन राष्ट्रों ने एकदम ही इजिप्त के विरुद्ध हो हल्ला मचा दिया। सुलतान ने इस घटना का ठीक २ निर्णय करने के विषय में लार्ड डफरिन को वचन भी दिया था, किन्तु अंग्रेज लोग ऐसा मौका पाकर कब चूक सकते थे? उन्होंने सुलतान के निर्णय की एक मिनिट भी प्रतीक्षा न करके एकदम अलेक्झेन्ड्रिया पर गोलियाँ बर्साना शुरू कर दिया। इंग्लैण्ड ने फ्रेंच एवं इटालियन नौ-सेना को भी सहायतार्थ बुलवाया; किन्तु वे लोग इसके सदृश बुद्धिमान अथवा ज़बरन् सिर देने में सिद्धहस्त न थे, अतः उन्होंने तटस्थ वृत्ति धारण करली। तब निरुपाय होकर हमारे अंग्रेज बहादुरों को अकेले ही इजिप्त का प्रदेश निगलना पड़ा! बिचारे इजिप्त का भाग्य ही ऐसा था। अस्तु; अंग्रेजों ने दो महिने में ही अर्थात् सितम्बर १८८२ ई० में टेलेल कबीर में आरबी की सेना के धुर्रे बिखेर दिये; और मिश्र देश को अंग्रेजों ने पूरी तरह डकार लिया! इसके बाद आरबी की जाँच हुई और उसे देश निकाले का दंड दिया जाकर सिलोन में हवालात रक्खा गया! इस प्रकार आरंभ में ही इस राष्ट्रीय आन्दोलन का अंकुर अंग्रेजों द्वारा कुचल दिया गया।

तब अंग्रेजों ने विराग भाव प्रकट करते हुए ये उद्गार निकालना आरंभ किया कि, "हमें इजिप्त की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यद्यपि बहुत कुछ इंकार करने पर भी यह हमारे गले पड़ गया है, फिर भी हम उससे शीघ्र ही पीछा छुड़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं।" किन्तु तज्ञों को अच्छी तरह मालूम था कि, भारत को हाथ से न जाने देने के लिये, इजिप्त पर अधिकार रखना आवश्यक है, और नेपोलियन भी इसी हेतु से प्रयत्न कर रहा था! फिर भी अंग्रेज कहते रहे कि, हमें यह नहीं चाहिये था! अस्तु; कुछ भी हो, किन्तु वह अंग्रेजों के अधिकार में चला अवश्य गया। इधर अनावश्यकता की पुकार मच रही थी, उधर कई अंग्रेज शब्दों से लोगों को इस बात का आश्वासन भी दे डाला कि, हम अब बहुत शीघ्र यहां से जाने वाले हैं! इसी प्रकार बाहर से अपनी अनिच्छा का भाव प्रकट करने के लिये उन्होंने इजिप्त को खालसा न कह कर अधिष्ठान (Occupation) के नाम से संबोधन करना शुरू किया। इस विषय में सत्य प्रतिज्ञता की ठसक दिखाने वाले अंग्रेजों ने भिन्न २ चमत्कारी उपायों से काम लिया, उन पर हँसी आये बिना नहीं रह सकती। इस कार्य में पहली पूर्वता विख्यात ग्लेडस्टन साहब की थी। इनसे जब पार्लमेन्ट में पूछा गया कि, "क्या सेना इजिप्त पर चढ़ाई करने के लिये भेजी गई है?" तब इन्होंने साफ़ कह दिया कि, "बिलकुल नहीं! क्योंकि वह केवल युद्ध किया के लिये ही (Operations of war) भेजी गई है, युद्ध के लिये नहीं।" इस उत्तर को बिचारे प्रश्नकर्ता ने क्या समझा होगा; ईश्वर ही जाने! इसी प्रकार दूसरी युक्ति थी—इजिप्त को गले के नीचे उतारते हुए भी यह कहते रहना कि, हम अभी यहां से चले जाने वाले हैं। बीच में सन् [illegible]... ...
लार्ड सालसबेरी ने सुलतान से तीन वर्ष में इजिप्त छोड़ देने का इकरार भी कर लिया था; किन्तु उस समय राजनीति में प्रायः हर बार धूर्त-ने चौर करने को गड्ढे में गिरा देने वाले फ्रांस ने बीच में पड़कर सुलतान का मन फिराया और वह इकरार बदलवा दिया। अस्तु। वे तीन वर्ष कहां वे वर्ष की भांति बढ़ते २ अब तीस वर्ष बीत जाने पर भी समाप्त न हो पाये हैं। तीसरी धूर्तता "दुष्ट" को "सम्राट" के मधुर नाम से उपयोग में लाने की थी। ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा [illegible] सम्मति देना रहता है, किन्तु [illegible] भी [illegible] होना चाहिये, [illegible] का नाश होने में ज़रा भी देर नहीं लग सकती! अस्तु, इस तरह एक हो ही क्या, अनेक युक्तियों के द्वारा अंग्रेजों ने इजिप्त पर [illegible] अपने अधिकार जमा लिया।

किसी देश के अधिकार में आजाने पर ब्रिटिश लोग उस देश के सुधार के काम में ज़रा भी देर नहीं करते। क्योंकि [illegible] किये [illegible] चैन नहीं पड़ती। उस सुधारणा के लिये ब्रिटिश अधिकारियों की आवश्यकता पड़ती ही है, इसके भी [illegible] सुधारणायें [illegible] हो सकती हैं! वे भी हमेशा अधिकारियों को [illegible] करती हैं। और [illegible] [illegible] अत्यावश्यक हो जाता है। बस, फिर क्या पूछना है! [illegible]

भी परकीयों पर लादने के लिये सम्मति नहीं देते! एक साधारण (ड्रेनेज) मैले की मोरी के लिये कर बिठाने में भी पुर्तगीज़ सर्कार ने छह महीने तक रुकावट डाल दी थी, और ब्रिटिशों ने जब 'दक्षिण आफ्रिका' में कुछ पुर्तुगीजों का हित साधन किया, तब कहीं जाकर उन्होंने यह रुकावट दूर की! इन बातों पर से ज्ञात हो सकता है कि, ये विश्व सुधारक गोरे अन्तःकरण में कितने अधिक काले होते हैं।

संयुक्त और परराष्ट्रीय प्रधान की कोर्ट में न्याय का किस प्रकार खून होता होगा, इसकी कल्पना खुद भारत में ही काले गोरों के अभियोग में किये जाने वाले न्याय पर से हो सकती है। अतः इसके विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

चौथी रिआयत से हरामखोर लोग आज दिनदहाड़े और खुल्लम्-खुल्ला लाभ उठा रहे हैं। और इसकी कारण इजिप्शियन सर्कार इस समय बिलकुल ही निराश बन गई है।

इन सब उदाहरणों पर से यदि इजिप्शियनों को गोरे लोगों के विषय में घृणा उत्पन्न हो गई हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या? हां, इतना अवश्य है कि; इजिप्त का स्वातंत्र्यवादी दल इन रिआयतों को और भी कुछ दिन बनी रहने देना मंजूर करता है। किन्तु उसके लिये कारण दो ही हो सकते हैं। प्रथम यह कि; अंग्रेज लोग चाहते हैं कि, हम इजिप्त में अपना वर्चस्व बनाये रखकर अन्य यूरोपियनों के जीवन एवं मालमत्ते की रक्षा करते रहेंगे। अर्थात् वहां की सत्ता के बदले अंग्रेजों का राज्य मात्र अबाधित बना रहेगा। यह बात इजिप्शियनों को कभी मंजूर हो ही नहीं सकती। परस्पर विरोधी राष्ट्रों की सत्ता-संक्षिप्त और अल्पस्थायी सत्ता होती है, और वही यदि अकेले ब्रिटिश की हो तो चिरकाल स्थायी भी हो सकती है। किंतु इसे भी कौन मंजूर कर सकता है? दूसरा कारण यह कि; यदि आज ही ये सब रिआयतें करदी जायँ तो यह काक-मंडली एकदम ही काँव काँव करके शत्रुत्व बढ़ा देगी। और समस्त शत्रुओं का एकदम ही वार सहते रहना युद्धनीति के अनुसार घातक है। इसीलिये आज इजिप्शियन स्वतंत्रतावादी पक्ष उन रिआयतों को कायम रखने के लिये विवश हो रहा है। कुछ भी हो, किंतु इन उदाहरणों पर से सुधारक गोरों के कृष्ण-कृत्यों का पता भली-भांति लग सकता है। और इन्हीं कारणों से इजिप्त के राष्ट्राभिमान की गति धीमी हो गई है।

किंतु राष्ट्राभिमान को तीव्र गति प्रदान करने के लिये भारत में जिस प्रकार पंजाबी दुर्घटनाएँ और युद्ध काल में रंगरूट भर्ती के जुल्म आदि कारण हुए, वैसे ही इजिप्त में भी हुए हैं। वहां का देनशावी प्रकरण शरीर पर कांटे खड़े कर देता है। कुछ अंग्रेज गोरे अधिकारियों पर गवाँर इजिप्शियन लोगों ने हल्ला करके जब उन्हें मार डाला, और तब अंग्रेजों ने न्याय के नाम पर गरीबों के साथ जो अत्याचार किया वह अमानुषीय ही कहा जासकता है। खुद चिरोल साहब उसके विषय में कहते हैं कि, "कोईसा भी अंग्रेज बिना रोमांचित हुए, उस घटना का वर्णन नहीं पढ़ सकता!" इससे अधिक पुष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है! किंतु वही अन्याय इजिप्शियन राष्ट्राभिमान के लिये उत्साह के जीवित श्रोत के समान बन गया है। गत महायुद्धकालीन अन्याय; अर्थात् इजिप्त की लगभग एक त्रयोदशांश लोकसंख्या को बलपूर्वक मज़दूर पल्टन में भर्ती कर देना, एवं अन्न, घांस आदि वस्तुओं का ब्रिटिश सर्कार के नाम की आड़ में अधिकारियों का द्वारा हज़म कर लिया जाना, आदि हैं। इन प्रकट अत्याचारों के कारण बिलकुल निम्न श्रेणि का कृषकवर्ग भी बिगड़ उठा, और अपने पतिपुत्रों को जबरन् खींच ले जाने के कारण स्त्रियों के अन्त करण भी क्रोध से भस्मीभूत होने लगे। किन्तु मार्शल् ला के नाम पर लोगों ने इन सबको सहन किया, और सेन्सर शिप के कारण यह अन्याय उस समय उतना प्रकाश में भी न आ सका। फिर भी इस रूप मे अन्याय का अतिरेक हो गया, और सब लोगों को प्रतीत होने लगा कि; बिना स्वतंत्रता के इससे छुटकारा नहीं मिल सकता। असहकारिता का स्फोट भी यहीं से हुआ।

(अपूर्ण)

महाराष्ट्रीय हिन्दूधर्म परिषद्, नाशिक!

इस बार के सिंहस्थ पर्व पर करवीर महापीठाधीश्वर श्री शंकराचार्यजी के उद्योग से यह परिषद् नासिक में बड़े ही समारोह के साथ सम्पन्न हुई। यद्यपि उत्तर भारत में धार्मिक आन्दोलन के निमित्त समय २ पर इस प्रकार के सम्मेलन अधिवेशन हुआ करते हैं, किन्तु दक्षिण प्रान्त के लिये यह विराट् आयोजन पहला ही कहा जा सकता है। श्री शंकराचार्यजी महाराज के [illegible] एवं अन्य विद्वानों की वक्तृतायें [illegible] हुईं। इस परिषद् के द्वारा महाराष्ट्र में धार्मिक आन्दोलन होने की पूर्ण आशा की जा सकती है।

श्रीमती सरलादेवी चौधुरानी.

बंगाली युवकों में शारिरिक शक्ति बढाने की स्फूर्ति उत्पन्न कर राष्ट्रीय स्वयंसेवकों के पथक खड़े करने के लिये इन देवीजी ने सन १९०२ मे जो तोड़ श्रम किया था। उसी समय का यह फोटो है।

महात्मा गांधी के उपदेशानुसार इन दिनों श्री० चौधुरानीजी ने चर्खे पर सूत निकालने का व्रत स्वीकार किया है।
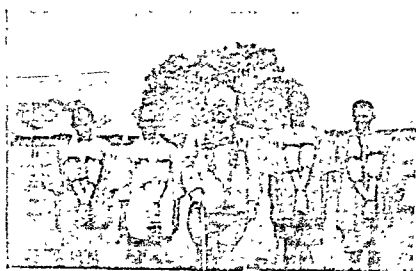
श्रीमती सरलादेवी चौधुरानी का नाम इन दिनों भारत के राजनैतिक वातावरण में इतना इतना कुछ गूंज रहा है, कि जिसके कारण इनका नये सिरे से परिचय दिलाने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। अस्तु; चौधरानीजी ने वंगभंग के समय बड़े ही महत्व की सेवा बजाई थी, और तभी से इन्होंने स्वदेशी व्रत को भी अंगिकृत कर लिया। आजकल ये महात्माजी का शिष्यत्व ग्रहण कर स्थान २ पर व्याख्यान देने के साथ ही स्वयं चर्खे पर सूत निकाल कर; भारतीय महिलाओं के लिये प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित कर रही हैं। प्रत्येक कार्य में केवल उपदेश की अपेक्षा कृति का ही महत्व विशेष होता है। इसी कारण श्रीमतीजी को अपने कार्य में खासी सफलता भी मिली है। इन श्रीमतीजी ने देश के लिये अपने अमीरी के सुखों को त्याग कर जो आदर्श निर्माण किया है, वह प्रत्येक भारतीय महिला के लिये अनुकरणीय है। गत् जून (१-२०) के 'जगत' में इन्हीं देवीजी का "स्वदेशी०" पर दिया हुआ भाषण हमारे पाठक पढ चुके हैं।

डेक्कन जिमखाना पूना।

२० मील की मॅरायान रेस के उम्मेवार।

मलखम का कौशल्य दिखाने वाला खिलाड़ी।

स्वराज्य-समस्या ।

(लेखक—श्रीयुत दामोदर विश्वनाथ गोखले बी. ए., एल एल. बी.)

असहयोगपर्व

यद्यपि अंग्रेज सर्कार और हमारे नर्म भाइयों के मन की बात जान सकना कठिन कार्य है, किन्तु फिर भी यह तो अवश्य कहा जासकता है कि, उसके सिर हिलाते ही ये लोग भी हां से हां मिलाने लग जाते हैं। ऐसी दशा में सर चंदावरकर के सिर हिलाने से देश भाइयों की कितनी ही हानि होती हो, यदि तो भी उन्हें इसकी नाम मात्र को पर्वाह नहीं हो सकती। सर्कार के आँख तरेरते ही यह समाज भी भौंहें तानने लगता है, और ज्योंही उसने किसी लोकपक्षीय नेता अथवा जनता के आन्दोलन पर आक्रमण शुरू किया कि; यह मंडली बिना उसके कुछ कहे ही आगे बढ़कर भौंकने लग जाती है। इनपर सबसे अधिक दया हमें इसी बात पर आती है कि, सर्कार अपने युक्तिवाद को तर्कशुद्ध होने पर ही सामने लाती है, किन्तु इन पिट्ठुओं की दलीलें बिलकुल ही निराधार एवं लूली रहती हैं, और इसीमें सर्वत्र इनको पराह भी खानी पड़ती है। नौकरशाही और लोकमत का हिताहित उत्तर-दक्षिण ध्रुवों के समान एकदम भिन्न है। उसके कल्याण से लोकपक्ष अकल्याण होता है, और यदि जनता को विशेष राजनैतिक अधिकार मिल गये, तो उतने ही अंश में नौकरशाही का निस्तेज बन जाना स्वाभाविक ही है। इसी वस्तुस्थिति के कारण नौकरशाही एवं लोकमत के युक्तिवाद में गृहीत सिद्धान्त तक परस्पर विरुद्ध होते हैं। किन्तु हमारे नर्मदल की दशा ठीक त्रिशंकु के समान बनी हुई है। न तो यह लोकमत का साथ देकर नौकरशाही से टक्कर लेने की ही हिम्मत कर सकता है; और न हानि लाभ की दृष्टि से नौकरशाही के साथ भाग ही पासकता है। क्योंकि हिन्दुस्तानी होने से भेद-भाव दूर हो सकना असंभव है! भले ही कोई हिन्दुस्तानी नर्मदलेया बिलकुल विलायती बूट और बढ़िया विदेशी कपड़े के कोट पेन्ट एवं स्टार्ट कालर से सजकर सिर पर हेट चढ़ा ले, और मुंह से उम्दा सिगार दबाकर ठीक अंग्रेज बच्चे की तरह गिटपिट भी करने लगे, किन्तु यह कभी साहब नहीं बन सकता! हां उसकी नकल मात्र कर सकता है। वर्ना न तो उसे साहबी अधिकार ही मिलते हैं; और न उसकी उतनी पूछ ही होती है। उस विचार को साहब बहादुर के डाले हुए

टुकड़े पर ही सन्तुष्ट

रहना पड़ता है। उपरोक्त चर्चा करने का उद्देश्य केवल यही है कि, आधुनिक असहयोग आन्दोलन पर इस नर्मदल ने जो चढ़ाई की है, उसका कार्य-कारण भाव लोगों की समझ में आजाय। और वे सावधान होकर अपने मार्ग पर डटे रहें। सर्कार की ओर से असहयोग के विरुद्ध ढोल बजते ही यह पिशाच मंडली पुनः नाचने के लिये उठ खड़ी हुई है। किन्तु ऊपर लिखे अनुसार इनके युक्तिवाद की नींव बिलकुल ही खोखली है। क्योंकि, जनता द्वारा असहयोग आन्दोलन का आरम्भ किया जाने के कारणों को ये लोग अच्छी तरह समझे हुए हैं! खिलाफ़त और पंजाबी दुर्घटनाएँ मुद्दतों तक हृदय को सालती रहेंगी। किन्तु इन सब बातों को जानते हुए भी इन्हें दृष्टि ओट करके ये लोग असहयोग की हँसी उड़ा रहे हैं! क्या इनका यह कार्य मनुष्यता के योग्य कहा जासकता है? नर्मों में भी सबसे निकृष्ट-कोटि के लोगों की यह दशा है। दक्षिण के नर्मदलिये अधिकतर इसी श्रेणी के हैं। इनसे अधिक बुद्धिमान, और विद्वान पराक्रमी एवं कुछ लोकलज्जा रखने वाले व्यक्ति अन्य प्रान्तों के नर्मदलों में भी हैं, किन्तु युक्तिवाद के विषय में उनकी भी दशा इन्हीं के जैसी है। ये लोग असहयोग आन्दोलन को नष्ट कर देना अपना परम कर्तव्य समझे हुए हैं। यदि इन

लोगों ने यह बोझ न उठाया तो सर्कार दमननीति से काम लेना शुरू करेगी, और उसका सम्पूर्ण दायित्व इन नर्मों पर पड़ेगा। इस प्रकार एँग्लो-इंडियन लोग कोटिक्रम लड़ा रहे हैं। इस युक्तिवाद का खण्डन करते हुए, प्रयाग के 'लीडर' नामक नर्मदल के पत्र ने सर्कार की इस चाल-बाजी पर खासी आलोचना की है। 'लीडर' संपादक का कहना है कि, इस विकट परिस्थिति को उत्पन्न करने की सारी जवाबदारी सिर्फ नौकरशाही पर ही है। अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने के बाद से, आंग्ल-सर्कार की नीयत आज तक कभी इतनी बिगड़ी नहीं थी। किन्तु इन दो वर्षों में उसके हाथों जितने पातक हुए हैं, वे ऐसे भयंकर हैं कि उनके क्षालनार्थ नर्मदलियों की सारी तपस्या भी पर्याप्त नहीं हो सकती। उन पाप के भूतों को प्रत्यक्ष नाचते हुए देखकर भी जो लोग यह कह कर चुप बैठने की सलाह देते रहे कि उनकी ओर ध्यान न देते हुए सर्कार जो कुछ दान-दक्षिणा दे रही है; उसे लेकर चुप बैठ जाओ।' वे अब अपनी बातों के लिये पश्चाताप प्रकट करें, इसी में भला है। क्योंकि उनकी विचार सरणी को मान लेने जितना हृदयहीन भारत अभी नहीं बन गया है। जब तक सरकार के ये पातक जीवित हैं, तब तक नर्मलोगों द्वारा असहयोग का बाल भी बांका नहीं हो सकता। 'लीडर' संपादक आगे चलकर फिर कहते हैं कि, सर्कार हमें असहकारिता के विरुद्ध सभाएँ करने, लेख लिखने और व्याख्यान देने की सलाह तो देती है, किन्तु जिस सभा में श्रोता ही न हों; वहां व्याख्यान किसके सामने दिया जाय? और जिन लेखों को कोई हाथ भी लगाना नहीं चाहता, उन्हें लिखने से लाभ ही क्या हो सकता है? सर्कार यदि नर्मदल के हाथों कोई स्थायी और लोकहितकर कार्य कराना चाहती हो, तो उसे पंजाबी दुर्घटनाओं के विषय में न्याय करके भारत को पूर्ण स्वराज्य दे डालना चाहिये कि, जिससे उस (सर्कार) का मुख भी उज्वल हो जाय, और हम नर्मदलिये भी उसके उस प्रकाश में असहयोग पर आक्रमण कर सकें। इन विचारों पर से 'लीडर' के मन्तव्य की दिशा सहज ही में जानी जासकती है। हम तो यह कहते हैं कि, यदि सर्कार ने पंजाब के अपराधियों को दंड देकर भारत को स्वराज्य सम्पन्न बना दिया, तो फिर असहयोग करने की आवश्यकता ही कहां रह जायगी! जिन २ कारणों से असहयोग का जन्म हुआ, वे सब नर्मों को मान्य हैं और असहयोगवादियों की मांग भी वे स्वीकार करते हैं। यदि गाड़ी कहीं अड़ती है, तो केवल उन मांगों को सर्कार से मंजूर करा सकने के साधन को देखकर ही। किन्तु इनके पास भी तो ऐसा कोई शस्त्र नहीं है। तब भला इन आक्रमणकारियों की मानसिक स्थिति की मीमांसा ही कैसे की जासकती है! इन्हें खुद तो कुछ सूझता नहीं; और दूसरा यदि कुछ करता हो तो उसके पैरों में रुकावट डालने को ये भी कांखकर उठ खड़े होते हैं! अर्थात् ये लोग अकारण ही राष्ट्रहित को धक्का पहुंचा कर

नेकनामी पाने

की डींग की चारिवारें कर रहे हैं। इन लोगों का यह बरताव प्रत्यक्ष होना कि, महात्मा गांधी राष्ट्रीय पुरुषों की परीक्षा ले रहे हैं, और दोनों ओर से उन्हें कराह मानी यह रही है—देश के लिये नाज़ानक बात है। विशेष कर सब राष्ट्रीय नर्मों की दशा पर तो चित्त बेजार क्षुब्ध हो उठता है, और उनकी अधोगति पर खेद होने लगता है। हम नहीं समझ सकते कि असहयोगवादी स्वराज्य की प्राप्ति के लिये यदि सर्कार के कोप की आग में स्वच्छन्द होकर कूदना चाहते हैं, तो उन्हें देखकर इन नर्मों का ही क्यों कलेजा दहल उठता है। उन्हें कोई अपने साथ उसमें कूदने के लिये विवश भी तो नहीं करता! और यदि किसी ने कुछ कहा भी तो, इस चिकने घड़े पर असर ही क्या हो सकता है? हम वस्तुतः कहते हैं इसमें केवल यही दिखाई देता है

हैं कि; यदि तुम्हें परतंत्रता के नर्क में पड़कर सड़ना हो; तो खुशी से सड़ते रहो, किन्तु यदि दूसरा कोई उससे बचकर जाना चाहे तो उसकी टांग खींचने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

तात्पर्य, नर्मों का युक्तिवाद तर्क शुद्ध नहीं है। और इसीलिये उनसे मुठभेड़ करने की भी आवश्यकता नहीं। किन्तु अब नौकरशाही के बड़े २ वीरों ने भी कमर कसकर युद्ध में योग दे दिया है, और प्रत्येक आन्दोलन के जीवनक्रम में जिन चार अवस्थाओं का पता लगता है, उनमें की द्वितीयावस्था अर्थात् उपहास की भट्टी में यह आन्दोलन तपाया जारहा है। जब उपेक्षा, उपहास, विरोध और विजय-चारों प्रकार की भट्टियों में तपाकर यह स्वर्ण शुद्ध किया जासकेगा, तभी इसकी यथार्थ परीक्षा भी हो सकेगी। आजकल उत्तरदायी अधिकारियों ने उपहास का शस्त्र हाथ में लिया है। किन्तु यदि उनके भाषणों को ध्यानपूर्वक *पढ़ा जाय, तो उस उपहास के ही साथ २ अधिकार* का सोंटा तैयार रहने की ध्वनि भी अवश्य सुन पड़ेगी। वाइसराय ने तो इस आन्दोलन को "मूर्खतायुक्त" कह ही दिया है; किन्तु बंगाल के गवर्नर लार्ड रेनाल्डशे उनसे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि; इन दिनों भारतवासियों को पागलपन की सनक सवार हुई है। वे इस विक्षिप्तावस्था की मीमांसा करते हुए पूछते हैं कि, भारत को लगे हुए इस रोग पर असहयोग रूपी औषधि देने वाले वैद्य गान्धी; और उसे लेने वाले भारतीय क्या पागल नहीं हैं? हमारा उत्तर इसके लिये यही है कि, "रहने दीजिये, महाशय! यदि कोई पागल होगया तो उसके जी से! आपको उससे भयभीत होने की क्या आवश्यकता है? पागल भी क्या कभी अक्लमंद को चकमा दे सकता है?" भारत यदि देशभक्ति के कारण विक्षिप्त बन जाने वाले गान्धी सदृश वैद्य से औषधि लेकर परतंत्रता से मुक्त होता है, तो हम ईश्वर से यही प्रार्थना करेंगे कि, वह इस देश में ऐसे एक दो ही क्या; सैकड़ों वीर उत्पन्न करे। बर्मा के गवर्नर सर रेजिनाल्ड क्रेडॉक ने बड़ी ही उत्सुकता से कहा कि, उपयोग कर लेने के बाद निसैनी को गिरा देना कदाचित् कृतघ्नता का चिन्ह भी हो सकता है, किन्तु चढ़ते २ ही उसे गिरा देना बुद्धिमांद्य का लक्षण है। क्योंकि निसैनी के साथ ही चढ़ने वाला भी तो गिर पड़ता है। बात बिलकुल ठीक है। किन्तु कोई सी भी उपमा ही तर्क शुद्ध युक्तिवाद नहीं हो सकती। यदि नौकरशाही की निसैनी पर से भारत के ऊपर चढ़ने का सिद्धान्त मानलिया जाय, तब तो ये सब दृष्टान्त यथार्थ सिद्ध हो सकते हैं। किन्तु प्रत्यक्ष दशा यह है कि; भारत को परतंत्रता के गंभीर गर्त में नौकरशाही ने ही गिराया है, और अब वह उसे ऊपर न आने देने के लिये नित्य प्रति उस पर पत्थर बर्सा रही है। यह दृष्टान्त अलबत्ता किसी प्रकार उनके लिये समर्थक और सत्यपूर्ण हो सकता है। क्रेडॉक साहब ने जाते २ यह सूचना भी देने की बुद्धिमत्ता दिखा दी है कि, मौका पड़ने पर हम अपने पाशवी सामर्थ्य का उपयोग करने से भी न चूकेंगे। किन्तु अब इन धमकियों से भय खाने का जमाना नहीं रहा। क्योंकि लोकमान्य तिलक ने इससे पूर्व ही जेलखाने को राष्ट्रीयतीर्थ बना दिया है। जल्यानवाला बाग में अकारण ही रक्त का छिड़काव हो जाने के कारण अब प्राणों की भी हमें विशेष पर्वाह नहीं रही है। उपहास, निन्दा और नानाभांति के कष्ट ही क्या; किन्तु कारावास और आवश्यकता पड़ने पर भारतीय वीर प्रत्यक्ष

मृत्यु के मुख में

भी कूद पड़ने को तैयार हैं। गरीब भारत स्वराज्य प्राप्ति के लिये सर्वस्व-दान करने को उद्यत् है। महात्मा गान्धी तो हमेशा यही कहते हैं कि; "कारागार से बाहर रहना हमें अपमानास्पद प्रतीत होता है। और इस आन्दोलन के कारण यदि सर्कार असहयोगवादियों को कारागार में भेजने लगे, तो उसका कैदखाना भी अपर्याप्त हो जायगा, और अन्त को उसे सारे हिन्दुस्थान के ही आसपास कैद की दीवार खींच देनी पड़ेगी।" अत: यह निश्चित है कि; नौकरशाही की गीदड़ भभकियों में आने के दिन अब नहीं रहे, और उसका कारागार केवल धर्मशाला ही बना रह जायगा।

केवल कर्मचारियों की ही क्या, किन्तु नौकरशाही को भी इस असहयोग आन्दोलन का मर्म ठीक २ समझ न पड़ा है। क्योंकि ये लोग यह भूल जाते हैं कि असहयोग भी नैतिक युद्ध ही है, और पंजाबी अत्याचार के अपराधियों को पेंशन दिलाने तथा भारत के अपमान का पूरा २ बदला चुकाये बिना यह कदापि बन्द न होगा। क्या उन अत्याचारियों से सहयोग करना उनके कार्यों का नैतिक अनुमोदन करना नहीं है? यथार्थ में तो इसके लिये थप्पड़ का जवाब घूंसे से ही दिया जाना चाहिये था। किन्तु सात्विक-वृत्ति वाले भारत इस जंगली न्याय की अवहेलना कर अपनी वृत्ति के अनुकूल बहिष्कार के उपाय से काम लेना निश्चित किया है। भारतवासी प्रगट कर चुके हैं कि; हम नौकरशाही की सत्ता का नैतिक रूप में कभी ... न करेंगे। क्योंकि उसकी दीहुई पदवियाँ अथवा पुरस्कारों, आगे दिये जाने वाले नई सत्ता के अधिकारों के फेर में पड़कर कौंसिल में जाना, उसके न्यायालयों से न्याय प्राप्ति की आशा रखना, उसके द्वारा परिचालित स्कूल या कालेजों से लाभ उठाना, सारांश यह कि, उसको अपना राज्य चलाने में किसी भी तरह की सहायता पहुँचाना एक प्रकार से उसके पंजाब वाले राक्षसी कृत्यों का नैतिक बल पर समर्थन करना है। स्पष्ट शब्दों यह कहा जासकता है कि, *अंग्रेजी राज्य में परकीय अंग्रेजों की नौकरी करना, उसकी दीहुई प*दवियाँ धारण करना और अंग्रेजी न्यायालयों से न्याय याचना करना, आदि बातें अंग्रेजी राज्य के लिये प्रत्यक्ष नैतिक समर्थन करने वाली हैं। भारत के सभी श्रेष्ठ एवं उच्च प्रति के प्राकृतिक नेताओं ने यदि सर्कारी नौकरी, उसकी पाठशाला तथा उसके न्यायालयादि का बहिष्कार कर दिया, तो क्या केवल शरीर से उनके आश्रित बन जाने कारण हम संसार को यह नहीं दिखला सकते कि, हम हृदय से पक्के स्वतंत्र हैं? और केवल पाशवी सामर्थ्य के बल पर किसी राष्ट्र का दूसरे पर सत्ता चलाना नैतिक दृष्टि से गर्ह्य मानते हैं! इसीलिये वह हमें मान्य नहीं है। क्योंकि इतिहास इसके लिये प्रमाण देता है कि, एक बार के लिये किसी परकीय सत्ता को मंजूर कर लेने पर फिर वह धीरे २ कायम के लिये हमारे सिर लद जाती है। केवल डेढ़ हजार सिविल सर्वेंटों द्वारा; साठ हजार अंग्रेजी सेना के बल पर तीस करोड़ भारतीयों पर राज्य-सत्ता चलाते रहने का भावार्थ यही है कि, भारतवासी ब्रिटिश सत्ता को स्वीकार करते हैं। और यह कार्य उन्होंने स्वेच्छापूर्वक ही किया है। ब्रिटिश नीतिज्ञों को यह बात अच्छी तरह मालूम है, किन्तु उन्हीं में के कुछ लोग जब इसे भूल जाते हैं, तब उन्हें उनकी नैतिक निर्बलता का स्मरण करा देना पड़ता है। सन १९०८ में बहिष्कार के रूप में यह स्मरण कराना पड़ा था। उस समय कलकत्ते में "राष्ट्रीय दल के सिद्धान्त" की विवेचना पर स्व० लोकमान्य तिलक का जो व्याख्यान हुआ था, उस पर से, तथा अन्यान्य स्थानों में भी "बहिष्कार" पर उन्होंने जो व्याख्यान दिये थे, उन सबको पढ़कर स्पष्ट ज्ञात होता है कि,

असहयोग के लिये लो० तिलक

कहां तक अनुमोदन करते थे, और सर्कार को उन्होंने किस वस्तुस्थिति का ज्ञान कराया था। उन व्याख्यानों के यहां ... आवश्यकता नहीं, किन्तु फिर भी यह कहा जासकता है ... नाम से वही आन्दोलन फिर आरंभ किया गया है। उदाहरण ... कत्ते के व्याख्यान में लो० तिलक ने कहा था कि: "यदि तुम्हें ... होना हो तो आज ही तुम स्वतंत्र हो सकते हो। क्योंकि बात ... में यह है कि, हमने स्वेच्छापूर्वक ही इस अंग्रेजी राज्य को ... किया है। और उनका राज्य कारोबार चलाता कौन है? हम ... ही तो सब कुछ करते हैं। रेल, तार, न्यायालय, और पाठशाला ... स्कूल सभी हिन्दुस्तानियों द्वारा चलाये जारहे हैं। हमारे ... हुए करों से उसे पैसा मिलता है। यदि तुमने अपने मन में एक ... इतना निश्चय कर लिया कि, हम इनके डाक, तार, रेल और न्या... *से काम न लेंगे, उसी समय बात की बात में इस राज्य* ... पहिये तटस्थ रह जायँगे। इसीको मैं 'राजकीय बहिष्कार' ... हूं।" हम पूछना चाहते हैं कि; इस बहिष्कार और असहयोग में अन्तर कौनसा है! अंग्रेजी राज्य को भारतीय जनता ने स्वेच्छा से स्वीकार किया है, और वह उसे स्थायी रूप में रखना भी चाहती है, किन्तु फिर भी पंजाबी दुर्घटनाएं होने पर वस्तुस्थिति का ज्ञान कराने ... अन्याय के परिमार्जनार्थ उसे विवश करना क्या न्याय संगत नहीं है? पंजाबी अत्याचारों से क्षुब्ध बन जाने वाले राष्ट्र ने असहयोग का नैतिक तत्व इसी लिये हाथ में लिया है! यह स्वराज्य संग्राम अब ... ब्रिटिश और भारतीय जनता के ही बीच नहीं; वरन् पश्चिमी सभ्यता ... भारतीय संस्कृति एवं आर्य देशाभिमान के बीच छिड़ा हुआ है। ब्रिटिश जनता और उसके मंत्रियों में कुछ भी समय सूचकता ... ज्ञान शेष रहा हो, तो उनका कर्तव्य होगा कि वे अपने इन दुष्... को यहां से हटाकर; भारत को स्वराज्य दे डालें। भारतीय ...

अंग्रेज़ी राज्य को न चाहती हो, सो बात नहीं है। वह तो केवल इस नौकरशाही को ही नष्ट करना चाहती है। इतने पर भी सर्कार यदि इस फौजी नौकरशाही को स्थायी रखना चाहती हो, तो कहना पड़ेगा कि; उसने आज तक भिन्न२ नामों की आड़ में इसी नौकरशाही का उपयोग किया है, और पंजाब में उसका पर्दा हट जाने से ही हमारी आंखें खुल सकी हैं। इसी नौकरशाही ने भिन्न २ पर्दों की आड़ में आज तक राज्य किया, और अंग्रेज़ी राज्य के ही घटोत्कच की माया से हम अंधे बन गये थे। क्योंकि आज तक सबको यही विश्वास रहा कि; उसके द्वारा हमें शिक्षा मिलेगी और उद्योग-धंदों की वृद्धि होने के साथ ही दूध-पानी की तरह न्याय भी किया जायगा, तथा इसीके द्वारा क्रम से सुख-शांति के साथ हमें 'स्वराज्य' भी मिल जायगा। और यह विश्वास अब भी कायम रह सकता है; जब कि सर्कार इस नौकरशाही का अस्तित्व मिटा देने की बात पर हमें विश्वास करादे। अन्यथा भारत तो यह निश्चय कर ही चुका है कि, अब वह सर्कारी संस्थाओं के माया-जाल में बिलकुलही न फँसेगा। महात्मा गान्धी का भी यही कहना है कि; अंग्रेज़ी राज्य को हम नीति, न्याय और सत्य की नींव पर खड़ा हुआ समझते हैं, किन्तु लार्ड चेम्सफोर्ड के कथनानुसार वह यदि केवल तलवार के ही बल पर खड़ा हुआ हो, तो उसके साथ हमें भी वैसा ही बर्ताव करना पड़ेगा। अतः जितना भी शीघ्र होसके उसे इस

फौजी सत्ता पर डाले हुए नैतिक पर्दे

को हटा कर उस राज्य पद्धति का सच्चा स्वरूप दिखला देना चाहिये। पंजाबी दुर्घटनाओं के कारण हमें इस रहस्य का भास हुआ, और इसीलिये असहकारिता के रूप में देश ने उसके विरुद्ध आन्दोलन मचाया है। आधुनिक आन्दोलन की यह मीमांसा अंग्रेज़ी जनता और उसके नीतिज्ञों को अच्छी तरह समझलेनी चाहिये। भारत अपनी उन्नति के लिये अंग्रेज़ी राज्य की सहायता चाहता है, और इसके लिये वह योग्य बदला चुकाने को भी तैयार है। किन्तु यदि उस बदले के रूप में गुलाम बनाने का ही उसने आग्रह किया तो, इसके लिये वह कभी तैयार नहीं हो सकता। क्योंकि भारत राजद्रोही नहीं है। वह केवल अन्याय अनीति और फौजी अंधाधुंधी का द्रोही है, और इसीलिये उसने असहयोग का शस्त्र धारण किया है।

असहयोग के कार्यक्रम में से कौंसिल के बहिष्कार वाली हलचल सफल हुई कही जासकती है। क्योंकि नये सुधारों को सफल बनाने के लिये जनता में जिस उत्साह और आनंद के उत्पन्न होने की आवश्यकता थी; वह कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा। कुछ स्थान के मतदाताओं ने बिलकुल ही मत नहीं दिये, और कहीं दिये भी गये तो सैकड़ा दस पांच। अधिक से अधिक मत दान सैकड़ा चालीस के हिसाब से हुआ। इस परसे क्या सिद्ध होता है? यही कि, लोग नयी कौंसिलों को नहीं मानते। महाराष्ट्र ने तो इस आन्दोलन को बहुत ही कुछ सफल कर दिखाया है। इस आन्दोलन के कारण प्रत्येक छोटे से छोटा गाँव तक जागृत हो चुका है, और प्रत्येक मतदार एवं उसके उद्देश्य से जनता पूर्णतयः सज्ञान हो चुकी है। पंजाबी दुर्घटना, एवं खिलाफत का ज्ञान छोटे से बड़े और गरीब से अमीर तथा पंडित से मूर्ख तक सभी को अच्छी तरह हो चुका है। निःसन्देह इस प्रकार राजकीय शिक्षा के विषय में हमने एक ज़ोरदार प्रयत्न कर दिखाया है। आज जो केवल ४० लाख मतदार निश्चित किये गये हैं, उनके बदले यदि प्रत्येक भारतवासी को ही मत-दाता बनाया जाता; तो सैकड़ा एक या दो के हिसाब से भी मत मिल पाते या नहीं, इसमें सन्देह है। अर्थात् इन सब बातों का भावार्थ यही है कि; भारत का बहुजन समाज प्रचलित राज्य पद्धति से बिलकुल ही असंतुष्ट है। अंग्रेज़ी शासनशास्त्र का नियम यह है कि; प्रजा की प्रसन्नता पर ही राज्यकर्ता उस पर अपनी सत्ता चला सकने का अधिकारी है, अन्यथा नहीं। इसी तत्व का समर्थन कर प्रे० विल्सन ने अपने 'स्वयं-निर्णय' के सर्वमान्य सिद्धान्त को राष्ट्रसंघ के सन्मुख उपस्थित किया था। भले ही आज वे इस सिद्धान्त को उपयोग में न लासके हों, किन्तु यह निश्चित है कि; आगे पीछे इसी तत्व पर समस्त राष्ट्रों की राज्य पद्धति स्थापित होगी। यदि प्रेसिडेन्ट विल्सन का आज पराभव हो गया तो इसके लिये चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है! क्योंकि सद्विचारों की कभी मृत्यु नहीं हो सकती। ईश्वर अमर है, और सत्य ही सर्वदा विजयी होता है। भविष्य के गर्भ की बातें न तो हम जान ही सकते हैं, और न समझ सकते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि; प्रजा के बहुमत का सहारा मिले बिना कोई सी भी राज्यपद्धति टिक नहीं सकती। इसी न्याय का यदि प्रचलित निर्वाचन के विषय में उपयोग किया जाय, तो स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि; गत निर्वाचन और प्रचलित राज्य पद्धति को जनता की ओर से बिलकुल ही अनुमोदन नहीं मिल पाया है। और इसीलिये प्रश्न खड़ा होता है कि

ये प्रतिनिधि हैं किसके ?

हम यह प्रश्न अंग्रेज़ी राज्यकर्ता एवं आंग्ल-जनता और उसके प्रतिनिधियों से कर रहे हैं! "लन्डन टाइम्स" जैसे कट्टर साम्राज्यवादी पत्र तक को इस बात का रहस्य पट चुका है, और उसने खुले शब्दों में कह दिया है कि; 'नई कौंसिलों का भारतीय जनता बिलकुलही अनुमोदन नहीं करती।' अतः हमारा अनुरोध है कि; असहयोग के विरोधी लोग उक्त पत्र के कथन पर विचार करके अब भी समय पर जाग उठें, इसी में उनका भला है।

असहयोग कार्यक्रम की अगली सिढ़ी पर पहुँचने के लिये भी राष्ट्र ने पैर बढ़ा दिया है। इन अगली सिढ़ियों पर चढ़ने के लिये विशेष स्वार्थत्याग, एवं अटल धैर्य और अक्षुण्ण श्रद्धा की आवश्यकता होगी, और आज तक की नस नस २ में भरी हुई कल्पनाओं को भी हमें त्याग देना पड़ेगा। कई लोगों का कहना है कि, 'असहयोग की ये सिढ़ियाँ कौंसिल के बहिष्कार की भांति सद्यः फलदायक नहीं है!' अत अब हमें इसी पर विचार करना पड़ेगा। यह तो एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जनता खुद ही यदि न्यायालय की सीढ़ी पर पैर न रखे, तो ये सब झगड़े बात की बात में दूर हो सकते हैं। तब इससे बढ़कर उत्तम मार्ग और हो क्या सकता है? लोगों से भी तो कोई इस बात का आग्रह नहीं करता कि; अंग्रेज़ी न्यायालय पंचायतों से अधिक और ठीक न्याय कर सकते हैं। हां: वकीलों की ओर से अपनी वकालत छोड़ने न छोड़ने के विषय में विकट वादविवाद उपस्थित किया जारहा है। किन्तु जब एक बार यह निश्चित होगया कि; आधुनिक सर्कार अन्यायी है, तब उसके न्यायालय में जाकर काम करते हुए, उसके अधिकारों का नैतिक समर्थन करना भी पाप ही सिद्ध हो सकता है। और इसी लिये पं० मोतीलाल नेहरू आदि बड़े २ वकील नेताओं ने वकालत छोड़ भी दी। वकालत छोड़ने के विषय में एक आक्षेप यह भी सामने लाया जाता है कि, वकालत छोड़ने का आग्रह करना एक प्रकार से वकीलों को महान् स्वार्थत्याग करने के लिये विवश करना है। किन्तु जब कोई बात घृणित ही मान लीगई, तो फिर उसको छोड़ देने में स्वार्थत्याग का नापतौल कैसे किया जासकता है? विद्यार्थियों के विषय में भी इसी प्रकार के कुछ आक्षेप सामने लाये जाते हैं। और लोग पूछने लगते हैं कि; यदि सब विद्यार्थियों ने ही स्कूल छोड़ दिये, तो असहयोगी उनके लिये क्या व्यवस्था करेंगे? किन्तु यथार्थ में इस प्रश्न का उत्तर तक देने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। फिर भी यह कहा जासकता है कि; यदि अस्सी लाख विद्यार्थियों ने ही स्कूल छोड़ दिये, तो अविलम्ब सर्कार को समस्त शिक्षा विभाग ही जनता के स्वाधीन कर देना पड़ेगा, और अपने लिये दूसरे नौकर न मिलने पर स्वराज्य भी दे डालना पड़ेगा। इसीलिये हम फिर यही आग्रह करते हैं कि; एकबार, अस्सी लाख विद्यार्थियों को स्कूल छोड़ने दीजिये और तब देखिये कि, हमारी बात कहां तक ठीक निकलती है! इसी विषय में दूसरा आक्षेप यह किया जाता है कि; इतनी राष्ट्रीय शालायें हैं कहां? किन्तु आक्षेपक लोग इस बात का विचार तक नहीं करते कि, यह संग्राम एक प्रकार की राष्ट्रीय हड़ताल है, और हड़ताल के दिनों में जिस प्रकार हम कोई भी काम नहीं करते, उसी प्रकार इस समय भी नये स्कूल या कालेज खोलने की आवश्यकता नहीं है। साल दो साल स्कूल में न जाने से ही यदि देश को स्वराज्य मिलता है तो, क्या विद्यार्थी इतना भी स्वार्थ त्याग नहीं कर सकते? तीसरा आक्षेप इसके विरुद्ध पक्ष में उपस्थित किया जाता है। वह यह कि; यदि सब विद्यार्थी स्कूल नहीं छोड़ते तो, केवल दो चार के छोड़ने से लाभ ही क्या? प्रत्येक आन्दोलन सामुदायिक होने पर ही सफल हो सकता है। इसके लिये उत्तर केवल यही दिया जासकता है कि; जिसे स्वराज्य की चाह हो, और जिसका स्व-मान जागृत हो, तथा जिसे देश के लिये स्वार्थत्याग करना हो, उसे यह धार्मिक दृष्टि से कर्तव्य ही कर दिखाना चाहिये। इसके लिये इधर उधर, आगे पीछे और दूसरों की ओर देखने की कुछ भी आवश्यकता नहीं। इन आक्षेपों के सिवाय वकील और विद्यार्थियों की ओर से एक प्रश्न यह भी उपस्थित किया जाता है कि; असहयोगियों का इस दोनों समाज

पर ही क्यों विशेष जोर दे रहे हैं? इसके लिये उत्तर केवल यही दिया जासकता है कि: भाई! आप लोग हमारे देश के लिये बौद्धिक आधारस्तंभ हैं, मातृभूमि के उज्वल रत्न हैं। और स्वराज्य-संग्राम के लिये शूर योद्धा हैं। इसीलिये हमें विश्वास हो चुका है कि: वकील और विद्यार्थी सरीखे

बहादुर सिपाहियों का आत्मयज्ञ

अवश्यमेव राष्ट्रीय कार्य को सिद्ध कर सकेगा। आज तक वकील लोगों ने ही देश की राजनैतिक हलचल को सम्हाला है। और अब भी उन्हीं का इसके लिये अग्रसर होना आवश्यक है। विद्यार्थियों की दृष्टि अपनी अपेक्षा संसारचक्र में पड़े हुए बड़े आदमियों से कहीं अधिक साफ होती हैं: और उन्हें स्वतंत्रता के स्वप्न भी दिखाई पड़ते हैं। भविष्यत् काल उन्हीं का है: और इसीलिये उनसे प्रार्थना की जाती है। यदि उन्होंने अपना अधिकार खो दिया, तो वे अपने कर्तव्य से च्युत हो जायँगे और देश की दुर्दशा करने में कारणीभूत बनेंगे।

असहयोग-कार्यक्रम के अनुसार आगे पैर बढ़ाते २ ही हमें इस बात की सफलता का प्रमाण भी मिलने लगा है। इँग्लैण्ड के नीतिज्ञ और समाचार-पत्रों के सम्पादकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो चुका है: और पार्लमेन्ट में भी प्रश्नोत्तर होने लगे हैं। अभी उस दिन लार्ड सभा में लार्ड सेलबॅर्न ने साफ कह दिया कि: यदि भारत सर्कार ने असहयोग के विरुद्ध चढ़ाई शुरू नहीं की: तो भावी अनर्थ का भार उसीके सिर फूटेगा। यह कथन इस बात के लिये एक खासा उदाहरण है कि: जब आफत सिर पर आती है; तब दोष की जवाबदारी लेने का कोई साहस नहीं कर सकता। यदि सर्कार की इच्छा इस आन्दोलन को बन्द कर देने की हो; तो उसके लिये उत्तम उपाय यह। यही है कि: असंतोष के कारणों को वह दूर कर दे। पंजाब के विषय में राष्ट्रीय सभा ने जो २ बातें करानी चाही हैं, उन्हें स्वीकार कर खिलाफत का निर्णय भारतीय मुसलमानों के लिये संतोषकारक रूप में किया जाय, और पंजाब की तरह आगे कभी ऐसी दुर्घटनाएँ न होने देने के लिये अविलम्ब भारत को पूर्ण स्वराज्य दे दिया जाय। यही एक सरल उपाय है: और इसीसे सर्कार को काम लेना चाहिये। इस प्रकार की सूचनाएँ प्रकट और निजी रूप में दी ही जारही हैं। कर्नल वेजवुड ने भी समाचार पत्रों में इसी प्रकार की एक सूचना निकलवाई है, जिस पर कि आजकल चारों ओर चर्चा हो रही है। असहयोग के विषय में अपना मत देते हुए उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि असहयोग की उत्पत्ति एक मात्र ओडायर सम्प्रदायी नौकरशाही है अतः सारा दोष उसीको दिया जासकता है। वे आगे चलकर फिर कहते हैं कि: मैं यदि भारतीय होता तो अपने सैकड़ों देश भाइयों की हत्या होती देख कभी चुप नहीं बैठ सकता। और खूनियों को अपने ही पैसों से पेंशन दिलवाकर उनके आत भाइयों द्वारा पुरस्कार स्वरूप लाखों रुपये दिये जाते देखकर बुरी तरह ... उठता। उन हत्यारों के घृणित कार्यों पर पार्लमेन्ट द्वारा पर्दा ... जाता देख कर, मैं असहयोग से भी आगे पैर बढ़ा देता। इस कर्नल साहब ने अपना अभिमत प्रकट किया है। हां, कौंसिल बहिष्कार अलबत्ता उन्हें पसन्द नहीं है। इसी प्रकार असहयोग आन्दोलन में उन्हें कुछ द्वेष की बू भी आती है। किन्तु महात्मा गांधी किसी भी द्वेष-मूलक आन्दोलन में योग नहीं देते, और कर्नल वेजवुड के कथनानुसार अन्य लोग द्वेषबुद्धि के कारण भड़क उठे हों; तो भी महात्मा जी के उपदेश के सन्मुख उनके उद्देश्य निःसार ही सिद्ध होंगे, यह बात उन्हें अच्छी तरह याद रखनी चाहिये। फिर भी यह तो स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि; कर्नल वेजवुड यथाशीघ्र इस आन्दोलन को बन्द करा देने के लिये इच्छुक हैं। और इसीलिये उन्होंने यह सूचना उपस्थित की है कि: सर्कार और जनता के बीच के झगड़े मिटाने के लिये उभय पक्षों की एक प्रतिनिधि सभा की जानी चाहिये। और उस सभा की पहली शर्त-निश्चित समय में ही भारत को

पूर्ण स्वराज्य और राष्ट्रीय सेना

स्थापित करने का अभिवचन देना—हो। और तब जनता सहयोग करे। कर्नल वेजवुड की इच्छानुसार यह प्रश्न राष्ट्रीय महासभा को हाथ में लेकर उपरोक्त मांग उपस्थित करनी चाहिये। किन्तु उनकी इस सूचना के सर्वमान्य होने में हमें सन्देह ही है। क्योंकि इस झगड़े की मूल अपराधिनी नौकरशाही है, अतः उसे ही अपने पातकों का प्रायश्चित कर दिखाने को तैयार होना चाहिये। सिवाय में उसके वचनों पर भी हमें अब विश्वास नहीं रहा। क्योंकि आज तक उसने वचन भंग की नींव पर ही अपनी सत्ता को टिका रक्खा है। अतः उसे प्रत्यक्ष कृति द्वारा आज तक के अपने दुष्कृत्यों से निवृत्त होना चाहिये। तभी उस पर हमें विश्वास हो सकेगा। राष्ट्रीय सभा के लिये यही उचित है कि, वह इस झंझट में ही न पड़े। यदि सुलह होता हो तो बड़ी ही अच्छी बात है, किन्तु उसमें राष्ट्रीय अपमान की गंध तक न रहनी चाहिये। राष्ट्रीय सभा ने अपनी मांग इससे पूर्व ही उपस्थित करदी है, और उसमें घटाने या बढ़ाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। सिवाय में इस बार उसके सन्मुख असहयोग के विषय में आगे तैयारी का काम मौजूद ही है। अपने उद्देश्य का प्रश्न भी इस बार वहां हल होगा ही। अतः समस्त राष्ट्रभक्तों का कर्तव्य धर्म है कि, वे राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में उपस्थित होकर देश कार्य में सहायता पहुँचावें। क्योंकि इसी अधिवेशन पर सम्पूर्ण भावी राजनैतिक कार्यों का आधार है। भारत को ईश्वर का आशीर्वाद मिल चुका है अतः इस प्रकार की आशा रखना कभी अनुचित नहीं कहा जासकता कि; वह उस कृपाप्रसाद और स्वार्थत्याग के बल पर अवश्य ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर लेगा। तथास्तु,

---

"राजनीतिलता"

(१)

" [illegible]

[illegible] है।

[illegible]

[illegible] है।

[illegible]

[illegible] है।

[illegible]

[illegible] है।

(२)

[illegible]

श्री छत्रपति शिवाजी महाराज।

'रणधीर', 'रणंजय' धीधर हो
समझे शिवराज समान नहीं।
पर हाय अकिञ्चन 'शंकर' से,
कवि भूषण की गरिमा न गहीं॥
बिन फूल कली मुरझाय रही,
कविता बन बेली वृथा उमही!
हिय साधन ... में,
... मन की मन माहि रही॥
...

"राजनीति-त्रिवेणी"

" [illegible]

[illegible]

स्वीकार किया, तो अवश्य ही मैं वह पद ग्रहण कर सकूंगा। इस प्रकार जब उस आउर्द ने ही खुद व्हेनिज़ेलास को उत्तर दे दिया, तब वह उसके खण्डन करने का साहस न कर सका। अर्थात् मित्रसर्कार का अनुमोदित स्वयंनिर्णय का तत्व ही व्हेनिज़ेलस के लिये बाधक बन गया। फलतः जिसे उसने राजा बनाना चाहा था, उसके इन्कार कर देने पर दूसरे किसी का चुनाव करना व्हेनिज़ेलस को लज्जास्पद जान पड़ा। क्योंकि जब वह आउर्द ही खुद स्वभाग्य निर्णय का तत्व सामने लाने लगा, तब उसका विरोध कर सकना व्हेनिज़ेलस के लिये कठिन हो गया, बस; इसीसे उसे लज्जा प्रतीत होने लगी; और खुद ही ज़बरन् गद्दी पर बैठ जाने में कुस्तुन्तुनियाँ को हथियाने विषयक उसके रुकावट डालने लगी। इस तरह के चक्कर में फंस जाने पर एम्. व्हेनिज़ेलस ने यह युक्ति निकाली कि; ग्रीस के रिक्त-सिंहासन की व्यवस्था के लिये वहां की पार्लमेन्ट का नया निर्वाचन होना चाहिये, और तब वह जिसे राजा बनाना चाहे; उसे लोकमतानुसार राज्यपद सौंपा जाय। फलतः थोडी देर के लिये व्हेनिज़ेलस को इस प्रकार भास हुआ कि; यदि पार्लमेन्ट का नया निर्वाचन अपने ही लोगों का हुआ, तो रिक्त सिंहासन पर अधिकार जमाने में मुझे कुछ भी कठिनाई न होगी। अर्थात्, उसने इसके लिये अपनी सम्मति प्रकट करदी, और नवम्बर के दूसरे सप्ताह में नई पार्लमेन्ट का चुनाव भी हो गया। उस समय मतदारों के सन्मुख यह समस्या उपस्थित थी कि; व्हेनिज़ेलस के पक्ष का समर्थन किया जाया या राजा कान्स्टटाइन की बाजू सम्हाली जाय? किन्तु व्हेनिज़ेलास के तात्रे में की पार्लमेन्ट भंग हो कर नये निर्वाचन का आरंभ किया जाते ही कान्स्टंटाइन के पक्षपातियों ने सिर उठाया, और उन्होंने अपने मनोनीत राजा के चित्र का जुलूस भी खास एथेन्स नगर एवं अन्यान्य स्थानों में निकाला। उस जुलूस के लिये व्हेनिज़ेलस के पक्ष ने रुकावट डाली, और कहीं २ मारपीट भी हुई। व्हेनिज़ेलस को विश्वास था कि; इस निर्वाचन में अवश्य ही मैं विजयी हूंगा, और विरुद्ध पक्ष वाले जरा भी सिर ऊंचा न कर सकेंगे। किन्तु जब प्रतिपक्षी को जुलूस निकालते और मार पीट करके भी अपना संकल्प पूरा करते देखा, तब व्हेनिज़ेलस के पक्ष वालों को मत दाताओं के सन्मुख अपने सूत्र चालक का गुणगान करना पड़ा। वे कहने लगे कि; ग्रीस जैसे छोटे से देश को बाल्कन युद्ध और यूरोपीय महायुद्ध के समय अपनी कार्रवाई द्वारा एम्. व्हेनिज़ेलस ने ही राष्ट्र-पद को पहुँचाया है; यही नहीं वरन् ग्रीस राष्ट्र को तुर्कों के लिये भारी बनाकर कुस्तुन्तुनिया में उसकी राजधानी स्थापित करते हुए, यूरोपखण्ड में उसे अपना नाम प्राचीन और अर्वाचीन राष्ट्रों की सूची में पुनः सम्मिलित करा सकने का मौका भी व्हेनिज़ेलस की कर्तृत्वशीलता के कारण ही मिला है। अपने पक्षपातियों की ओर से इस तरह लोकमत संग्रह कराते हुए खुद व्हेनिज़ेलस ने जनता के सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित किया कि; तुम लोग इस तरह छोटे ही बने रहना चाहते हो; या विख्यात राष्ट्रों की जोड़ में बैठकर ग्रीस के प्राचीन वैभव की पुनरावृत्ति किया चाहते हो? सब को आशा थी कि; इसका उत्तर व्हेनिज़ेलस की इच्छानुकूल ही मिलेगा। यहां तक कि; फ्रांस के नीतिज्ञ और पत्र संपादकों ने तो ये उद्गार भी निकाल दिये कि; निश्चय पूर्वक ही नया निर्वाचन व्हेनिज़ेलस के पक्ष में होगा। अर्थात् इस बात को किसी को शंका तक न हुई कि; इस कार्य में व्हेनिज़ेलस के प्रण के सिवाय दैवगति का भी कुछ अंश है। फलतः सबको दृढ़ विश्वास हो गया कि; यह निर्वाचन केवल व्हेनिज़ेलस के बायें हाथ का खेल है! और ऐसा होना स्वाभाविक भी था। क्योंकि गत १०।१२ वर्षों में उसने जिन कारस्थानों की रचना की और जो यश संपादन किया है, उसे देखकर मतदारों पर अवश्य ही उसका प्रभाव पड़ना चाहिये था। तुर्क मन्त्री ने कुस्तुन्तुनियाँ को पके फल के समान बना दिया है, और वह डाली पर से कब टपक पड़ेगा; यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जासकता। अतः उस फल के लिये व्हेनिज़ेलस को संभावित अधिकारी बतलाना स्वाभाविक ही था। अर्थात् इस प्रकार पूर्ण विश्वास हो जाने के बाद जिस निर्वाचन का आरंभ किया गया, वही अन्त में व्हेनिज़ेलस के विरुद्ध हो गया। स्वयं व्हेनिज़ेलस तो चुना नहीं ही गया, किन्तु उनके मित्रवर्ग में से भी अधिकांश मंत्री [illegible] रह गये। अर्थात् निर्वाचन के समय ऐसे प्रबल पक्ष की ऐसी पराजय होने का उदाहरण इतिहास में शायद यह पहला ही है। निर्वाचन की बाज़ी लगाई तो व्हेनिज़ेलस ने थी और उसे [illegible] गया विरुद्ध पक्ष! अस्तु, ग्रीस और कान्स्टंटाइन-पक्ष की धाक जम गई। और अन्त को फौजी-मत भी विरुद्ध के अनुकूल बन जाने पर; नये चुनाव का परिणाम प्रकट होकर मंत्रिमण्डल के अधिकारारूढ़ होने से पूर्व ही; अपने त्यागपत्र रिजेंट को देकर एम्. व्हेनिज़ेलस ग्रीस से विदा हो; [illegible] में जा बसे! व्हेनिज़ेलस सदृश ग्रीस के भाग्यनिर्माता-कालीन [illegible] इस प्रकार अकस्मात ही विदेश में जाकर अज्ञातवास [illegible] विवश होना पड़ा; यह घटना महायुद्ध के अंतिम भाग का [illegible] पूर्ण आश्चर्य है। इस चमत्कार की मीमांसा लोगों ने भिन्न २ [illegible] से की है। कुछ लोगों का कहना है कि; ग्रिशियन [illegible] टाइन पर विशेष प्रेम रहने के कारण ही ऐसा हुआ, तो कई [illegible] हैं कि; ग्रीस का कान्स्टंटाइन पर प्रेम तो था ही; किन्तु [illegible] के कहने से उसे सिंहासन छोड़ना पड़ा; यह बात ग्रीस के लिये मानास्पद थी, अतः ऐसा हुआ। बात यह भी ठीक है। किन्तु प्रेम और अपमान से ही इस घटना का खुलासा नहीं हो [illegible] क्योंकि महायुद्ध की लहर उठने पर जब ग्रीस के समुद्र में [illegible] मित्रसर्कार की नौ सेना से भयभीत होकर वहां की प्रजा ने [illegible] वह अपमान सह लिया, और अपने राजा विषयक प्रेम भाव पर एवं आत्महित को छाप लगादी, तब आज वह कैसे नष्ट की जासकती है? उस छोटे से ग्रीस को मित्रसर्कार की नौ सेना का भय [illegible] प्रतीत न होगा? मित्रसर्कार की अप्रसन्नता के कारण [illegible] में विघ्न उपस्थित होने की बात वह क्यों कर भूल सकता है! जब भय और आत्महित दोनों ही बातों का जोर पूर्ववत् बना है; तब केवल कान्स्टंटाइन विषयक प्रेम ही की लहर कैसे उमड़ सकती है? यदि यह कहा जाय कि, राजपुरुष और राजपरिवार पर जनता का दृढ़ प्रेम है, तो इस पर भी विश्वास नहीं हो सकता। क्योंकि एक तो यह समय ऐसा नहीं, दूसरे तीन वर्ष पूर्व जब कान्स्टंटाइन को ग्रीस में से निकाल दिया था, उस समय जर्मन अथवा आष्ट्रियन किंवा रशियन बादशाहों के राज्य और राजपरिवार की उज्वल कीर्ति यूरोप में अस्त नहीं होगई थी। वह समय तो केवल इनके नाम पर ही लाखों मनुष्यों को झुका सकने जैसा था। वर्तमान काल यूरोप के लिये राजा बादशाहों के अनुकूल नहीं, प्रजा सत्ताक राज्यपद्धति भी इन दिनों फीकी पड़ गई है, अर्थात् केवल लेनिन और बालशेविकों का ही तेज इन दिनों बढ़ रहा है। ऐसी दशा में राजा को कौन पूछने बैठता है? फलतः राजपरिवार की आवश्यकता या विशिष्ट राजपुरुष विषयक प्रेम के कारण ही ग्रीस की यह राज्य-क्रांति घटित हुई नहीं कही जासकती। कुछ लोगों का कहना यह है कि; तीन वर्ष पूर्व कान्स्टंटाइन के कार्य काल में ग्रीस की सामान्य प्रजा को भी पेटभर खाने को मिलता था, किन्तु आज कल की महँगाई के कारण सभी लोग त्रस्त हो रहे हैं। इसीलिये कान्स्टंटाइन के पुनरागमन से लोगों को पुनः भरपेट अन्न मिलने की सम्भावना समझ, अन्धश्रद्धा के कारण लोगों ने व्हेनिज़ेलस को [illegible] से भगा दिया है। किन्तु कान्स्टंटाइन के गद्दीपर बैठते ही महँगाई दूर हो सकती हो, सो भी नहीं। और इसे यहां की जनता अच्छी तरह समझे हुई है। इसी तरह वह इस बात को भी खूब जानती है कि महत्वाकांक्षी देश को कष्ट सहने के लिये तैयार रहना पड़ता है। [illegible] नवम्बर मास में कान्स्टंटाइन दल ने अपना यह ध्येय प्रकट किया [illegible] कि; हम महायुद्ध के कारण प्राप्त लाभों को छोड़ना नहीं चाहते हैं, न ग्रीस के उत्थान-मार्ग को ही रोकना चाहते हैं। किन्तु उसने [illegible] कभी नहीं कहा कि; हमारे अधिकारारूढ़ होने से लोगों को [illegible] अन्न भी मिलेगा। यदि कोई इस प्रकार का विश्वास दिलाये [illegible] यह उसे मान लेने जितना मूर्ख नहीं है। चुनाव पर योग्य प्रभाव डालने के लिये ग्रीस देश को धमकाने में भी मित्रसर्कार ने कसर न रक्खी। और सब ने एक साथ अभ्युदय के मार्ग में रुकावट [illegible] पुकार मचाई; साथ ही—कान्स्टंटाइन और कैसर के बीच [illegible] बहनोई का नाता रहने के कारण, इसे वापस बुलवाना मानो [illegible] लोकसत्ता के जमाने में अन्यायपुक्त राज्य सत्ता को आमंत्रित [illegible] है, और इस अयोग्य राजा के पुनः सिंहासनारूढ़ होने से [illegible] होने के बदले और भी बढ़ जाने की संभावना है—इस [illegible] विविध विचार भी ग्रीस की जनता के सन्मुख उपस्थित किये [illegible] किन्तु बहरे आदमी को संगीत सुनाने पर जो दशा होती है, [illegible] इस प्रयत्न की भी हुई! कोई सा भी विचार परिणामकारक न हुआ [illegible] और अन्त को निर्वाचन के समय मत दाताओं ने स्पष्ट कर [illegible]

कुछ भी हो, किंतु एकबार कान्स्टंटाइन का पुनरागमन होकर व्हेनिज़ेलस का मुँह अवश्य काला किया जाना चाहिये। अर्थात् उस समय कान्स्टंटाइन के प्रेम की अपेक्षा व्हेनिज़ेलस विषयक घृणा ही विशेष रूप में दिखाई दी। इस ग्रिशियन राज्यक्रांति ने यूरोप के समस्त महत्वाकांक्षी तज्ञों और सेनानायकों को जो पाठ पढ़ाया है, वह सामान्य या त्याग देने जैसा नहीं है। वरन् वह यह बतलाता है, समस्त भली महत्वाकांक्षाओं से भी कालान्तर में लोगों को अरुचि उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। और उस समय की मर्यादा को न पहचानने वाले तज्ञ अनायास ही रसातल को चले जाते हैं। महत्वाकांक्षी होना या वैभव संपन्न पद पर आरूढ़ होना, अथवा पराक्रम दिखाकर स्वजनों का कल्याण करना आदि बातें मनुष्य स्वभाव के लिये कितनी ही प्रिय हों किंतु उसकी नींव ही इस पर रची हुई नहीं होती। पूर्व कालीन अर्जुनों योद्धा हमेशा ही धनुष्य पर बाण चढ़ाये नहीं बैठता, इस प्रकार यूरोप में एक कहावत है। उसीका अनुभव इस समय व्हेनिज़ेलस को अच्छी तरह प्राप्त हुआ है। लगातार महत्वाकांक्षी रहना, बराबर पराक्रम दिखाने की तैयारी करना और समान रूप में पैर बढ़ाते रहना, सहसा मनुष्य-स्वभाव को नहीं पटता। मनुष्य प्राणी का जन्म संसार के उपभोग करने को हुआ है, और उसके आनंद को नष्ट न होने देकर बराबर बढ़ाने एवं उसे स्थायी बनाने के लिये ही पराक्रम की योजना हुई है। आनंद आरंभ में है, मध्य में है और अन्त तक वह रहता है; किन्तु पराक्रम केवल बीच २ में ही कुछ समय तक दिखाई पड़ता है। जब पराक्रम ही पूरे समय को ले बैठता है, और वर्षों तक संसार का आनंद पराक्रम के नीचे दबा दिया जाता है, उस समय देह-स्वभाव का मुख्य स्वामी-आनंद चौंककर अपने पर कूदने वाले पराक्रम को मार भगाता है। अर्थात् पराक्रम नहीं, किन्तु आनंद ही संसार में मुख्य है। पराक्रम के जोश में इस नियम को भूल जाने के कारण ही समस्त कर्ता पुरुषों को आज तक धोखा खाना पड़ा है। और व्हेनिजेलस को भी इसी न्यायानुसार बात की बात में वैभव के शिखर पर से एकदम नीचे गिर जाना पड़ा है। अतः ग्रीस के लोभी कब तक समान रूप से पराक्रम दिखाते रहें? इसके लिये कोई मर्यादा भी है या नहीं? महायुद्ध से पूर्व तुर्किस्तान में युवा तुर्कों का दल स्थापित होकर, वहां नई हलचल शुरू होने के दिन से; अर्थात् लगभग दस बारह वर्ष से तरुण तुर्क और ग्रीस की जनता के बीच पराक्रम की स्पर्धा का श्रीगणेश हो चुका है। युवा तुर्कों को गत १०।१२ वर्षों से लगातार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा; और आज भी उनका जीवन संकट मय बन रहा है। सेलिनोका में उनके मंडल की स्थापना हो जाने के दिन से ही ग्रीस के आधुनिक नये पराक्रम का आरंभ हुआ है। बाल्कन युद्ध की व्यूह रचना भी एम. वेनिजेलस ने ही की थी। और युद्ध के अंत में ग्रीस की कीर्ति भी उसी के द्वारा बढ़ी। उस बाल्कन युद्ध से ही गत महायुद्ध का जन्म हुआ, और पिछले छह सात वर्षों तक उसे लगातार प्रयत्न करना पड़ा। महायुद्ध के अंत में जो तुर्क सन्धी हुई, उस के द्वारा प्रबल राष्ट्रों की जोड़ में जा बैठने के लिये ग्रीस का मार्ग खुल अवश्य गया, परन्तु व्हेनिजेलस के प्रयत्न से खुलने वाले इस मार्ग का आशय क्या हो सकता है? युवा तुर्क और मुसलमानी-प्रदेश को मित्रसरकारने मृत्यु के ऊंखल में डालतो दिया; किन्तु जब महायुद्ध रूपी मूसल के आघात सहकर मरना उनलोगोंने अस्वीकार किया; तब सरकारने उसे केवल ऊंखल में डालने मरका ही प्रयत्न कर के ग्रीस से कहा कि; मूसल को उठाते २ हमारे हाथ थक गये हैं, इस लिये अब तुम उस को हाथ में लेकर इन मुसलमानों का चूर्ण कर दो। और उस पौष्टिक चूर्ण का सेवन करके बलवान बन जाने पर कुछ दिनों बाद तुम खुशी से हमारे साथ समानता का बरताव करना। तुर्की राष्ट्र और मुसलमान विषयक जो निर्णय तुर्क सन्धी द्वारा हुआ और एम. वेनिजेलस ने जिसे मान्य किया है, वह निर्णय उपरोक्त प्रकार का है। गत् बारह वर्षों तक के झगड़ने से ही छोटासा ग्रीस देश राष्ट्र पद को प्राप्त कर सका है; किन्तु मुसलमानों का चूर्ण करने में उसे और भी १२ वर्ष लगेंगे और इसके बाद कहीं जाकर वह बड़े राष्ट्रों की समता कर सकेगा। यह वेनिजेलस के ध्येय का सारांश है। किन्तु इस प्रकार २४ वर्ष तक झगड़ते रहना मानों एक दो पीढ़ियों को लिये संसार के आनंद से मुख ही मोड़ लेने जैसा होगा, और मनुष्य स्वभाव के लिये पराक्रम दिखाने का इतना उत्साह बिना संकट की घड़ी उपस्थित हुए उत्पन्न हो नहीं सकता। ग्रीस जिस प्रकार गत १२ वर्षों से पराक्रम की हवा में उड़ रहा है, उसी प्रकार युवा तुर्क भी समान रूप से प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु उन्हें और भी कई वर्षों तक यह प्रयत्न करना पड़ेगा; क्योंकि उनका संसार मृत्यु पथ की ओर अग्रसर होता जाने के कारण सांसारिक आनन्द की बातें उनके सामने आ ही नहीं सकतीं। पराक्रम की ज्योति से आज ग्रीस का संसार सुखमय बन गया है। किन्तु इस दशा में वह यदि मुसलमानों के पूर्ण दमन करने का भार उठाने में आनाकानी करे और नये भार के प्रति अरुचि दिखावें तो इस में आश्चर्य ही क्या? क्योंकि पराक्रम के लिये भी तो विश्रांति की आवश्यकता रहती है! और इस विश्रांति के टाल देने पर पराक्रम से भी लोगों को कन्टाला आजाता है। यही नहीं वरन्; उसके प्रति मनुष्य घृणा भी करने लग जाता है। एम्. वेनिज़ेलसने इस विश्रांति को टाल कर योद्धाओं को छुट्टी नहीं दी, और लोगों को थके रहने की दशा में संसार सुख से वंचित किया। फलतः विराम की आवश्यकता ने पराक्रम के प्रति अरुचि दिखाई, और उस अरुचि का रुपान्तर घृणा में हो गया। बस, उसके प्रति अवहेलना की जाने के साथ ही एम्. वेनिज़ेलस को ग्रीस ने फटकार बतला कर फ्रान्स में भाग जाने के लिये विवश कर दिया! दिसंबर के दूसरे सप्ताह में राजा कान्स्टंटाइन जिस आश्चर्य के कारण ग्रीस के सिंहासन पर आ विराजा, उसने इंग्लैण्ड और फ्रान्स को साफ सुना दिया है कि; यदि आगे कभी इस भांति की निरर्थक महत्वाकांक्षा स्वल्प प्रमाण में भी दिखलाई तो तुम्हारे तज्ञों को कौड़ी मोल भी कोई न पूछेगा। पराक्रम और युद्ध विषयक अरुचि उत्पन्न होने की मर्यादा न पहचानने के कारण ही रशिया के ज़ार धूल में मिलगये, और आष्ट्रो-जर्मन परिवार भी नामशेष हो गये। किन्तु केवल पराक्रम और आपत्ति के समय ही इस मर्यादा को पहचाना जाता हो; सो बात नहीं है। क्योंकि विजय प्राप्त होने पर भी इसे पहचानना पड़ता है। महायुद्ध में प्राप्त विजय के इस पश्चात् मर्यादा को न पहचानने के कारण सेनापति डेनिकन को सहायता देने वाले इंग्लैण्ड के कर्ज़न-चर्चिल सदृश नीतिज्ञ भी अपने पक्ष की मानहानि करने पर उतारू हो गये थे, और सेनापति रैंगल को सहायता देने वाले फ्रान्स के तज्ञ भी इसी कारण देश में सिर झुका कर बैठ गये हैं। इसी भांति इटली का विजयी दल भी एड्रियाटिक सागर की निरर्थक महत्वाकांक्षा के फेर में पड़ कर अपने अधिकारों को त्याग चुपचाप घर बैठ गया, और तुर्क विषयक निरर्थक महत्वाकांक्षा का अनुमोदन करने से ग्रिशियन जनता के इन्कार कर देने पर एम् वेनिज़ेलस का सूर्य भी अस्त हो गया है। महायुद्ध वाले पराजय के कारण जर्मनी, आष्ट्रिया और रशिया के समस्त कर्ता-पुरुषों में नाचाकी हो गई; और विजय के बाद महत्वाकांक्षा के लिये समय और स्थान की दृष्टि से उचित सीमा निश्चित करने में जिन २ तज्ञों ने इन्कार किया था; उन सब (इंग्लैण्ड, फ्रान्स, इटली और ग्रीस के विख्यात तज्ञों) की केवल दो वर्ष में ही बदनामी हो गई है। इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री मि. लायड जार्ज को छोड़ कर महायुद्ध के समय करामात दिखाने वाला ऐसा कोईसा भी तज्ञ नहीं बच पाया है, जोकि आज सिर ऊंचा कर सके। एम्. वेनिज़ेलस की नाक भी इस प्रकार अचानक ही कट जाने के कारण, इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री के लिये आयर्लैंड के उत्तरे से भी सावधान रहना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार महायुद्ध में और उस के दो वर्ष बाद सभी की इज्जत धूल में मिल चुकी है। भला; यह चतुरता का लंकादहन क्या सूचित करता है? यही कि; महायुद्ध के तूफान फँसा हुआ अखिल संसार अब युद्ध से बेतरह घबरा उठा है, और विजयी लोगों को भी अपनी महत्वाकांक्षा मर्यादित कर युद्ध का बहिष्कार करना आवश्यक प्रतीत होने लगा है। समस्त जग अब विश्रांति चाहता है, अत जो लोग इस में बाधा डालेंगे वे वेनिज़ेलस की भांति गड्ढे में गिरने से कभी नहीं बच सकते। इस प्रकार ग्रिशियन राज्यक्रांति पर से सूचित होता है। इस क्रांति का परिणाम दिसंबर के आरंभ में एंग्लो-फ्रेंचों पर भी हुआ सा जान पड़ता है। क्योंकि युद्ध टाल कर यदि ग्रीस तुर्कों से सरलता-पूर्वक बर्ताव करने वाला है तो, हमें भी तुर्क सन्धी बदलनी चाहिये, इस प्रकार-फ्रेंच तज्ञों का विचार हो चला है, और अंग्रेजनीतिज्ञ भी हां नां कर करते उसी मार्ग को लग चुके हैं! रशिया में बोलशेविक सत्ता के पैर आज की तरह गत दो वर्षों में भी कभी नहीं जम सके थे। पश्चिम की ओर फैलकर मध्य और पश्चिम यूरोप में अपने मन का

प्रसार करने विषयक बॉलशेविकों का उद्योग पोलैण्ड वाले पराभव के कारण ठंडा पड़ कर; लेनिन और ट्रास्की का ध्यान इंग्लैण्ड और फ्रान्स को मुसलमानों द्वारा त्रास पहुँचाने की ओर ही विशेष रूप से लगा हुआ है। कमाल पाशा और लेनिन के बीच गुप्त सन्धी हो जाने के सिवा बॉलशेविकों से उसे गोली बारूद की भरपूर सहायता प्राप्त होने का भी वचन मिल चुका है। दक्षिण काकेशिया अर्थात् अज़र बेज़न प्रान्त की बॉलशेविक सेना और तरुण तुर्कों के बीच आर्मीनिया का बांध था; किन्तु तुर्कों के द्वारा आर्मीनिया की नस ठिकाने लादी जाने के कारण वहां भी बालशेविक ढंग की राज्यपद्धति शुरू हो गई है. और अब बालशेविक एवं मुसलमानों के बीच किसी भी प्रकार की रुकावट शेष नहीं रही है। अज़र बेज़न आर्मीनियां, बुखारा-समरकंद एवं कास्पियन सागर के किनारे का मुसलमानी प्रदेश-इन सब स्थानों में प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से बाल्शेविकों की राज्यपद्धति प्रचलित होचुकी है। मास्को वाली लेनिन और ट्रास्की की सरकार इन सब मुसलमानी या अर्ध इस्लामी प्रान्तों को पूर्ण स्वतंत्र मानती हुई इस बात का आग्रह करती है कि; वे सब बाल्शेविकों की कक्षा में रहें और उनके मत का प्रसार करने में सहायता दें। इन सब प्रदेशों का एक स्वतंत्र संघ स्थापित हो जाने के साथ ही इनकी समग्र सेना का आधिपत्य भी लेनिन-ट्रास्की ने अन्वरपाशा को सौंप दिया है। इस प्रकार पाशा के सेनापति बन जाने के कारण अफ़गानिस्तान और ईरान को भी इसमें सम्मिलित करने के लिये अन्वरपाशा की ओर से जोर शोर का प्रयत्न शुरू होगा। मुसलमानी खिलाफ़त कुस्तुन्तुनिया के सुल्तान को न दे कर अफ़गानिस्तान के अमीर को ही वह अधिकार देने की सूचना मुसलमानी संघ में स्वीकृत हो चुकी है; और खिलाफत के लोभ से उस संघ में अमीर अफ़गान के फँस जाने पर भी लोगों ने तरह २ की कल्पनाएँ खड़ी की हैं। यदि बालशेविक और युवा तुर्कों को विश्रांति मिलकर दो चार वर्षों में यह संघ बलिष्ठ बन गया तो, बुखारा, कास्पियन प्रांत, अफ़गानिस्तान, ईरान, तुर्क और दक्षिण काकेशिया इन सब मुसलमानी टापुओं की संगठित नई शक्ति विश्रांतिकाल के बाद संसार को अवश्य दिखाई देगी। इस नई शक्ति को रशिया का पूर्णतया अनुमोदन रहने के कारण रेल, तार, विमानादि साधनों की भी कमी प्रतीत न होगी। इंग्लैण्ड की छाती पर एशिया खण्ड में इस शक्ति को नचवाने के लिये ही लेनिन और ट्रास्की अपनी तपश्चर्या को इस नई शक्ति के उत्पन्न करने में लगा रहे हैं। और ऐसा वे जान बूझकर ही कर रहे हैं; इसका पता मुस्लिम-संघ के सेनापतित्व पर अन्वर पाशा की नियुक्ति दे रही है। ग्रिशियन राज्यक्रांति के कारण तुर्क-सन्धि को बदलने में फ्रांस की ही तरह इंग्लैण्ड के नीतिज्ञ भी विरुद्ध नहीं है। किंतु मुस्लिम संघ की यह नई शक्ति पूर्ण प्रकार संगठित होने वाली नहीं। क्योंकि कम से कम तुर्कों को तो बालशेविकों से अलग करने का जी तोड़ प्रयत्न करने के बाद ही कमाल पाशा के अनुयाइयों के लिये तुर्क-सन्धी में संतोषकारक परिवर्तन करने को अंग्रेज तैयार होंगे। बालशेविकों में से कमाल पाशा को अलग करने के लिये ज़ोर शोर का प्रयत्न किया जारहा है, और इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री लायड जार्ज ने हाल ही में पार्लमेन्ट के सम्मुख सूचना दी है कि; पर्दा उठने पर संसार को कमाल पाशा बालशेविकों से अलग ही दिखाई देगा। अमीर अफ़गान को भी अपनी ओर मिलाकर मुस्लिम-संघ में सम्मिलित न होने देने के लिये भारत सर्कार का मिशन शीघ्र ही वहां जाने वाला है। इन सब प्रयत्नों से युवा तुर्क, अफ़गान और अरब के मुसलमान अर्थात् आधा भाग भी यदि अलग कर लिया गया, तो अवश्य ही इंग्लैण्ड इनका भला करके तुर्क-सन्धी को मुसलमानों के लिये संतोषकारक रूप में बदले बिना न रहेगा। बालशेविक लोग भी अपनी ओर से मुसलमानों की इस नई शक्ति की भरसक रक्षा कर रहे हैं। और किसी भी मुसलमानी प्रदेश को अंग्रेज़ों के जाल में न फँसने देने के लिये पूरी २ सावधानी रख रहे हैं। अर्थात् इस समय दोनों ही ओर से मुसलमानों की आराधना हो रही है। अत यह स्पष्ट प्रकट है, इस आराधना के द्वारा इस्लामी देवता किस ओर को झुकेंगे, इस बात का एक दो वर्षों में निर्णय होने से पूर्व इंग्लैण्ड के तज्ञ तुर्कसन्धी में परिवर्तन करने का कार्य कभी हाथ में न लेंगे।

साहित्य समालोचन।

तिलक चरित्र—लेखक श्री० पं० ईश्वरीप्रसादजी शर्मा, प्रकाशक आर. एल. बर्मन कंपनी नं० ३७१ अपर चितपुर. रोड कलकत्ता। पृ० सं० सवासौ। कागज़ एन्टिक। छपाई सफाई बढ़िया; मूल्य एक रुपया।

इस पुस्तक में भारतीय हृदय सम्राट् लोकमान्य पं० बाल गंगाधर तिलक का संक्षिप्त चरित्र अंकित किया गया है। उनके जन्म से लगा कर अन्त समय तक की समस्त घटनाएँ इसमें बड़ी ही उत्तमता से संक्षिप्त रूप में समाविष्ट करदी गई हैं। उनके भाषण एवं अन्य रचना और उन पर चलाये गये अभियोग तथा दंडाज्ञाओं का भी इसमें सम्यक् प्रकार से वर्णन किया गया है। अन्त के परिशिष्टों में उनके अचानक स्वर्गवास पर देश भर में मच जाने वाले हाहाकार, एवं विविध सामयिक पत्रों तथा देश के गण्य मान्य नेताओं के उद्गारों का भी संग्रह कर दिया गया है। आरंभ में स्व० लोकमान्य का तिरंगा और उनकी धर्मपत्नी का सादा चित्र दे देने से पुस्तक की शोभा बहुत कुछ बढ़ गई है। लोकमान्य की मृत्यु होने के बाद एक मास के भीतर ही यह पुस्तक इतनी विशेषताओं के साथ सजधज कर प्रकाशित कर देने का साहस बर्मन कंपनी जैसी संस्थाएँ ही कर सकती हैं। पुस्तक छोटी होकर भी बड़े काम की है। पंडित ईश्वरी प्रसादजी शर्मा का भी प्रयत्न सफल हुआ है।

× × ×

तिलक-अंक—सागर से निकलने वाले 'धर्माभ्युदय' नामक मासिक पत्र ने लो० तिलक के स्मारक में अपना तिलकांक निकाला है। इसमें कई भाव पूर्ण कविताएँ और लो० तिलक की संक्षिप्त जीवन एवं उनके चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले अभ्यास पूर्ण कई लेख दिये गये हैं, जो कि अधिकांश सुविख्यात हिन्दी लेखकों के लिखे हुए हैं। उत्तम चिकने कागज़ पर बढ़िया छपाई से युक्त ८० पृष्ठों का यह अंक निकाला गया है। ऊपर लोकमान्य का एक तिरंगा एवं एक सादा और तीसरा बंबई में उनकी स्मशान-यात्रा के दृश्य का चित्र दिया गया है। हम इसके संपादक पं० [illegible] को इस प्रयास के लिये धन्यवाद देते हैं।

इटली के विधायक महात्मागण—यह ज्ञान मंडल ग्रंथमाला का [illegible] है। प्रो० रामदास गौड़ने इसका संपादन किया है। पुस्तक उत्तम कागज पर नये टाइप में छाप कर कपड़े की जिल्द से सुशोभित की गई है। ६ चित्र सहित २५० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य २।) रु० है।

इस ग्रंथ में उन आठ महात्माओं की जीवन-घटनाएँ अंकित की हैं, जिन्होंने अनेक संकट सहन कर इटली को आष्ट्रियादि [illegible] राष्ट्रों के पंजे से छुड़ा या और उसका पुनर्संगठन किया है। उन नाम ये हैं:—कवि एलिफेरी, वाचस्पति मंज़ोनी, तत्ववेत्ता [illegible] डेनियल मैनिन, दैवज्ञ मत्ज़ीनी, राजपुरुष काबूर, देशभक्त गारिबाल्डी और विक्टर इमनुअल। पुस्तक की संपादकीय प्रस्तावना इस [illegible] मता से लिखी गई है कि; केवल उन १८ पृष्ठों को ही पढ़कर पाठ गण इटली की प्राय: सभी मुख्य २ घटनाओं से जानकार हो सकते हैं। भारत जैसे परतंत्र देश को स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिये भी ऐसे ही वीरों को कभी जन्म लेना होगा। किन्तु जब तक कि वे जन्म नहीं लेते; तब तक ऐसे ग्रंथों को पढ़कर हमें पहली तय्यारी करना भी [illegible] आवश्यक है।

इस प्रकार का आदर्श ग्रंथ हिन्दी संसार को भेंट करने के लिये हम शुद्ध हृदय से मंडल के संचालक, ग्रंथ के लेखक और [illegible] शर्मा को धन्यवाद देते हैं। और आशा करते हैं कि; आगे भी [illegible] इसी प्रकार के राष्ट्रीय ग्रंथों से हिन्दी के साहित्य भाण्डार की [illegible] करता रहेगा।

श्रीदुर्गाप्रसाद मंत्री, सदाशिव पेठ पूना सिटी।

इस संस्था ने सन १९२१ का नया केलेण्डर भेजने की कृपा की है। केलेण्डर आर्ट पेपर पर रंगीन छपा है और उसमें म० गांधी, [illegible] केलकर, देशबन्धु, परांजपे, लाला लाजपतराय, विपिनचंद्रपाल, [illegible] पटेल और अलीबन्धु के आठ चित्रों के सिवाय स्व० लो० तिलक का तिरंगा चित्र दिया गया है। इसी तरह तारीखों की [illegible] हैं। अर्थात् इसके द्वारा एक पंथ दो काज सिद्ध होते हैं। [illegible] आने के डाक टिकिट भेजने से यह केलेण्डर मिल सकता है। [illegible] के खर्च को देखते हुए यह मूल्य अधिक नहीं जान पड़ता।

अहिंसातत्व का राजनीति में प्रवेश।

(लेखक—श्री० चिंतामण विनायक वैद्य)

नागपुर की कांग्रेस ने अपना ध्येय बदलकर जब से 'अहिंसात्मक उपायों द्वारा स्वराज्य संपादन करने' का उद्देश्य सरल और सुबोध भाषा में व्यक्त किया है, तभी से संसार के सम्मुख एक नया और विलक्षण राजनैतिक सिद्धान्त उपस्थित हो रहा है। इस सिद्धान्त के मूलतत्व का जनकत्व महात्मा गांधी को प्राप्त है; यह सर्व विश्रुत ही है। इस तत्व के कारण राजनैतिक तत्वज्ञान में एक विचित्र क्रांति घटित होने वाली है। आज तक जिस बात का लोगों ने स्वप्न में भी विचार नहीं किया था, उसी को महात्माजी प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाना चाहते हैं। किसी भी देश का इतिहास इस बात के लिये साक्षी नहीं देता कि आज तक वहां की जनता ने अहिंसात्मक उपायों से स्वातंत्र्य अथवा स्वराज्य स्थापित किया हो। इसी कारण कई लोग इस अभुतपूर्व मार्ग के प्रदर्शक महात्मा को पागल की उपाधि देने के लिये भी उद्यत दीख पड़ते हैं। संसार के इतिहास में अब तक अनेक राज्यक्रांतियाँ हुईं; और उनमें सबसे अंतिम रशिया की 'राज्यक्रांति' मानी गई है। आरंभ में कई लोगों ने इसको रक्तपात विरहित ही समझा था; किन्तु टाइम्स ऑफ इन्डिया के एक ताज़े लेख में यह बतलाया गया है कि 'लेनिन ने जितना मनुष्यघात या कत्ल अथवा अन्य प्रकार का अत्याचार कराया; उतना ज़ारशाही के अतिशय भयंकर जुल्मों के समय में भी नहीं हुआ।' यह कथन कदाचित् अतिशयोक्ति पूर्ण भी हो; किन्तु यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि रशियन राज्यक्रांति रक्तपात-हीन नहीं हुई। फ्रांस की क्रांति के समान वह यद्यपि विशेष भयंकर न भी हुई हो, किन्तु फिर भी इतिहास रशियन राज्यक्रांति को ठीक उसके दूसरे नंबर की ही सिद्ध करता है। इसी भांति [illegible] देश की राज्यक्रांति भी रक्तपात विरहित नहीं हुई; तब क्या अकेले भारत का ही इतिहास ([illegible]) कुछ निराला चमत्कार दिखला सकेगा? इस प्रकार विचारी और विशेषतः पाश्चात्य तत्वज्ञानी लोग प्रश्न करते हैं! इसीलिये आज हमने इस लेख द्वारा यथा शक्ति इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि, महात्मा गांधी ने राजनीति में जिस अहिंसा तत्व को प्रवेश कराने का प्रयत्न हाथ में लिया है, वह कहां तक ग्राह्य और सिद्ध हो सकने योग्य है!

यह एक प्रसिद्ध बात है कि, भारत में इस अहिंसा तत्व का उपदेश धार्मिक विषयों में ही किया गया, और भारत में ही इसका प्रादुर्भाव भी हुआ। [illegible] सबसे प्रथम इस तत्व का [illegible] धर्म में [illegible] किया। [illegible]

बिना ज्ञान के मोक्ष हो। अर्थात् भारतीय आर्यों की धारणा है कि हिंसाधर्मी कभी मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार योग विद्या में भी अहिंसा का पूर्णतयः अंगिकार किया गया है; यही नहीं वरन् उसमें इस तत्व का अतिशय महत्व भी प्रतिपादन हुआ है। योगशास्त्रों का कथन है कि; यदि योगी अहिंसा-व्रत का पूर्ण [illegible] करेगा; तो प्रत्यक्ष व्याघ्र भी सामने आ खड़ा होने पर उसे [illegible] सकेगा। हिंसा से ही हिंसा होती है; यह बात विचार करने पर [illegible] ठीक सिद्ध हो सकेगी। क्योंकि आध्यात्मिक शक्ति के प्रमाणानुसार यदि योगी के अन्तःकरण में अहिंसा भरी हुई है, तो [illegible] मन में भी हिंसातत्व प्रवेश नहीं कर सकता। यही कारण है कि [illegible] पास व्याघ्र सर्पादि के रहते हुए भी योगी निःशंक योगारूढ़ [illegible] है; और वे जीव भी उसके चारों ओर निःशंक एवं निर्विकार [illegible] से घूमा करते हैं। इस योग-महिमा को कोई भी मिथ्या सिद्ध नहीं कर सकता। तात्पर्य; धर्म और योग में भारतीय आर्यों ने अहिंसा का महत्व भली भांति स्वीकार किया है। यही नहीं वरन् उसका [illegible] अनुभव भी लिया है।

बौद्ध और जैन धर्म ने भी इस तत्व को पूर्णतयः स्वीकार किया है। महात्मा बुद्ध को योगशास्त्र की महत्ता तो ज्ञात थी ही, किन्तु उन्होंने मोक्ष और योगसाधनों में अहिंसातत्व को पूर्ण प्रकार से प्रधान[illegible] आर्यधर्म से भी बाज़ी मारली; और यज्ञ की हिंसा तक को त्याज्य प्रतिपादित किया। फलतः कई आर्य धर्मानुयायियों ने इस तत्व [illegible] मानकर घृत अन्नादि निर्जीव पदार्थों द्वारा ही यज्ञ करने का विधान प्रतिपादन किया। यद्यपि "[illegible]" प्रभृति कथाएं इस भारत में पाई भी जाती हैं, किन्तु फिर भी परिणाम में आर्यधर्मानुयायियों की ओर से यज्ञ की हिंसा को हिंसा न मानने पर [illegible] दिया जाने के कारण; महात्मा बुद्ध ने यज्ञ को ही बिलकुल त्याज्य [illegible] दिया। किन्तु अन्य कारणों से हिंसा न करने और मांस न खाने का [illegible] प्रथमतः बौद्ध धर्म ने भी स्वीकार न किया था। क्योंकि [illegible] वराह मांस भक्षण करने से ही बुद्ध की मृत्यु होने विषयक आख्यायिका पाई जाती है। और आज भी उनके अनुयायी [illegible] तथा चीनी और जापानी लोग प्रत्यक्ष मांसाहारी मौजूद हैं। जैनधर्म ने अलबत्ता अहिंसातत्व पर पूर्ण विश्वास रखा है। [illegible] उनके सिद्धान्तानुसार ईश्वर के निमित्त भी [illegible] किन्तु [illegible] लिये भी हिंसा त्याज्य मानी गई है। और "अहिंसा परमो धर्मः" ही [illegible] का सुन्दर सिद्धान्त है। [illegible] प्रकार से हिंसा न होने देने के विषय में [illegible]

ईसाई धर्म में भी अहिंसातत्व मान्य किया गया है। [illegible]

रक्खी गई है। सारांश; आज जहां एक सिरे पर हिंसातत्व को पूर्णतयः स्वीकार करने वाला इस्लाम धर्म है, वहां दूसरे सिरे पर अहिंसा-तत्व का पूर्ण पक्षपाती जैनधर्म भी है, और आर्य धर्म, एवं बौद्धधर्म तथा ईसाई मत मध्यम श्रेणि के कहे जासकते हैं। क्योंकि इन तीनों धर्म ने अहिंसातत्व को पूर्ण प्रकार से तो नहीं; किन्तु मुख्यत अवश्य स्वीकार किया है।

इस प्रकार धार्मिक विषयों में अहिंसातत्व का प्रथम प्रवेश भारत में ही हुआ; और यहीं से वह पाश्चात्य देश के ईसाई धर्म में प्रविष्ट हुआ। व्यवहार में भी अहिंसातत्व का उपदेश भारतीय आर्यों ने ही किया है। क्योंकि हमारे नीतिशास्त्रों की आज्ञा है कि; यदि दूसरा व्यक्ति अपकार करे तो उसका बदला उपकार से ही चुकाना चाहिये। दूसरे को अकारण ही न मारने का सिद्धान्त तो निश्चित् है ही, किन्तु दूसरा यदि हमारी हिंसा करता हो तो हमें भी उस हिंसा का उत्तर प्रतिहिंसा के ही रूप में देना चाहिये या नहीं; यह नीतिशास्त्र की एक विचित्र समस्या है। 'आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्' इस प्रकार के अहिंसातत्व को धर्मशास्त्र में अपवादात्मक कहा है। और नीति के विचार से तो यह मान्य भी किया गया है। भारतवर्ष में धर्म एवं नीति हमेशा से एक माने गये हैं। पिनलकोड ने अपनी रक्षा के लिये दूसरे का खून करना अपराध न बतलाकर स्पष्टतयः अपवादात्मक तत्व का प्रतिपादन किया है। किन्तु आत्मरक्षा का अधिकार खून करने तक किन २ प्रसंगों में प्राप्त रहता है, यह भी स्पष्ट रूप से उन नीतिनियमों में बतला दिया गया है। अर्थात् इन सब बातों का आशय आततायी के वध करने विषयक धर्मशास्त्र के वचन में गर्भित कर दिया गया है। यथार्थ मे विचार करने पर यही नीतितत्व योग्य भी जान पड़ता है। क्योंकि हिंसा तो किसी न किसी पक्ष में होगी ही; अर्थात् यदि हम अपने आत्मरक्षा के अधिकार का उपयोग न करें तो हमारी हिंसा भी होसकती है। फलत ऐसी दशा में कि—या तो आततायी मरे अथवा हम खुदही—अपना मरना हिंसात्मक होकर अनीति का समर्थन करेगा। अकारण ही दूसरे पर हाथ न उठाने विषयक नीति के लिये आततायी की ओर ध्यान देने से रुकावट पड़ती है। फलतः आततायी के वध करने का सिद्धान्त ही नीति मे भी धर्म और कानून के सदृश् निश्चित होता है। किन्तु अहिंसातत्व के प्रबल समर्थक विशेषतः बौद्ध एवं जैन मतवादी आत्मबलिदान का प्रतिपादन करते हैं। फिर भी यदि कोई सर्प काटने के लिये हम पर झपटे तो यह निश्चित् ही है कि, हम उसके काटने पर मर जायेंगे, ऐसी दशा में अहिंसावादी के सन्मुख यह प्रश्न खड़ा रहता है कि, सर्प को मारू या मैं खुद मर जाऊं। उस समय एक पक्ष उसे मार डालने को कहता है, और दूसरा इसके लिये रोकता है। यही नियम मानव-समाज में अपकार या अत्याचार करने वाले दुष्टों के लिये भी लागू होसकता है। अर्थात् यहां भी यह प्रश्न बड़े ही महत्व का सिद्ध होता है। जब महात्मा बुद्ध ने अपने पूर्ण नामक शिष्य से पूछा कि, "वत्स! अपरान्त देशों में जब तू उपदेश करने के लिये जायगा, तब वहां के लोग जो कि, स्वभावतः दुष्ट हैं—तुझे मारपीट करेंगे और संभव है कि, मार भी डालें, तब भला तू क्या करेगा?" यह सुनते ही पूर्ण ने चट् से उत्तर दिया कि, "मैं उन पर अपकार कभी न करूंगा. यही नहीं वरन् उन्हें मैं आशीर्वाद ही देता रहूंगा, और उनका [illegible] भर कल्याण चिन्तन करूंगा, साथ ही मैं धर्म के लिये मरने के निमित्त अपने को धन्य समझूंगा।" शिष्य के उत्तर से बुद्ध बड़े ही प्रसन्न हुए, और उन्होंने उसे प्रेम से उपदेशक बनकर जाने की आज्ञा दी। हिंसा पर अहिंसा के द्वारा विजयी होना ही मानों आधिभौतिक बल पर आध्यात्मिक तेज के द्वारा विजय प्राप्त करना है। इसी प्रकार आज तक अनेकों बार साधु लोगों ने दुष्टों का पराजय करके उन्हें सीधे रास्ते पर लगाया है। परन्तु लोग इस मार्ग को सामान्य जनता का नहीं मानते। और हम भी देखते हैं कि, सच्चा साधु ही इस मार्ग का अनुगामी होता है। आर्यभूमि के साधु और विशेषतः बौद्ध एवं जैन इसी धर्म की प्रशंसा करते हैं।। म० ईसा ने भी यही उपदेश किया है, और बहुधा यह बौद्ध धर्म के ज्ञान के कारण ही किया कहा जा सकता है। म० ईसा का उपदेश है कि, शत्रु ने यदि एक गाल पर चपत लगाई, तो नम्रतापूर्वक ही तुम अपना दूसरा गाल भी उसके सम्मुख कर दो। किन्तु पश्चिमात्य देश वाले और उनके आधुनिक अनुयायी "होली के वैनन" की भांति इस सिद्धान्त को बाइबल में ही रखना [illegible] समझते हैं, सो सब जानते ही हैं। पाश्चात्य नीतिशास्त्रवेत्ताओं का इस विषय में क्या मत है सो हमें ज्ञात नहीं; किन्तु एशियावासी जनता को अलबत्ता इस बात का अनुभव मिल चुका है कि; पाश्चात्य धर्मशास्त्रियों ने इस वचन को समेट कर एक ओर रख दिया है।

मुसलमानी नीतिशास्त्रवेत्ता इस तत्व को नहीं मानते, किन्तु इसके लिये आश्चर्य करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं। क्योंकि वे धार्मिक दृष्टि से भी निरपराध पशुओं की हिंसा को ईश्वर-मान्य समझते हैं; तब भला उपकार-कर्ता के लिये क्षमा करना तो उनकी नीति से मान्य होही कैसे सकता है! यहां पर हमें अलबेरुनी की एक विचार माला का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। उसके ग्रन्थ का सची द्वारा किया अनुवाद पढ़ते हुए निम्न वाक्य हमें दृष्टिगोचर हुए:-

"In regard to punishment, the manners of the Indians resemble those of the Christians. For they are based on the principle of virtue and abstinence from wickedness, such as never to kill under any circumstances whatever, to give to him who has stripped you of your coat, also your shirt, to offer to him who has beaten you on your cheek, the other cheek also, to bless your enemy and to pray for him. Upon my life, this is a noble philosophy. But the people of this world are not all philosophers. Many of them are ignorant and erring who cannot be kept on the straight path even by the sword and the whip and indeed ever since Constantine the victorious became Christian, both sword and the whip have ever been employed, for without them it would be impossible to rule"

अवतरण कुछ लंबा चौड़ा है, किन्तु है यह महत्व का। ग्रंथकार अलबेरुनी मुहम्मद गज़नी के समय में हुआ है। इसने भारत में (पंजाब काश्मीर आदि प्रदेशों में) रह कर यहां की जनता और उसके शासकों का बहुत कुछ ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। यह अपने अनुभव पर से कहता है कि "भारतीयों की शिक्षा पद्धति प्रायः ईसाइयों की ही तरह की है। क्योंकि दोनों ही सद्गुण और दौर्जन्य पराङ्मुखता की नींव पर अधिष्ठित हैं। उदाहरणार्थ-किसी भी परिस्थिति में किसी का प्राण हरण न किया जाय, अर्थात् जिसने ज़बरन हमारा कोट छीन लिया है, उसे अपना कुर्ता भी देदिया जाय, या जिसने हमारे एक गाल पर चपत जमादी है; उसके सामने दूसरा गाल भी कर दिया जाय। अपने शत्रुओं दंड के बदले आशीर्वाद दिया जाय, और उसके कल्याण के लिये ईश्वर से प्रार्थना की जाय! यथार्थ में यह तत्वज्ञान परम उदारता युक्त है। किन्तु इस संसार में सभी पुरुष उदार तत्वज्ञानी नहीं होते। वे तलवार और चाबुक की सहायता से भी सीधे रास्ते नहीं चलाये जा सकते। और प्रत्यक्ष में देखने पर भी विजयी कान्स्टन्टाइन जब से ईसाई बना; तभी से तलवार और चाबुक का बराबर उपयोग किया जा रहा है। क्योंकि बिना इन दोनों के राज्य कर सकना असंभव है।" कम से कम ईसाइयों का यह तत्वज्ञान युक्त उपदेश ठीक आरम्भ में; अर्थात् म० ईसा तथा [illegible] के समय में ही सच्चा रहा हो, किन्तु फिर कान्स्टेन्टाइन के समय से लगा कर आज तक पाश्चात्य राष्ट्रों में एक गाल पर चपत मारने से दूसरा सामने कर देने विषयक तत्व अमल में नहीं लाया गया, इस बात का अलबेरुनी को भी पूरा २ विश्वास होगया था। पाश्चात्य राष्ट्रों की ईसाइयत केवल बाइबल में ही है। और तलवार या चाबुक की सहायता के बिना राज्य-शकट के न चलाये जा सकने की बात पर ही उन्हें विश्वास भी है। भारत को इस बात का अनुभव ईसाई [illegible] के समय अच्छी भांति मिल चुका है।

अस्तु। अलबेरुनी के उपरोक्त अवतरण पर से साफ प्रकट है कि पाश्चात्य देशों में अहिंसा तत्व का उच्छेद कान्स्टेन्टाइन के समय अर्थात् लगभग ई० सन ३०० में ही कभी किया जाना। [illegible] [illegible] [illegible] ई० सन १००० के लगभग ही [illegible] [illegible], और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अर्थात् इस [illegible] [illegible]

हाथ काट देने आदि की सजा कभी २ ही दी जाती थी। जान पड़ता है कि; उस समय लोग परस्पर अपकार बहुत कम करते; और अपराध करने पर भी क्षमा का ही विशेष अवलम्बन करते थे। सारांश; इससे आगे की सिड़ी अहिंसातत्व द्वारा भारत में ही चढ़ी जा रही है; किन्तु इसके लिये आश्चर्य करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं।

इससे भी आगे का दर्जा राजनीति में अहिंसातत्व का उपदेश है। एक देश का दूसरे से जो सम्बन्ध है, उसे हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध कहते है। आज तक अन्य देशों के राष्ट्रीय व्यवहार में तो अहिंसा का प्रवेश हुआ ही नहीं; किन्तु भारत में भी वह नहीं हुआ। एक देश की ओर से दूसरे पर आक्रमण किया जाते समय उसकी ओर से अहिंसातत्व का अवलम्बन किया जाने का प्रमाण भारत के इतिहास में नहीं मिलता। किम्बहुना परस्पर राष्ट्रों अथवा राजाओं के झगड़े आजतक हिंसातत्व पर ही निपटाये गये हैं। एक-आध पुरुष अथवा एकाधिक व्यक्ति सत्वशील बन कर क्षमा कर सकते हों, किन्तु सम्पूर्ण मानवी समाज ही सत्वस्थ नहीं हो सकता। ऐसे झगड़ों में समस्त बातों का निर्णय शक्ति के तत्व पर ही हो सकता है। साथ ही हमें यह भी न भूल जाना चाहिये कि; मनुष्य समाज अभीतक पशुकोटि में ही परिणत हो रहा है। भिन्न २ लोक अर्थात् जनसमुदाय अभी तक पशुवृत्ति से आगे नहीं बढ़ पाये हैं। जिस प्रकार परस्पर के व्यवहार विषयक झगड़ों का राजदर्बार में ही निर्णय हो सकता है; उसी प्रकार राष्ट्रों का पारस्परिक विवाद किसी दर्बार में उपस्थित नहीं किया जा सकता। इसी कारण उसे शक्ति के भरोसे छोड़ देना पड़ता है; और उसमें फिर ईश्वर जिसे यश दे उसी के पक्ष का निर्णय हो सकता है। यह ठीक है कि; यह अवस्था अपरिहार्य है, किन्तु फिर भी राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़े पशु कोटि के ही कहे जा सकते हैं। जिस प्रकार किसी निर्बल कुत्ते के मुंह मे रोटी का टुकड़ा देखते ही, दूसरा बलिष्ट कुत्ता बिना किसी बात का विचार किये उस पर टूट पड़ता और उससे वह टुकड़ा छीन लेता है, उसी प्रकार बलवान राष्ट्र निर्बल देशों पर अकारण टूट पड़ते और उसका सर्वस्व छीन लेते हैं। इस बात का उल्लेख इतिहास मे पद २ पर पाया जाता है, और यही पाशवी वृत्ति है। मानव समूह अभी इससे आगे नहीं बढ पाया है। किम्बहुना थोड़ासा विचार करने पर यह भी ज्ञात होने लगता है कि; इस विषय में मनुष्य अभी पशु से भी नीच कोटि में है। क्योंकि पशुओं के व्यवहार में गुलामी का विभाग कहीं भी नहीं है। पशु बहुत हुआ तो दूसरों से किसी वस्तु को छीन सकते या उसे जान से भी मार सकते हैं; किन्तु गुलाम बनाकर आजन्म उससे कोई काम नहीं करा सकते। क्योंकि किसी सिंह के द्वारा हजारों गाय-भैंस गुलाम बनाये जाकर आजन्म दूध पीने या उनके नवजात बच्चों को खाने के लिये पकड़ रखने का उदाहरण आज तक नहीं सुना गया। मतलब यह कि; किन्हीं खास व्यक्तियों को गुलाम बनाकर उनसे श्रम लेने की प्राचीन प्रथा; अथवा इसी प्रकार किसी समाज या देश को जीतकर वहां की जनता से अप्रत्यक्ष गुलामी कराने की आधुनिक प्रथा; दोनों ही मनुष्य को पशु से भी अधिक नीच सिद्ध करती हैं। तात्पर्य; राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहार में सब प्रकार से शक्ति को ही प्रधानता दी गई है। और सिवाय इसके वाद-निर्णय का अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। इंग्लैण्ड, जर्मनी अथवा रशिया या मुसलमानी राष्ट्रों ने आज तक यही किया; और शक्ति के ही बल पर उन्होंने निर्बल राष्ट्रों को पादाक्रांत करने में सफलता पाई। भारत के इतिहास में भी यही बात दिखाई पड़ती है। हमारे यहां आज तक यही देखने में आया है कि; एक राष्ट्र बलवान बनकर दूसरे निर्बल को जीत लेता है। किंतु इसमें कोई बात नीति विरुद्ध है या यह पशुवृत्ति के अनुकूल है, सो हम नहीं मानते। बल्कि इस के विरुद्ध राजा अथवा अन्य पुरुषों का पराक्रम इसीमें गिना जाता है कि; उसने अमुक देश को जीता, या अमुक युद्ध में शत्रु सेना के धुर्रे बिखेर दिये। शौर्य, तेज, स्वदेशभक्ति आदि गुणों का समावेश इस प्रकार युद्धों में ही हुआ करता है। सारांश; यदि राजनीति केवल बल पर ही अवलम्बित है; तो ऐसी दशा में, अर्थात् पशु-वृत्ति की प्रधानता में आध्यात्मिक तेज-का बल किस प्रकार काम [illegible] सकेगा; यह एक विकट प्रश्न है। किंतु यह न भूल जाना चाहिये कि; देश के व्यवहार में भी [illegible] की शारीरिक बल ही निर्णायक होता है। [illegible] न्यायालय में अभियोग चलाते समय न्यायाधीश [illegible] की आज्ञा से जो दण्ड मिलता है, उसका अंतिम चिन्ह भी बल ही है। न्याय-[illegible] में राजा की शक्ति से सम्पूर्ण [illegible] है, और राजा की 'शक्ति' अर्थात् यही शारीरिक बल जो सेना के रूप में होता [illegible] फलतः संसार में असज्जन व्यक्तियों की अधिकता है; और [illegible] पारस्परिक सम्बन्ध में सभी राष्ट्र बदनीयत सिद्ध होते हैं; इसी [illegible] तलवार और कोड़े का प्रयोग निरन्तर सिद्धावस्था में रखना [illegible] 'दंडः सुप्तेषु जागर्ति दंडो धारयते प्रजाः।' इस प्रकार महाभारतादि ने भी दण्ड अर्थात् शक्ति की महिमा बतलाई गई है।

किन्तु ऐसा होते हुए भी राजनीति में अहिंसा का [illegible] महात्मा गांधीजी अन्त को विवेकहीन सिद्ध नहीं होते। क्योंकि [illegible] और नैतिक विषयों में अहिंसा का उपदेश सबसे प्रथम भारत में हुआ; और यहीं से जिस प्रकार पाश्चात्य देश में उसका प्रसार [illegible] उसी प्रकार राजनैतिक विषयों में भी अहिंसा का उपदेश प्रथम भारत में ही होकर बाद सम्पूर्ण जगत में उसके फैलने [illegible] ईश्वरी संकेत दिखाई पड़ता है। यदि एक व्यक्ति का आध्या[illegible] सामर्थ्य दूसरे के आधिभौतिक सामर्थ्य पर अपना सिक्का जमा [illegible] है; तो किसी समाज का समष्टि-आध्यात्मिक-तेज दूसरे राष्ट्र [illegible] अनीति मूलक--केवल शक्ति के द्वारा ही परिचालित-सत्ता [illegible] प्रभाव न डाला सकेगा? जब अहिंसातत्व के आश्रय से योगी पुरु[illegible] सर्प व्याघ्रादि तक को निर्वैर और निर्बल बना सकता है; या जब कोई महापुरुष एक-आध बदमाश को भी शांतिपूर्वक ठीक रास्ते पर ला सकता है; तब क्या भारतीय जनता के समान एक सात्विक समाज अहिंसातत्व पर आरूढ होकर 'शांतियुक्त असहयोग' के द्वारा ब्रिटिश सिंह को सीधा न कर सकेगा? हजरत ईसाने इसी तत्व के बल पर संसार को चकित कर दिया था। वे स्वयं इसी तत्व का अवलम्बन कर फांसी पर चढ़े; और अपने शिष्य पीटर की ओर से प्रती[illegible]कार का प्रयत्न किया जाने पर भी उसे मना करके उन्होंने स्वेच्छापूर्वक मरना स्वीकार किया। सारांश, अनुभव यही बतलाता है कि; आधिभौतिक शक्ति पर आध्यात्मिक तेज का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। तब केवल राष्ट्रिय-व्यवहार में ही उसका प्रभाव कैसे हो सकता है? किन्तु यह आध्यात्मिक सामर्थ्य निरे बोलने या व्याख्यान फटकारने में नहीं रहता; बल्कि उसके लिये प्रत्यक्ष [illegible] उठाने विषयक आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। [illegible] ईसा तक को इसके लिये फांसी पर लटकना पड़ा है। जिस समय [illegible] शन अथवा सॉटेशाही शुरू हो; उस समय देश के हजारों मनुष्यों [illegible] चुपचाप कष्ट सहना और जेल में जाना चाहिये। अथवा प्रत्यक्ष फांसी पर चढ़ना या बिना एक बूंद भी आंसू गिराये कालेपानी की यात्रा करनी चाहिये। उस समय न तो उन्हें अपने असहयोग पथ से [illegible] विचलित होना चाहिये, और न अदालत में वकील से पैरवी कराना या रोते मुंह माफी मांगना चाहिये! जेल में कष्ट उठाते हुए या काले पानी की सजा भोगते हुए कैदियों को छुड़ाने के लिये मुंह बिगाड़कर गिड़गिड़ाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। सारांश यह कि; [illegible] देने वाले पर क्रुद्ध होकर हाथ तक न उठाना चाहिये। समग्र समाज या कम से कम अर्धाधिक असहयोगी समाज भी यदि इस निश्चय के साथ अहिंसातत्व पर आरूढ होगा; तो उसका परिणाम मार [illegible] अत्याचारयुक्त दमन-नीति पर भी पड़े बिना न रहेगा। उपाधित्याग अथवा स्कूल कालेज और विदेशी माल का बहिष्कार करने में अहिंसा तत्व की सच्ची परीक्षा नहीं हो सकती; बल्कि जब डायर की गोली चलेगी, तब ही यह परीक्षा होगी। क्योंकि यह मानवी-स्वभाव के अनुकूल सिद्धान्त है कि; राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध में ऐसी घटना अनिवार्य होती हैं। राष्ट्रिय व्यवहार में जर्मनी अकारण ही बेल्जियम पर टूट पड़ेगा; और राक्षस डायर भी निरपराध एवं निःशस्त्र समाज पर गोलियाँ बरसाकर ही चुप हो सकेगा। इसी प्रकार स्वराज्य अथवा स्वातंत्र्य को अहिंसातत्व पर अवलम्बित रहकर असहयोग द्वारा प्राप्त करने के लिये तैयार रहने वाले भारत को ऐसी २ दुर्घटनाएं निश्चयपूर्वक सहन करनी पड़ेंगी, और उसी समय उसकी सच्ची परीक्षा भी होगी। किंतु यह सब कष्ट और जेल एवं मृत्यु तक का प्रसंग सह सकने का सामर्थ्य रहने पर अहिंसातत्व की विजय हुए बिना कभी न रहेगी! विचार करने पर सब बातों का यही सार निकलता है कि; राजनीति में अहिंसायुक्त असहकारिता का प्रयोग करने के लिये सलाह देने वाले महात्मा गांधी अविचारी पुरुष नहीं हैं। किंतु उनके उपदेशानुसार सर्वसाधारण अत्याचार होता रहने पर भी [illegible] उठाने की बात कभी भूल न जानी चाहिये। और न अपने [illegible] ध्येय पर ही विचलित होने देना चाहिये। " [illegible]

...येषां न चेतांसि त एव धीराः"। सांसारिक विषयों में ब्रह्मचर्य रखने से ही आध्यात्मिक सामर्थ्य प्राप्त नहीं हो जाता; वरन् शक्ति रखते हुए भी उसका दुरुपयोग न करना ही आत्मिक तेज का द्योतक होता है। बकरे और भेड़ों ने तो जन्मतः अहिंसा का अवलम्बन कर लिया है। क्योंकि; वे हिंसा करने का कभी साहस ही नहीं कर सकते। अतः यह भी स्पष्ट प्रकट है कि; उन्हें अहिंसा का श्रेय कभी मिल नहीं सकता। शक्ति रखते हुए और विकार का हेतु उपस्थित रहने पर भी मनोधैर्य को विचलित न होने देकर हाथ न उठाने से ही आत्मिक तेज प्रकट होता है; इसे खूब याद रखना चाहिये। इसके सिवाय एक बात और भी है, वह यह कि; अहिंसा के साथ सत्य भी अवश्य रहे। अर्थात् हम सन्मार्ग पर चल रहे हैं; और उसी पर डटे रहेंगे, इस प्रकार का निश्चय भाव प्रकट करना चाहिये। क्योंकि बुरे मार्गों पर चलने से अहिंसा विषयक सामर्थ्य उत्पन्न नहीं होता। अर्थात् "अहिंसा सत्यमक्रोध" और तेज क्षमाधृति." आदि समस्त लक्षणों का एकत्र संगठन होने पर ही 'दैवी सम्पत्ति' का अस्तित्व समझा जासकता है। और राजनीति में भी उसकी आसुरी सम्पत्ति पर अवश्य विजय होती है। यदि जन समाज तेजस्वी हो; और सत्यपथ पर दृढ़ रहकर वह अहिंसा और क्षमा, तथा धैर्य एवं अद्रोह का अवलम्बन करे, तो क्या वह भी व्यक्ति की ही भांति दैवी बल सम्पन्न नहीं हो सकता? भयग्रस्त और तेजोहीन समाज अहिंसा सम्पन्न होता ही है। क्योंकि यह प्रकट ही है कि, उसकी स्थिति अशक्त अतएव गुलामी के ही योग्य होती है। खैर; तो महात्मा गांधी द्वारा राजनीति में उपदेश किया हुआ अहिंसा का मार्ग उपयुक्त और सिद्धि प्राप्त कर सकने जैसा ही प्रतीत होता है।

इस विवेचन पर प्रतिपक्षी जो आक्षेप करते हैं, उनका भी संक्षेप में विचार कर लेना यहां आवश्यक प्रतीत होता है। प्रथम और मुख्य आक्षेप यह किया जाता है कि; दैवी सम्पत्ति अथवा आध्यात्मिक तेज आदि केवल शाब्दिक-जाल है। किसी एक ही व्यक्ति में इनका अस्तित्व रहने के कारण दूसरे पर उसका सिक्का जमने पर भी यह सिद्धान्त राष्ट्रीय व्यवहार के लिये लागू नहीं हो सकता। राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़े में आधिभौतिक बल ही काम देता और विजयी होता है। इस विषय में आध्यात्मिक बल का कुछ भी उपयोग न हो सकने की बात तत्वज्ञानियों ने भी स्वीकार की है, और इतिहास भी यही प्रमाण देता है। उपनिषद् में स्पष्ट कहा है कि; "शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयांसि च श्वापदान्याकीटपतंगमपिपीलिकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्वेति" बल या शक्ति के प्रभाव को इतिहास भी पुकार २ कर बता रहा है। और भारत को भी मुसलमानी आक्रमणों से इस बात का खासा अनुभव मिल चुका है। अहिंसामतवादी के अनुयायी लाखों हिन्दू मुसलमानों द्वारा भेड़बकरों की तरह काट डाले गये। मुहम्मद गजनी, अलाउद्दीन खिलजी या मलिक काफूर, ने पंजाब, राजपूताना एवं दक्षिण प्रदेश में केवल शक्ति के द्वारा ही कितना अत्याचार और भयंकर लोक-संहार किया, वह इतिहास में प्रसिद्ध ही है। इन लोगों को अहिंसा के सामर्थ्य ने कहीं भी न रोका। विजयनगर के राजा से लड़ते समय दुष्ट और दुराचारी आत्मसामर्थ्य के बल पर दक्षिण के मुसलमानों ने जो नरहत्या की, उसमें भी शक्ति का प्रभाव ही दृष्टिगोचर हुआ। डायर ने भी अपनी गवाही में यही कहा कि, पास में की सब गोलियाँ खतम हो जाने के ही कारण मुझे चुप होना पड़ा, लोगों की दुर्दशा देखकर नहीं। इसी पर से अनुमान किया जासकता है कि, शस्त्र उन्मद से अन्धे बन जाने वाले शक्तिशाली और युद्ध में निरन्तर मार काट मचाने वाले पुरुष को आध्यात्मिक तेज से कहीं तक भय प्रतीत होता है! यह ठीक है कि, पश्चिमी देशों में अभी तक आधिभौतिक और आध्यात्मिक शक्ति के बीच कोई युद्ध हुआ नहीं सुना गया, किन्तु दूसरे जो युद्ध हुए हैं, और उसमें मनुष्यस्वभाव जो लक्षित किया है, उस पर से यही कहना पड़ता कि; शक्ति पर अवलम्बित रहने वाला मनुष्य कभी आत्मिक तेज की परवाह नहीं करता, और न कभी उसके आगे सिर ही झुकाता है। अतः [illegible] लोगों की तरह अहिंसायुक्त आन्दोलन द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य [illegible] के कारण [illegible] अफसर-शाही को नीचे लाने का [illegible] महात्मा गांधी का [illegible] दूरदर्शिता से भरा हुआ है, इस प्रकार प्रथम आक्षेपक का कथन है।

दूसरा आक्षेपकर्ता यह कहता है कि फिर आधिभौतिक बल पर आध्यात्मिक तेज का सिक्का जमता ही नहीं, इस बात को यदि छोड़ भी दिया जाय, किन्तु फिर भी आध्यात्मिक बल के साथ आधिभौतिक बल यदि आ मिले तो अलबत्ता उसको विजय होसकने का संभव है। जब वसिष्ठ ऋषि पर विश्वामित्र ने सशस्त्र सेना के द्वारा चढ़ाई करदी; तब उन्होंने चुप रहकर केवल अपने ब्रह्मदण्ड के ही द्वारा विजय प्राप्त की थी। ये बातें भले ही निरी कल्पना समझ ली जायँ, किन्तु इतिहास का अनुभव हमें यही बतलाता है; कि आध्यात्मिक सामर्थ्य के लिये आधिभौतिक बल की सहायता अनिवार्य रूप से आवश्यक होती है। जर्मनी के लाखों सैनिक और उनकी हजारों तोपों को प्रे० विलसन ने केवल तत्वज्ञान या नीतियुक्त चौदह सिद्धान्तों के उपदेश द्वारा ही पीछे नहीं हटा दिया; वरन् जब उन्होंने उन्हीं के समान आर्जुनी धनुर्धारी शक्ति को सामने ला खड़ा किया; और लाखों अमेरिकन सैनिक जब शस्त्रास्त्र सहित फ्रांस की रणभूमि पर आ डटे; तभी वे विजय प्राप्त कर सके हैं। आध्यात्मिक तेज की तो आवश्यकता है ही; साथ ही स्वदेशभक्ति और प्राणपण से काम करने की दृढ़ता भी होनी चाहिये; किन्तु इन सबसे बढ़कर शारीरिक बल, सेना, शस्त्रास्त्र और हिंसा की भी तैयारी रहनी चाहिये। अर्थात् शक्ति के बिना सब व्यर्थ है। इसीलिये महात्मा गांधीजी के उपदेश के साथ ही मौ० शौकतअली की युद्ध विषयक तैयारी भी होनी चाहिये। ऐसा होने पर ही स्वराज्य सदृश महाकार्य सिद्ध हो सकता है, अन्यथा सिवाय हँसी के और कुछ भी हाथ न आवेगा। इस प्रकार दूसरे आक्षेपक का कथन है।

हम यद्यपि इस तात्विक विचारसरणी का उसी रूप में उत्तर देसकते हैं, किन्तु विशेष प्रपञ्च में न फँसकर हम महाभारत की एक आख्यायिका द्वारा ही इसका उत्तर देने के लिये प्रयत्न करते हैं। राजनीतिपटु महर्षि व्यास की इस विस्तृत कृति में किसी भी राजनैतिक प्रसंग पर हूबहू मिलता प्रमाण न मिल सके, यह असम्भव है। उन्होंने वनपर्व में राज्य खो बैठने वाले पाण्डवों को अपने स्वराज्य-प्राप्ति के प्रयत्न की सफलता के लिये चर्चा करते हुए, दिखलाकर, युधिष्ठिर के मुँह से कई रूप में धर्म की महत्ता का वर्णन कराया है। किन्तु अपने बल पर भरोसा रखने वाला भीम उसकी बात को नहीं मानता, और कहने लगता है कि, 'धर्मराज! इधर तुम धर्म की दुहाई देकर भूखों मर रहे हो; और उधर वह अधर्म का पुतला दुर्योधन मजे से राजमहल में आनन्द मना रहा है! इसलिये उठो; और यह धर्म के गीत गाना छोड़ कर अधर्म का आचरण करते हुए प्रतिज्ञा भंग कर निधड़क उन पर आक्रमण कर दो, और अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लो! बिचारी द्रौपदी ने भी अपने पतियों को कष्ट से बचाने के लिये उसी विचारसरणी का अनुसरण करते हुए; अधर्मी के साथ अधर्म का ही बर्ताव करने की बात पर जोर देकर युधिष्ठिर को खूब खरी खोटी सुनाई। अर्जुन बीच में था। अर्थात् कभी वह युधिष्ठिर की हां में हां मिलाता; और कभी द्रौपदी की बात का समर्थन करता था। ऐसी दशा में अन्त को युधिष्ठिर ने बड़ी खूबी के साथ भीम को समझाया। उसने कहा कि, "भीम! तेरी बात मानकर मैं वनवास की प्रतिज्ञा तोड़ अभी युद्ध के लिये तैयार होता हूं। किन्तु भीष्म, द्रोण और कर्ण इन तीनों को क्या अर्जुन और तुम दोनों जीत सकोगे? ये बलशाली योद्धा दुर्योधन का अन्न खा कर उसके इतने कृतज्ञ और गुलाम बन गये हैं कि, वे उसके लिये प्राणान्तक युद्ध करेंगे, किन्तु क्या उन्हें जीत सकने का तुम्हें विश्वास है?" इस घटना का व्यासजी ने बड़ी ही खूबी से वर्णन किया है। वे कहते हैं कि, भीम ने उसकी बात का कुछ भी उत्तर नहीं दिया, और वह चुप बैठ गया। हम भी उसी प्रकार आक्षेपक से यही पूछते हैं कि, "क्या तुम [illegible] लड़ाइयों में युद्ध करने में [illegible] हो सकोगे! तुम्हारे पास न तो शस्त्रास्त्र हैं, और न [illegible] की वर्षों से इसका तुम्हें अनुभव ही है। यह ठीक है कि, तुम्हारे पास मनुष्यबल पर्याप्त है, किन्तु केवल इस [illegible] मनुष्यबल का इस वैज्ञानिक युद्ध के जमाने में कुछ भी उपयोग नहीं हो सकता। तुम [illegible] हो, और खुद तुम्हारे ही भाई हाथों में बंदूक लिये हुए, अंग्रेजों की ओर से तुम्हारे ऊपर [illegible] को तैयार हैं। इस बात को भी हम छोड़े देते हैं, और [illegible] होने पर भी [illegible] करते हैं कि, यदि तुम सब एक होकर युद्ध—हिंसा-युद्ध—के लिये उठ खड़े हुए तो [illegible] ([illegible]) के समान युद्ध का [illegible] है, जीत सकोगे?" यह समझते हैं कि, इस [illegible] का उत्तर [illegible] ही होंगे। अब [illegible] का [illegible] नहीं [illegible]।

कारण; जिस एकता के द्वारा कदाचित् उपरोक्त प्रश्न का उत्तर तुम हां के रूप में दे सकते हो; उसकी असाध्यता भी तुम्हें स्वीकार करनी ही होगी! हमारे ही भाई आज तक विरुद्ध बनकर हमसे लड़ते आये हैं, और आगे भी वे बराबर लड़ते रहेंगे। ऐसी दशा में युद्ध पर विश्वास रखना निःसंशय नाशकारक होगा। परन्तु आयर्लैण्ड के उदाहरण पर से तुम्हें दिखाई देगा कि, एकता के द्वारा भी यह कार्य असाध्य ही है। क्योंकि आयर्लैण्ड को बाहर से भी शस्त्रास्त्र मिल सकते हैं, पर तुम्हारे लिये तो वह मार्ग भी बन्द है। अतः भारत के एक चतुर्थांश लोग भी यदि निःशस्त्र युद्ध करें; और अहिंसा व्रत पर दृढ़ रहकर असहकारिता के आन्दोलन में डटे रहें, तो निश्चयपूर्वक ही वे विजय प्राप्त कर सकेंगे। यह प्रकट ही है कि; इस एक ओर के निःशस्त्र युद्ध में साम्राज्यवादी नौकरशाही तुम्हारी हड्डी-पसली अलग करने में कुछ भी कसर न रक्खेगी! क्योंकि मनुष्य स्वभाव ही इस प्रकार का है। निःसन्देह नौकरशाही निःशस्त्र लोगों पर हाथ उठाने से भी न चूकेगी, किन्तु उससे जो प्राणहानि या आफत खड़ी होगी, वह उभयपक्षों की ओर से किये जाने वाले सशस्त्र युद्ध की अपेक्षा बहुत कम प्रमाण में होगी। अर्थात् इस मार्ग पर चलने से न तो यश ही प्राप्त होगा, और न प्राणहानि ही घट सकेगी। इसीलिये 'अहिंसा-युक्त असहकारिता का मार्ग ही सब प्रकार यशस्वी हो सकने का सम्भव है। बिना इसका आश्रय ग्रहण किये हमारे लिये और उपाय ही शेष नहीं रहा है।

फिर इसी के साथ हमें यह भी कह देना होगा कि; इस मार्ग में दृढ़ता के छोड़ने से काम नहीं चल सकता। यदि सभी लोग इस मार्ग से चलें, तो यश प्राप्ति थोड़ी ही दिनों में हो सकती है। किन्तु ऐसा होना मनुष्य स्वभाव, और खासकर भारत के जनस्वभाव के लिये बिलकुल असंभव सा है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि; यहां एकता होना असंभव है। किन्तु एकता न हो तो भी जो लोग कि; इस मत के मानने वाले हैं; उन्हीं ने यदि महात्मा गांधीजी के कथनानुसार असहयोग का पूरा २ पालन किया; तो भी बहुत कुछ सफलता की आशा की जासकती है। किन्तु अहिंसातत्व को भूलने से काम नहीं चलेगा। इसी प्रकार असहयोगियों की यह समझ भी कि, दण्ड नीति के बिना काम नहीं चल सकता, दूर होनी चाहिये। किंबहुना जिस तप का हमें आचरण करना है, वह यही है। पाश्चात्य देशों का अनुभव प्राप्त कर आने वाले लोग गांधीजी पर यही आक्षेप करते हैं। उनका कथन यह है कि; 'अहिंसा' कहते २ लोग 'हिंसा' तक अवश्य जापहुँचेंगे। सर विन्सेन्ट ने भी कुछ दिन पहले कौंसिल में यही बात कह दिखाई थी। और पंजाब में अंग्रेजों द्वारा होने वाली दुर्घटनाओं से पूर्व; लोगों ने जो कुछ थोड़े से अत्याचार किये थे, उन पर से भी यही भय प्रतीत होता था। जब किसी विशिष्ट हेतु से प्रेरित होकर एक-आध बड़ा जनसमूह इकट्ठा होता है, तो फिर उसमें मार-पीट का प्रसंग भी आता ही है, इस प्रकार कइयों का विश्वास रहा है; और इसी कारण उनके मतानुसार हिंसा रहित असहकारिता होना अशक्य समझा जाता है। अहमदाबाद में महात्मा गांधीजी की शिक्षा अनुकूल होते हुए भी पंजाब में उसका अनुभव कुछ्आ ही मिला, यह कथन ठीक है। इसी प्रकार आजकल युक्त प्रदेश के रायबरेली जिले के किसानों का आन्दोलन भी उसी रूप में परिणत होता हुआ हम आंखों से देख रहे हैं। किन्तु फिर भी यह सिद्धान्त पाश्चात्यों को जितना अशक्य प्रतीत होता है, उतना वास्तव में यह नहीं है। भारत को तो अहिंसा की जन्मघुटी बाल्यावस्था में ही पिलाई जाचुकी है। अहिंसातत्व की यह जन्मभूमि है। यहां के लोग शान्त प्रधान हैं; और अधिकांश यहां का समाज मांसाहारी नहीं है। अर्थात् पाश्चात्य देश के लोग जितनी शीघ्रता से मार-पीट के लिये उतारू हो जाते हैं; उतने भारत के नहीं। नागपुर कांग्रेस में १८।२० हजार के जनसमूह को देख मि० वेन्स्पूर को तो ... प्रतीत हुआ; और इतने बड़े समूह को ... रह २ कर दांतों उंगली दबानी पड़ी। उसी हिन्दू स्वभाव की प्रशंसा है; और उसीके भरोसे 'अहिंसायुक्त असहकारिता' ... लता भारत में शक्य मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है। ... ने भारत की विशिष्ट परिस्थिति को देखकर ही उसके ... योजना करते हुए जिस असहयोगरूपी महौषधि का उसे ... कराया है; उससे निश्चयपूर्वक ही वह रोग निवृत्त होगा, ऐसा विश्वास है। परतंत्रता रूपी राजरोग के लिये जिस रामबाण ... की योजना हुई है; वह केवल अहिंसायुक्त असहकारिता ही है. राजनीति में यह प्रयोग नया है, किन्तु हमें विश्वास है कि; जगत को इस पर विश्वास होकर अवश्य ही यह जगन्मान्य ... जायगा। किन्तु हम फिर आग्रहपूर्वक निवेदन कर देना चाहते हैं कि अहिंसारूपी पथ्य के विषय में किसी को मन में शंका न रखनी चाहिये।

अन्त को फिर अहिंसा की महत्ता पर दो चार बातें लिखकर इस लेख को पूरा करते हैं। असहकारिता की मात्रा के लिये ... का पथ्य परमावश्यक है। सहस्त्रपुटी अभ्रक में यदि कोई विशेष गुण है तो वह कठिन पथ्य के पालन पर ही सफल हो सकता है। किन्तु कई डाक्टर उस अभ्रक की शक्ति पर विश्वास रखकर भी जिस प्रकार पथ्य का मज़ाक उड़ाते हैं, उसी प्रकार की स्थिति आज कितने ही राष्ट्रीय नेताओं की हो रही है। वे लोग असहयोग का सिद्धान्त तो मानते हैं, किन्तु अहिंसारूपी पथ्य को वे महात्मा गांधी की एक सनक समझते हैं। किन्तु हैं ये दोनों ही भूल। जिस प्रकार पिछले राजाओं की भूल से उपायरूपी मात्रा का कुछ भी उपयोग न हुआ; उसी प्रकार यदि लोग अहिंसा का पथ्य त्याग देंगे, तो उन्हें भी असहकारिता से कुछ लाभ न पहुँच सकेगा। हिंसा करना या मार-पीट के लिये उद्यत होना योगविद्या में एक घातक कुपथ्य माना गया है। इसमें नौकरशाही को अपने दंड विधान का उपयोग करने के लिये मौक़ा मिलता है। क्योंकि बदमाश आदमी भी अपने कुकर्म के लिये कोई कारण अवश्य दिखला देता है। तू ने नहीं तो तेरे बापने ही गालियाँ दी होंगी, इस प्रकार का दोषारोपण करके ही व्याघ्र बकरी पर झपटता है। इसे अच्छी तरह याद रखना चाहिये। इसी कारण हमें असहकारिता के शत्रुओं के लिये शस्त्र उठाने का मौका तक न आने देना चाहिये। शत्रु की तो बात ही छोड़िये; किन्तु अहिंसा के त्याग से खुद हमारे ही सामर्थ्य की हानि होती है। हमारी तपस्या भंग होकर संगठित आध्यात्मिक शक्ति भी नष्ट हो जाती है, इसे खूब याद रखना चाहिये। म० ईसा, या लूथर का प्रभाव इसी आत्मसंयमन के ही कारण जनता पर पड़ा। अतः यदि बहुजन समाज इस तेज को ग्रहण करे; और अपने क्रोध को हटाकर सत्य पर अधिष्ठित आत्म शक्ति बढ़ावे, तो बात की बात में देश सामर्थ्यशाली बन सकता है। पाश्चात्य देश के मजदूरों ने अपने में यह सामर्थ्य इकट्ठा कर लिया है, उसके परिणाम का पता इंग्लैण्ड की गत रेलवे हड़ताल पर से संसार को हो चुका है। फौज को हम व्यवस्थित पशु बल कह सकते हैं। उस ... से झगड़ने के लिये भी व्यवस्थित अध्यात्म-बल या दैवी शक्ति अर्थात् अहिंसातत्व ही समर्थ हो सकता है। और महात्मा गांधीजी की महत्वाकांक्षा भी यही है कि; अहिंसायुक्त असहयोग द्वारा बहुजन समाज का आध्यात्मिक सामर्थ्य बढ़े। इस प्रकार यदि हमारा भारतीय जनसमाज व्यवस्थित रूप से तैयार हुआ, और उसने ... सामर्थ्य को बढ़ाया तो 'स्वराज्य' प्राप्ति में ज़रा भी देर न लगेगी। क्योंकि महर्षि मनु का यह सिद्धान्त कि, "यद्दुस्तरं, यद्दुर्गं ... तत्सर्वं तपसा साध्यम्।" कभी अयथार्थ नहीं हो सकता। ...

साधू-संत!

(लेखक—श्रीयुत पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, "साहित्यरत्न")

(चौपदे)

कौन है [illegible], संत हैं [illegible] के काम।
[illegible] वेश, [illegible] बढ़ाये नाम॥१॥
[illegible], देह में [illegible]।
[illegible], [illegible]॥२॥
[illegible], [illegible]।
[illegible], [illegible]॥३॥

और दुनिया [illegible] इन को, संत के मन का [illegible]।
इन [illegible], और में [illegible]॥४॥
[illegible], साधुओं का [illegible]।
[illegible], [illegible]॥५॥
[illegible], [illegible]।
[illegible], [illegible]॥६॥
[illegible], [illegible]।
[illegible], [illegible]॥७॥

खटमल !

(लेखक—श्रीयुत विश्वनाथ नारायण लिखिते ।)

कमले कमला शेते, हरः शेते हिमालये । क्षीराब्धौ च हरिः शेते, मन्ये मत्कुण शंकया ॥

सामान्य परिचय

खटमल से अपरिचित व्यक्ति भारत भर में ढूंढ़े भी न मिलेगा । यदि जन्मकाल से ही मनुष्य की किसी के साथ मित्रता होती है, तो वह केवल इन्हीं खटमलों से । और इस घनिष्ट मित्रता का परिणाम भी 'अतिपरिचयात्' के रूप में हुए बिना नहीं रहता । मनुष्य को जन्म समय से लगाकर उसके अन्तकाल तक यह प्राणी कभी चैन नहीं लेने देता । अतः आज हमने मानव-समाज को अपने इस प्राणाधिक मित्र का संक्षिप्त परिचय करा देना उचित समझा है ।

अन्य देशों की बात कुछ भी हो, किन्तु भारत में तो यह जीव अति प्राचीन काल से परिचित है । क्योंकि महाकवि माघकृत शिशुपाल-वध नामक काव्य के चौदहवें सर्ग में इसका उल्लेख मिलता है । वहां कहा गया है कि; हीरे की भस्म बनाने के लिये खटमल के रक्त की पुट देनी चाहिये । अस-मार रोगी के लिये खट-[मल] के रक्त से भस्म (...बुघनी) तैयार की जाती है । इन दो के सिवाय तीसरा प्रयोग बड़े महत्व का है, और वह सब किसी के लिये प्रत्यक्ष अनुभव कर देखने जैसा है । प्रयोग इस प्रकार है कि, पांच या सात मोटे खटमल पकड़कर उन्हें साफ पानी में मसल डालो, और इसके बाद उस पानी को साफ कपड़े से तीन बार छानकर शीशी में भरलो । इसके बाद [शी]तज्वर के रोगी यह औषध पिलाओ । [जि]सी ही जोर की ठंड देकर बुखार आता [हो], तो इससे वह बात की बात में दूर हो [जा]यगा । इसी प्रकार मलेरिया आदि पर [भ]ी यह रामबाण है । अभी लड़ाई जारी रहने के दिनों में हमारे एक मित्र डाक्टर [ने] जब विलायती दवाएं अप्राप्य समझीं [त]ब इसी युक्ति से उन्होंने सैकड़ों लोगों [को] रोगमुक्त किया था । उन्होंने भी इसे मलेरिया पर रामबाण कहा है । किन्तु एक [का]म उन्होंने यह की थी कि; खटमल को [छा]नी मैन मिलाकर गुड़ में उसकी गोलियां बनाई और रोगियों को दी थी । और जब उन गोलियों से लोगों को फायदा हुआ, तब चारों ओर से उन्हें इस आशय के पत्र मिलने लगे कि; यह गोलियां किस वस्तु की बनी हुई हैं । तब उन्होंने इस आशय से कि; लोगों के मन में किसी प्रकार की शंका उत्पन्न न हो; इस औषधि का लेटिन नाम "गुरगुप" रख दिया । कदाचित हमारे पाठकों ने भी समाचार पत्रों में इस नाम का विज्ञापन देखा होगा ! अस्तु ।

इस विवेचन पर से ज्ञात होगा कि, हमारे इस एक मित्र का कड़वा प्रेम जो भी त्रासदायक होता है; किन्तु फिर भी उसका "आंतरिक" प्रेम बड़ा ही अद्भुत और गुणकारी सिद्ध हुआ है । इसी प्रकार इस बात का भी पता लगता है कि, हमारी आर्यसंस्कृति के साथ इसका अति प्राचीन सम्बन्ध चला आता है । प्राचीन आर्यसंस्कृति में अभी तक किसी भी प्रकार का परिवर्तन न होने के कारण, हमारे आरोग्यशास्त्र के विकास के साथ ही इस प्राणीने भी स्थायी रूप से हमारे घर में डेरा डाल दिया है । और कदाचित इसीलिये इस जबर्दस्त की थानेदारी से डरकर खुद देवताओं को भी अपना २ घर छोड़ भाग जाना पड़ा हो, इस प्रकार उपरोक्त सुभाषितकार ने कल्पना लगाई है ।

हमारी तो इस प्राणी के साथ बहुत पुरानी और सनातन मित्रता है, किन्तु संभव है कि; हमारी ही तरह अन्य किन्हीं पौर्वात्य देशों का भी इससे निकट सम्बन्ध रहा हो । फिर भी आधुनिक सुधारक देशों के विषय में यह बात नहीं कही जासकती । जान पड़ता है कि, सोलहवीं शताब्दि के आरंभ तक आंग्ल-जनता का इस प्राणी से से परिचय भी न था । इसका बिलकुल पहला उल्लेख 'थामस मॉफेटन' नामक व्यक्ति द्वारा सन १६३४ में एक लेटिन ग्रंथ में किया [गया] ।

(नं० १) मादी पृष्ठ भाग की ओर से ।

(नं० २) मादी उदर भाग की ओर से ।

उसने लिखा है कि; सन १५८३ में मार्ट लेक के एक कुलीन गृहस्थ के घर में यह विचित्र प्राणी जब पहली ही बार दिखाई दिया, तो उसे देखते ही घर में की स्त्रियों के होश उड़ गये ! इत्यादि ।

पंद्रहवीं शताब्दि के बाद जब अंग्रेज लोग 'मुल्कगीरी' के लिये बाहर जाने लगे, तब संभवत यह प्राणी भी उनके साथ २ विदेशों में गया होगा । तथापि समुद्र तट पर के नगरों में सन १७३० तक यह प्राणी कहीं २ ही पाया जाता था । अंग्रेजों ने इसका सम्बन्ध प्रथमतः अमेरिकनों से जोड़ा; किन्तु अमेरिका ने उसका खण्डन कर यह सिद्ध कर दिखाया कि; यूरोपियन उपनिवेश वासों के ही साथ २ यह प्राणी अन्य देशों में फैला है । अन्तत यह अनुमान किया नहीं जा सकता कि, सर्व प्रथम इस प्राणी का प्रसार पौर्वात्य देशों में ही हुआ । फलत आक्रमण के उपरान्त व्यापार के ही साथ २ उन देशों में इस प्राणी का प्रसार भी बढ़ता जाकर, अब वहां इसने कायम के लिये डेरा जमा दिया है ।

(नं० ३)

अर्थात् अब पृथ्वी पर ऐसा कोई भी देश नहीं बच गया है कि; जिस इस प्राणी का वास न हो । इस प्रकार यह आबाल वृद्ध-वनिता सब ही पर आक्रमण कर रहा है । किन्तु कहने भर के लिये बंगलौर (दक्षिण) सदृश नगरों में इसका अभाव सुना जाता है । कहते हैं कि, बंगलौर की हवा में खटमल जन्म भी नहीं ले सकता । अगर दूसरे स्थानों से सामान या कपड़ों में भी यह प्राणी वहां चला जाय, तो हवा लगते ही मर जाता । फलतः बंगलौर सदृश शहरों को यदि "खट-मल—मुक्त" कह दिया जाय तो अनुचित न होगा ।

चित्रमय जगत

प्राणि वर्णन

प्राणिशास्त्र की दृष्टि से यह जीव षट्पद-वंश की 'हेमिप्टरा' [illegible] के 'कीटक' वर्ग में सम्मिलित माना गया है। इस शास्त्र में कीटक-सृष्टि का बड़ा महत्व है। [illegible] में [illegible] या [illegible] में [illegible] का उतना महत्व न होगा; जितना कि प्राणिशास्त्र में इस कीड़े का है। अर्थात् कीटक सृष्टि के आठ उपवर्गों में से 'हेमिप्टरा' नामक वर्ग में खटमल की गणना होती है। जूं, लीख आदि इसी वर्ग के जीव समझे जाते हैं। खटमल की कई जातियाँ हैं। किन्तु उनमें मनुष्य पर चढ़ाई करने वाले मुख्य खटमल दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के यूरोप, उत्तर अमेरिका, मेक्सिको, इजिप्ट, सूडान और [illegible] [illegible] पर पाये जाते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम Cimex lectularius है। दूसरे प्रकार का खटमल हिन्दुस्तान, बर्मा, आसाम, मलाया, और आफ्रिका के कई भागों में पाया जाता है। इसका नाम Cimex hemipterus अथवा rotundatus है।

खटमल चपटा, लंबा और गोलाकार होता है, और पास से देखने पर उसके शरीर पर बहुत से कांटे दिखाई पड़ते हैं। साधारणतः यह पाव इंच तक लम्बा और इससे कुछ कम चौड़ा होता है। रंग इसका कुमैद या कत्थई होता है। कीटक सृष्टि के सब प्राणियों की ही तरह इसके शरीर के भी शीर्ष, वक्ष और उदर नामक तीन भाग होते हैं। सिर सँकड़ा किन्तु चौड़ा होता है, साथ ही उस पर दोनों ओर उभरी हुई दो संयुक्त आंखें भी होती हैं। उसी पर चार संधियुक्त दो मूंछें होती हैं। उन मूंछों का पहला जोड़ बहुत छोटा होता है। तीसरे और चौथे पहले की अपेक्षा बहुत बारीक होते हैं। शीर्ष से नीचे की ओर यह सूंड होती है जिससे कि यह रक्त को चूसता है। इसी को 'चञ्चु' भी कहते हैं। यह संधियुक्त होती है और पाँव के जोड़ों तक इसका सम्बन्ध रहता है। शीर्ष के बाद वक्ष होता है। अन्य प्राणियों की ही तरह उसके पूर्व, मध्य और अपर नामक तीन भाग होते हैं। इन्हीं भागों से कीटक सृष्टि की 'चार्टी' के रूप में पाँव के तीन जोड़ संयुक्त होते हैं। और इस साधारण चिन्ह के कारण इस वर्ग को 'षट्पाद' भी कहते हैं। पूर्व वक्ष बहुत बड़ा होता है किन्तु मध्य वक्ष उसी तरह बिलकुल छोटा होता है। अपर वक्ष पंखावशेष के नीचे होता है। अर्धपक्ष वर्ग के अन्य कितने ही प्राणियों में ये पंख पूरे होते हैं; परन्तु खटमलों में ये अवशेष रूप से होते हैं। यही कारण है कि खटमल उड़ नहीं सकता। किन्तु पंख की इस कमी को उसने अपने पैरों द्वारा पूर्ण कर लिया है। प्रत्येक आदमी को इस बात का अनुभव है कि; खटमल में चपलता कितनी अधिक होती है। खटमल के पाँव अन्य कीड़ों की ही तरह होते हैं। अर्थात् उसके चार मुख्य भाग होते हैं। पहले और दूसरे भाग में एक तिकोनी कटोरी सी होती है, और अन्त के तलवों में कई जोड़ होते हैं, और सबके अखीर सिरे पर दो नाखून होते हैं। इसी कारण अन्य कीड़ों की ही तरह यह सब कहीं आ जासकता है।
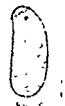
(नं० ४) चाटनेवाला खटमल। (नं० ५) अंडा।

नर और मादी की परीक्षा उदर अर्थात पेट पर से होती है। नर का पेट सकड़ा होने के साथ ही सिरे पर नुकीला होता है। किन्तु मादी का पेट चौड़ा और गोलाकार होता है। इसके सिवाय एक चिन्ह और भी होता है; किन्तु वह केवल मादियों में ही होता है। यह चिन्ह पेट के निचले-खुले (अर्थात चौथे) भाग पर एक खोंच होती है; जहां कि एक खास थैली का मुँह रहता है। उस थैली को "बर्लीज की इंद्रिय" कहते हैं। इसके विषय में विशेष बातें आगे चलकर बतलाई जायँगी। स्पष्टतः पेट के आठ हिस्से होते हैं।

गले तक खून चूस लेने पर खटमल बहुत लम्बा हो जाता है। और इस प्रकार रक्त से सारा पेट भर जाने के कारण पीठ पर की सब रेखाएँ, जान से उनके नीचे वाला नर्म भाग खुल जाता है, जिससे कि, शरीर पर पट्टे दिखाई पड़ते हैं। साधारण अवस्था में वे उतने नहीं दिखाई पड़ते।

प्रकृति या आदत

खटमलों के विषय में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहने के लिये [illegible] पर ही लेता है। इस काम में इसके [illegible] प्राणी दूसरा हो नहीं सकता। क्योंकि इसके लिये रहने का साधन नहीं रखना, किन्तु फिर भी यह दीवार, [illegible] आवागमन मार्गों में होकर बड़ी सफाई के साथ [illegible] से दूसरे [illegible] जा पहुंचता है। [illegible] कपड़े या [illegible] सामान के साथ [illegible] इसका प्रवेश भी आता है। अपने [illegible] के विशेष [illegible] के विषय में खटमल की कुशलता [illegible] पाई जाती है। अर्थात् उसमें बहुत कुछ [illegible] फिर भी यह कई दिन [illegible] कि इस [illegible] चतुराई इन दोनों की होती है। [illegible] ढेक मार कर [illegible] और रोशनी वाले, अथवा [illegible] रात के समय [illegible] के साथ वार करते रहने की दशा में दिया सलाई के जलाते ही [illegible] का [illegible] प्रकाश दिखाते ही यह चोर उस दुर्भेद्य स्थान में घुस जाता है, जहां कि, सहसा मनुष्य का पता नहीं लग सकता! [illegible] इसकी इस चालाकी का महत्व कम समझा जासकता है? [illegible]

खटमल 'संयमी' प्राणी है। क्योंकि "या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी" के अनुसार जब सारी दुनिया सोती है, तब, भूखे की सवारी बाहर निकलती है। इसीसे हमने इसको संयमी कहा है। अब पाठक लोग निधड़क इसे सिपाही [illegible] हैं, क्योंकि यह किसी भी बात में उनसे कम नहीं है। दिन भर दरारों, और दीवार के गड्ढों, अलमारियों, छत और कुर्सियों अथवा पलंग आदि में जहां कहीं जगह मिलती है, छुपा रहता है। इन किलों से उसे बाहर निकालना जरा मुश्किल काम होता है। रात होते ही इनका हमला शुरू हो जाता है। प्रथमतः ये शरीर के खुले हुए भागों पर वार करते हैं; किन्तु इस पर से यह न समझ लेना चाहिये कि ढंके हुए भाग तक इनका वश नहीं चल सकता! क्योंकि आवश्यकतानुसार रास्ता करके शरीर के हर एक भाग से अपना ध्येय पूरा कर लेना इनका जन्म सिद्ध अधिकार है!

(नं० ६) अंडे से निकला हुआ खटमल

यह प्राणी इतना लोभी और पेटार्थी होते हुए भी समय पड़ने पर [illegible] दिनों तक बिना भोजन के भी गुज़र कर सकता है। सन, १६[illegible] के एक कीटक-शास्त्र में लिखा पाया गया है कि, यह जीव कई म[illegible] तक बिना अहार के जीता रह सकता है। इसी प्रकार यह भी [illegible] गया है कि; केवल बड़े खटमलों में ही नहीं; वरन् छोटे से छोटे [illegible] में भी यह शक्ति होती है। किन्तु इस प्रकार के 'जैनी' उपवासों [illegible] उनके शरीर में किसी भी प्रकार की क्षीणता नहीं आती [illegible] कहा जाता है कि; एक खटमल के मारने से उसके रक्त-परमाणु[illegible] द्वारा अनेक खटमल उत्पन्न हो जाते हैं। किन्तु इसके लिये अभी त[illegible] वैज्ञानिक प्रमाण कुछ भी उपलब्ध नहीं हुआ है। समय पड़ने पर य[illegible] प्राणी चूहे, बिल्ली, कुत्ते बंदर, खरगोश आदि पर भी वार करने [illegible] आगा पीछा नहीं सोचता। परन्तु जैसे यह दूसरों पर हमले करता है उसी प्रकार इसके भी अनेक शत्रु हैं। चूहे, घूंस आदि इस समाज का मनमाना संहार कर सकते हैं। इसी प्रकार चींटी की तो खटमल से जानी दुश्मनी है। ज्योंही एक बार खटमल उनके पंजे में फसा कि फिर चींटियाँ उसे मारने में मिनिट भर भी नहीं लगने देती। इन दोनों की लड़ाई हमारे कई पाठकों ने भी देखी होगी।

इस प्राणी से जिस विशेष कारण से घृणा उत्पन्न होती है, वह है एक प्रकार की दुर्गन्धि। यह दुर्गन्ध इसके शरीरस्थ गंध-पिंड के कारण होती है। ये गंध-पिण्ड दो भिन्न २ मार्गों से वक्ष यानी छाती पर पाँव के जोड़ों में खुले रहते हैं। किन्तु उन पर चौकोनी [illegible] रहने से एकदम ही वे दिखाई नहीं पड़ते। अर्धपक्ष-कुल के कीड़ों में उन गन्ध-पिण्ड सामान्यतः सब में होते हैं, किन्तु खटमलों में उन [illegible] स्थान बदला हुआ है। इन गन्ध-पिण्डों से निकलती हुई तीव्र बास के कारण अपने शत्रुओं से ये जीव बच जाते हैं। किन्तु चूहे अलबत्ता खटमलों को बड़े शौक से खाते पाये गये हैं।

रक्त-शोषण

खटमल अपनी जिस चोंच या सूंड से खून चूसता है, वह आकार सँकड़ी होते हुए भी संधियुक्त होती है। उसमें एक आवरणयुक्त बारीक नली रहती है; जो कि दो कांटों से मिलकर बनी होती है। इस नली को शरीर में चुभोकर यह पेट भर खून चूस सकता है। यह आवरण या पर्दा अन्य कीड़ों की दृष्टि से अधर या ओष्ठ कहा जा सकता है। इसी प्रकार उसमें के कांटे अन्य जहरीले जन्तुओं के डंक के रूपान्तर होते हैं। उन कांटों के आसपास और ओष्ठ के भीतर उन्हें सहारा देकर चारों ओर लिपटी हुई और भी एक इंद्रिय होती है; जिसके सिर पर करवत के दांतों की तरह दांते बने रहते हैं; जो शरीर में चुभोने का काम देते हैं। चित्र नं० ३ में खटमल की सूंड का आड़ा छेद दिखलाया गया है। उस पर से यह जाना जा सकता है कि; सूंड में के तीनों अवयव एक दूसरे से किस प्रकार जुड़े रहते है।

साधारणतः लोग खटमल को काटनेवाला कहते हैं; किन्तु यथार्थ में वह कभी काटता नहीं। वरन् शरीर में कांटे चुभोकर खून पी जाता है। किन्तु उस समय खटमल की सूंड से कुछ भी काम नहीं लिया जाता; और वह सिर से नीचे की ओर पैरों के प्रथम जोड़ तक शरीर से समान्तर रूप में रखी होती है। (देखो चित्र नं० २) रक्त शोषण के समय वह शरीर के मुख्य भाग पर खड़ी करदी जाती है। इसी प्रकार पहली ही वार में सूंड को चुभोने विषयक उसका प्रयत्न सफल नहीं हो जाता; वरन् कई वार उसे असफल भी होना पड़ता है। एकबार तो इस प्राणी के नौ दफा असफल होने की बात पुस्तक में पढ़ी गई है। मनोनुकूल स्थान प्राप्त होने तक यह प्राणी आत्मरक्षा के यत्न करता ही रहता है। किन्तु योग्य स्थान मिलते ही यह सबसे पहले वहां अपनी सूंड टिकाता है; और तब रक्त चूसने वाली नली के कांटे चुभोता है। (देखो चित्र नं० ४) उस कांटे वाली नली का पर्दा पतला होने के कारण ऊपर चढता हुआ खून साफ दिखाई पड़ता है। खून चूसन का खास काम सत्तपर्यो से होता है। यही खटमल की मुख्य इंद्रिय है जो कि; उसके सिर में होती है। इसके सिरे पर स्नायु जुड़े होते हैं; और खींचने पर वे सिकुड़ सकते हैं। साथ ही सत्तपर्य का क्षेत्रफल बढ़कर अन्दर रक्त चला जाता है। और वहां से फिर वह जठराशय में जा पहुँचता है। साधारणतः एक बड़े खटमल का पेट भरने में ४ से १० मिनिट तक का समय लगता है। छोटे खटमलों को इससे कम लगता है। पेट भरते ही नली को खींच कर खटमल अपनी सूंड को भी समेट लेता है। और तब वह बड़ी ही फुर्ती से अपना रास्ता तैर करने लगता है। इस तरह एकबार पूरा पेट भर जाने पर, कई दिनों तक उसे खून चूसने की इच्छा नहीं होती। अर्थात् इस रूप में वह सिंह के समान उदार भी होता है। किन्तु इसके विरुद्ध पिस्सू और जूं चौबीस घण्टे में दो या अधिक बार खून चूस लेते हैं।

खटमल के 'काटने' पर जो वातना होती है, उससे प्रायः सभी लोग परिचित होंगे। कई आदमियों के शरीर पर इससे लाल चट्टे से पड़ जाते हैं; किन्तु फिर शीघ्र ही वे नष्ट भी हो जाते हैं, और उनका परिणाम कुछ नहीं होता। कई आदमियों पर इनके काटने का परिणाम १२ घण्टे बाद होता हुआ देखा गया है। इसके बाद उनके शरीर पर चट्टे होने या खुजाने की क्रिया कितने ही दिनों तक जारी रहती है।

जीवनेतिहास

खटमल एक एक अण्डज प्राणी है। इसके अण्डे सफेद रंग के लम्बाकार और लगभग एक मिलीमिटर लम्बे होते हैं; जिनके एक सिरे पर तिरछा किनारा होता है, जहां कि एक ढक्कन सा लगा रहता है। उस ढक्कन को खोलकर ही खटमल का बच्चा बाहर निकलता है। जब अण्डे गर्भसे बाहर निकलते हैं, तो उन पर एक प्रकार का चिकना द्रव पदार्थ लगा रहता है। उसके सूख जाने पर वे अण्डे एक दूसरे से चिपक जाते हैं। दरारों में वे अण्डे ढेरों लगाकर रखे हुए देखे जाते हैं। एक मादी दिन में आठ-दस अण्डे देती है। इसके बाद अण्डे में गर्भवृद्धि बड़ी फुर्ती से होती है। बाहर से अण्डे पर दो लाल धब्बे दिखाई देते हैं, वे असल में उस प्राणी की आंखें होती हैं, जोकि अण्डे में बढ़ता जाता है। खटमल को अण्डे से बाहर निकलने में एक से तीन सप्ताह तक का समय लगता है; और उस समय वह शरीर परस्पर पारदर्शक तथा लाल रंग के नेत्रों वाला होता है। अन्य सब बातों में यह बड़े खटमलों के ही समान होता है। किन्तु फिर भी यह उनकी ही तरह चिपटा नहीं होता। इस ... होती हैं। इसी प्रकार यद्यपि बिना भोजन के कई ... की उसमें शक्ति होती है, किन्तु फिर भी मौका पाते ही ... ने लग जाता है।

पूर्ण-वृद्धि होने तक यह पांच बार खाल बदलता है। ज... मलों के रहने की दराजें होती हैं; वहां यह छोड़ी हुई खाल अक्सर देखी जाती है। इस क्रिया में खटमल की पीठ पर की झिल्ली फट जाती है; और उसमें से वह बाहर निकलकर चल देता है।

प्रत्येक बार में खाल बदलने के बाद उस पर कालेपन की झलक दिखाई पड़ती है; और अंतिम बार खाल बदलने के बाद पंखावशेष दिखाई देने लगते हैं। पिछली खाल बदलने से पूर्व इसे चार पांचबार भरपेट खाने को मिलना चाहिये। बाद में यदि एक दो बार भी मिला तो काम चल सकता है। अण्डे देने के बाद से पूर्णवृद्धि होकर खटमल तैयार होने में कम से कम सात सप्ताह लगते हैं। और कहीं २ तो यह समय छमहीने से साल भर तक का भी देखा गया है।

पूर्ण वृद्धि पाई हुई मादी छह से आठ महीने तक जीवित रहती है; और इतनी अवधी में वह २०० अण्डे दे डालती है। नर के विषय में जांभी अभी तक विशेष बातें ज्ञात नहीं हुई हैं; किन्तु फिर भी कुछ लोगों का यह कहना कि; नर रक्त-शोषण नहीं करते-झूंठ है। संयोग होने से पूर्व रक्तशोषण से नर-मादी के पेट पूरी तरह भरे होने चाहिये। इसी प्रकार अण्डे देने से पूर्व भी मादी का पेट भरा रहना चाहिये।

संयोगी-भवन में नर का अन्तर्बाह्यगामी अवयव मादी की जननेंद्रिय में प्रवेश नहीं करता, वरन् पूर्वोक्त बर्लिजेन्द्रिय में ही वह प्रविष्ट होता है। बर्लिज नामक एक इटालियन कीटक शास्त्रज्ञ हुआ है; और उसीने सब से प्रथम इस इंद्रिय का पता लगाया था। इसी कारण इस इंद्रिय का नाम 'बर्लिज की इंद्रिय' पड़ गया है। किन्तु विशेषता यह है कि; इस इंद्रिय की थैली शरीर में भीतर की ओर खुली हुई नहीं होती। शुक्र-जन्तु इस अवयव में प्रविष्ट होने पर वे उस आवरण में से ही मार्ग निकाल कर अण्डे तक आपहुँचते हैं। इसके बाद रज-स्रोत के द्वारा गर्भी-भवन की क्रिया होने लगती है।

खटमल और रोग

केवल सोते समय काटने से ही खटमल बुरा नहीं होता; बल्कि उसके द्वारा शरीर में रोगजन्तु के प्रविष्ट होने का भी दोषारोपण किया जाता है। यह बात प्रथमतः पाश्चर संस्था के प्रो० मेचनिकॉफ नामक रसायन शास्त्रज्ञ ने सन १८८७ में कही थी। इसके बाद अब तो यह खोज भी हुई है कि: आवर्तक सन्निपात के जन्तु मनुष्य से बन्दर के शरीर में ले जाये जाते हैं। इनके सिवाय कालाबुखार, क्षय, विषम-ज्वर, रक्तकुष्ट, आदि रोगों के जन्तु भी खटमल द्वारा सशक्त मनुष्य के शरीर में पहुँचने की बात प्रसिद्ध शास्त्रज्ञों ने स्वीकार की है। किन्तु हमारे यहां के खटमलों द्वारा प्लेग का प्रसार होने की बात सोलहों आने ठीक है। सन १९०५ में वर्जीवित्स्की ने प्रयोग द्वारा खटमल के पेट में प्लेग-जन्तुओं की वृद्धि होती हुई दिखाकर; उस प्रकार के खटमल से उसने गिनीपिग नामक जन्तु के शरीर पर प्लेग की गिल्टियां भी निकलवा कर दिखाई थीं। इसी प्रकार सन १९१५ में वेकॉट ने चूहों को प्लेग ग्रसित कराया था। इन बातों पर से सिद्ध होता है कि; पिस्सू की ही भांति इस प्राणि के द्वारा भी प्लेग का प्रसार होता है।

उपचार

एकबार घर में खटमल का प्रवेश हो जाने पर फिर उसका पूर्ण बहिष्कार कर सकना प्रायः कठिन होता है। किन्तु फिर भी इनका नाश करने के लिये अनेक उपायों से काम लिया जाता है। खौलता हुआ पानी, और मिट्टी का तैल हमेशा खटमल के निवास स्थान, और अन्य वस्तुओं पर छिड़का जाता है। इससे यद्यपि थोड़ा बहुत लाभ अवश्य होता है; किन्तु पूर्ण उच्चाटन नहीं हो सकता।

इसी प्रकार खटमल के लिये एक दुग्धद्रव (emulsion) का भी उपयोग किया जाता है। उस द्रव पदार्थ के बनाने में तीन भाग नर्म साबुन को १२ भाग गर्म पानी में घोलने के बाद उसी गर्म जल में बराबर से दो भाग तक मिट्टी का तैल या उसी के समान कम्प कोई तैल मिलाकर उस मिश्रण को खूब हिलाना चाहिये। यह यहां तक कि; कम्प को उसमें तैल का पता तक न लगे और सम्पूर्ण मिश्रण एक जीव होकर सफेद रंग का बन जाय। इसके बाद इसे बोतल में भर लेना चाहिये।

उपयोग के समय इसमें का थोड़ा सा द्रव लेकर उसे १ः१० गुने

पानी में मिला देना चाहिये। और इसके बाद उसे खटमल वाले स्थानों में ब्रश या पिचकारी से पहुँचाना चाहिये। लगातार दो चार दिन के अन्तर से यह द्रव्य काम में लाने पर अधिकांश खटमल नष्ट हो जाते हैं।

किन्तु जहाँ पुस्तकादि रक्खी जाती हैं, उन स्थानों में ऐसे पदार्थों का उपयोग नहीं हो सकता। अतः वहाँ इसके बदले गंधक की धूनी करना चाहिये। अर्थात् खिड़की, दरवाजे आदि सब बन्द कर कमरे को पूरी तरह बन्द कर देना चाहिये। इसके बाद डेढ़ सेर पीला गंधक लेकर उसमें पाव भर शोरा मिलाना और इसके बाद उसे आग में जलाना चाहिये। लगभग १००० घनफिट स्थान के लिये इतना मिश्रण बस होता है। किन्तु स्मरण रहे कि; इस मिश्रण को जलाने से पूर्व उस कोठरी में के चाँदी या मुलम्मा किये हुए सब बर्तनों को निकाल आय, अन्यथा वे उस धुँए के कारण काले पड़ जायँगे। इसे २४ घण्टे तक यह कोठरी बिलकुल बंद रखनी चाहिये।

इनके सिवाय एक अतिशय [illegible] उपाय हाइड्रो सायनिक की गर्मी देना भी है। किन्तु एक तो इसमें खर्च अधिक लगता दूसरे यह हवा ज़हरीली होने के कारण अनुभवी और मनुष्यों के द्वारा ही यह क्रिया की जा सकती है।

खटमल के काटने से जो चट्टे पड़ जाते या लाली आकर शुरू होती है, और उससे जो कष्ट उठाना पड़ता है; उस पर नियां, मीठातेल, मेंथोल, वेजलिन आदि मलना चाहिये। टी आयडिन भी लगाया जाता है।

हमारी परिस्थितियाँ और उन्नति।

(लेखक—श्रीयुत बाबू गुलाबराय।)

संसार में मनुष्य अपने को कुछ ऐसी परिस्थितियों के बीच में पाता है, जो उसको अपने हित के प्रतिकूल दिखाई पड़ती हैं, और वह उन से हार मान कर कहता है कि यदि मेरी परिस्थिति ऐसी न होती तो मैं कदापि उस काम को न छोड़ बैठता। परिस्थितियों की प्रबलता से किसी को इनकार नहीं; किन्तु जो परिस्थितियाँ हमको प्रतिकूल दिखाई पड़ती हैं; वे अजेय नहीं। वरन् उनकी प्रतिकूलता में ही हमारा बल है। परिस्थिति के अनुकूल होते हुए तो मूर्ख भी जय लाभ कर लेगा! मूर्ख और पंडित, छोटे और बड़े में; पापी और महात्मा में भेद इसी बात का है कि; बड़े आदमी परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं पाते, वरन् उन्हें बनाते हैं। "विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः" विकार के हेतु उपस्थित होते हुए निज के मन विकार को नहीं प्राप्त होते हैं वही धीर हैं।

परिस्थितियाँ कई प्रकार की होती हैं, किन्तु उनमें दो मुख्य हैं। एक प्राकृतिक और दूसरी मनुष्यकृत्। प्राकृतिक परिस्थितियाँ वह हैं जो प्राकृतिक नियमों अथवा अग्नि-जल-वायु आदि के कारण हों—जैसे अग्नि में हो कर कोई नहीं जा सकता, या हवा में उड़ नहीं सकता, बरफ पड़नेवाले देशों में कोई बाहर खुले में नंगा बदन सोता नहीं रह सकता, ऐसी परिस्थियों का सामना करना अवश्य कठिन है। किन्तु प्रकृति अपने ऊपर विजय लाभ करने का उपाय भी आप ही बता देती है। ऐसे उपाय जानने के लिये उसकी अविकल सेवा करनी पड़ती है। बेकन ने कहा है कि 'नेचर के मालिक बनने के लिये हमको उसका गुलाम बनना चाहिये।' प्रकृति के निरीक्षण से हमको उसके गुप्त रहस्य मिल जाते हैं। अथवा यों कहिए कि प्रकृति का स्वामी अपने रहस्य प्रकृति द्वारा बता हमारे ज्ञान को विस्तार देता रहता है। साधनों के साथ प्रकृति के रहस्यों को जान प्राकृतिक परिस्थितियों के ऊपर हम विजय लाभ कर सकते हैं।

मनुष्यकृत् परिस्थितियाँ भी दो प्रकार की हैं—एक जातिकृत् और दूसरी व्यक्तिकृत्। जातिकृत् वह है जो कि मनुष्य समाज की क्रिया प्रतिक्रियाओं का एकत्रित फल रूप हैं। इस में बहुत सी ऐसी बातें आजाती हैं जो मनुष्य लोग व्यक्तितः नहीं चाहते। किन्तु उनमें कुछ एक अपूर्व समूह-शक्ति काम करती रहती है और उस [illegible] बात को भी उत्पन्न कर देती है। बहुत से सामाजिक रीति रिवाज इसी प्रकार के हैं। यह करीब २ प्राकृतिक परिस्थितियों के बराबर ही कठिन होते हैं। लेकिन यह भी अजेय नहीं। यदि अजेय होते तो संसार में उन्नति के लिये स्थान तक न रहता। जिन लोगों ने उन्नति की है; इस में उठती हुई भविष्य की शक्तियों को हाथ में लिया है उन्होंने ऐसी परिस्थितियों को जीता है। जिस प्रकार पिछली पीढ़ियों के लिये बनी है, वैसी ही आगे की भी बनती है। अगर एक आदमी नहीं बना सकता; तो उसको हताश नहीं होना चाहिये। उसका थोड़ा श्रम निष्फल न जायगा। नई परिस्थितियों के बनने से पहिले हम को हम इस बात की खूब छान-बीन कर लेना चाहिये कि; हम अपने उत्साह में सुधार के धोके किसी न्याय विरुद्ध कार्य के तो जल्लाद नहीं बन रहे हैं! क्योंकि इस का भार हमारे ही ऊपर होगा। आगे चलो; किंतु पिछले के बोझे को अग्रोन्मुखी वृत्ति का बाधक न होने दो लेकिन ज़रा कभी पीछे की ओर भी देख लिया करो कि रास्ता भूल तो नहीं गये। जिस प्रकार वर्तमान से भूत का संशोधन करते हैं उसी प्रकार भूत से वर्तमान का भी संशोधन कर लेना चाहिये।

व्यक्तिगत परिस्थितियाँ वह हैं जिनको कि हमने स्वयं ही बनाया है। हम कभी स्वयं ही अपनी रची हुई बेड़ियों में बंध जाते हैं; और स्वयं बुरी आदत डाल कर उसके वश हो जाते हैं, और फिर कहते हैं कि मजबूर हैं। प्राकृतिक परिस्थितियों पर हमारा वश न चले और जातिगत परिस्थितियों के आगे हम को नतमस्तक होना पड़; किन्तु हमको अपनी रची हुई परिस्थितियों के वश होना लज्जा की बात है। जितना हम उनके वश में होते जावेंगे; उतना ही उनका स्वत्व हम पर बढ़ता जायगा; और हमारी बेबसी अधिक होती जावेगी। अतः हम को अपनी पिछली भूलों के कारण हताश न होकर यही कहना चाहिये कि 'बीती ताहि बिसार दे; आगे की सुधि लेय'। यदि दृढ़ संकल्प के साथ हमने पिछली परिस्थितियों पर विजय पा ली; तो उनका भार हमारे विजयी रथ के पीछे बन्दी की भाँति चलेगा।

देश संगीत।

(राग-सोरठ)

[लेखक—श्री० पं० गिरिधर शर्मा, "नवरत्न"]

सब सुखकारक जग दुखहारक मानव भारत देश।

१ हिमगिरि तेरे योग से, अमरधाम [illegible]
सागर तेरे स्पर्श से, रत्नाकर कहलात। सब सुख कारक०

२ घन उपवन गिरि सरित सर, नगर गाँव महिमांहि
सूर्य चन्द्र नक्षत्र नभ; तेरे सभी सुहाहिं। सब०

३ तेरे ज्ञानालोक से, हटे जगत भ्रम-
तूने ही जग को दिये, शिल्पकला [illegible]। सब०

३ व्यास पतंजलि जैमिनी; गौतम कपिल कणाद
महावीर बुद्धादि ने; किये अनूठे वाद। सब०

४ [illegible] दधीचि राघव जनक, विक्रम भोज प्रताप
तेरे ही सत [illegible] हुए, संहारक जगताप। सब०

६ अनुसूया सीता सती, सावित्री गुणगाथा
तेरी थीं सब नारियाँ, रूपराशि [illegible]। सब०

७ तेरा अनुपम अन्न जल, तेरा शुचि पय [illegible]
अब तेरा ही तेज यह, तन में फूंके प्रान। सब०

८ पुरुषारत नर तिलक हैं, अब भी तेरे लाल
उड़ा अपयश विश्व में, पहन सुगन्धित माल। सब सु०

राज्यगुरु पं० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' !

(लेखक—बाबू कृष्ण-गोपाल माथुर।)

'जगत' के पाठकों के लिये पंडितजी का नाम नया नहीं है। क्योंकि वे अब तक आपके द्वारा अनेकों बार काव्यामृत का पान कर चुके हैं। किन्तु यह एक स्वाभाविक नियम है कि, किसी महापुरुष के विषय में श्रद्धा उत्पन्न होते ही; उनसे परिचित होने की इच्छा भी बलवती हो जाती है। इसी नियमानुसार आज हमने 'जगत' के पाठकों की चिरकालीन इच्छा को पंडितजी के सचित्र परिचय द्वारा पूर्ण करने का आयोजन किया है!

वंशपरिचय

पंडितजी का जन्म झालावाड़ के राज्यगुरु श्रीमान पं० ब्रजेश्वरजी महाराज के घर ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी संवत् १९३८ को ननिहाल में हुआ। आप प्रश्नोरा नागर ब्राह्मण हैं। आप की पू० माता जयपुर राज्य के धणावन गाँव के ज्योतिषी पं० श्रीलालजी की पुत्री है जिनका नाम पन्नीबाई है। पंडितजी का शैशवकाल अपनी दादी की ही गोद में व्यतीत हुआ; जो कि एक पठित और ईश्वरभक्त स्त्री थीं, और राजपुताने की स्वदेश-वत्सल माता थीं; जिनका नाम श्री० हीरा कुँवर बाई था। पंडितजी के पितामह विद्वद्वर भट्ट गणेशरामजी थे जो कि झालावाड़ के राज्यगुरु थे। और प्रपितामह विद्वच्छिरोमणि भट्ट बलदेवजी महाराज अपने समय के बड़े भारी नीतिज्ञ; और राजपुताने के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक महापुरुष वीर जालिम सिंहजी के गुरु थे। इस तरह झालावाड़ राज्य के साथ पंडितजी का खान्दानी प्राचीन सम्बन्ध चला आता है। आप चार भाई थे; आप से बड़े दो भाई जिनका नाम पं० गोपेश्वर लालजी और गोपाल लालजी था; अब से बहुत पहल संसार छोड़ चुके हैं। हाँ, आप से छोटे पं० माणकलालजी अलबत्ता अभी ७-८ वर्ष पूर्व स्वर्गीय हुए हैं। ये एक होनहार युवक थे और आपकी जागीर के समस्त कारोबार को बड़ी दक्षता से चलाते थे। इनके अवसान से पंडितजी के जी को बड़ा धक्का पहुँचा; और कई दिनों तक आप उनके शोक में नानाविध विरयों के प्रति विरक्ति धारण किये रहे।

पं० गिरिधर शर्मा "नवरत्न"

शिक्षा

आपने तीन जगह विद्याध्ययन किया। काशी में स्व० महामहोपाध्याय पं० गंगाधर शास्त्री सी. आई. ई. के पास, जयपुर में पं० हरिश्वर-शास्त्री और भट्ट जानकी के पास, तथा झालरापाटन में भट्ट अंबालालजी और अपने पिता एवं मुंशी अब्बास बेग के पास तथा स्थानीय पाठशाला में आपने शिक्षा पाई। हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त आपने भारत की विविध भाषाओं का भी खूब अभ्यास किया है। श्रद्धेय पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदी के शब्दों में आप संस्कृत के उत्कट विद्वान हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी, बंगला, मराठी गुजराती आदि में भी आपका कम दखल नहीं! तिस पर भी अब तक आप निरंतर नानाविध ग्रन्थों का अध्ययन किया करते हैं! आपके चरित्र निर्माण में पू० दादीजी के अतिरिक्त गुरुजनों और सद्ग्रन्थों; तथा स्वर्गवासी वर्तमान झालावाड़ नरेश सर श्रीभवानी सिंहजी बहादुर की उदारनीति और सद्व्यवहार का बड़ा प्रभाव पड़ा है।

विवाह और संतति!

पंडितजी की प्रथम पत्नि का देहान्त संवत् १९५२ में ही हो गया था! इसके बाद दूसरा विवाह आपकी २५ वर्ष की अवस्था में हुआ। आपकी द्वितीय धर्मपत्नि का शुभ नाम श्रीमती रत्नज्योति देवी है; जो कि जयपुर के श्रेष्ठ लेखक पं० नटवरजी की पुत्री हैं। और हिन्दी तथा गुजराती भाषा की मार्मिक पंडिता हैं। इस समय पंडितजी की दो सन्तानें हैं, एक आठ वर्ष का पुत्र और दूसरी ५ वर्ष की कन्या!

साहित्यसेवा

आप वर्षों से साहित्य सेवा में लगे हुए हैं; और प्रायः हिन्दी एवं संस्कृत के ही सामयिक पत्रों में आपने बहुत कुछ लिखा है। साहित्य सेवा के नाते सबसे प्रथम हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका "सरस्वती" में आप ही का चित्र एवं परिचय प्रकाशित हुआ था। 'जगत' पर तो उसके जन्मकाल से ही आपकी कृपा-दृष्टि रही है। आप कविता लिखते हैं; और खूब लिखते हैं। 'जगत' के पाठकों को इस विषय में पृथक् रूप से परिचय देने की आवश्यकता नहीं! अब तक आप ३०-३५ पुस्तकें लिख चुके हैं; जिनमें कई प्रकाशित हो चुकी और कितनी ही शीघ्र प्रकाशित होने वाली हैं। प्रकाशित पुस्तकों में मुख्य२ सुधूपा, अर्थशास्त्र, कठिनाई में विद्याभ्यास, जया-जयन्त, आरोग्य दिग्दर्शन, व्यापारशिक्षा, चित्रांगदा आदि हैं! आपने कविवर रवीन्द्रनाथ टागोर की गीताञ्जलि का कुछ अनुवाद हिन्दी पद्यों में भी किया है; जिसे कि सरस्वती सम्पादक पं० महावीरप्रसादजी ने खूब सराहा है। इनके सिवाय हाल में आपने "सौर मण्डल" नामक एक संस्कृत काव्य भी लिखा है; जिसमें विज्ञान और काव्य का दुर्लभ संयोग किया गया है। आपने इस काव्य को कलकत्ता, बंबई और पूना के विद्वानों को भी बतलाया था, जिसे कि उन्होंने बहुत पसन्द किया। इसी तरह आपने ५० नवीन व्याकरण भी निर्माण किया है!

सन १९०७ में आपने "विद्या-भास्कर" नाम का मासिक पत्र भी निकाला था, जो कि डेढ़ वर्ष चलकर बंद हो गया। उसके बंद होने का कारण आपकी अस्वस्थता और ग्राहकों की अत्यंत सत्या [illegible] था। पत्र बड़े ही सुन्दर ढंग से निकला था, परन्तु जनता ने उसे न अपनाया।

प्रचार-कार्य और देशसेवा

साहित्य सेवा के ही साथ २ पंडितजी देशसेवा और राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार कार्य भी लगन से करते आते हैं। इंदौर की "मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति" आप के ही अविराम परिश्रम का फल है। इसी प्रकार 'राजपूताना हिन्दी साहित्य सभा' (झालरापाटन,) "हिन्दी साहित्य समिति" (भरतपुर) आदि संस्थायें आपका [illegible] में भी [illegible] रही है। अब तक आप भारत के अनेक भागों में घूमकर अपने व्याख्यानों द्वारा वहाँ की जनता को मुग्ध बना चुके हैं। जयपुर, भरतपुर, कोटा, बूंदी, काशी प्रभृति राजस्थानी नगरों के सिवाय मध्यभारत के नरसिंहगढ़, राजगढ़, इन्दौर, भोपाल, जावरा, उज्जैन इत्यादि और इतर भारत के दिल्ली, अजमेर, लाहौर, सूरत, बंबई, पूना, [illegible], कलकत्ता, पटना-[illegible]पुर प्रभृति स्थानों में महासभा आदि के अनेक प्रसंगों पर आपके व्याख्यानों [illegible] मनुष्यों की सभा में

आपने अपने विचार-पूर्ण भाषण द्वारा जनता को उपदेश दिया और उससे उसे पूरा २ लाभ पहुँचा है। देशभक्ति आप में कूट २ कर भरी हुई है और समागम में आने वाले मनुष्यों पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

सम्मान और उपाधि लाभ।

मध्यभारत और राजपुताने की जनता तो आपको सम्मान और पूज्य दृष्टि से देखती ही है; साथ ही ब्रिटिश भारत में भी आपका खासा प्रभाव है। भारत के प्रायः सभी नेता आपका सम्मान करते हैं; और पंडित मदन मोहनजी मालवीय तो आपको मित्र कहकर सम्बोधित करते हैं। आपकी योग्यता और प्रतिभा पर मुग्ध होकर काशी के विद्वत्-समाज ने "नवरत्न" की, एवं भारत धर्म महामंडल (काशी) ने "महोपदेशक" की तथा चतु सम्प्रदाय श्रीवैष्णव महासभा ने "व्याख्यान-भास्कर" की उपाधियों से आपको सम्मानित किया है। इसी प्रकार हाल ही में झालावाड़ नरेश ने आपकी जागीर के वीरान गाँव बदलकर एक बहुत अच्छा गाँव दिया है।

साहित्यिक, धार्मिक और सामाजिक विचार

आप मातृ-भाषा हिन्दी के तो अनन्य भक्त हैं ही, किन्तु इसीके साथ २ आप अमरवाणी की सेवा में भी लगे रहते हैं। पर वर्तमान दशा से आप सन्तुष्ट नहीं है। आप कहा करते हैं कि; साहित्य में पंडितराज जगन्नाथ के बाद प्रगति नहीं हुई। इस आपके विचार में फड़कती हुई संस्कृत कविता लिखने ... भर में नहीं से ही है। क्योंकि ऐसे कवि केवल विद्या ... अप्पाशास्त्री राशिवडेकर थे, सो वे गुजर गये। शेष दो चार और भी हैं, किन्तु वे उतने प्रतिभाशाली नहीं।

आप के सामाजिक विचार बड़े उच्च हैं। बाल और वृद्ध विवाह की कुप्रथा को मिटाने के लिये आपने बहुत कुछ प्रयत्न किया है। इसी प्रकार आप पर्दे की प्रथा के भी पक्षपाती नहीं। आपके घर में प्रायः सब स्त्रियाँ घूंघट नहीं काढ़तीं। और वे सब पढ़ी लिखी हैं। इसी पर से पंडितजी के स्त्री शिक्षा-प्रेमी होने का भी परिचय मिल जाता है।

आप सनातन धर्मानुयायी वैष्णव हैं। फिर भी आपका प्रायः धर्म-मतवालों प्रेम है; किसीसे द्वेष नहीं। आप सच्चाई के उपासक और एक चारित्र्यवान व्यक्ति हैं। आपके सम्भाषण में ऐसी मोहिनी शक्ति है। कि एकबार आप से मिला हुआ व्यक्ति आजन्म आपको भूल नहीं सकता! हम भगवान से प्रार्थी हैं कि; वह पंडितजी को दीर्घायु करे; जिससे कि वे देश, समाज और साहित्य का भला करें।
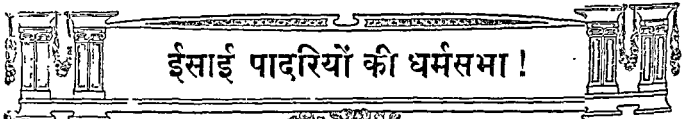
ईसाई पादरियों की धर्मसभा!

प्रति दस वर्ष के बाद संसार भर के आंग्ल धर्मोपदेशकों का एक सम्मेलन केन्टबरी के मुख्य धर्म-गुरु की अध्यक्षता में हुआ करता है। उसी सम्मेलन का छठा अधिवेशन गत सितम्बर मास में हुआ था। उस समय इँग्लैण्ड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, चीन, और भारत प्रभृति देशों से ढाई सौ पादरी प्रतिनिधि बनकर वहाँ गये थे। यद्यपि उपरोक्त सभा को कानून बनाने का अधिकार नहीं है; किन्तु फिर भी उसके शब्दों का सम्मान करने की इच्छा बड़े २ तज्ञों और अधिकारियों में पाई जाती है। क्योंकि पादरी लोग प्राय: विचारशील और दूरदर्शी हुआ करते हैं।

उस धर्मपरिषद के स्वीकृत प्रस्तावों की ओर ध्यान देने पर धर्म एवं राजनीति का सम्बन्ध विच्छेद करने वालों को निराश ही होना पड़ेगा। क्योंकि धार्मिक दृष्टि को अध्यात्मवाद तक ही परिमित रखने से यह सभा सहमत नहीं। वरन् राजनीति, समाज और धर्म तीनों को एक ही दृष्टि से देखने के विषय में यह सभा जोर देती है। उदाहरणार्थः-राष्ट्रसंघ की उपयुक्तता को इस सभा ने स्वीकार किया; और जर्मनी आदि शत्रु देश के प्रतिनिधियों को भी उसमें सम्मिलित कर लेने का उसने प्रस्ताव किया है। किन्तु भारत की ओर के प्रतिनिधियों ने कहीं इस बात का प्रतिपादन नहीं किया कि; राष्ट्रसंघ में भारत सर्कार की ओर से जो गोबर गणेश सभासद सम्मिलित किये जाते हैं, उनके बदले अब लोकनियुक्त प्रतिनिधि लिये जायँ! फलतः प्रश्न उठता है कि; जब इस सभा में जर्मनी सरीखे शत्रु तक के लिये स्थान है; तब ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत् भारत के लिये यह क्यों नहीं? कदाचित् ईसाई बन जाने पर ही उन पादरियों के अन्तःकरण में भारत को स्थान मिल सकेगा!

रेन्डल थॉमस डेविडसन (केन्टबरी के धर्मगुरु और धर्मसभा के अध्यक्ष)

किन्तु हमारी याद भले ही न आई हो, पर इंग्लैण्ड के मजदूर दल के प्रश्न की ओर उन पादरियों ने बड़ी बारीकी से ध्यान दिया है। और उनके लिये यह प्रस्ताव भी पास किया है कि; नफे-टोटे की अपेक्षा मनुष्य का जीवन अधिक मूल्यवान होता है। अतः इस तत्व के अनुसार मजदूरों को पेटभर भोजन दिया ही जाना चाहिये, यही नहीं वरन् उन्हें इतना वेतन दिया जाना चाहिये कि; जिसमें वे प्रतिष्ठा पूर्वक अपनी गृहस्थी चला सकें। इसी प्रकार सभा ने यह भी सिफारिश की है कि; एक ऐसी औद्योगिक पार्लमेंट स्थापित की जाय जिस में कि; मजदूर और पूंजीवालों की स्पर्धा को कम करने के लिये उभय पक्षों के प्रतिनिधि समानता के नाते बैठ सकें।

सामाजिक विषयों में विवाहबन्धन किसी नियत समय तक मानने और बाद में सम्बन्ध त्याग देने आदि विधियों का निषेध करने के साथही सभा ने यह मत भी प्रकट किया है कि; यूरोप में बालबच्चे न होने देने के लिये जिन अन्यायपुक्त उपायों से काम लिया जाता है; वे बन्दकर दिये जायँ।

इसी प्रकार उसने यह मन्तव्य भी प्रकट किया है कि; दृश्य जगत से परे मृतात्माओं के जगत का पता लगाने वाले जिस शास्त्र के निर्माण होने की संभावना प्रतीत होती है; उसे धर्म के नाम से सम्बोधन करना घातक होगा।

इसी प्रकार अन्त में यह आशा प्रकट की गई कि ईसाई धर्म के पंथों का नानाविध विषयों में कितना ही मतभेद रहा हो; किन्तु जिस प्रकार बायबल सबके लिये प्रमाणभूत माना जाता है, उसी प्रकार सब पंथों के पादरियों के एकमत होकर कार्य करने में भी किसी प्रकार की रुकावट न रहनी चाहिये।

इन बातों पर से विचार किया जासकता है कि; इस समय हमारी धर्मसभाओं में केवल जातिभेद विषयक प्रश्नों पर ही चर्चा होती रहनी चाहिये; अथवा राजनीति और समाज की दशा पर भी इनमें विचार किया जाना चाहिये! क्या हमारे धर्माचार्य इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे?

दीख भी नहीं सकते! उनका पता अभी कुछ समय पूर्व ही लगा है। 'यूरेनस' और 'नेपच्यून' ये नाम अंग्रेजी के हैं। जिन्हें अपनी भाषा में हम प्रजापति और वरुण कह सकते हैं।

हां; तो सूर्य और उसके आसपास घूमने वाले ग्रह तथा उन ग्रहों की प्रदक्षिणा करने वाले चन्द्र अर्थात् उनके उपग्रह; ये सब मिलाकर इस विशाल जगत का एक कोना मात्र होते हैं। सूर्य मानों एक परिवार प्रेमी राजा है। उसकी यह पारिवारिक मण्डली आपस में एक दूसरे से जितनी निकट है; उतनी आकाशस्थ अन्य किसी भी परिवार की नहीं। पृथ्वी पर जिस प्रकार भिन्न २ नगर बसे हुए होते हैं; उसी प्रकार हमारी यह सूर्यमाला भी संसार का एक नगर ही कही जासकती है। हम इन नगरों में रहते हैं, और आकाश में के अनन्त तारागण अन्य नगरों की भांति हैं। उनमें कुछ बड़े २ शहर हैं, और कुछ छोटे २ गाँव! किन्तु हमारा गाँव बहुत बड़ा नहीं है। उसमें सूर्य मानों एक राजप्रसाद सा है; और बुधादि ग्रह छोटे बड़े अथवा मध्यम प्रति के घर हैं। यह पृथ्वी ही हमारा घर है; किन्तु उन घरों में चमत्कार यह है कि; ये सब दूरसे एक दूसरे को दिखाई भर देते हैं। किंतु एक घर वाला दूसरे घर में जा नहीं सकता; किंबहुना वह यह भी नहीं जान सकता कि; वे घर बसे हुए हैं या निर्जन! अन्य गावों के छोटे २ घर भी हमें नहीं दिखाई पड़ते। केवल वहां के बड़े २ भवन ही दिखाई देते हैं, जिन्हें कि; हम ग्रह कहते हैं।

पुजारी—तुमने सूर्य को परिवार का जो मुख्य पुरुष कहा; इसका मतलब क्या है?

मैं—महाराज! इस अलंकारिक भाषा को छोड़कर स्पष्ट शब्दों में यह कहा जासकता है कि; सूर्य के आसपास घूमने वाले ग्रहों को उष्णता और प्रकाश अर्थात् उनका मुख्य जीवन सब प्रकार सूर्य से ही मिलता है।

पुजारी—तब ये आठों ग्रह भी सूर्य के आसपास आठ दिशाओं में फैले हुए होंगे!

ग्रहण, पिधान और अधिक्रमण।

(अ) गुरु के उपग्रह अपनी २ कक्षा में घूमते हुए जब प प की सतह पर आजाते हैं, तब वे भू (पृथ्वी पर के) प्रेक्षक को गुरु बिम्ब पर से अधिक्रमण करते दिखाई पड़ते हैं, और इस सतह से आगे जाते हुए ५ ६ और ८ इन स्थानों में जब बिम्ब के पीछे अदृश्य हो जाते हैं, तब उनका पिधान होता है। (आ) १ और ३ स्थान वाले उपग्रहों की गुरु बिम्ब पर गिरी हुई जो छाया दिखाई पड़ती है, वही गुरु ग्रह पर का सूर्य ग्रहण होती है। २ नामक स्थान पर के उपग्रहों का केवल अधिक्रमण ही होता है, किंतु उनकी छाया बिम्ब पर नहीं गिरती। (इ) अंक ४ ५ और ७ वाले स्थानों पर गुरु की छाया में चले जाने वाले उपग्रहों को ग्रहण लग रहा है।

मैं—नहीं महाराज! सो बात नहीं है। घुड़दौड़ के मैदान में सभी घोड़े जिस प्रकार एक ही घेरे में घूमते हैं; उसी प्रकार ये ग्रह भी सूर्य के आसपास एक ही समतल में प्रदक्षिणा किया करते हैं!

पुजारी—महाराज! इन ग्रहों का आकार कैसा होता है?

मैं—सब ग्रह स्थूल मान से गोलाकार ही कहे जासकते हैं उन में से सबसे बड़ा [illegible] हमारी पृथ्वी के गोले की अपेक्षा १२५० गुना बड़ा है। किंतु जिस प्रकार किसी बड़े नारियल में से छोटे नारियल की अपेक्षा कम खोपरा निकलता है, उसी प्रकार गुरु का द्रव्य पृथ्वी के द्रव्य की अपेक्षा ३०० गुना ही है। उसका व्यास ८६,००० मील है और हमारी पृथ्वी का व्यास ८००० मील है।

पुजारी—तब तो इतने बड़े ग्रह को घूमने में बहुत धीरे २ चलना पड़ता होगा!

मैं—हां। सूर्य के चारोंओर प्रदक्षिणा करते हुए वह एक सेकंड में [illegible] हमारी पृथ्वी पर के [illegible] हैं, किंतु [illegible] दूरबीन की ओर देखा जाय, तो उसके पृष्ठभाग पर [illegible] दिखाई देगी। [illegible] वायु की [illegible] लगभग ३०० मील [illegible]।

दूसरी एक महत्व की बात यह है कि; अन्य ग्रहों की भांति शनि अभी तक प्रकाशहीन एवं ठण्डे नहीं पड़ गये हैं। उनमें अपना भी थोड़ासा प्रकाश विद्यमान है। किंतु वे अंशतः [illegible] की भांति स्वयंप्रकाशी हैं। हम उन्हें अपने लिये एक प्रकार से दिये कह सकते हैं। शेष ग्रह केवल लेम्प के पीछे की ओर [illegible] कांच की तरह प्रकाश-परावर्तक कहे जासकते हैं!

पुजारी—अच्छा तो गुरु को सूर्य की परिक्रमा करने में कितना लगता है?

मैं—हमारी पृथ्वी को सूर्य की परिक्रमा करने में ३६५ दिन पूरा एक वर्ष लगता है। किंतु गुरु को एक प्रदक्षिणा में ११ [illegible] ३१० दिन अर्थात् लगभग १२ वर्ष लगते हैं; और शनि तो पूरे [illegible] वर्ष में जाकर यह प्रदक्षिणा पूरी कर पाता है।

पुजारी—क्यों भाई! ग्रहों की प्रदक्षिणा का यह समय कैसे हुआ?

मैं—आकाश में जो असंख्य तारे हैं; वे स्थायी अर्थात् अचल हैं। किंतु पृथ्वी पर से देखने वाले को सभी ग्रह तथा हमारे सूर्य-चन्द्र उन तारों में से किन्हीं विवक्षित मार्गों के बीच में होकर क्रम २ से पश्चिम से पूर्व की ओर जाते दिखाई देते हैं। रेल की सड़क पर जिस प्रकार जगह २ स्टेशन बने होते हैं उसी प्रकार इन सबके मार्ग में तारों के विवक्षित समुदाय हैं। और डाकगाड़ी जिस प्रकार अपनी राह से बराबर एक सी चली जाती है, और कहीं भी वह अधिक देर तक नहीं ठहरती; उसी प्रकार ये सब ग्रह उस समुदाय में होकर गुजरते हुए शीघ्र चले जाते हैं। चन्द्रमा के मार्ग पर जो कुछ तारे हैं, उनको ही लोग नक्षत्र कहते हैं। समस्त ग्रह सामान्य मान से इन नक्षत्रों में होकर ही जाते हैं। चंद्रमा एक दिन में आकाश के जितने भाग को तैर करता है; उसमें के तारों का समुदाय साधारणतः एक नक्षत्र कहा जाता है। चंद्रमा को सम्पूर्ण आकाश में घूमने के लिये २७।। दिन लगते हैं। इसीलिये २७ नक्षत्रों की कल्पना की गई है और उनके अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि नाम रख दिये गये हैं। इन नक्षत्रों में से अश्विनी से सवा दो-दो नक्षत्र गिनते जाने से एक राशि होती है।

अश्विनी, भरणी कृत्तिकादि देख।

इन नक्षत्रों में के मघा, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी का एक पाद मिलकर सिंह राशि होती है। आजकल गुरु ([illegible]) सिंह राशि में है। इसी कारण इस वर्ष सिंहस्थ कहा जाता है। [illegible] सिंहस्थ (अर्थात् सिंह पर बैठा हुआ) है कौन? क्या गुरुग्रह सिंह पर बैठा हुआ है? नहीं! क्योंकि [illegible] इन [illegible] में से जिस प्रकार [illegible] पड़ता है, वही [illegible] भी [illegible] चाहिये। सिंह राशि के [illegible] दूसरे से इतने अधिक दूर हैं कि, हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। किंतु आजकल आकाश में जहां सिंहराशि दिखाई देती है, वहीं के पास गुरुग्रह भी दीख पड़ता है, इसी [illegible]

शान्ति-निकेतन।

(ले—श्रीयुत बाबू चण्डीप्रसादजी " हृदयेश ")

(१)

पारिजात-निकुञ्ज में स्फटिकशिला पर बैठी हुई हास्यमुखी कल्पना ने विशादवदना चिन्ता की चिबुक को करकमल से उठा कर कहा—" बहिन ! चलो, इस चन्द्रिकाधौत गगनमण्डल में विहार करें !" चिन्ता ने अन्यमना होकर उत्तर दिया—" ना बहिन ! मुझे इस कुञ्ज की सघन छाया ही में विश्राम मिलता है !" कल्पना ने अभिमान में भरकर अश्रुपूर्ण लोचन हो कहा—" बैठो बहिन ! मै तो इस विस्तृत ब्रह्माण्ड के प्रत्येक धाम का निरीक्षण करुंगी।" चिन्ता को चिन्ता निमग्न छोडकर कल्पना चन्द्रिका-चर्चित नभप्रदेश में विहार करने के लिये चली गई।

कल्पना के कलित कलेवर में शीतल समीर ने सुरभित सुमन-समूह का पराग लेकर अंगराग लगाया; चन्द्रिका ने हंसकर सुधा-स्नान कराया; अम्बर ने नीलाम्बर पहिनाया, तारिकावली ने हीरक-हार पहिनाया; स्वर्ग-मन्दाकिनी ने करकमल में काञ्चन-कमल का उपहार दिया। इस प्रकार सुसज्जित होकर सर्वत्रगामी मनोरथ पर आरूढ हो, कल्पना कनक-राज्य में विचरण करने के लिये निकली। और चिन्ता ! विषादवदना चिन्ता उसी पारिजात-कानन के स्निग्ध-छायामय निकुञ्ज में बैठकर किसी की चिन्ता करने लगी।

निद्राभिभूत चन्द्रशेखर कल्पना के रथ की गति को देखने लगे। देखते २ मनोरथ दृष्टिपथ से अन्तर्हित होगया। चन्द्रशेखर व्याकुल होकर कल्पना के लिये पुकारने लगे। उनकी आँख खुलगई; स्वप्न की स्निग्ध आभा चैतन्य के अत्युज्वल आलोक में विलीन होगई।

प्रातःकाल का शीतल पवन ललित लताओं को आलिंगन करता हुआ बह रहा था; कनक-कुञ्ज में बैठकर कलित-कण्ठ कोकिल कोमल-कुसुम को जगाने के लिये प्रभाती गा रही थी; यामिनी ऊषा को अपना राज्य देकर सघन वन की अन्धकारमयी छाया में तप करने के लिये जा रही थी। कल्पना चिन्ता को निकुञ्ज में परित्याग करके स्वयं संसार में परिभ्रमण कर रही थी।

चन्द्रशेखरने देखा; आश्चर्य्य और आल्हादके अपूर्व संमिश्रण में, स्वप्न और सत्य के सुवर्ण-राज्य में, ध्यान और ध्येय के विचित्र सम्मिलन में, अभिलाषा और पूर्ति की अनोखी संधि में, देखा कि कल्पना फूलों के राज्य में विहार कर रही है।

चन्द्रशेखर ने निकट जाकर पूछा—" कौन ! कल्पना !"

कल्पना ने उत्तर दिया—" मै कल्पना नहीं किशोरी हूं। "

कल्पना की भांति किशोरी भी उसी क्षण अन्तर्हित होगई। चन्द्रशेखर अनिमेष लोचन से देखने लगे।

कुतूहल और कल्पना—दोनों सहोदर है।

(२)

यामिनी और ऊषा के अन्तिम आलिंगन के समय, स्मृति और प्रत्यक्ष की क्षणिक संधि के अवसर पर, स्वर्ग और संसार के निमेष-स्थायी मिलन के मुहूर्त में, स्वप्न और सत्य के चुम्बन-व्यापार के क्षण में, चन्द्रशेखर ने किशोरी का कान्त-दर्शन प्राप्त किया था। उस समय विकार का आडम्बर नहीं था; स्निग्ध शान्ति का सुन्दर सुराज्य था। चन्द्रशेखरने जो दृश्य देखा वह भूलने योग्य नहीं था। संसार के रंगमञ्च पर सौन्दर्य्य का एक अपूर्व अभिनय था। चन्द्रशेखर केवल दर्शक ही नहीं थे, वरन् उन्होंने उस अभिनय में भाग भी लिया था, तब भला वे उसे कैसे विस्मृत कर सकते थे ! स्वर्ग से दूर रहकर भी [illegible] ऊँची उठती है; पंक में पतित होकर भी हीरकज्योति अपनी [illegible] का विस्तार करती है; विपत्ति के अन्धकार गह्वर में भी [illegible] का आलोक दृष्टिगोचर होता है—तब स्वभाव के सुकुमार बन्धन में बँध कर मनुष्य अपनी कृति की स्मृति को कैसे विस्मृत कर सकता है !

चन्द्रशेखर का हृदय किशोरी के नव-यौवन-वन में विहार करने लगा। लावण्य सरोवर के विकच-इन्दीवर नयन में, प्रफुल्ल गुलाब के सुकोमल पल्लवाधर में, तुषारकणासिक्त विकसित कमल कपोल में, नवदूर्वादलश्याम रोमराजि में, हिमाचल के कलित कनक शृंग में—चन्द्रशेखर का हृदय, तन्मय होकर विहार करने लगा। चन्द्रशेखर संसार में रहकर भी कल्पना-कल्प किशोरी की मधुरमूर्ति के साथ स्वर्ग में विहार करने लगे। इस स्वर्ग में समीर थी किन्तु शीतलता नहीं थी, तन्मयता थी किन्तु आनन्द नहीं था; राग था किन्तु उतार नहीं था। चन्द्रशेखर प्रणय-पर्वत पर स्थित होकर अचेतन होने लगे। कौन जानता था कि; उनका पतन स्वर्ग में होगा अथवा रसातल में ! इस सम्बन्ध में क्या चन्द्रशेखर सदुपदेश को सादर ग्रहण करेंगे !

किशोरी किशोरावस्था की सीमा पर पहुँच चुकी थी। यौवन की उद्दाम प्रवृत्ति की रंगभूमि में किशोरी ने प्रथम चरण रक्खा था। यौवन के तीव्र मद की अरुणिमा उसके कमलनयन में दृष्टिगोचर होने लगी थी; उसकी गति में भी सुरा का मतवालापन परिलक्षित होता था। आनन्द-मद से भरी हुई निश्वास एवं प्रत्येक अंग का विकास, खिलती हुई कली के सदृश प्रतीत होता था। कैसा अपरूप लावण्य था। शरत्काल के विमलजल की भांति, दर्पण की स्वच्छता की भांति, पुण्यात्मा के हृदय की भांति, सती के प्रेम की भांति, उसका समस्त शरीर दैदीप्यमान हो रहा था। कमलिनी ने अभी तक बालरवि की प्रथम किरणस्पर्श से उत्पन्न होने वाले विद्युत्प्रवाह का अनुभव नहीं किया था; कुमुदिनी ने कलाधर की सुधाधारा में अव-गाहन नहीं किया था। कैसी मनोरम संधि थी ? कैसा मृदुल मिलाप था ! स्वच्छ सुन्दर गगन में मानो ललिमा की प्रथम रेखा थी, किशोर-कानन में यौवन-वसन्त का मानो प्रथम पद संचरण था, प्रतिपदा और द्वितीया के सम्मिलित योग में सुधाधर की मानो पहिली कला थी; स्वच्छ तुषार के ऊपर मानो बालरवि की प्र[illegible] किरण थी; पकते हुवे रसाल के ऊपर प्रकृति की लेखनी से चि[illegible] की हुई मानो प्रथम अरुण-रेखा थी; नन्दन वन की पारिजात लता [illegible] मानो प्रथम विकास था; सौन्दर्य्य की रंगभूमि पर रतिदेवी की [illegible] पहिली तान थी।

परिधान ! सुन्दर शरत्काल की यामिनी मानो चन्द्रिका [illegible] साड़ी परिधान करके खड़ी हुई थी; गुलाब की अधखिली कली मा[illegible] जुही की साड़ी पहिन कर विहार करने आई थी; आदि कवि [illegible] कल्पना मानो वाणी का शुभ्र अम्बर परिधान करके साहित्य के उप[illegible] में घूम रही थी; आत्मा मानो उज्वल सत्य की साड़ी परिध[illegible] पतिव्रता के परमपावन वन में पुष्प चयन कर रही थी; चन्द्रशेखर [illegible] रूप पर, इस वेष पर बलिहार होगये।

चन्द्रशेखर उपवन में इधर उधर घूमने लगे। उपवन उसी प्रका[illegible] शान्त एवं मनोरम था; किन्तु चन्द्रशेखर को प्रतीत होता था मानो [illegible] प्रत्यक्ष स्मृति के गर्भ में लोप हो गया, ध्वनि प्रतिध्वनि में लीन हो गई; राग मूर्छा के विवर में विलुप्त हो गया, और राजराजेश्वरी भगवती कल्याण सुन्दरी की मृदुलहास्यध्वनि निस्तब्धता की मर्म[illegible] गुफा में अन्तर्हित होगई।

(३)

कितने ही दिवस व्यतीत हो गये। ऋतुराज का साम्राज्य समाप्त हो गया; ग्रीष्म का भीषण साम्राज्य भी अन्तर्हित हो गया। उन्नत कंमपद विषूप्रसाद की भांति, पश्चात्ताप-दग्ध हृदय [illegible] करुणामय की अजस्र करुणाधारा की भांति, शापसंतप्त मानव [illegible]

पर दया की आशीर्वाद लहरी की भांति, सूर्यतप्त पृथ्वीमण्डल पर नीलनीरजश्याम सघनघन की शीतल वारि-धारा पतित होने लगी। चन्द्रशेखर की स्मृति दामिनी, भूतकाल के सघन अन्धकार को पाकर और भी तीव्रता से चमकने लगी। घोर अन्धकार के मध्य में दामिनी की वह तीव्रज्योति-स्मृति का वह अक्षय दीपक-किशोरी का वह कल्पनामय कान्त कलेवर—चन्द्रशेखर को दुख देकर भी कराल काल की कालिमामयी कन्दरा में पतित होने से बचा लेता था।

सुविशाल गम्भीर महासागर में निमग्न होते हुए नाविक, दूर पर—बहुत दूर पर-पृथ्वी और आकाश की मिलन सीमा पर-उड़ती हुई जलयान की वैजयन्ती का दर्शन पाकर, जिस प्रकार मृत्यु की भीषण कन्दरा में पतित होने से बचने के लिये चेष्टा करता है; सहस्र २ विपत्तियों के जाल में आबद्ध मानव, दूर पर, भविष्य के अन्धकार-मय गगन में—आशा की कल्पनामयी ज्योति को देखकर जिस प्रकार इस असार संसार पर अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने के प्रयत्न में प्रवृत्त होता है; उद्भ्रान्त, पथिक, निराशा के भयंकर भालप्रदेश में, उत्तप्त रेणुकाराशि के मध्य में, दूर पर-बहुत दूर पर-मरीचिका की मायिक छटा को देखकर, जिस प्रकार अपने प्राणों को इस नश्वर देह में कुछ काल के लिये और भी बन्दी रखने का प्रयास करता है, ठीक उसी प्रकार चन्द्रशेखर किशोरी को-अपने हृदय-साम्राज्य के एक मात्र आधार-स्तम्भ को-अपने मानसरोवर के एकमात्र विकसित सरोज को-अपने प्रणय-पादप के एकमात्र विकच पुष्प को—अपनी जीवन-व्यापी यामिनी के एक मात्र उज्ज्वल नक्षत्र को-दूर पर, समाज और धर्म की सीमा के परे, लोक और परलोक के अन्तिम छोर पर, स्वर्ग और संसार की अन्तिम रेखा पर, देखकर, उसकी मृदुमुस्कान पर अपना सर्वस्व लौकिक और पारलौकिक वार देने के लिये, प्रेम के पारावार को पार करके अपनी रक्षा करने की चेष्टा में प्रवृत्त हो रहे हैं। हाय! चन्द्रशेखर! तुम्हारा कैसा दुस्साहस है; कैसा असम्भव अभिमान है; कैसा व्यर्थ स्वार्थत्याग है।

चन्द्रशेखर प्रायः सब समय ही उपवन में रहते हैं; कल्पना का साहचर्य्य पाकर, किशोरी को नायिका बनाकर, भावों की रसलहरी को प्रवाहित करके, अपने हृदय-पट पर, अव्यक्त भाषा में, मनोहर चिन्ता छन्द में एक महाकाव्य की रचना करते हैं। छन्द के साथ कहीं वीणा भी बज जाती! रस मन्दाकिनी यदि कहीं उन चरण-कमलों को भी चूम पाती! कल्पना यदि कहीं किशोरी का शृंगार कर पाती! किन्तु, ऊषा के बिना प्रातःकाल का वैभव निष्फल है; पात्र के बिना रस का आधार नहीं है, औन्दर्य्य के बिना भक्ति का प्रवाह व्यर्थ है, और किशोरी के बिना जगत शून्य है।

चन्द्रशेखर उसी शून्य में आत्मविस्मृत होकर घूमने लगे। उपवन फलविनम्र पादपराजि, कुसुमाभरणभूषिता लताश्रेणी, दुग्ध-फेनविनिन्दित दूर्वादल, कलकण्ठ पक्षिकुल, अधिक क्या प्रकृति का सम्पूर्ण वैभव भी, उनको अनेक प्रलोभन देकर भी, शून्य में जाने से न रोक सका। चन्द्रशेखर निरुद्देश हृदय, अनियन्त्रित गति, उदासीन मति, अवांछित आशा और अशेष ज्वाला के साथ, इस जगत के महाशून्य में गृह को परित्याग करके चल दिये। सब कुछ टूट गया; केवल एक बन्धन है; जीवन की विद्युत के साथ उसका सम्बन्ध है। जिस दिन वह टूटेगा; उस दिन सम्भवतः चन्द्रशेखर इस जगत में नहीं रहेंगे।

कैसा आश्चर्य्य है—कठिन जीवन एक सूक्ष्म तन्तु पर अवलम्बित है।

(४)

महाशून्य की महाशान्ति कैसी भयंकर है। अर्द्ध निशा के समय श्मशान भूमि में, यामिनी के तृतीय प्रहर की समाप्ति के समय मरणोन्मुख व्यक्ति की मृत्युशय्या के पार्श्व देश में, निर्घोष उल्कापात के तिमिरावृत्त गगनमण्डल में, निर्बोध के हृदय पर अत्याचार के नीरव आघात में,—कैसी भयंकर शान्ति होती है। उसका अनुभव इस हाहाकारमय संसार को अनेक बार प्राप्त हुआ है। उसी महाशून्य की महाशान्ति में, महारात्रि की महानीरवता में, चन्द्रशेखर कूद पड़े हैं। महाज्योति का आभास पाकर, महासंगीत का निनाद सुनकर, चन्द्रशेखर पार हो सकेंगे या नहीं—इस विषय में सन्देह करना दुर्बलता का लक्षण नहीं है।

चन्द्रशेखर ने अनेक तीर्थों में परिभ्रमण किया। अनेक पुनीत-सलिला सरिताओं में स्नान किया, अनेक अगम्य काननों में परिभ्रमण किया, किन्तु उस महाशून्य में वल्लकी के स्वर कभी नहीं गूँजे; आनन्द की भैरवी का रव कभी कर्ण गोचर नहीं हुआ; अभिलाषा की ताल पर आशा के उस मनोहर नृत्य की पद झंकार कभी नहीं सुनाई दी। उसी महाशान्ति के बीच में चन्द्रशेखर एकाकी घूमने लगे। महाशून्य में परिव्याप्त महावायु ने मानो उनकी हृदयाग्नि को और भी भयंकर रूप से प्रज्वलित कर दिया। अब वेदना का नीरव दर्शन, और व्याधि की निर्घोष ज्वाला, उनके उस काम कल्प कोमल कलेवर को भस्मसात करने का प्रबल आयोजन करने लगी।

कहां है वह स्निग्ध नवनीत-तुल्य शान्ति! जो शान्ति संसार-त्यागी महात्माओं का भी हृदय आकर्षित कर लेती है; सघनघन में उत्पन्न होनेवाली कली को चूम कर हँसा देती है; शैल शिखर पर स्थित होकर औषधी वर्ग में संजीविनी शक्ति का संचार कर देती है; नन्दन कानन में पारिजात को विकसित करती है; ऋषियों के हृदय में आत्मा के स्वरूप का—आनन्द की अक्षय ज्योति का-दर्शन कराती है, ऊषा के निद्रित नयनों में प्रद्युम्न की मनोहर मूर्ति को लाकर स्थापित करती है; निर्बोध बालक के मंजुल मुख पर मन्द हास्य, मातृत्व के पवित्र वक्षस्थल में करुणा; और मातृत्व के पवित्र हृदयसदन में स्वार्थत्याग की लहरी प्रवाहित करती है; जिसकी छाया में योगी की आत्मा निर्वाण पद को प्राप्त करती है; जिसके आश्रय में सुरनिवास स्वर्ग की पदवी धारण करता है; जिसके चरणतल में स्थित होकर धर्म अपनी रक्षा करता है; पुण्यपादप जिसकी पदनिसृत मन्दाकिनी से सिंचित होकर ऊर्द्धमूल कहलाता है, जिसकी प्रणय-मुद्रा को देखकर त्रसित आश्वासित हो जाते हैं; जिसकी मृदुमुस्कान देखकर अचल अचल हो जाते हैं, जिसका वीणाविनिन्दित स्वर सुनकर, वायु उन्मत्त होकर, मन्द २ बहने लगता है; जिसकी कान्ति को देखकर जल, आत्मविस्मृत होकर, निर्मल शान्त होकर, अनन्त की ओर प्रवाहित होता है—वह शान्ति—प्यारी शान्ति—कहां है? चन्द्रशेखर उसके लिये व्यग्र हो गये। उस शान्ति को प्राप्त करने के लिये अशान्त हो गये। उमड़ा हुआ हृदय पयोधि नयनों से बह चला। वह अश्रुधारा, हृदय की धधकती हुई अग्नि में, घृतधारा अथवा शीतल वारिधारा होकर पतित होगी—सो कौन कह सकता है!

गिर पड़े! चन्द्रशेखर हिमाचल की उस परमरम्य उपत्यका में, कदलीवन वाहिनी कल्लोलिनी के कोमल दुकूल पर, चन्द्रिका चर्चित शिलाखण्ड पर, मन्दपवनान्दोलित कुसुमशय्या पर, शान्ति का पवित्र आश्रय न पाकर मूर्छा के कोमल क्रोड़ में पतित हो गये।

मूर्छा शान्ति का क्षीण आभास है।

(५)

मूर्छा निद्रा की सहोदरा है। जिस प्रकार निद्रा श्रमित विश्व को अपने विशाल वक्षस्थल पर सुलाकर शान्ति प्रदान करती है, उसी प्रकार मूर्छा भी व्यथित प्राणी को अपनी क्रोड़ में लेकर उसे शान्ति प्रदान करके फिर तुमुल संग्राम के लिये प्रस्तुत करती है। मूर्छा की कोमल क्रोड़ को छोड़कर निद्रा की आनन्ददायिनी गोद में चन्द्रशेखर कब आये—सो भगवती ही जाने।

× × ×

चन्द्रशेखर ने स्वप्न देखा—

वर्षाऋतु का प्रथम प्रात काल है। कैलास के कांचनशिखर पर नवीन नीरधर मरकत और कनक के अपूर्वसंयोग की मनोहर छटा को दिखा रहे हैं; कदलीवन के अभ्यन्तर में कोकिल अपने कलकण्ठ से बोल रही है। मानसरोवर का शुभ्र निर्मल जल गगनव्याप्त सघन-घनपुंज की छाया को धारण करके कालिन्दी के घनश्यामरंजित नील जल की समता कर रहा है। गोपिकायें मानो मराल माला बनकर नील नीरज को चतुर्दिक से परिवेष्टित कर रही हैं; मयूर हर्षोन्माद से नृत्य कर रहे हैं। पवनान्दोलित जलतरंग माला यौवन के प्रथम आवेग में, एक दूसरे के गले मिल कर प्रियतम आलिंगन के काल्पनिक सुख का अनुभव कर रही है। समय कैसा सुन्दर है, कैसा शान्त और मनोरम है।

उन्होंने देखा-सूर्य्यकिरणमाला का उत्तापमय नृत्य नहीं है, किन्तु शीतल छाया की मनोहर पद झंकार है, पवन का विकारवर्धक वायु नहीं है, वरन् व्याकुल हृदय को शीतल करनेवाली मन्द मर्मर है। नहीं है ज्योति का तीव्र तेज, वरन् शान्ति की स्निग्ध छाया है। चन्द्रशेखर ने स्वप्न में उस चिरअभिलषित शान्ति का सुखद सहवास प्राप्त किया।

उन्होंने देखा—एक मणिमण्डप में एक सिंहासनपर, नृत्य

एवं किलोल करती हुई कल्लोलिनी के तट पर, कल्पना और चिन्ता बैठी हुई है। चिन्ता का मुख मण्डल मानों दया का पारावार था; कल्पना का सुन्दर वदन मण्डल मानो शृंगार की मन्दाकिनी थी। चन्द्रशेखर कुसुमाच्छादित द्वार देश पर खड़े होकर उन दोनों की बातें सुनने लगे।

कल्पना ने कहा—"बहिन! कहां है वसन्त का मनोहर वेश? कहां है समीर की वह मदमत्त गति? कहां है कोकिल की वह उन्मत्त कूक? ज्ञात होता है मानो एक महान छाया ने अपने अंचल में उस वसन्त के सूर्य को छिपा लिया है।"

चिन्ता ने कहा—"ना बहिन! यह वसन्त का परिवर्तित देश है। विलासके गान से मुखरित वन में आज शान्ति का कोमलस्वर परिव्याप्त हो रहा है; सूर्य की अभिमानिनी किरणमाला को अपने वक्षस्थल में छिपाकर भगवान की सुस्निग्ध छाया अपनी उदारता का परिचय दे रही है। बहिन; ब्रह्माण्ड के समस्त धामों में विहार न करके यदि केवल उसी में विहार किया जावे, जिसके चतुर्दिक अनन्त ब्रह्माण्ड घूमते हैं तो जीवन का दुःख सुख में परिवर्तित हो सकता है; उन्मत्त युवक वसन्त शान्त प्रावृट्-सन्यासी में परिवर्तित हो सकता है! आज वसन्त का यही सन्यास-वेश है। वसन्त संसार का साम्राज्य छोड़कर, प्रकृति के विशाल वक्षस्थल पर, उसके स्तनद्वय की पुण्यपियूष धारा को पान करके, ज्ञान की कांचन कन्दरा में निर्वाण दायिनी शान्ति का आश्रय ग्रहण कर रहा है। कल्पना! देखती हो इस मूर्ति को।"

कल्पना ने कहा—"हां देखती हूं बहिन्!"

चिन्ता ने कहा—"तब आओ! तुम्हारे पृथक रहने की आवश्यकता नहीं। मेरी विभिन्न विभूति की भांति अब तुम भी मेरे ही में अन्तर्हित हो जाओ।"

कल्पना चिन्ता में तल्लीन होगई। किन्तु चिन्ता के मुख पर वही मन्दहास्य था जिसे शिशु माता के मुख पर, बालकिरण कुसुम के अधर पर, योगी ऊषा के वदन पर, त्यागी सतोष के ओष्ट पर, और दयाकुल शान्ति के उज्ज्वल मुख पर देखता है।

चन्द्रशेखर ने देखा—प्रकृति की प्रकृत शान्ति विशुद्ध चिन्ता के रूप में, योगियों के हृदय सदन में, बालकों के मन-सुमन में, और विश्वप्रेम के परोपकार-प्रासाद में रहती है। चन्द्रशेखर आनन्दातिरेक से जाग उठे।

× × ×

चन्द्रशेखर ने देखा—सामने एक वृद्ध योगीश्वर बैठे हैं। चन्द्रशेखर ने उन्हें प्रणाम किया। योगीश्वर ने आशीर्वाद देकर कहा—"वत्स; मेरे साथ आओ।"

धर्म विश्वास को, त्याग परोपकार को; और संतोष नैराश्य को मन्त्र दीक्षा देने के लिये ले चला।

चन्द्रशेखर और योगीश्वर ने उसी कदलीवन में प्रवेश किया। चन्द्रशेखर को प्रतीत हुआ कि उनके उत्तप्त हृदय पर मानो शान्ति—कादम्बिनी की प्रथम पियूष-धारा पतित हुई।

(६)

योगीश्वर और चन्द्रशेखर उस कदलीवन के अभ्यन्तर में सर होने लगे। मधुर स्वर से पतन होनेवाली जलधाराएं, हुई कुसुमाभरण भूषिता लताओं की गोद में हंसते ... विचित्रविचित्र पक्षिकुल का मधुरस्वर—सब मिलकर योगीश्वर चन्द्रशेखर का अभिनन्दन करने लगे। कदलीदल ने अपने बाहुओं को मानों उन्हें आलिंगन देने के लिये प्रसारित किया चन्द्रशेखर और योगीश्वर प्रकृति के साम्राज्य में विचरने लगे।

कदली-कानन के अभ्यन्तर में एक वन्य चमेली का लतामण्डप है। पीतपुष्पों से समस्त वनस्थली वसन्त का परिहास कर रही है। इधर उधर से दो तीन झरने कलकल करते हुए बह रहे है। उसी लतामण्डप के सन्मुख योगीश्वर चन्द्रशेखर खड़े हो गये।

योगीश्वर ने कहा—"चन्द्रशेखर! स्वप्न की बात स्मरण है।

चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया—"हां प्रभो! स्मरण है। इस मैं स्वप्न को सत्यके स्वरूप में देख रहा हूं।"

योगीश्वर ने कहा—"देखोगे। आगे चलकर और भी देखोगे अपने प्रेम के व्यक्तित्व को अनन्त महासागर में निमग्न कर दो।

चन्द्रशेखर ने कहा—"कैसे करूं भगवान! जिसको हृदय के सिंहासन पर बिठाया है, उसे उतार कर महाशून्य में कैसे फेंक दूं।"

योगीश्वर ने हंस कर कहा—"चन्द्रशेखर! महाशून्य में नहीं, मैं कहता हूं अनन्त में। आँख उठाओ।"

चन्द्रशेखर ने आँख उठाकर देखा कि; लतामण्डप में, वन्य-पुष्पों के कोमल आसन पर, अनन्त सुषमामयी भगवती भारतमाता खड़ी है। चन्द्रशेखर ने नतशिर होकर प्रणाम किया।

योगीश्वर ने कहा—"देखते हो! कैसी मोहिनी मूर्ति है। कैसा जननी स्वरूप है। मातृत्व की विमल धारा मानों दोनों स्तनों से बहकर संसार में शान्ति-पियूष को प्रवाहित कर रही है। देखो मां का हीरकखचित शुभ्र किरीट, नीलाञ्चल, चित्रित अम्बर, और देखो मां का यह ऐश्वर्य। इन्हीं मां के पादपद्मों में अपने प्रेम के व्यक्तित्व की अंजली समर्पण कर दो। विश्वप्रेम का पवित्र मन्त्र ग्रहण करो।"

चन्द्रशेखर ने कहा—"और किशोरी!"

योगीश्वर ने चन्द्रशेखर के शिर पर हाथ रख कर कहा—किशोरी को गिरिराज-किशोरी के रूप में देखो।"

चन्द्रशेखर ने देखा कि; किशोरी मानों माता की ममता लहरी से चन्द्रशेखर को अभिषिक्त कर रही है। सौन्दर्य व्यक्तित्व को ... कर संसार को अपनी वात्सल्यमय मुस्कान और प्रेममयी करुणा धारा से शीतल कर रहा है।

चन्द्रशेखर ने माता को साष्टांग प्रणाम किया। ज्ञात हुआ कि उत्तप्त कलेवर पियूष में स्नान करके शीतल हो गया। वेदना मानो करुणा की आशीर्वाद लहरी में अवगाहन करके शान्त हो गई। चन्द्र ने अपूर्व शान्ति प्राप्त की।

माता की कोमल क्रोड़ ही शान्ति का निकेतन है।

छोटा पौधा।

[बालक के प्रति]

(लेखक—श्री० प० नर्मदाप्रसाद मिश्र, 'साहित्यशास्त्री')

बालक, तेरा रोना-हँसना उपजाता हिय में यह भाव—
तुझको क्या पीड़ित करता है, संसारी चिन्ता का घाव?
या तू दीन-हीन भारत की दशा देख दुख पाता है?
अथवा भारत के भविष्य का चित्र देख हरषाता है? ॥ १ ॥

(२)

विस्मृत कर निज पूर्व सुखों को और पुराना देश पुनीत;
भूल भूल अब वे प्रिय साथी और सुपरिचित शांति अतीत।
परमात्मा की परम कृपा से, तू भारत में आया है;
उसकी उन्नति की सामग्री सभी साथ तू लाया है।

(३)

जिससे तेरी शक्ति उदित हो; इसका ही तू कर अभ्यास।
आत्मशक्ति में, देश मुक्ति में, रख तू नित्य अटल विश्वास।
कर-पद हिलने लगे, प्रकृति ने तुझको यही सिखाया है;
भूल न, यह ही यत्नशीलता उन्नति का पद पाया है।

तेरे तनिक यत्न से होगा प्यारे भारत का उद्धार;
तेरी प्यारी शक्ति करेगी जन जन में विद्युत्-संचार।
निबल समझ मत अपने को, तू महावीर बलशाली है;
चन्द्र सूर्य चमकें तुझ से ही तेरी ज्योति निराली है ॥ ४ ॥

(५)

जब तू जन्मा, भरत भूमि का तुझ को था भारी आधार;
उसका ही आधार बनेगी अब तेरी यह शक्ति अपार।
तेरे रोते समय हँसा जग, अब न हँसी होने पावे,
दुनियाँ रोवे बिलख बिलख कर; तू हँसता हँसता जावे।

(६)

कर तू ऐसा काम कि जिसको देख काल निडर डर जाय,
बीज मरीखा प्यारे, मिट जा, विजयी कार्य-विटप हरयाय।
परहित में तू अपना स्वार्थ त्याग कर, सार यही है जीवन का,
मुझे दूसरा नहीं प्रयोजन दिखता है नश्वर तन का।

प्रोफेसर रमेशचन्द्र (गुरुकुलीय भीम)

(लेखक—श्रीयुत पं० धर्मेन्द्रनाथ " तर्क शिरोमणि " संपादक ' आर्यमित्र ')

(स्नातक गुरुकुल वृन्दावन)

इस वर्ष गुरुकुल वृन्दावन के प्रसिद्ध स्नातक प्र० रमेशचन्द्रजी अपनी विद्या समाप्त कर वहां से निकले हैं। उच्च श्रेणी के विद्याध्ययन के साथ २ अपूर्व शारीरिक शक्ति और अनेक शारीरिक कौशल्य प्राप्त कर लेना उन्हीं की विशेषता है। 'ब्रह्मचर्य' का आदर्श ही यह है कि; उच्च विद्या के साथ २ उच्च शारीरिक शक्ति भी प्राप्त की जावे, अर्थात मन और शरीर दोनों का पूर्ण विकास हो। केवल एक की उन्नति अधूरी है। देश में केवल विद्वानों और पहलवानों की कमी नहीं है, परन्तु वह माता धन्य है, जिसने ऐसे पुत्र को जन्म दिया जिसमें दोनों गुण हों। आज हम 'चित्रमय जगत्' के पाठकों को ऐसे ही एक विचित्र पुरुष का कुछ वृत्तान्त सुनाते हैं।

प्रो० रमेश की जन्मभूमि युक्तप्रान्त के बुलन्दशहर जिले के अन्तर्गत बाजीदपुर नामक ग्राम में है। आप वहां के प्रसिद्ध चौधरी श्री० रामस्वरूपसिंहजी के द्वितीय पुत्र हैं। चौधरीजी ने अपने पहिले पुत्र को स्कूलों और कालेजों में अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करने के लिये डाला था, परन्तु प्रो० रमेश के पढ़ने का समय आने तक सिकन्दराबाद नामक स्थान में एक गुरुकुल खुल चुका था।* चौधरीजी ने प्रो० रमेश को अपने आर्य-सामाजिक विचारों के अनुसार अंग्रेज़ी शिक्षा से हटाकर उस गुरुकुल में ही भेजा। यदि चौधरीजी ने इनको अंग्रेज़ी शिक्षा में डाला होता तो ये एक मामूली ग्रेजुएट बन जाते। इनका अपूर्व शारीरिक और मानसिक विकास गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का ही फल है।

ब्रह्मचारी रमेशचन्द्र।
(जंज़ीर तोड़ते हुए।)

प्रारंभ से ही इनकी रुचि शारीरिक उन्नति की ओर थी। व्यायाम, दौड़ने आदि में छोटी अवस्था में भी कभी अनियमता न होती थी। कबड्डी, कुश्ती आदि देशी और विदेशी खेलों में ये सबसे आगे रहते थे। परन्तु इनकी शारीरिक विशेष रुचि अपनी विद्या सम्बन्धी उन्नति में कभी बाधक नहीं हुई। ये पढ़ने में भी पूरा परिश्रम करते थे और संस्कृत तथा अंग्रेज़ी दोनों में ही इन्होंने अच्छी उन्नति की।

१९१३ में प्रो० राममूर्ति गुरुकुल वृन्दावन पधारे। ब्रह्मचारियों को भी उनके खेल देखने का अवसर मिला। और लोग तो खेलों का तमाशा देखकर सन्तुष्ट हो जाते हैं, परन्तु प्रो० रमेश इतने से सन्तुष्ट न हुये। इन्होंने सोचा कि; जो काम राममूर्ति कर सकता है, हम क्यों नहीं कर सकते। इन्होंने प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया। शरीर में सुदृढ़ और असाधारण शारीरिक शक्ति से भरपूर तो थे ही, इस लिये इन्हें शीघ्र ही सफलता हुयी। सबसे पहिले इन्होंने प्रो० राममूर्ति के सबसे कठिन कार्य-अर्थात् जंज़ीर तोड़ने को ही प्रारंभ किया। पतली से लेकर ये क्रमश: मोटी जंज़ीर तोड़ने लगे। इस समय ये जैसी जंज़ीर को तोड़ते हैं; वह प्रो० राममूर्ति की जंज़ीर से बढ़कर होती है।

आदमियों से भरी हुयी गाड़ी उतारने में तो इन्हें बहुत शीघ्र सफलता हो गयी। पहिली बार में ही इन्होंने ठसाठस भरी गाड़ी छाती पर से उतार दी।

इसके बाद इन्होंने छाती पर पत्थर तोड़ने की ठानी। यहां पर कहना देना आवश्यक है कि; प्रो० रमेश को इन कार्यों के अभ्यास के लिये कोई भी सुभीता न था। दिन भर ये पढ़ते थे और शाम को एक घण्टे इन सब बातों का अभ्यास करते थे, तिस पर भी अभ्यास करने का कोई सामान भी न था। यहां तक कि; छाती पर पत्थर तोड़ने का अभ्यास इन्होंने चूना पीसने की चक्की के पत्थर से किया था, जिसमें ये सफल हुये। पाठक सहज में अनुमान कर सकते हैं कि; यदि प्रो० रमेश ने विद्याध्ययन करने के साथ २ प्रो० राममूर्ति के सब कार्यों को कर दिखाया; तो यदि सब काम छोड़कर ये केवल शारीरिक उन्नति में ही लगते तो इनकी ताकत कितनी होती!

आपको मोटरकार रोकने का अभ्यास करने के लिये दो दिन के लिये आगरे भेजा गया। वहां गये तो आप इसलिये थे कि; मोटर रोकने का अभ्यास करेंगे, परन्तु पहिली बार ही जब मोटर रोकने लगे तो, युरोपियन और हिंदुस्तानियों की एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी और सब ओर से यह आवाज़ आने लगी कि; 'एक छोटा लड़का मोटर कभी न रोक सकेगा'। वहां कोई गुरुकुल का आदमी सहानुभूति प्रकट करने के लिये भी न था, अधिकतर अंग्रेज ही थे। यहां तक कि; मोटर ड्राइव करने के लिये भी ज़िद करके एक अंग्रेज़ ही बैठा। परंतु सब लोग आश्चर्य में डूब गये जब ड्राइवर को सारी शक्ति लगाने पर भी मोटर टससे मस न हुयी।

इसी प्रकार इन्होंने बहुत से शारीरिक कौशल दिखाये। इनकी असाधारण शक्ति देखकर महात्मा नारायणप्रसादजी भू० पू० आचार्य गुरुकुल ने इन्हें ग्रीष्मावकाश में बड़ौदे की प्रसिद्ध व्यायामशाला में प्रो० माणिकराव के पास भेजा वहां दो मास में इन्होंने लाठी, लेज़िम, तलवार, फरीगदका, मलखम आदि देशी खेल सीख लिये, जिन सब खेलों को सीखने में औरों को दो वर्ष से भी अधिक लगते हैं। इतनी शीघ्रता से सीखने का कारण यह भी था कि; प्रो० माणिकराव आप की असाधारण शक्ति को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रो० रमेश को सिखाने में विशेष परिश्रम किया। प्रो० रमेश ने इन देशी कलाओं को गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को भी सिखाया है।

प्रो० रमेश इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुये। अब इन्होंने प्रसिद्ध सैण्डो की तरह पेशी विकास अर्थात् मसल्स को बढ़ाना (Muscular Levdlopement) भी प्रारंभ कर दिया, और थोड़े दिनों में बिना किसी शिक्षक की सहायता के ये प्रत्येक अवयव का अलग २ पेशी विकास करने में समर्थ हुये। इस समय जब ये प्रत्येक मसल को अलग २ दिखाते हैं, तो लोग आश्चर्यित हो जाते हैं। ये प्रो० राममूर्ति के सब कार्यों को कर सकने के साथ २ देशी और विदेशी खेलों को भी जानते हैं, और सैण्डो की तरह पेशी प्रदर्शन भी कर सकते हैं। निदान शारीरिक कला के ये पूर्ण पण्डित (athlete professor) हैं। ये शारीरिक शक्ति के निम्न लिखित कार्यों को प्रायः दिखाते हैं—

(१) ज़ंजीर तोड़ना

(२) छाती पर भरी गाड़ी को उतारना

(३) छाती पर पत्थर तोड़ना

(४) तीन मन के भारी पत्थर को एक हाथ में (हाथ को सिर से ऊंचा खड़ा कर) लेकर दौड़ना

(५) मोटर रोकना

क्रमश:

* यही गुरुकुल उठकर पीछे वृन्दावन आ गया।

[illegible] के हाथ दिखाया। [illegible]

ये इन खेलों को गुरुकुलोत्सव के समय तथा कई प्रसिद्ध नगरों में भी दिखला चुके हैं। शाहजहाँपुर के लोगों ने आप के खेल देखकर अपने नगर में 'श्रीरमेश व्यायामशाला' खोलना निश्चय किया है। आप का स्वास्थ्य आदर्श है। एक मनुष्य का शारीरिक विकास कैसा होना चाहिये, इसका कोई आदर्श (Ideal) है तो ब्र० रमेश का ही शरीर। ये न पतले हैं, और न मोटे। परन्तु आश्चर्य यह है कि, इनके इकहरे शरीर की तोल दो मन से भी अधिक है—इनका शरीर इतना अधिक गठा हुआ है। दौड़ने में इनका मुकाबिला तेज से तेज दौड़ने वाले नहीं कर सकते। फुटबाल के ये अद्वितीय प्लेयर हैं।

इनकी विद्या सम्बन्धी योग्यता भी कम नहीं है। गुरुकुल के अंग्रेजी के परीक्षक प्रिंसपल ओडोनेल (o'donell) ने इनके विषय में लिखा है कि; अंग्रेजी की योग्यता लगभग बी. ए. के बराबर है। संस्कृत में इन्होंने गुरुकुल की स्कीम के अनुसार, उच्च संस्कृत [illegible] वेद, दर्शन उपनिषद् आदि पढ़े हैं। इनका विशेष विषय [illegible] (comparative study of religions) था।

इनकी अपूर्व शारीरिक शक्ति का यह रहस्य है:—

(१) पैतृक शारीरिक शक्ति
(२) नियमपूर्वक व्यायाम
(३) प्राणायाम
(४) सबसे बढ़कर 'ब्रह्मचर्य' और गुरुकुल का सादा जीवन—

हम आशा करते हैं कि; देश के नवयुवकों के लिये ब्रह्मचारी रमेश एक आदर्श होंगे।

बड़ौदा का हिन्दविजय जिमखाना !

(मैदानी और मर्दानी खेलों का दंगल !)
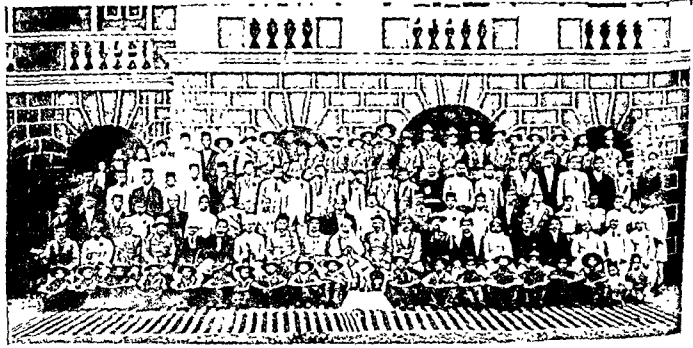
[व्यवस्थापक मंडल—पंच और विजयी खिलाड़ी।]

गत दिसम्बर सन १९२० की तारीख १० से १३ तक उपरोक्त जिमखाने की ओर से प्रति दिन सवेरे और संध्या समय कई तरह के मैच हुए। अब की बार इसमें बाहर के खिलाड़ी रत्नागिरी, बम्बई, नवसारी, पाटन, नडियाद, अहमदाबाद, पादरा आदि नगरों से सम्मिलित हुए थे। गत वर्ष की अपेक्षा इस बार खेलों के लिये विशेष उत्तेजन दिया गया था। विशेषतः छह मील की दौड़ और दस मील की सायकल की शर्तें दोनों ही देखने योग्य हुईं। दौड़ में दादर के श्री० ठाकुर को ३७ मिनिट १० सेकण्ड लगे, और सायकल की शर्त में बम्बई के श्री० जेराई को ३४ मिनिट १० सेकण्ड लगे। इनके सिवाय मलखम, स्लो सायक्लिंग (धीरे २ सायकल चलाना), चार फर्लांग की दौड़, टॅग ऑफ वार, आदि खेल भी दर्शनीय हुए, अंतिम दिन बड़ौदा के दिवान साहब के हाथों से विजयी खिलाड़ियों को चांदी के प्याले और सोने-चांदी के पदक आदि दिलाये गये। दिवान साहब ने उचित शब्दों में जिमखाने के व्यवस्थापकों को उत्तेजन देकर यह शुभ कामना प्रदर्शित की कि; शीघ्र ही यह जिमखाना महाराष्ट्र के पूना-डेक्कन जिमखाना की तरह गुजरात के लिये बड़ौदे के नाम से ख्याति लाभ करे। हमें भी आशा है कि; यदि महाराज बड़ौदा की ओर से इस जिमखाने को पूरा २ स्थान मिल गया; तो इसके व्यवस्थापक बड़ी ही शीघ्रता से गुजरात में प्रतीत होने वाली शारीरिक खेलों की असुविधा को दूर कर सकेंगे! क्या उत्तर भारत के लोग इधर ध्यान देंगे?

प्रेम !

१

प्रेम चन्द्र है, प्रेम सूर्य है, प्रेम पुरन्दर ईश।
प्रेम मेरु है, कल्पवृक्ष है, प्रेमी प्रेम महीश॥
प्रेम प्रान है, विश्वगान है, प्रेम गीत की तान।
प्रेम वायु है, वायु प्रेम है, प्रेम प्रेम की शान॥

२

प्रेम कर्म है, प्रेम धर्म है, प्रेम हृदय भगवान।
प्रेम सिन्धु है वारि-बिन्दु है, प्रेम तुल्य तूफान।
प्रेम शक्ति है, प्रेम भक्ति है, प्रेम मान-अपमान।
है, प्रेम पुण्य है, प्रेम मधुप, श्रीमान॥

३

प्रेम करो, उत्साह बढ़ाओ, जपो प्रेम का मंत्र।
रटो सदा बस, प्रेम-प्रेम, प्रिय! प्रेमी सदा स्वतंत्र॥
प्रेम अर्चना करो सर्वदा, करो प्रेम की चाह।
दुःख समय भी बहे हृदय में, बस प्रिय! प्रेम प्रवाह॥

४

प्रेम न हो जिस जात में, है वह मृतक समान।
मृदुल मनोहर है बनी, पर, वह यन्त्र-समान॥
प्रेमी ही की कीर्ति को, गाते हैं—लोकेश।
प्रेमी ही के स्मरण से, छूट जाते सब क्लेश॥

—"[illegible]"।

नागपुर कांग्रेस में भाग लेने वाले कुछ साधु संन्यासी !

संन्यासी और साधु लोगों का ध्यान राष्ट्र-कार्य की ओर आकर्षित करने के लिये गत (दिसम्बर मास। १९२०) की नागपुर कांग्रेस में सौ साधु महात्माओं को मुफ्त टिकिट दिलाने आदि की, करवीर पीठ के जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी और स्वामी रामतीर्थ के पट्टशिष्य श्री० आर. एस. नारायण स्वामी ने योजना की थी। भिन्न २ स्थानों से आये हुए, साधु संन्यासियों में से कुछ महात्माओं का यह फोटो दिया जाता है। इसमें मध्य भाग में दंडधारी श्रीशंकराचार्यजी और बायीं ओर में वस्त्र ओढ़कर बैठे हुए (नं ४) श्री० नारायणस्वामीजी हैं।

कांग्रेस में ११८ साधु महात्मा सम्मिलित हुए थे। उनमें ४३ प्रतिनिधि और ७४ दर्शक थे। प्रतिनिधियों में से ६ महात्मा सब्जेक्ट कमेटी में लिये गये थे, और उन्होंने अपनी योग्यता का भली भांति उपयोग किया। इन सब महात्माओं में से तीन चौथाई संख्या हिन्दी अंग्रेजी पढ़े-लिखों की थी। शेष संस्कृत और हिन्दी के ज्ञाता थे। शारदा और करवीर दोनों पीठ के शंकराचार्य ने बड़े ही उत्साह से कांग्रेस में भाग लिया था।

कांग्रेस को आर्थिक सहायता देनेवाले दो दानवीर।

आखिल भारतवर्षीय गौ–महासभा नागपुर

सुप्रसिद्ध देशभक्त लाला लाजपतरायजी की अध्यक्षता में इस महासभा का चतुर्थ अधिवेशन नागपुर में बड़े समारोहसे होगया। लालाजी का भाषण मार्मिक और प्रभावशाली था। कई मुसलमान भाइयों ने भी इसमें बड़े उत्साह से भाग लिया था।

विनोदी चित्र

अमेरिका—(इंग्लैण्ड से) क्यों भाई तुम्हें क्या होगया ?

इंग्लैण्ड—मेसोपोटामिया का छुहारा पेट में दर्द करता है।

अमेरिका—तब तो कहना चाहिये कि मैंने आर्मीनिया का फल न खाकर बुद्धिमानी ही की।

मिनोरिनर्स की अदालतके तीन न्यायाध्यक्ष

फणीन्द्र वसु कृत एक पाषाण प्रतिमा

(अधमें पड़ा हुआ)